अथ

स्याद्वादानुभवरत्नाकर।

अर्थात

अपने अनुभवकी सत्यवार्ता
रूपी रत्नोंका खजाना

जो

श्रीमत्परम पूज्य सद्गुरु जैन धर्मो-
पदेशक श्री श्री श्री १०८ श्री श्री
श्री चिदानन्दजी महाराजकी
कृपाकटाक्षसे प्रश्नोत्तर द्वा-
रा संग्रहीत हुवा ।

और

उक्तमहाराज की आज्ञासे लोकोपकारार्थ
उनके आज्ञाश्रित लक्ष्मीचंद मणोत
अजमेर वालेने

मुंबई

खेमराज श्रीकृष्णदासके
श्रीवेंकटेश्वरछापेखानेमें
मुद्रितकराया

फाल्गुन सं० १९५१ सन् १८९५ ई०



महाशयो !

यह पुस्तक श्री१०८ स्वामी चिदानन्दस्वामीजीने समस्त जेन मत वलम्बियोंके स्याद्वाद प्रास्यर्थ निर्माण किया और उनके शिष्य लक्ष्मीचं मणोत अजमेरनिवासीजीने छपाकर प्रकाशित किया ॥

इसके सिवाय उक्त स्वामीजीने "दयानन्दमतनिर्णय" अर्थात् नवी आर्यसमाज भ्रमोच्छेदन कुठार भी देश सुधारके लिये रचनाकर अ शिष्योंकी परमप्रीतिसे छपवानेकी चेष्टाकर रहे हे, यह भी शीघ्र दृष्टिगोचर होवेगा ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

लक्ष्मीचद्मणोत

नयाबाजार

अजमेर

प्रस्तावना ।



भो पाठकगणो! स्याद्वादानुभवरत्नाकर नाम का ग्रंथ कि जो यथा नाम तथा गुण करिके संयुक्त है, ऐसे उत्तमोत्तम महाग्रंथके कर्त्ता महा मुनि महात्मा और पूर्ण अध्यात्मी श्री श्री श्री १००८ श्री श्री श्री चिदानन्दजी महाराज है जो सदा आत्म कल्याण करनेके और किसी वस्तु का अभ्यास नही करते और रात्रीको जङ्गलादि मे रहते है और आत्मध्यान मे मग्न होकर रात्री बिताते है ऐसे २ अनेक आत्मार्थ के कार्यों से अपना अमूल्यसमय कि जिसका मूल्य ही नही है और जो गये के गाद पश्चात् कभी आताभी नही है सफलताके साथ बिताते है ॥

सिवाय इसके कृपा कर्म आदि मे भी इस प्रकार कष्टताके साथ प्रवर्तते है कि जिसमे इस पञ्चम कालमे अन्य मुनि आदिको के लिये सामान्य नही है अर्थात् अतिकठिन है यथा एक पात्र रखना अर्थात् उसी मे आहारादि लाना और सर्व को एकत्र करके भोजन करना परन्तु भोजन अर्थात् आहारभी एक ही दफे करना नतु दूसरी वक्त, इस प्रकार प्रति दिन आहार करना और उसका लाना भी ४२ दूषणो करके रहित है अर्थात् जैसे शास्त्र में कहा है उसी ही विधिपूर्वक आहार कर्म करते और शीतकालमें जैसे और साधु आदि ऊन का कम्बल तथा बनात आदि वस्त्र रखते है तैसे यह मुनिमहाराज नही रखते किन्तु दो चद्दर और एक लोवड़ी ही रखते है उसके सिवाय कोई भी अन्य वस्त्र ओढ़ने वास्ते कितना ही शीत क्यों न पड़े नही रखते और प्राय करके मौन भी कई महीनो तक रखते है और भव्यप्राणियोको शास्त्र का रहस्य समझाकर उनको आत्मस्वरूप इस प्रकार दरसाते है कि जिसका वर्णन करना मुझ अल्प बुद्धिवाले के लिये सामान्य नही है अर्थात् अति कठिन है और व्याख्यान मे भी श्री मुख से अध्यात्म ही शब्द निकलते है और श्रोत्रो कोभी श्रोत्र इन्द्रीसे इस प्रकार पान होता है कि मानों अध्यात्मरूपी अमृतरस का पान, इत्यादि अनेक कष्ट

कृपाओं और नियमो करके सयुक्त है कि जिनका वर्णन करना मुझ अल्प बुद्धिवाले के लिये सामान्य नहीं है ॥

अहो! इस ग्रंथ कर्त्ता की तीव्रता और बुद्धि की विचक्षणताको धन्यवाद देताहू कि जिन्होंने भोले प्राणियों के हितके लिये यह ग्रथ रचा और हरेक मतको उसीहीके मतानुसार निर्णय करके दिखाया,नतुः अन्य मतको स्वमतसे निर्णय करना, परन्तु किसी भी अन्य वा स्वमत के शास्त्रका रहस्य इस प्रकार समझते है कि मानो सरस्वती ही हृदय कमलपर स्थापितहै और इनके रचित ग्रथकी शोभा तो हम कहातक करें पाठकगण आपही निर्पेक्षहोकर पठनपाठन से नकि प्रबल युक्ति निर्पेक्षता शास्त्र रहस्य जानीकार और अध्यात्मी जान लेंगे मुख्य अभिप्राय इस ग्रंथ रचने का यही है कि भोले प्राणियोको अपनी बुद्ध्यनुसार ज्ञान होकर सत्यासत्यका निर्णय, जीव अजीवका स्वरूप, निर्द्वंप पना और आत्मस्वरूपका जानना प्राप्त होजाय, यद्यपि इस ग्रथमें अनेकानेक बारीकियां ऐसी है कि जिसको आजतक किसी भी पण्डितने नहीं खोली सोभी तुच्छ लेखनीसे लिखी है और अनेकानेक अमूल्य रसो करके सयुक्त यह ग्रथ सर्व पुरुषोंके लिये हितकारी है और इसके पठनपाठन से अल्पकाल में ही हरेक पुरुष सर्व मतों का निर्णय करसक्ता है ॥

इस ग्रंथके किञ्चित् विषय ये हैं—

प्रथम प्रश्नके उत्तरमें ग्रथ कर्त्ताने अपने जीवन चरित्रका वर्णन साधारण तोरपर किया है॥दूसरे प्रश्नके उत्तरमे न्याय वैशेपिक वेदान्त आर्य्यसमाजी ईसाई और मुसलमान उन्हींके शास्त्र और कुरान अजील आदि पुस्तकोसे उनके माने हुए पदार्थ वा ईश्वर कर्त्ता होनेके दूषण दिखाय कर परार्थकी अशुद्धता बताई है अनेक ग्रंथ कर्त्ताओने अपनी २ युक्तिसे दूसरेके मतका खडन किया है परन्तु इस ग्रथ कर्त्ताने उन्हींके शास्त्र से उन्हींके मतका खडन किया है और अपने शास्त्रको लेकर नहीं, इसलिये यह अपूर्व ह, पाठकगण वाचकर देखै मै पूरा२बयान नही कर सक्ता

क्योंकि देखने और सुननेमें बड़े अन्तर पड़ जाते है पश्चात् सर्वज्ञ मत अनादि सिद्ध किया है॥तीसरे प्रश्नके उत्तरमे जो जैनियोमें दिगम्बर आम्ना है उसमें और स्वेताम्बर आपनामे फर्क वहुत वातोंका है परन्तु इस ग्रंथमें उनमेंसे पाच मुख्य वातोंका निर्णय किया है १ केवलीका आहर करना २ स्त्रीको मोक्ष ३ वस्त्रमे केवल ज्ञान ४ जैनलिङ्गके अलावे अन्य लिङ्गकोभी मोक्ष ५ काल द्रव्यकी उपचारिता इन पांच वातोको सिद्ध करके केसर आदि चढ़ाना उनहींके शास्त्रानुसार किया है, इसके पीछे ढुढियोंका मत दिखाय कर मूर्तिपूजन सिद्ध किया है, मूर्ति और तीर्थादि को तो आर्य्यसमाज मत निर्णयमे सिद्ध किया है परन्तु ईश्वरकी मूर्तिसे पूजन इस जगह सिद्धकी है फिर गच्छादिककी व्यवस्था कही है, इसके वाद एक समाचारी शास्त्रानुसार सिद्धकी है चौथे प्रश्नके उत्तरमे प्रथमही ... , विपय प्रयोजन और अधिकारीका वर्णन किया है उस अधिकारी ... विपय मे अनेक वाते कह कर सिद्धान्त ओर कर्म ग्रंथका जो आप ... कर्मवंधनमें विरोध था सोभी अनुभव युक्तिसे मिटाया है फिर परीक्षाके ... कुदेवका स्वरूप कहकर सुदेवका स्वरूप दर्शाया है फिर ५७ बोल अर्थात् निश्चय, व्यवहार, नय, निक्षेपा, कार्कादि अनेक रीतिसे आत्म स्वरूप ओलखनेके लिये ऐसा समझाया है कि आजतक ऐसा वर्णन हरेक ग्रंथमें न होगा फिर गुरुका स्वरूप ओर धर्मका लक्षण कहा है अव संसारकी जो अनित्यता कहते है उसमें कोई तो जगत्को मिथ्या कहता है कोई सत्य कहता है इसके ऊपर ६ ख्याति दिखाई है, उनमेंसे पांच का खडन करके सत्यख्यातिको सिद्ध की है सो इस ख्यातिका वर्णन ... है क्योकि भापा ग्रंथमें ख्यातिका वर्णन आजतक किसीने ... न किया होगा किसी सस्कृत ग्रंथमें होय तो मै नहीं कह सक्ता किन्तु इस ख्यातिकी हरेक मनुष्यको खवरभी न होगी इस अपूर्व ग्रंथको पाठकगण वांचेगे तवहीं मालूम होगा, इसके वाद ६ द्रव्यका स्वरूप कहा उसमेंभी जीव द्रव्यके ऊपर ५७ वोल उतार कर भव्यजीवों को आत्मस्वरूप दिखाया है, फिर समकित दृष्टिके कथनमे शास्त्रानुसार ...रके पूजनेकी विधी ... कहकर उसमें एकान्त निर्जरा ठह-

राई है और जो अल्प पाप कहनेवाले है उनका अज्ञान दर्शाया है, फिर पच्चखाणकी विधी कहकर गुणठाणेके कथनमें ज्ञानगुणठाणे आदि वतलाया है और गुणठाणा कृपा करने से आताहै या गुणठाणे आये वाद कृपा करते है इस रीति के अनेक प्रश्नोत्तर है॥पचमे प्रश्न के उत्तर मे जैन मत की रीति से ही योग सिद्ध किया है उसमे स्वर साधने की विधि और आसनादि कहेहै फिर प्राणायाम मुद्रा और शास्त्र की रीति से चक्रो का ध्यान करना और पाखडी अक्षर आदि और उस ध्यान का फल अच्छीतरह से खुलासा वर्णन किया है फिर ग्रंथ कर्त्तापर प्रश्नों का आक्षेप किया है उनका ऐसी रीति से उत्तर दिया है कि जिसमें अहकार क्लेश नही इस रीति से पचमे प्रश्न का उत्तर पूरा करके ग्रथकर्त्ताके वनाएहुए अध्यात्मी पद कवित्त और कुंडली दिखाईहै और उनमे मन ठहरनेकी रीति भी दर्शाई है इस रीति मे इस ग्रथमें नानाप्रकार के अमोलक रत्नभरे हैं जैसा इस ग्रथका नाम है तैसाही इसमें लेख है इस ग्रंथकी सम्पूर्ण शोभा करने की शक्ति मेरी बुद्धि मे नही, पाठकगण इस ग्रथको वाचेगे तो फिर अन्य ग्रथ रखने की अभिलाषा नही रहेगी और पढ़कर कल्याण प्राप्त करेंगे ॥

पाठकगण महाशयों को नम्रता पूर्वक किञ्चित हाल विदित करताहूं कि इस ग्रथ मे कई तरहके विघ्न हुए परन्तु आपके अत्युत्तम अर्थात् (प्रबलपुण्य) ने इस ग्रथके आशय को नष्ट न होने दिया हा अलवत्ता चार फार्म अर्थात् ३२ पेज तक अनुमान १०० अशुद्धिया छपगई है सो शुद्धाशुद्धि पत्र में देखले और इन अशुद्धिया का रहने का कारण यह है कि जिस वक्त में यह ग्रथ परिपूर्ण वनगया तब मैने इस ग्रथके आशय को देखकर सोचा कि यह ग्रंथ शीघ्र छपकर इस आर्य्यावर्त्त मे प्रसिद्ध होयतो पाठक गणोंको बहुत लाभ होगा ऐसा समझकर प्रश्न कर्त्ताओसे विन्तीकर छपाने का उद्यम किया और अजमेर में इस ग्रथ की अपूर्व रचना (अर्थात मतमतान्तर के विषय) का शोर हुवा कि यह अपूर्व ग्रथ बना है सो इधर तो मै छपाने का वन्दोवस्त कररहा, परन्तु अनुमान २० तथा २२ वर्ष से दयानन्दमत अ

जो कि अपनेको अति उत्तम सत्यवादी प्रगट करते है सो उन आर्य्य समाजिओंकी सत्यता और नियम उपनियम आदिका वर्णन तो इसी ग्रंथ कर्त्ताने एक "दयानन्द मत निर्णय अर्थात् नवीन आर्य्यसमाज भ्रमोच्छेदन कुठार" नाम का ग्रंथ रचा है उसमें वर्णन किया है सो इस ग्रंथ रचने के बाद वो ग्रंथभी छपकर पाठकगणों के अवलोकन में आवेगा परन्तु इस जगह जो उन्होने इस ग्रथ मे विघ्न किया है उसको किञ्चित् लिखताहूं कि जिस वक्त में इस ग्रंथ के छपाने का प्रबंध करताथा उस वक्त में दयानन्द सरस्वतीजीके निज शिष्य पण्डित ज्वालादत्त ग्रंथ कर्ता के पास आयकर अपनी मायावृत्तिसे उस करुणानिधि ग्रंथकर्त्ता को अपने विश्वास में लेकर ग्रंथ छपने को लिया और लिखापढ़ी अन्यके नाम से कहाई सो सॅंव्वत १९५० आसोज सुदी मे ग्रंथ छापनेको लिया और तीन महीनेका करार किया परन्तु आषाढ़ तक उसके छापनेका कुछ प्रबंध उनसे न हुवा और आर्य्यसमाजका खंडन देखकर अन्तरंगमे द्वेषबुद्धिसे वैदिकयन्त्रालयके मेम्बरोसे मिलकर ग्रंथको नष्ट करनेके वास्ते उस छापेखानेमे दूसरीवार लिखापढ़ी करायकर छापनेका बन्दोवस्त किया सो उस जगहभी उन्होंने २० पृष्ठ छापकर झगड़ा उठाया और मूषक वृत्तिसे उस ग्रंथमे अनेक तरहके शब्द काटफांस अपनी बुद्धि अनुसार कर दिये आखिरको उस ग्रंथके नष्ट करनेको उनका जोर न चला क्यों कि इस वर्त्तमानकालमे महारानी विक्टोरियाका प्रबल प्रताप होनेसे कि सिंह और बकरी एक जगह पानी पीते है उनका कुछ जोर न चला आखिरको सॅंव्वत् १९५१ कार्तिकके मासमे पुस्तक लोटा दी तब मैने शीघ्रतासे छपनेके वास्ते पुस्तककी कापी मुम्बईको रवाने की और उनकी मूषकवृत्तिका खयाल न किया कि उन्होंने कापीमेसे शब्दोंको अदल बदल करदिया है परन्तु जब मुम्बईमें २ फार्म अर्थात् १६ पृष्ठ छपगये तब उनके प्रूफ और कापी अजमेरमें आये तब उसको देखा तो पहिले की कापीसे अर्थात् खरी लिखा गयाथा उसमें शब्दोका फर्क देखा तो इसीवक्त मुम्बईमे तार दिया कि छापना बन्द करो और पीछेसे उस पुस्तकका हाल उस छापेवाले महाशयको पत्रद्वारा लिखा और आर्य्य-

समाजिओंकी सत्यता और उनके यन्त्रालयमें १२ मासतक रहना सर्व वृत्तान्त मालूम हुवा, परन्तु हाल मालूम होनेके ५.०० फार्म औरभी छाप दिये थे सो यह सर्व अशुद्धिया शुद्धाशुद्धिपत्रसे करके पढ़े ताकि ग्रंथका रहस्य मालूम हो और इस वेंकटेश्वर छा मुम्बईके अधिष्ठापक सेमराज श्रीकृष्णदासजीको धन्यवाद देताहू कि इस महाशयको यथावत् हाल मालूम होनेके पेश्तर तो चार फार्म निकल गये परन्तु तिसके बाद इन महाशयने जो समाजियोंने मूषकवृत्तिसे काटफास की थी उसको अपने प्रबंधसे शुद्ध करके छपाना प्रारंभ किया सो अबभी जो उस काटफासके होनेसे वा दृष्टि दोषसे मात्राकी वा कमती वेसी होय तो पाठकगण महाशय सँभालकर बाचे और खबर दें कि दूसरी बार छापने मे गलती न रहे और जो इसमे अशुद्धिया होगई है उनके वास्ते क्षमाकरे॥८॥

आपका कृपाभिलाषी

लक्ष्मीचन्द मणोत

नयाबाजार

अजमेर

स्याद्वादानुभव-अनुक्रमणिका।



क
यः
दोष
वल
सी-
व-
गये-

पाचवे प्रश्नके उत्तरकी अनुक्रमणिका ।

श्रीवीतरागायनमः ।

स्याद्वादानुभवरत्नाकर ।

उपोद्घात ।

छप्पय ।

मंगलमय मंगलानन्द,–प्रद परम शान्त जू ॥
सिद्धि शिरोमणि वीर, तरन तारन अशान्त जू ॥ १ ॥
जिनवर पंकज चरण, शरण गहि रहत दिवस निशि ॥
ध्यान क्रियादत्त चित्त रखत, इन्द्रिय सदा वशि ॥ २ ॥
ऐसे सतगुरु पूज्यश्री,–चिदानन्द महाराज ॥
तिन्हें विनय युत वन्दना, करि हम पूछत आज ॥ ३ ॥

श्रीमहाराज !

वर्तमान समयके नाना प्रकारके मतमतान्तरोंके भेद और वाद विवाद सुनकर हम दीन जिज्ञासुओंके चित्त मलीन और विश्वासहीन हो गये । जिधर गये जिधर देखा जिधर सुना और जिससे पूछा यही कहते सुना कि, हमारा मत ईश्वरीय और सत्य तथा अनादि है, और सम्पूर्ण मतानुयायी अपनेही मतसे मोक्षका प्राप्त होना कथन कर अन्योन्य मतोंकी निन्दा करते और उनको असत्य बताते हुए पाये गये, जब यह देखा कि अपने तई सब बड़े और सच्चे कहते हे तथा मानते हैं तो इससे अनुमान किया कि कोई सत्यवादी नही, क्योंकि जब अपने मुख अपनाही विरद बखान कर रहे हैं, तो किस २ को सच्चा कहा जावे । दूसरी बात यह है कि यदि सबके वचन माननीय ठहराये जावें तो यह भ्रम रहता है कि इनमें परस्पर द्वेषने प्रवेश कहासे किया ? कारण यह कि सचके भेद नही होना चाहिये और यदि सबही ठीक मार्गपर है तो जिसका जिसपर विश्वास है वही ठीक है । तो फिर दूसर मतोंका खण्डन, और अपनेका मण्डन करनाही ठीक नही ॥ प्रायः देखा गया है कि जब ये मतवाले अपने मतकी सिद्धि करते हैं, तो दूसरे मतोंके दोष दिखलाकर ऐसी ऊटपटाङ्ग गाथा गाते हे कि जिससे पूरा २ खण्डन तो होता नही केवल फूट फैलती है–यथार्थ खण्डन वही समझा जाता है कि जिसका खण्डन किया जाय उसीका परस्पर विरोध प्रबल युक्ति और प्रमाणोंसे दिखलाकर भली भाँति प्रतिपक्षीका मुख बन्दकर दिया जावे । आज वर्तमान समयमे इस खण्डन मण्डनके झगड़े रगड़े ऐसे बढ गये

है कि जिनका वर्णन करनाही कठिन है ॥ अस्तु इन झगडासे ऐसा चित्त हटने कि सत्य धर्मका अभावही समझने लगे-परन्तु फिर जब आपके पधारनेके समाचार आपकी प्रशंसा सुनी तो आपके दर्शन करनेकी लालसा हुई, और यथावसर आने लगे। इस अल्पकालीन श्रीमद्‌राजके सतसङ्गसे यह अनुमान हुआ कि आपसे हमारी अभिलाषा पूर्ण हो सकेगी और आपका सदाचार और निष्पक्ष व्यवहार ऐसा देखा कि यद्यपि आप जैन धर्माचार्य्य हैं तथापि वैश्नव शैव शाक्तादि किसी मतावलम्बीसे को दोष नही, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, श्रावक (सरावगी) ओसवाल सबपर समान और सबके साथ उचित प्रेमका जो वर्त्ताव आपका है, वह हमारी आशालता भरी करनेके लिये पवित्र निर्मल जलके समान हुवा, उपदेश जो आपकी ओरसे दिया गया वहभी अपूर्व है, क्योंकि सबसे प्रथम आप दश बातकी सौगन्ध दिलाते द्युत, चोरी, मांस,मदिरा (शराब), परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, शिकार और अपने उपदेशका किसीसे प्रगट करनेका त्याग तो प्रायः सबही कराते हैं पर विलक्षणता आपके उपदेशमें पाई गई वह यह है कि, एक तो आप यह फरमाते हैं कि जबतक कहते इस साधु वृत्तिमें रहे अर्थात् धन और स्त्रीका संसर्ग न रक्खें तबतक तो हमारा गुरु मानना और भिक्षा देना और दूसरे यदि हमारी किसी साधुसे किसी कारणसे बनत हो जाय तो उससे द्वेष न कर जैसा हमें मानते हो वैसा उसभी मानों । जहांतक हमने इन सब बातोंको विचार कर देखा यही उत्तम और उपयोगी दीख पड़ी । यद्यपि सबही बातें उत्तम तथापि अंतिम उपदेश, जिसके विरुद्ध कहना सब मत धारियोंका मुख्य सिद्धान्त है अति विचित्र है कि जो किसीके मुखसे नहीं सुना गया और जिसने फूटका बीजकोही जला डाला-

अब हमारी अभिलाषा है कि, श्रीमुखसे कुछ धर्ममर्म श्रवण कर, अपनेको कृतार्थ करें-इसलिये आप हमपर अनुग्रह कीजिये । साथही इसके हमारी यहभी अभिलाषा है कि, जो वाक्य श्रीमुखसे प्रगट होवे लेखनीबद्ध होजाय ताकि उनसे अन्यान्य जिससे कि भव जीवोंकोभी लाभ पहुँचे । आपने जो यह कहा कि, लिखनेका अभ्यास हमारा न्यून है सो इस विषयमें हमारी यह प्रार्थना है कि, हममेंसे जिस २ का जैसा अवकाश मिलेगा वह इस कार्य्यको किया करेगा और इस प्रकार हमारा मनोरथ और आपका परिश्रम सफल होगा ॥ इसलिये हम विनय पूर्वक निम्नलिखित प्रश्नोंका उत्तर चाहते हैं और वह प्रश्न यह हैं-

प्रथम प्रश्न-हे स्वामिन् ! पहले आपका कौनसा देश क्या जाति और क्या नाम था सो सब वृत्तान्त अपनी उत्पत्ति आदिका कहिये तथा साथही यहभी कृपाकर बतलाइये कि किस प्रकारसे आपको वैराग्य उत्पन्न होकर यह गति प्राप्त हुई?

द्वितीय प्रश्न-वर्तमान कालमें जो मत मतान्तर हैं सो सब अपनेको सत्य और दूसरोंको असत्य कहते हैं सो आप कृपा करिके प्रसिद्ध मतोंके जो उपदेशक जगह २ उपदेश देते हैं उन्हींके शास्त्रानुकूल उनके पदार्थोंका सत्यासत्य निर्णय कर दीजिये जिससे हमभी उन मतोंमें जानकार होजाय किन्तु उन्हींके सन्मुख होकर आपका कहना ठीक है?

तृतीय प्रश्न—जैन मतमेभी कई भेद १ दिगाम्बर जिसके कई भेद है २ स्वेताम्बर इसमेभी कई प्रकारके भेद है। जैसे प्रतिमाको नही माननेवाले बाईस टोला, तेरह पन्थी और मन्दिरके माननेवाले जिनमेभी गच्छादिकके कई भेद है और सब अपनेको जैनीही कहते है परन्तु इनमें परस्पर भेद होनेसे सबके जैनी होनेमे शङ्का होती है और आगे समाचारी एकथी कि जुदी २ थीं इसलिये शुद्ध जैनी कौन सो कृपा करिके प्रमाण सहित बतलाइये?

चतुर्थ प्रश्न—वीतरागका जिनधर्म स्याद्वाद रीतिसे अनंत धर्म वस्तु, कारण, कार्य्य, साध्य, साधन, वीतरागकी आज्ञा, गुरु, शुद्ध उपदेशादि चिह्नोसे जिन मार्गकी उत्सर्ग अपवाद करके समकितकी प्राप्तिका मूल कारण हमारे लिये कहिये?

पञ्चम प्रश्न—हठयोग किसको कहते है और उससे क्या प्राप्त होता है और वह जिन मतमें है या नही और जो जिन मतमे है तो इस योगकी प्रवृत्ति क्यो नही। तथा दूसरा जो राजयोग है वह क्या है और उसका फल क्या है तथा वर्तमान कालमे है या नही सोभी हमे समझाइये?

आपके चरणसेवक प्रश्नकर्ता—

कल्यानमल ओसवाल भडगत्या अजमेर, हीराचन्द सचेती ओसवाल अजमेर, सोभागमल वेद मोहता ओसवाल अजमेर, देवकरण वेद महता अजमेर, हमीरमल साह ओसवाल अजमेर, नत्थमल गादिया ओसवाल रतलाम, जवाहरमल कठारिया ओसवाल रतलाम, हस्तीमल मूहता ओसवाल मेडता निवासी रतलाम, भगवानचन्द अग्रवाल वासल गोती आगरा, हर्पचन्द धारीवाल ओसवाल अजमेर, सोभाग्यमल हर्पावत् ओसवाल अजमेर, कन्हैयालाल सुसर अलवर, लक्ष्मीचद भणोत ओसवाल अजमेर, घीसूलाल गुर्जरगोड ब्राह्मण अजमेर



श्रीवीतरागायनमः ।

अथ स्याद्वादानुभवरत्नाकर

ग्रन्थारंभः ।

दोहा—सम्यक् दर्शनमे नमू शासनपति श्रीवीर ।
स्याद्वाद प्रभु सुमरता, मिटे सकल भवपीर ॥ १ ॥
गौतम स्वामी सुमिरिके, नमि सुधर्म पद माथ ।
आगम अनुभव कहत हूं, स्याद्वाद गुणसाथ ॥ २ ॥
पुनि गुरु चरण मनायके, श्रुति देवी मनलाऊ ।
स्वपर समयहि जानके, वस्तु धर्म गुण गाऊं ॥ ३ ॥
सर्व मित्र मिल प्रश्न किय, सुनि उपजो आनन्द ।
पूछो मारग मोक्षको, तजि भवसागर फन्द ॥ ४ ॥
सुनों मित्र उत्तर कहू, सुनत टलें भ्रम जाल ।
श्रद्धा भापण अरु क्रिया, कर सब होहु निहाल ॥ ५ ॥

प्रथम प्रश्नका उत्तर—भोदेवानुप्रिय ! प्रथम प्रश्नका उत्तर सुनो—कि मैं जिल अलीगढ (कोल)[1] व्रज देशमेथा उस कोयलके पास एक हरदुवा गज कसबा अर्थात् व्यापारियोंकी मंडीथी उसमे एक लोढियोंकी जाति अगरवाले सवत् १७१४ की सालमें गुजराती लोगोंके गच्छके श्रीपूज्य नगराजजीने प्रति बोधकर उन अग्रवाले लोढियोंको जैनी स्वेताम्बर आमनावाले बनाये यती लोगोंके सिथलाचार होनेसे ढूंढिया मतमें प्रवृत हो गयेथे उनमें गर्ग गोत्रका धारण करनेवाला एक कल्याणदास नाम करके वैश्य उस बस्तीमें प्रसिद्ध और सबको माननीयथा उसकी स्त्रीका नाम ललितकुंवरि था जिसके एक देवकुवरि नाम कन्या प्रथम हुई थी और उसके पश्चात् दो लडके उत्पन्न हुये, परन्तु वे दोनों अल्प कालहीमें नष्ट हो गये तब वे पुत्रकेलिये अनेक प्रकारके यत्न करने लगे पीछे दिन पीठ मैने उनके घरमे जन्म लिया परन्तु मै अनेक प्रकारके रोगोंसे प्राय दुःखी रहता था इसलिये मेरे माता पिता कई मिथ्या देवी देवताओंको पूजने लगे जो कि इस शरीरका आयु कर्म प्रबलथा इस कारण कोई रोग अधिक प्रबल नहीं हुआ मुझसे मागे

[1] यह हद नामा करके प्रसिद्ध है अर्थात् अलीगढ, कोल, कोयल आदि ।

हुये कपडे पहनाये जातेथे, इसी कारण मेरा नाम फकीरचन्द रक्खा गया, मेरे पीछे उनके एक पुत्र और हुआ जिसका नाम अमीरचन्दथा जब मे कुछ बडा हुवा तो एक पाठशालामे बैठाया गया और कुछ दिनमे होशियार होकर अपनी दुकानोंके हानि लाभ और व्यापार आदिको भली प्रकारसे समझने लगा। स्वामी सन्यासियो और वैरागियोके पास अकसर जाया करताथा और गाजा, तमाखू आदिका व्यसन भी रखताथा गगास्नान और राम कृष्णादिकोंके दर्शन करना मेरा नैत्यक कर्मथा और हरेक मतकी चर्चाभी किया करता था एक समय एक सन्यासी मुझको मिला और उसने कहा कि, कुछ दिन पीछे तुमभी साधु होजाओंगे, मेने यह उत्तर दिया कि मे बँधा हुवा हू और पैदा करना मुझे याद है फकीर तो वह बने जो पैदा करना न जाने इतनी बात सुनकर वह चुप हो गया पर कुछ देर पीछे फिर बाला कि होनहार (जो होनेवाला है) मिटनेका नहीं तुमको तो भीख (भिक्षा) माग कर खानाही पडेगा तब तो मुझको उन लोगोंकी सङ्गतिमे कुछ भ्रम पड गया पर जो बातें उसने कहीथी उनको हृदयमे जमा रक्खी अब ढूंढियोकी सगति अधिक करने लगा और इससे जेनमतमें श्रद्धा बँधी परन्तु मदिरके मानने अथवा पूजनेसे चित्त उखड गया थोडे दिन बीतनेपर एक रतनचन्दजी नामक साधु जिनको हम विशेष मानतेथे उन्हींके पोते चेले चतुर्भुजजी उस बस्तीमे आये और "दशवेकालकसूत्र बांचने लगे मे भी वहाँ व्याख्यान सुननेको जाया करता था सो एकदिन सुनाताकि, जिस जगह स्त्रीका चित्र हो वहा साधु नहीं ठहरे कारण कि, उसके देखनेसे विकार जागता है यह बात सुनकर मेने अपने चित्तमें विचार किया कि जो साधुको स्त्रीके देखनेसे विकार पैदा होता है तो भगवान्को देखनेसे हमको शक्तिरूप अनुराग पैदा होगा इतना मनमे धारकर फिर ढूंढिये चतुर्भुजजीसे चर्चा की तो उन्होंने भी शास्त्रके अनुसार मूर्त्तिपूजा करना गृहस्थीका मुख्य कर्त्तव्य बताया, और मुझको नियम दिलाया परन्तु उस देशमे तेरहपथियोंका बहुत चलन था इस लिये उनके मन्दिरमे जाताथा और उन्हीकी सगति होने लगी जिससे तेरहपथी दिगम्बरियोंकी श्रद्धा बैठने लगी कारण यह कि, भगवान्ने अहिसा धर्म (अहिसापरमोधर्मः) कहा है सो मूर्तिका दर्शन करना तो ठीक है परन्तु पुष्पादिक चढानेमें तो हिसा होती है ऐसी श्रद्धा हो गई इसी हालमे उस सन्यासीकाभी कहना मिलने लगा और बधनसेभी छूटने लगा तब तो मुझको निश्चय हुवा कि मे किसी समय मे साधु हो जाऊगा कुछ दिवस पीछे एक दिन मेरे पिताने मुझे कुछ कहा सुना जिसपर मेने यह कहा कि मुझे तो (यथा नाम तथा गुणः) प्रगट करना हे इसीलये आपके जालमे नहीं फँसता मुझे तो फकीर बनना है फकीरोंको इससे क्या मतलब, उनका कहना न मानकर मे विदेश (परदेश) को चला गया और कई महीने तो कानपुरमे रहा तत्पश्चात् प्रयाग, काशी आदि नगरोंमें होकर पटने जाकर रहा कुछदिन पीछे वहाके सदर मुन्सिफसे जो दिगम्बरीथा मेरी मुलाकात हो गई उसके बसतिसे म दो वर्षतक वहाँ रहा इसी अर्सेमे वे और शहरको गये तो मेभी उनके साथ गया वहा बीस पथियोंका अधिक जोर था सो उनकी सगतसे कुछ शास्त्रभी उनके देखे उनमेसे द्यानतराय दिगबरीकी बनाई हुई पूजन जिससे तेरह पथकी ज्यादा प्रवृत्ति हुई उसमें लिखाथा कि भगवत्की केसर चन्दन पुष्पादिक अष्ट द्रव्यसे पूजा करना यह देखकर मेरी श्रद्धा शुद्ध हो

गई कि भगवत्का पुष्पादिकसे पूजन करना चाहिये ऐसा तो मेरे चित्तमें जम गया परन्तु दिगम्बर मतकी कई बात मेरे चित्तमें नहीं बैठी (जिनका वर्णन तीसरे प्रश्नके उत्तरमें करूंगा) इसके बाद उन सदर मुन्सिफकी बदली पुर्नियाको हो गई ? मै भी वहांसे कलकत्तेको चला गया दो चार महीने निठल्ला बैठा रहनेके बाद बंगाली लोगोंके 'हाउस' में रुई व सोरेकी दलाली करने लगा और बंगाली लोगोंकी सोहबत पायकर जातिधर्मके सिवाय और धर्मका लेशभी नहीं रहा कई तरहके आचरण ऐसे हो गये कि मैं वर्णन नहीं कर सक्ता कारण कि कर्मोंकी विचित्र गति है उन दिनोंमेंही मेरे हाथ एक शोरा रिफाइन करनेकी कल लगीथी उसमें दलालीका रुपया जियादह पैदा होने लगा जिसका यह प्रभाव हुआ कि पद कामोंमें और दिल जियादा झुका सिवाय नरकके कर्म बंधनके और कुछ न था सो रविवारके दिन सैर करनेको बाहिर गयाथा वहां खाना पीना और नशे आदिके पीछे नाच रंग हो रहाथा उस समय मेरे कोई शुभकर्मका उदय हुवा कि जिससे तत्काल मेरे मनमें वैराग्य उत्पन्न हुवा तो तुरन्त उस रंगमें भंग डाल अपने घर चला आया दूसरे दिन प्रातःकाल जो कुछ माल असबाबथा सो लुटा दिया फिर उस बंगालीके पास गया जिसका मै काम करताथा और जाकर कहा कि मुझसे अब तेरा काम नहीं होगा मैने संसारको छोड़ दिया और मैं साधु बनता हूं हा तूंने मेरे भरोसेपर यह काम कियाथा इस लिये एक और मातिबर दलाल मेरे साथ है सो मैं उससे तुम्हारा सब बन्दोबस्त (प्रबंध) करवा देता हूं यह सुनकर वह बंगाली बहुत सुस्त और लाचार होने लगा मैं उसको समझाकर दूसरे दलालके पास लेगया और दिन भरमें उसका सब काम दुरुस्त कराकर संवत् १९३३ की साल जेठके महीनेमें सायंकाल (शाम) के समय कलकत्तेसे रवाना हुवा उस समय जो २ लोग मेरे साथ खाना, पीना नशा आदिक करतेथे वे सब साथ होगये और मेरा इरादा पैदल चलनेकाथा पर उनके जोर डालनेसे वर्दवानका टिकट मैने लिया उसी समय मैंने अपने घरवालोंको चिट्ठी दीकि मैं अब फकीर हो गया हूं तुम्हारी जातिकुल सब छोड़ दिया और जैसा कहताथा कर दिखलाया है, जब मैं साधु हुवा तब एक लोटा जिसमे आधसेर जल समावे दो चद्दर एक लंगोटी और दो ढाई तोले अमल (अफीम) इसके सिवाय कुछ पास नहीं रक्खा और चित्तमे ऐसा विचार लिया कि जबतक ये अफीम पासमें है तब तक तो खाऊंगा पश्चात् ये न रहनेके और कदापि लेकर नहीं ग्रहण करूंगा तमाखू जो पीताथा उसी समय छोड़दी और भांग (विजया) गांजाके लिये यह नियम कर लिया कि कहीं मिल जाय तो पीलेना । वर्दवान उतर कर बैरागियोंके साथ मांगकर खाने लगा दो तीन दिन पीछे वह अमल खो गया उसी दिनसे खाना बन्द कर दिया, दो तीन दिन पीछे सन्यासियोंके साथ चल दिया पर यह विचार करतारहा कि कोई २ मुझे मेरा मत पूछेगा तो मै क्या बताऊंगा मैने सोचा कि यती लोग तो परिग्रहधारी और छः कायका आरंभ करते है और ढूंढिया लोग जिन मन्दिरकी निन्दा करते है इस लिये इन दोनोंका भेष लेना ठीक नहीं और तीसरे भेदकी हमको खबर नहीथी इसी लिये यह विचार किया कि जो पूछे उसे यह कहना कि जैनके भिक्षुक है ऐसा निश्चय करके उनके साथ फिर मकसूदाबाद

दो चार दिवस पीछे मन्दिरकी सुनी और दर्शन करनेको गया और फिर बालूचरवडी पो सालमें शिवलालजी यती उस जगहके आदेशीये उनसे भेट हुई, और उनके पूछनेपर अपना सब वृत्तान्त कह दिया तो उन्होंने यह कहा कि जिस मार्गमें संवेगी लोग पीले कपडेवाले साधु है और उनमें कितनेही पुरुष शास्त्रके अनुसार चलने और पालनेवाले है सो उनका संयोग मारवाड़ या गुजरातमे तुम्हारे बनेगा परन्तु अब आषाढका महीना आगया इस लिये चौमासा यहाही कीजिये वर्षाके पश्चात् आपकी इच्छानुसार स्थानपर आपका वहां पहुचा देंगे उनके अनुग्रहसे मैंने चार महीने वहाही निवास किया, सो एकवार भोजन किया करता दूसरी वार गाजापीनेको बाहर जाता यह बात वहाके सब लोग जानते है सिवाय यती लोगोंके और किसी साधुगण गृहस्थी वा सेठके पास जानेका मेरा प्रयोजन (इत्तिफाक) न हुवा और इसी लिये उन यती लोगोंकी सोहबत शास्त्रोंकी कई प्रकारकी बातें और रहस्य समझमे आये चौमासा बीतने पर मैंने वहासे चलनेका विचार किया तो शिवलालजी यती बहुत पीछे पड़े कि आप रेल मे बैठकर जाइये नही तो रास्तेमे बहुत परिश्रम उठाना पड़ेगा, पर मैंने उत्तर दिया कि मैं पदलही जाऊगा क्योंकि एक तो मुझे देशाटन (मुल्कोंकी सैर) करना है और दूसरे यात्रा करनी है, मेरी ऐसी धारणा है कि अन्न और वस्त्र तो गृहस्थी से लेना पर किसीभी कामके लिये द्रव्य कदापि नही लेना इसलिये मेरा पदल जाना ही ठीक होगा आप इसमें हठ न करिये, फिर मै मकसूदाबादसे चला कर्मोंकी विचित्रतासे वैराग्य कर्म और चित्त चञ्चल तथा विकारवान् होनेलगा तो मैने यह पण करलिया कि जबतक मेरी चंचलता न मिटे तबतक नित्य दो मनुष्योंको मास और मछलीका त्याग कराये बिन आहार नहीं लेऊ, इसी हालतमें शिखरजी तीर्थपर आया वहा यात्राकी और एक महीने तक रहा, बीस इकीस वार पहाडके ऊपर चढकर यात्राकी तथा श्री पारसनाथजीकी टोकपर अपनी धारणा प्रमाण वृत्ति धारणकी तब पीछे वहासे आगे चला और ऊपर लिखे नियमानुसार ऐसा नियम कर लिया कि जबतक चार आदमियों को मास और मछलीका त्याग न कराऊ तबतक आहार नही करूगा। देश देशातरोंमें भ्रमण करता और नानकपथी, कबीरपथी आदिसे वादविवाद करता गयाजीमें पहुचा वहासे राजगिरिमे पहुंचा और पचपहाड़की यात्राकी, उस जगह कबीरपथी और नानकपथी बहुत थे जिनसे मिलता हुआ पावापुरीमें पहुचा और शासनपति श्री वर्द्धमान स्वामीजीकी निर्वाण भूमिके दर्शन किये तो चित्तको बहुत आनन्द हुआ और इच्छा हुई कि कुछ दिन इस देशमें रहकर ज्ञान प्राप्त करू, दो चार दिन पीछे जब मे विहारमें गया तो ऐसा सुना कि राजगिरिमें बहुतसे साधु गुफाओंमें रहते है इसलिये मेरी भी इच्छा हुई कि उनसे अवश्य करके मिलू ऐसा विचारकर उन पहाडोंकी ओर रवाना हुआ, फिर दिनमें तो राजगिरिमें आहार पानी लेता और रातको पहाडके ऊपर चला जाता सो कई दिन पीछे एक रात्रिमें एक साधुको एक जगह बैठा हुआ देखा, मै पहले दूर बैठा हुआ देखता रहा थोड़ी देरमें दो चार साधु और भी उसके पास आये उनकी सब बातें जो दूरसे सुनी तो सिवाय आत्मविचारके कोई दूसरी बात उनके मुँहसे न निकली तो मै भी उनकेपास जाबैठा थोड़ी देरके पश्चात् और तो सब चलेगये पर जो पहले बैठाथा वही

बैठा रहा, मैने अपना सब वृत्तान्त उससे कहा तो उसने धैर्य दिया और कहनेलगा तुम घबरावो मत जो कुछ कि तुमने किया वह सब अच्छाहोगा उसने हठयोगकी सारी रीति मुझे बतलाई,(यह मै पांचवें प्रश्नके उत्तरमें लिखुगा,) एक बात उसने यह कही कि जिस रीतिसे मै बतलाऊ उस रीतिसे श्रीपावापुरीमे जो श्रीमहावीर स्वामीकी निर्वाण भूमिहै वहा जाकर ध्यान करोगे तो किंचित् मनोरथ सफल होगा पर हठ मत करना सहज आयास से चले जावोगे तो कुछ दिन बाद सब कुछ हो जायगा और जो तुम इस नवकारको इस रीतिसे करोगे तो चित्तकी चंचलता भी मिटजायगी और हम लोग जो इस देशमें रहतेहै सो यही कारण है कि यह भूमि बडी उत्तम है जब मैने उनसे पूछा कि क्या तुम जैनके साधुहो? परन्तु लिंग तुम्हारे पास नही उसका क्या कारण है तो कहने लगा कि भाई ! हमको श्रद्धा तो श्रीवीतरागके धर्मकी है परन्तु तुमको इन बातोंसे क्या प्रयोजन है जो बात हमने तुमको कहदीनी है यदि तुम उसको करोगे तो तुमको आपही वीतरागके धर्मका अनुभव होजायगा किन्तु हमारा यह कहना है कि परवस्तुको त्याग स्ववस्तुको ग्रहण करना और किसी भेषधारीके जालमें न फंसना इतना कहकर वह वहासे चलागया मैभी वहासे सवेरा होनेपर नीचे उतरा और आस पासके गावोंमे फिरता रहा पीछे दो तीन महीनोंके विहारमें जाकर श्रावकोंसे प्रबंध करके पावापुरीमे चौमासा किया सीवन पांडे जो कि पावा पुरीका पुजारीथा उसकी सहायतासे जिस मालियेमें कपूरचन्दजीने ध्यान कियाथा उसीमें मैभी ध्यान करने लगा दशदिन तक मुझको कुछ नही मालूम हुवा और ग्यारहवे दिन जो आनन्द मुझको हुवा सो मै वर्णन नही कर सक्ता मेरे चित्तकी चंचलता ऐसे मिट गई जैसे नदीका चढा हुवा पूर एक संग उतर जाय बाद उसके ध्यानमें विघ्न होने लगे सो कुछ दिनके बाद ध्यान करना तो कम किया और "गुरु अवलम्ब विचारत आतम अनुभव रसो मोहि छायाजी। पावापुर निर्वाण थानमें नाम चिदानन्द पायाजी" इस नामको पायकर चौमासेके बाद वहासे विहार कर घूमता हुवा बनारस (काशी) में आया और जगहकी भी यात्रा करी और उसी जगह रहताया वहा कुछ दिन पीछे केसरीचन्द गडिया जोधपुरवाला मुझे मिला उसने मुझसे पूछा कि आप किसके शिष्य हो और आप किधरसे आये? मैने कहा कि मै श्रीशिवजी रामजीका शिष्य हूं तब उसने यह कहा कि महाराज ! मै तो श्रीशिवजी रामजीके सब शिष्योंसे वाकिफ हू आप कबसे हुये तब मैने उत्तर दिया कि भाई ! मै उनकी सूरतसे तो वाकिफ नही पर नामसे गुरु मानता हू तब वह जबरदस्तीसे मुझको मारवाडमें ले आया और फिर उसकी आज्ञा ले जयपुर उतर गया वहा मुझे श्रीसुखसागरजी मिले आठ दिन वहा रहा और फिर अजमेर होकर नये शहर पहुचा वहा श्रीशिवजी रामजी महाराजके दर्शन किये उस समय मोहनलालजीभी उस जगहथे फिर श्रीशिवजी रामजीने अजमेर आकर मुझे फतेमल भडगत्याकी कोठीमें दीक्षादी संवत् १९३५ का आषाढ सुदी बीज मंगल वारके दिन उस समय जब श्रीशिवजी रामजी महाराजने सर्व व्रत मुझको उच्चराते समय मुझसे पूछा कि मै तेरेको सर्व व्रत समायक उच्चारण जावो जीवकी करता हू उस समय बहुत शहरोंके श्रावक श्राविका चतुर्विधसंघ मौजूद था जब मैने कहा कि महाराज साहब

मेरेको इन्द्रीका विषय भोगनेका जावोजीका त्याग है परन्तु प्रवृत्तिमार्ग अथवा कारण पडेतो गृहस्थियोंसे कहकर कर्म कराय लेना(इसका वृत्तान्त चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखुगा) फिर मुझको दिक्षा देकर उन्होने नये शहरमें चोमासा किया परन्तु मेरी उनकी प्रकृति नही मिलनेसे मै अजमेर चला आया पश्चात् चौमासाके श्रीसुखसागरजी महाराज जयपुरसे आये और मे उनसे मिला और उन्होने मुझसे कहा कि भाई छः महीनेके भीतर जोग नही वहे तो समायक चारित्र गल जाता हे जब मे उनकी आज्ञासे श्रीभगवान् सागरजीके साथ जाकर नागोरमें योगविया और बडी दिक्षा की उस समय मोहनजीभी मोजूदथे बडी दिक्षाका गुरु मे श्रीसुखसागरजी महाराजको मानता हूँ फिर वहासे फळोदी जाकर चोमासा किया और उस जगह सारस्वतभी की, फिर नागौरमें चतुरमासा किया और उस जगह मेने चन्द्रिकाभी देखी और फेर अजमेरमें आयकर वेदभी पढे और धर्मशास्त्रभी देखा बखान वानाभी वाचने लगा तथा श्रावकोका व्यवहार उनको करने लगा मे अनेक स्वामी संन्यासी और ब्राह्मण लोगोसे जो कि विद्वान् थे मिलता रहा और स्वमतके जती वा समेगी लोगोसे वा ढूढियोंसे सबसे मिलता रहा परन्तु उनके आचरण देखे(तिनका हाल तो तीसरे वा चौथे प्रश्नके उत्तरमे कहूँगा लेकिन यहा कुछ कवित्त कहता हूँ ॥)

कवित्त—चौबे चले छब्बे होन, छबेनकी वडाई सुनिनिश्चयमें दुबे वसे दुवेही बनावे हे। पक्षपातरहितधर्मभापोसर्वज्ञआप, सोतो पक्षपातकरि सही धर्मको डुवावेहै ॥ पंचमकालदोपदेतइंद्रिनकाभोगकरे, भीतर न रुचि क्रिया बाहरदिखलावेहै । चिदानन्द पक्षपातदेखी अव मुल्कवीच समझे नही जैन नाम जैनको धरावेहै ॥ १ ॥ पांचसात वरस क्रियाकरिके उत्कृष्टी आप बनियेको वहकाय फिर माया चारी करतहै। मंत्र यन्त्र हानि लाभ कहै ताको बहु मान करे झूठ सुन आये तो आगे लेन जातहै ॥ सुध प्रणति साधु रंजन ना करसके लोगोंको याते कोई मतलब विन कवहुं पास नाहि आवतहै। चिदानन्द पक्षपात देखी इस मुल्क बीच समझे नहीं जैन नाम जैनका धरावे हे ॥ २ ॥ पचम काल दोप देत जैना उन्मत्त भये थापत अपवाद करे मोडेकी कहानी हे। द्विई विधि धर्म कह्यो निश्चय व्यवहार लियो कारण अपवाद ऐसी प्रभु आपही वखानी हे ॥ प्रायश्चित्त करे गुरु संग शुद्ध होय चित्त चारित्र धरे श्रद्धा और ज्ञान यही स्याद्वादकी निशानी हे। चिदानन्द सार जिन आगमको रहस्य यही आज्ञा विपरीत वोही नरककी निशानी है ॥ ३ ॥

दिक् इति अलम् विस्तरेण—इति श्रीमज्जैनधर्माचार्य्य मुनिचिदानद स्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकरे प्रथम प्रश्नोत्तर समाप्तम् ।

अथ द्वितीय प्रश्नका उत्तर—जो तुमने मत मतान्तरके बाबत पूछा उसमें क्रिया वादी अक्रिया वादी अज्ञान वादी और विनय वादी इनके तीनसो त्रेसठ ३६३ भेद होते है सो अगाडीके गीतार्थोने केई ग्रन्थोंमें उनकी प्रक्रिया लिखी परन्तु मे जो कि वर्तमान कालमें नैयायक वैशेषिक सांख्यी वेदान्ती, मीमांसक बौध चारवाक्य अर्थात् नास्तिक मत प्रसिद्धमें है इनमभी वैशेषिक और वेदान्ती दयानन्द मुसलमान और ईसाई ये मत प्रसिद्ध है इन पांचोंहीके जो भेद है उन्हीको मे तुम्हारे लिये वर्णन करता हू सो तुम ध्यान कर सुनो प्रथम नैयायिक सोलह पदार्थ मानते है सो वे वैशेषिक्के पदार्थोमें अन्तर भाषित हो जाते है इसलिये वैशेषिक कणादमुनिके रचेहुवे सूत्रोंमें जितने पदार्थ है उनका नाम द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष और समवाय है—१ पृथ्वी, २ अप, ३ तेज ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिग (दिशा) ८ आत्मा, ९ मन, यह नव द्रव्य मानते है और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दु ख, इच्छा द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, सस्कार ये चौवीस गुण है, और उत्क्षेपण १ अवक्षेपण आकुचन प्रसारण गमन पाच कर्म है और समान्य नाम जातिका है जैसे द्रव्यमें द्रव्यपन, गुणमें गुणपन ऐसे जाणो, और नित्य द्रव्योंमे रहकर उनको जुदे बतलाने वाले विशेष पदार्थ है और नित्य सम्बधको समवाय कहते है इस रीतिसे नैयायिक इतनी वस्तुवोंको मानते है सो उनका मानना ठीक नहीं है, गुणको जो जुदा पदार्थ मानते है सो विना गुणके तो द्रव्य बनताही नही है और कर्मको जो पदार्थ माना है सो यह तो जीवोंके विभावका फल कर्म होता है सो कुछ पदार्थ नहीं और सामान्य विशेष दोनो कुछ पदार्थ नहीं है एक विवक्षा मात्र है, समवाय जो है सो तो गुण गुणीका सम्बन्ध है, सो सम्बधको पदार्थ मानना ठीक नही है, जब तुम्हारे पदार्थही ठीक नही ऐसेही द्रव्यादिकभी ठहरते नहीं है क्योंकि जो द्रव्य तुम मानते हो सो तो जीवोंका अशुभ कर्म होनेसे, १ पृथ्वी २ तेज, ३ अप ४ वायु होता है इनको द्रव्य मानना यह कोइ सर्वज्ञका वचन नही है और दिशाको जो पदार्थ मानते हो सो यह तो आकाशकेही अन्तरभाव है इसलिये पदार्थ मानना ठीक नही है अस्तु अब यह बात और समझो कि आदिके चार द्रव्य प्रमाणरूप सो नित्य है और कार्य्यरूप अनित्य है और पाचवे द्रव्यसे आठवें द्रव्यतक व्यापक और नित्य है और मन द्रव्य प्रमाणरूप है, इन नौ द्रव्योंमें चौवीस गुण रहे है सो द्रव्योका तो आपसमे सयोग सम्बन्ध होता है और कार्य्यरूप द्रव्य अपने कारण द्रव्यमें समवाय सम्बधसे रहते है और सामान्य नाम, जाति, द्रव्य, गुण, कर्म, इन तीनोंमें समवाय सवन्धसे रहते है और विशेष नित्य द्रव्योमे समवाय सबधसे रहे है अब हम तुमसे पूछे है कि ये पदार्थ कोई प्रमाणसे सिद्ध है वा प्रमाण विनाही सिद्ध है जो कहो कि प्रमाण विनाही सिद्ध है सो ऐसे तुम्हारे कहनेको तो तुम्हारे घरकेही मानेगे बुद्धिमान् तो कोई नहीं मानेगा जो कहो कि प्रमाणसे सिद्ध है तो ये मानेहुवे पदार्थ प्रमेय हुवे तो प्रमेय इस पदका अर्थ प्रमाणका विषय ऐसा है तो हम पूछे है कि प्रमा प्रमाणसे पैदा होवे है कि प्रमाणको पैदा करे है तो तुमको कहनाही पडेगा कि प्रमाणसे प्रमा पैदा होती है तो यह सिद्ध हुवा कि प्रमाण तो प्रमाको पैदा करे है और प्रमा पदार्थोंको सिद्ध करे है तो हम पूछे है कि

प्रमाण और प्रमा यह दोनो पदार्थोंके अंतरगत है अथवा नही तो तुमको कहनाही पडे-गा कि माने पदार्थोंके अंतरगतही है क्योंकि तुम्हारे माने पदार्थोंसे कोई वस्तु नही तुम्हारे माने पदार्थोंके अंतरगत हुई तो प्रमाकोभी प्रमेय माननाही पडेगा हम पूछे है कि प्रमा जो प्रमेय हुई तो इसको विषे करनेवाली पदार्थोंसे माननी चाहिये जो कहो कि माने पदार्थोंसे पदार्थ नही तो वहभी प्रमा इन पदार्थोंके अंतरगतही है उस प्रमाको प्रमेय कहनाही पडेगा इस प्रकार तो प्रमा मानते मानते अनवस्था होगी इसलिये प्रमाको प्रमेय नहीं माननी चाहिये तो यह सिद्ध हुवा कि प्रमा प्रमेय नही है और प्रमासे सब पदार्थ प्रमाके विषय हुए इसलिये प्रमेय है तो हम पूछे है कि प्रमा प्रमाणसे होवे है वा स्वतःसिद्ध है जो कहो कि प्रमाण विनाही सिद्ध है तो प्रमाणसे सिद्ध न हुई तो प्रमा अप्रमाणिक हुई तो अप्रमाणिक प्रमासे सिद्ध सारे पदार्थ अप्रमाणिक हो गये जो कहोगे कि प्रमा प्रमाणसे पैदा होवे है तो हम पूछे है कि प्रमाण तुम्हारे माने पदार्थोंके अंतरगत है वा नही कहनाही पड़ेगा कि मानें पदार्थोंके अंतरगत है तो प्रमाणकोंभी प्रमेय कहनाही पडेगा जो प्रमाणको प्रमेय कहोगे प्रमाण प्रमाका विषय है यह सिद्ध हो गया तो प्रमाण प्रमाके विषय होनेसें प्रमाण प्रमाको पैदा करनेवाला मानो तो सर्वथा असङ्गत है जो जिसका विषय हो सो उसको पैदा नही करे जैसे घट नेत्रोंका विषय है तो घट नेत्रोंको पैदा नही करेहे जो कहो कि प्रमा तो प्रमाण और विशेष इन दोनोंसे पैदा होती है यह अनुभव सिद्ध है तो हम कहे है कि प्रमाणका प्रमेयपणाही गया क्योंकि प्रमाणको विषय करनेवाली प्रमा तो केवल प्रमाणरूप विषयसे ही पैदा हुई इसलिये प्रमा नही जो ये प्रमा नही हुई तो इसका विषय प्रमाण जो है सो प्रमेय न हुवा इसलिये माने पदा-र्थोंके अन्तर्गत प्रमाणको प्रमेय सिद्ध करनेवाली प्रमाका प्रमापणा सिद्ध होणेके अर्थ प्रमा-ण मानना ही पडेगा अब इस प्रमाणको भी माने पदार्थोंके अंतर्गतही मानना पडेगा तो अनवस्था होगी इसलिये प्रमाणकोभी प्रमेय नही मानना चाहिये जो प्रमाण प्रमेय न हु-वा तो प्रमाण सिद्ध न हुवा इसलिये अप्रमाणिक हुवे जो कहो कि इस सामान्य कथनमें तो अर्थकी विधि समझ मे आई नही इस लिये विशेष कथनसे समझाइये तो तुम्ही ही क-हो कि तुम्हारे माने पदार्थ कौन प्रमाणसे सिद्ध है और तुम प्रमाण कितने मानते हो जो कहो कि हम १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द यह चार प्रमाण मानते है तहां घट आदिक पदार्थोंका ज्ञान तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे मानते है और धूम हेतु देख करिके परव-तमें अग्निका ज्ञान अनुमान प्रमाणसे माने है और गोसादृश्य ज्ञानसे गवयको उपमान प्र-माणसे माने है और गो लावो ऐसा शब्द सुनके जो ज्ञान होवे है उस ज्ञानको शब्द प्रमाण से माने है सो घटादिकके समान तो सारे पदार्थोंका ज्ञान होय नही इसलिये माने पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो सिद्ध नही है और कोई हेतु देख करके इनका ज्ञान होवे नही इस लिये यह अनुमान प्रमाणसे सिद्ध नहीं है और यह कोईके सदृश्य नही है इसवास्ते उप-मान प्रमाणसेभी सिद्ध नही है अब शेष रहा शब्द प्रमाणसे सारे माने पदार्थ सिद्ध है श-ब्द प्रमाणसे शब्दा प्रमा होय है सो प्रमा माने पदार्थोंको विषय करे है इसलिये सारे प-दार्थ प्रमेय है तो यह सिद्ध हुवा कि शब्द प्रमाणसे तो शाब्दी प्रमा और शाब्दी प्रमासे

पदार्थोंकी सिद्धि है इसीलिये माने पदार्थ शब्दप्रमाण सिद्ध होनेसे प्रमाणिक सिद्ध है तो इस जगेभी जैसे प्रमाण और प्रमासे पदार्थ सिद्ध नहीं हुये वैसेही इस जगहभी जिस रितिसे पहले विकल्प किये हैं उस रीतिके विकल्प करनेसे शब्द प्रमाण और शाब्दी प्रमा सिद्ध न हुई इसके सिद्ध न होनेसे तुम्हारे माने पदार्थ सिद्ध न हुये तो तुम्हारे सिद्ध सारे पदार्थ अप्रमाणिक हुये तो यह कथन सर्वथा अप्रमाणिक है जो कहो कि पदार्थ सामान्य सिद्धि न हुये तो हम विशेष करके पदार्थ सिद्ध करेंगे हम कहते हैं कि यह कथन तुम्हारा तुम्हारे मतसेही सर्वथा अशुद्ध है क्योंकि तुमनेही ऐसा माना है कि प्रथम सामान्य रूप करिके पदार्थोंका ज्ञान होता है पीछे विशेष जिज्ञासा होती है तो जो पदार्थ सामान्य सिद्ध न हुये तो विशेष रूप करिके जाननेकी इच्छा नहीं होती तो विशेष करके पदार्थ सिद्ध करेंगे सो सम्भवही नहीं ? खैर जो तुम कहो कि हम पदार्थ सिद्ध करेंगे तो कहो आदिके चार द्रव्य पृथ्वी, १ जल, २ तेज, ३ वायु, ४ परमाणुरूप तो नित्य कहे हैं और कार्य्यरूप अनित्य कहे हैं वहा परमाणु माननेमें क्या प्रमाण है जो कहो कि परमाणुका प्रत्यक्ष तो नहीं इसलिये परमाणु माननेमे अनुमान प्रमाण है तो यहभी कहो कि तुम प्रमाणु किसको मानों हो जो कहो कि जालीके प्रकाशमें सबसे सूक्ष्म जो रज मालूम होती है उसके छठे भाग (हिस्सा) को परमाणु मानते है, तो हम कहते हैं कि तुम उस छठे भाग परमाणुको जिस अनुमानसे सिद्ध करते हो सो अनुमान कहो परंतु प्रथम प्रकाशमें जो सबसे सूक्ष्म रज मालूम होती है सो छ परमाणुओंसे पैदा हुवा द्रव्य है उसका नाम क्या है सो कहो तो त्र्यणुक ऐसा कहोगे तो उसकी उत्पत्ति तुमने कैसे मानी है सो कहो जो तुम कहोगे कि प्रथम सृष्टि के आदिमें परमेश्वरकी इच्छासे परमाणुमें क्रिया होती है पीछे दोनों परमाणुओंका संयोग होता है पीछे द्वयणुक उत्पन्न होता है पीछे तीन द्व्यणुकोंसे एक त्र्यणुक पैदा होता है उसका प्रत्यक्ष होता है तो हम पूछते हैं कि तुम्हारे मतमें कार्य कितने कारणोंसे पैदा होता है तो तुम कहोगे कि न्यायशास्त्रमें तीन कारणोंसे सब कार्य्य पैदा होते हैं तिनमें एक समवायि कारण है दूसरा असमवायि तीसरा निमित्त कारण है जैसे कपाल घटका समवायि कारण है और दोनों कपालोंका संयोग घटका असमवायि कारण है और कुम्हार दंड चक्रादि घटके निमित्त कारण है तो हम पूछे हैं कि सृष्टिके आदिमें परमेश्वरकी इच्छासे परमाणुमें जो प्रथम क्रिया पैदा होती है यह तुमने माना है तो वह क्रियाभी पैदा हुई इसलिये कार्य माननाही पड़ेगा जो वह क्रिया कार्य्य हुई तो उसके कारण तीनोंही होंगे तो परमाणु तो उस क्रियाका समवायि कारण होगा और परमेश्वरकी इच्छा उसकी निमित्त कारण होगी और असमवायि कारण यहां कोई नहीं बन सकता है तो कारण एकभी न होनेसे कार्य पैदा होता नहीं तो परमाणुमे प्रथम क्रिया मानना सिद्ध न हुई जो परमाणुमें प्रथम क्रिया सिद्ध न हुई तो उस क्रियासे दो परमाणुका संयोग पैदा होता है सो न हुवा जो संयोग न हुवा तो द्व्यणुक पैदा न हुवा तो तीन द्व्यणुकोंसे एक त्र्यणुक होता है सो न हुवा शेष तो ऐसे कार्य्य द्रव्य मात्र सिद्ध न हुवा तो कार्य्य द्रव्यों की उत्पत्तिके अर्थ परमाणु माना सो तुम्हारे मतसेही उसकी कल्पना व्यर्थ हुई अब हम यहभी पूछते हैं कि तुमने कार्य्य द्रव्योंकी उत्पत्तिके अर्थ परमाणु स्वरूप मूल समवायि

कारणकी कल्पना की है तो यह कहो कि तुम कार्य्य द्रव्य किसको मानो हो जो कहो कि हम घटादि पदार्थको कार्य्य द्रव्य कहते हे तो हम पूछे हे कि अवयवि द्रव्य और कार्य द्रव्य एकही हे अथवा विलक्षण हे जो कहो कि एकही तो उस कार्य द्रव्यका उपादान कारण अवयव होगा तो हम पूछे हे कि तुम्हारा माना कार्य्य द्रव्य अवयवरूप कारणोका समुदाय हे अर्थात् अवयवोंका समूहरूप है अथवा अवयवोंसे जो कार्य होता है सो अवयवोंसे विलक्षण पैदा होय है जो कहो कि अवयवोंका समूहही कार्य है तो हम पूछते हे कि तुम समुदाय पदार्थ किसको कहते हो ? जो तुम कहो कि समुदाय पदार्थ जुदा तो है नही किन्तु प्रत्येक अवयवरूप है तो हम कहे है कि समुदाय जो प्रत्येकरूप होय तो प्रत्येक अवयवमे समुदायकी बुद्धि होनी चाहिये इसलिये समुदायको प्रत्येकरूप मानना असङ्गत है और दूसरा दोप यहभी है कि समुदाय प्रत्येकरूप होय तो घटका प्रत्यक्ष नही होना चाहिये क्योकि तुम घटको परमाणु समुदायरूप कहोगे समुदाय तुम्हारे मतमें प्रत्येकरूप है तो घट प्रत्येक परमाणुरूप हुवा इसलिये घटका प्रत्यक्ष होता है सो नही होना चाहिये और प्रत्येक परमाणु बहुत है और घट प्रत्येक परमाणुरूप हुवा इसलिये घटरूप कार्य बहुत मानना चाहिये और परमाणुरूप हुये इस लिये नित्य मानने चाहिये जो नित्य हुये तो कार्य द्रव्य मानना असङ्गत है जो कहो कि जैसे दूर देशमें स्थित एककेशका प्रत्यक्ष नही होता है तोभी केशोंके समूहका प्रत्यक्ष होता है तैसेही एक परमाणुका प्रत्यक्ष नही होता हे तोभी परमाणुसमूह जो घट उसका प्रत्यक्ष होता है तो हम कहे है कि केशोका प्रत्यक्ष तो समीप देशमें होता है औरका तो तुम्हारे मतमें प्रत्यक्ष है नही इसलिये दृष्टान्त और दार्ष्टान्त विषम होनेसे घटका प्रत्यक्ष कहा सो असङ्गत है । औरभी सुनो कि जिस देशमे स्थित एककेशका प्रत्यक्ष नही होता है उस देशमें स्थित केशों समूहका प्रत्यक्ष होय है सो नही होनां चाहिये क्योकि तुम समूहको प्रत्येकरूप मानों हो सो केशोंका समूह प्रत्येक केशस्वरूप हुवा और प्रत्येककेशका प्रत्यक्ष होना नही इसलिये केशोका समूहकाभी पत्यक्ष नही होना चाहिये वा उसी देशमे केश समूह बहुत दीखने चाहिये क्योकि तुम समूहको प्रत्यक्ष मानों हो तो केशोका प्रत्यक्ष दीखे हे सो समूह प्रत्येक स्वरूप है और प्रत्येक केश बहुत है इसलिये केश समूह बहुत दीखने चाहिये अब विचार दृष्टिसे देखो कि केश समूह प्रत्येक केशकेरूप तो हुवा नही और तुम समूहको प्रत्येकसे जुदा मानो हो इस लिये केश समूह प्रत्येक केशसे जुदा हो सकते नही तो केश समूह सिद्ध न हुवा तो केशरूप दृष्टान्तसे घटमे प्रत्यक्षपना सिद्ध किया सो नही हो सके जो कहो कि कार्यको अवयव समूह मानना असङ्गत हुवा क्योंकि समूहको प्रत्येकरूप माननेसे तो हम ऐसा मानेगे कि अवयवरूप कारणसे जो कार्य होता है सो अवयवरूप कारणोंसे विलक्षण पैदा होता है ऐसा माननेमें यह गुणभी है कि कार्य और कारणका लोकमे जुदा व्यवहार है सो बन जायगा तो हम पूछे है कि उपादान कारणसे कार्य विलक्षण मानो हो तो तुम आरभवाद मानोंहो वा परिणाम वाद मानोहो जो पूछो कि आरम्भ वाद क्या और परिणाम वाद क्या? तो हम कहते है कि आरभ वाद मतवाले ऐसा कहते हे कि उपादान कारण अपनेसे विलक्षण कार्यको पैदा करता हे आप अपने स्वरूपसे बना रहता है जैसे तंतुरूप

उपादान कारण आपसे विलक्षण पट स्वरूप कार्यको पैदा करता है और आप ततु अपने स्वरूपसे रहते है सो ततु पटके शरीरमें मालुम होता है, ये आरभवादमते है इस मतमें ततुओसे पट स्वरूप कार्यका आरम्भ किया इसलिये तन्तु औरभी कारण हुये और पटकार्य आरब्ध हुआ और परिणामवाद मत जिनका है वे ऐसा कहे है कि उपादान कारणहीका कार्य्य स्वरूप परिणामकू प्राप्त हो जाता है और कार्य्य अवस्यामे अपने स्वरूपसे नहीं रहता है जैसा दहीका उपादान कारण दुग्ध है सोही स्वरूप परिणामको प्राप्त होता है और दधि (दही) अवस्यामे दुग्ध अपने स्वरूपसे नहीं रहता है इससे ही दहीके स्वरूपमे दुग्ध नही मालूम होता है यह परिणामवाद मत है इस मतमें दुग्धरूप कारण दहीरूप परिणामको प्राप्त हुआ सो दुग्ध परिणामी कारण हुआ और दही रूप कार्य्य दुग्धका परिणाम हुवा ऐसे उपादान कारण मात्रको परिणामवाद माने और आरम्भवाद मतमे आरब्ध माने है अब कहो तुम कौनसा मानोगे जो कहो कि अव यवरूप कारणसे विलक्षण कार्यकी उत्पत्तिमे आरम्भवाद मत मानते है तो हम कहते है कि आरम्भवाद मतमें अवयवरूप कारण कार्य्यको पैदा करे है सो कार्य्य अपने कारणोंमें जुदाही मानना पडेगा तो कारण जैसे कार्यको आपसे जुदाही पैदा करे है यहभी मानोगे वैसे कारणके गुण कार्यमें आपसे जुदे आपके सजातीय गुणोंको पैदा करे है यहभी तुमको माननाही पडेगा तो हम तुमको पूछे है कि घटके अवयव दो कपाल है तो यही घटके उपादान कारण होगे अब कहो कि प्रत्येक कपाल घटका कारण है या दोनो कपाल मिले घटका कारण है जो कहो कि प्रत्येक कपाल घटका कारण है तो हम कहेगे कि प्रत्येक कपालसे घटरूप कार्य्य होना चाहिये जो कहोकि प्रत्येक कपालसेही घट होता है तो हम कहे है कि प्रत्येक कपाल दो है सो दो घट होने चाहिये दो घट होवे तब तुम्हारा यह नियम बने कि परमाणुका स्वभाव यह है कि आपके समान जाती और आपसे अधिक ऐसे परमाणु की कार्यमे पैदा करे है परन्तु यह नियम तब बने कि वे दोनों घट अपने कारण कपालोंकी अपेक्षा कुछ परमाणवाले होवें देखो कल्पना करो कि मानो कपाल १० दश अगुल है तो उससे घट पैदा हुआ तो घटमे २० वीस अगुलसे अधिक परमाण ज्ञात होना चाहिये क्योंकि १० अगुलसे कुछ अधिक तो होगा घटका परमाण और आरम्भवाद मतमे कारण आपके स्वरूपका त्याग नहीं करके कार्य्यके शरीरमे मोजूद रहे है सो १० अगुल हुवा कपालका परमाण ऐसे घटमें २० वीस अगुलसे कुछ अधिक परमाण ज्ञात होना चाहिये और दो घट दो कपालोंसे बने नहीं इसलिये प्रत्येक कपालको कारण मानों हो सो असगत है जो कहो कि उपादान कारण तो प्रत्येक कपालही है परन्तु अवयव सयोग कार्य द्रव्यका असमवायि कारण होता है सो अवयव सयोग १ एक कपालसे होवे नहीं सो दूसरे कपालसे अवयव सयोगरूप असमवायि कारण सिद्ध करनेकेलिये द्वितीय कपाल है और उपादान कारण एक कपाल है इसलिये एकही घट कार्य्य हुवा और द्वितीय कपाल तो केवल असमवायि कारण सिद्धि करनेके अर्थ अपेक्षत है इसलिये दो घट होनेकी आपत्ति दी सो असगत है अजी कुछ विचार तो करो कि द्वितीय शब्द तो सापेक्ष है क्योंकि प्रथमकी अपेक्षा द्वितीय होता है और विन गमना अ

र्थात् एक पक्षको सिद्ध करनेकी कोई युक्ति हैनहीं सो तुम असमवायि कारण सिद्ध करनेके अर्थ जिस कपालकी अपेक्षा कीहै उस कपालको तो हम घटका उपादान कारण मानेंगे और तुम्हारे माने उपादान कारणको उसकी अपेक्षा द्वितीय मान करिके अवयव संयोगरूप असमवायि कारण सिद्ध करनेवाला मानेंगे तो १ एक घट तो प्रथम प्रक्रिया जो तुमने कही उससे सिद्ध हो गया और दूसरा घट हमारे कही दुसरी प्रक्रियासे सिद्ध होगा प्रत्येक कपालको कारण माने तो दो कपालोंसे दोही घट होने चाहिये और पहले कहे तुम्हारे नियमसे प्रत्येक घटमें एक कपालके परिमाणकी अपेक्षा दूनेसे अधिकही परिमाण मालुम होना चाहिये इसलिये प्रत्येक कपाल घटका कारण मानना ही असंगत हुवा जो कहो कि, दोनो कपाल मिले घटका कारण मानेंगे तो हम तुमको पूछें है कि दोनो कपाल मिले घटके उपादान कारण है तो दोनो कपाल मिले इसका अर्थ क्या है जो तुम कहो कि संयोगवाला ऐसा अर्थ है तो हम कहे कि जैसे कपालोंमें कपालोंका रूप विशेषण है वैसे संयोगभी कपालोंका विशेषण हुवा तो तुम कपालोंके रूपको घटका कारण नही मानों हो तैसे संयोगकोभी घटका कारण नहीं मानसकोगे क्योंकि तुमने पाच प्रकारकी अन्यथा सिद्धि मानी वो अन्यथा सिद्धि जिसमे रहे उनको अन्यथा सिद्ध मता करके कारण नही माने है वहा दूसरा अन्यथा सिद्ध कारणके रूपको कहा है तहा कारणके रूपको अन्यथा सिद्ध इस प्रकारसे बताया है कि जो अपने कारणके साथही कार्य्यके पूर्ववर्त्ती होय और आपने कारण विना जो कार्य्यके पूर्ववर्त्ती नही हो सो उस कार्य्यके प्रति अन्यथा सिद्ध होय है सो रूपके कारण होंगे दण्डकपाल चक्र चीवरादिक उनके साथही रूप घट कार्य्योंके पूर्ववर्त्ती हो सके है और उनके विना घटकार्याके पूर्ववर्त्ती हो सके नही इसलिये दण्डकपाल इत्यादिकका रूप घटकार्य्यके प्रति अन्यथा सिद्ध होनेसे घटका कारण नहीं तो हम कहे है कि कपालोंका संयोगभी अपने उपादान कारण जो कपाल उनके साथही घटकार्य्य पूर्ववर्त्ती हो सके है उनके विना पूर्ववर्त्ती हो सके नहीं इस लिये कपालोंका संयोग घट कार्य्यकेप्रति अन्यथा सिद्ध होनेसे घटका कारण नही मानसकोगे जो कहो कि यह कथन अनुभव विरुद्ध है क्योंकि दोनो कपालोंका संयोग होतेही घटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष दीसे है इसलिये दोनो कपालोंका संयोग घटका कारण नही मानें यह नहीं हो सके तो हम कहे है कि कपालोंके संयोगकोही घटका कारण मानो कपाल तो अन्यथा सिद्ध है जो कहो कि कपाल तो घटका कारण है यह कौनसा अन्यथा सिद्ध होगा तो हम कहे है कि कपालोंको तीसरा अन्यथा सिद्ध मानो क्योंकि जिसको औरके प्रति पूर्ववर्त्ती जान करके कार्य्यके प्रति पूर्ववर्त्ती जानें वो उस कार्य्यके प्रति अन्यथा सिद्ध है जसे आकाश शब्दका समवाय कारण है इसलिये आकाशको शब्दके प्रति पूर्ववर्त्ती जान करिकेही घटके पूर्ववर्त्ती जानते है इसलिये आकाश घट कार्य्यके प्रति अन्यथा सिद्ध है तैसेही कपालोंको जो संयोग उसका समवाय कारण कपाल है इसलिये कपालोंको संयोगके पूर्ववर्त्ती जान करकेही घटके प्रति पूर्ववर्त्ती जाने है इसलिये घट कार्य्यके प्रति कपाल अन्यथा सिद्ध हुवा सो घटका कारण नही हो सके और जिस प्रक्रियासे घट कार्य्यके प्रति कपाल अन्यथा सिद्ध हुवा उसीमें क्रियासे दंड कुलाल इत्यादिकभी अन्यथा सिद्धही होंगे तो तुमने जिनको घटके

कारण कल्पना कियेये सो अन्यथा सिद्ध होनेसे कारण नही होसके जो कारण नही हो स के तो कार्य्यको कैसे पैदा करे तो कार्य्य मानना सिद्ध न हुवा औरभी सुनो कि तुम ऐसा मानों हो कि कार्य और कारण एक देशमें रहे तब कारण कार्य्यको पैदा करे है और एक देमशें न रहे तो कारण कार्यको पैदा कर सके नही इसलिये वनमें कही पडा हुवा जो दंड उससे कार्य पैदा नहीं होवे है और घट जहा रहते है वहांही दंड रहे तब दंड घटको पैदा करे है इसलिये दंड और घट इन दोनोंको एक जगह रखनके अर्थ ऐसा कहा है कि कपालोंमें घट तो समवाय संबंध करके रहे है और दंड जन्य भ्रमत कपाल द्वे संयोगवत्त संबंध करके कपालोंमे रहे है तो दंड और घट एक देशमें रह गये इसलिये दंड स्व रूप कारणसे घट कार्य हुवा और तुम इतना तो विचार करो कि यह संबंध तो धूलुभया रमज है अर्थात् इस संबन्धको यह सामर्थ नहीं है कि सर्व कारणको कपालमें रख देवे ऐसेर सम्बन्धोसे तुम कारण और कार्य्यको एक जगह रखोगे तो तुम्हारा परमेश्वर और उस की इच्छा, ज्ञान, यत्न और दिशाकाल जीवोंके अदृष्ट घटका प्रागभाव और प्रतिबन्धकका अभाव ए नव सख्या तो साधारण कारण और कुलाल दंड सूत्र, जल चक्र इत्यादिक निमित्त कारण और कपाल समवाय कारण और दोनों कपालोंका संजोग असमवाय कारण है यह सब कपालों म स्थित मानने पडेगे तो घटकार्य्य होगाही नहीं क्योंकि कुलाल चक्रादिकके भारसे कपालोंका चूरणही हो जायगा अब जो कपालही न रहे तो घट कैसे होय इसलिये कार्य्य मानना असंगत है और जो पहिले कहा कि कपालोंका संयोग होतेही घट दी खे है सो कपालोंके संयोगको कारण न मानोगे तो अनुभव विरोध होगा तो हम क्या कहें तुमको तो वहा कुलाल चक्र दंड आदिक पर्यन्त कपालोंमे दीखे है हमको दीखे नहीं इसलि ये तुम्हारी दिव्य दृष्टिकी हम क्या शोभाकर परन्तु पयाघटकी स्त्रीयाँभी ऐसा कहती होंगी कि न्यायकों वैशपिकोंने पदार्थका निर्णय करनेकेलिये ऐसी तरक की है कि मानो पहाडको खोद करके ऊदरें (चूहों) के पगोंको निकासना इससे तुम्हारी तर्कको देखकर हम तुम्हारेसे अनुभवकी बात नहीं करते है कारणके पदार्थके निर्णयमे तुम्हारी बुद्धि नहीं पहुचती अनुभवका विचार तो बहुत दूर है अब इतना तुमकूँभी विचार करना चाहिये कि कपालोंसे घट पदार्थ जुदा होय तो आरंभ वाद मतसें दोय सेरके दो कापलोंका बनाया घट चार सेर होय क्योंकि दो शेर भार तो कारणोंका और दो सेर भार घटका होगा ऐसे घट चार सेर होना चाहिये इसलिये उपादान कारणसे विलक्षण कार्य्य मानना असं गत् हुवा जो कहो कि आरम्भवाद मतसे स्वरूप सिद्धि न हुवा तो हम परिणाम वाद मत मान करिके घट कार्यकू कारणसे जुदा सिद्ध करेगे क्योंकि [illegible]
उपादान कारण नहीं [illegible]

वैसे होसकेगे क्योंकि कारण तो हे दूध और कार्य है दही वह दूधही दही अवस्थाको प्राप्त हुवा तो हम कहे कि हमारे कारणकू कार्यसे जुदा करनेसे कुछ प्रयोजन नही कार्यकी सिद्धिसे प्रयोजन है सो कार्य सिद्धि होगया हमतो अवस्था भेदसेही कार्य और कारण इनको जुदे मानें हे, ओर प्रकारसे जुदे माने नही तो हम कहे हे कि ऐसे परिणाम वाद मतसे कार्य सिद्ध करो हो तो तुम्हारा नेयायक मतमे जो आरभ वाद मानाथा सो तो मिथ्या हुआ अब तुम साख्य मतके परिणाम वादसे कार्य सिद्ध करोहो तो इसकाभी विचार करो कि इस मतमे दही दूधका परिणाम हे दूध कारण है और दही कार्य है तो जैसे दुग्ध सो दही होय है वैसे दहीसे छाछ (मठ्ठा) और माखनभी होय है, परन्तु दूध होवे नही वेसेही जो घटभी कपालोंका परिणाम होयतो कपालोंसे जैसे घट होयहे वैसे घट कपाल होने नही परन्तु जब कपालोका सयोग नष्ट होय हे तब घटकी तो प्रतीति होय नही और कपालोंकी प्रतीति होयहे इसलिये परिणामवाद मत माननाभी अशुद्धहीहै जो यह मत अशुद्धहुवा तो इससे कार्य माननाभी असगत होगया अब हम यह और पूछे हे कि परिणामवाद मतमें दूधतो उपादान कारण है और दही उसका परिणाम है सो कार्य है तो यह कहो कि जब दुग्धको दही अवस्था होयहै तब प्रथम दुग्धके सूक्ष्म अवयवोका दही रूप परिणाम होयहे वा स्थूल दूधही दहीरूप परिणामको प्राप्त होयहे जो कहो कि दुग्धके सूक्ष्म अवयवोका प्रथमदही दहीरूप परिणाम होयहै तो हम कहे है कि दुग्धके अवयवोंका जो सयोग उसका नाश प्रथम माननाही पडेगा क्योंकि परिणाम वादमे कार्यकी अवस्थाभये कारण अपने स्वरूपसे रहे नही इसलिये पीछे सूक्ष्म अवयवोंमें दही रूप परिणाम माननाही पडेगा पीछे सूक्ष्म अवयवोके नाना सयोग मानने पडेंगे पीछे महा ...धिरूप कार्य मानोंगेतो जब सूक्ष्म अवयवका सयोग नष्ट हुवा तब अवयवोके मध्यमें जहा ...हा अवकाश माना जो अवकाश मानाती यह तुम निश्चय करके जानो पूर्णपात्रसे दुग्धका ...छ भाग बाहर निकलना चाहिये सो निकले नही इसलिये दुग्धके सूक्ष्म अवयवोका दही ...रूप परिणाम मानना असगत है जो कहो कि स्थूल दूधही दही रूप परिणामको प्राप्त होयहै तो ...म पूछेहे कि दुग्धको सावयव मानोंहो अथवा निरवयव मानो हो जो कहो कि सावयव माने ... तो कहो कि अवयवोंमें परिणाम होकर अवयव दुग्धमे परिणाम होय हे अथवा अवयवी ...धमें परिणाम होकर अवयवोंमे परिणाम मानो हो अथवा अवयव और अवयवी इन दोनोंमे ...एकही समयमे परिणाम मानोहो जो कहो कि अवयवोमे परिणाम होकर अवयवी दुग्धमे ...रिणाम मानेहे तो हम कहेहे कि अवयवोंमें परिणाम मानकर अवयवी दुग्धमें दही-रूप परिणाम मानना असगत है क्योंकि जो प्रथम अवयवोंका दहीरूप परिणाम हुवातो क्रमसे हुवा अथवा क्रम विनाही हुवा जो कहो कि क्रमसे हुवा तो प्रथम कौनसे अवयवसे परिणामका आरभ होगा तो विनिगमना नही होनेसे कोई अवयवसो आरभ नही मान सकोगे तो अवयवमें क्रमसे परिणाम मानना सिद्ध न हुवा जो कहो कि क्रम बिनाही अवयवोंमें परिणाम मानेहे तो हम कहे हे कि तुम्हारे कोई विनगमनातोहे नही इस ...लिये अवयवी दुग्धमें परिणाम मान करिकेही अवयवोंमें परिणाम मानो जोकहोकि ऐसेही मानेंगे तो यहाभी विनगमना नही होनेसे इससे विपरीतही मानो हम ऐसे कहेंगे कि

हम अवयव और अवयवी इन दोनोंसे एक समयमें परिणाम मानेंहै तो हम कहैंहै कि परिणामवाद मतमें अवयवीरूप कार्य अवस्थामें अवयवरूप कारण अपने स्वरूप रहैं नहीं इसलिये यह कथनभी असंगत है जो कहो कि यह कथन असंगत हुवा तो हमारा पहिला माना हुवा स्थूल दूधमें दहीरूप परिणाम सिद्ध होगया तो हम कहैंहैं कि दूधमें निरवयव होनेसे नित्य पणेकी आपत्ति हुई और प्रमाण तथा आकाश इनकी तरह अमत्यक्ष होनेकी आपत्ति हुई इसलिये परिणाम वादसेभी कार्य मानना असंगतहैंहै अब न तो परमाणु स्वरूप मान उपादानकारण सिद्ध हुवा न घटादि स्वरूप सिद्धहुवा सो नित्य और अनित्यरूप करके माने जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सिद्ध न हुये अब कहो तुम आकाश कैसे सिद्ध करो हो जो कहो कि आकाश नित्य है और व्यापक है और नित्यरूप है इसलिये आकाशका प्रत्यक्ष तो नहीं इसलिये अनुमानसे आकाश सिद्धि होयेहै तो तुह्मारा अनुमान कहो कि जिससे आकाश सिद्ध होय जो कहो कि जैसे स्पर्श चक्षुसे जाननेके अयोग्य होता हुवा बाहिरकी इन्द्रियों करिके जाणाजाय ऐसी जातिवाला गुण है तैसे शब्दभी इसलिये गुण है ऐसे अनुमानसे शब्द गुण सिद्ध हुवा और जैसे संयोग गुणहै इसलिये द्रव्यमें रहे है तैसे शब्दभी गुणहै इसलिये द्रव्यमें रहे है इस अनुमानसे शब्दका द्रव्यमें रहना सिद्ध हुवा पीछे निर्णय किया तो शब्द पृथ्वी, जल, तेज, वायु इनका गुण सिद्ध न हुवा और दिशाकाल आत्मा मन इनकाभी गुण शब्द सिद्ध न हुवा इसलिये इस गुणका आधार आकाश सिद्ध हुवा सो हम कहे है कि ऐसे आकाशकी सिद्धि "विश्वनाथ पञ्चाननभट्टाचार्य" ने अपने बनाये मुक्तावली नाम ग्रंथमें लिखीहै सो ही तुमने मानी है परंतु विचार करो कि स्पर्शके दृष्टांतसे शब्दको गुण मानो तो स्पर्शको किसके दृष्टान्तसे गुण मानोंगे जो कहो कि रसके दृष्टान्तसे स्पर्शको गुण मानोंगे तो हम रसमें ऐसेही पूछेंगे अन्तमें मूल दृष्टांतको गुण सिद्ध करनेको समर्थ कोई नहीं होगा जो मूल दृष्टान्त नहीं सिद्ध हुवा तो शब्द कूभी गुणपणा सिद्ध न हुवा जो शब्द गुण न हुवा तो उसके रहनेके अर्थ आकाशका मानना असंगत हुवा जो कहो कि शब्दमें गुण पणा सिद्ध न हुवा तो शब्दतो श्रोत्रसे प्रत्यक्ष सिद्धहै इसलिये शब्दका आधार आकाश सिद्ध होगया तो हम कहेहै कि तुम करणके छिद्रमें वर्तमान आकाश को श्रोत्र कहोहो और शब्दका आश्रय मान करके आकाशको सिद्ध करोहो तो शब्दको तो प्रत्यक्ष सिद्ध करनेके अर्थ श्रोत्ररूप आकाशकी अपेक्षा होगी और आकाशको सिद्ध करनेके अर्थ शब्दकी अपेक्षा होगी इसलिये आकाश और शब्द दोनों अन्योन्य सापेक्ष होनेसे इनमें एकभी सिद्ध नहीं हो सके, जो कहो कि शब्दको तो हम स्पर्शके दृष्टान्तसे गुण सिद्ध करे है, क्योंकि हमारे मतमें शब्द गुणहै, और स्पर्शको गुण माननेमें तो किसीकोभी विवाद नहीं, इस लिये स्पर्शको गुणसिद्ध करना आवश्यक नहीं, तो हम कहैं है कि तुम जो गुण मानों हो, सो व्यवहारसे मानों हो, वा संकेतसे मानोहो जो कहो कि व्यवहारसे माने है, तो यह कथन तो असंगत है, क्योंकि व्यवहारमें सत्यभाषण धीरपणा, उदारपणा, दया, शीलपणा, तप, दान, गान, इत्यादिकोंको गुण मानें है, और मद्यका गंध, वेश्याके कपोलका स्पर्श चुम्बन समयमें इसके अधरोंका संयोग इत्यादिको को गुण नहीं मानें है

जो कहो कि हम संकेतसे गुण मानते हे तो तुमही कहो कि तुमारा संकेत शास्त्र सिद्ध है वा नही, जो कहो कि शास्त्र सिद्ध है तो तुम कहो कि कौन शास्त्रको मानते हो, जो तुम कहो कि हम श्रुति सिद्धमाने हे क्योंकि श्रुति नाम वेदका है इसलिये वेद हमको प्रमाण है तो तुम्हारेको वेद प्रमाण है तो हम कहे हैं कि वेदमें तो कही भी रूपादिकोको गुण नाम करिके कहे नही जब तुम्हारे माने वेदसे सिद्ध न हुवे तो अप्रमाणीक होनेसे शब्दमे गुणपणा मानना असगत हुवा इसलिये शब्दका आश्रय आकाशस्वरूप द्रव्य मानना असंगत है और देखो कि लोकमे भी यह पृथ्वीका शब्द हे, यह जलका शब्द है यह वायुका शब्द है और यह अग्निका शब्द है ऐसा व्यवहार हे ओर यह आकाश का शब्द हे ऐसा तो कोई नही कहता इसलिये शब्द आकाश का गुण नही हो सके यह तुम्हारा आकाशका मानना असगत हुवा अब जैसे आकाश सिद्ध न हुवा तैसेही काल और दिशा भी सिद्ध न होगी क्योंकि देखो शिरोमणिभट्टाचार्यनेभी पदार्थ तत्वनामग्रथमे " दिक्कालनेश्वरादतिरिच्येत" ऐसा लिखा है इसका अर्थ यह है कि दिश और काल यह ईश्वरसे जुदे नही हे और यह भी लिखा है कि "शब्द निमित्त कारणत्वेन कल्पितस्य ईश्वरस्यैव शब्द समवायिकारणत्वम्" इसका अर्थ यहहै कि शब्दका निमित्त कारणमाना जो ईश्वर सोही शब्दका समवायिकारण हे इससे यह सिद्ध हुवा कि आकाश भी ईश्वरसे जुदा नही है इसमें विशेष विचार देखनेकी इच्छा होय तो पं० रघुदेवजीकी की हुई पदार्थतत्वकी टीका है उसमे देखो इसलिये आकाश काल और दिशा यह मानना असगत हे अब कहो तुम आत्मा किसको कहो हो जो कहो कि हम आत्मा दोप्रकारकी माने हे तहा एक तो परमात्मा है और दूसरा जीवात्मा है तहा परमात्मा तो एकही है और जीवात्मा प्रतिशरीर जुदा है और व्यापक हे और नित्य है ओर परमात्माभी व्यापक हे और नित्य है और परमात्मामे सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा यत्न, ये आठ गुण है और जीवमें आठ, तो परमात्मामें गुण बताये सो रहे है और सुख दुःख द्वेष धर्म अधर्म भावना नाम सस्कार ये छः गुण सर्व मिलकर चतुर्दश गुण रहेहै और परमात्मामे ज्ञान, इच्छा, यत्न नित्य हे और जीवमें ये गुण अनित्य है और परमात्मा कर्त्ता है ओर भोक्ता नही हे, और जीवात्मा कर्त्ता भी है और भोक्ता भी है, तो हम पूछे है, कि ईश्वरको तुम कौन प्रमाणसे सिद्ध करो हो जो कहो कि प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध करे हे तो हम पूछे हे कि बाह्य इंद्रियोसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय है वा मनसे जो कहो कि बाह्यइन्द्रियोसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय है तो ये कथन असगत है क्योंकि तुम बाह्यइन्द्रियोसे सावयव द्रव्यका प्रत्यक्ष मानो हो ईश्वर तुम्हारे मतमे निरवयव द्रव्य है जो कहो कि मनसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय है तोभी कथन असंगत है क्योंकि मनसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय तो ईश्वरमे सुखादिककी तरह अनित्यपणा मानणा पडेगा क्योंकि तुम्हारे मतमे सुख अनित्य है और मनसे जाना जायहै जो कहो कि अनुमानसे ईश्वरकूं सिद्ध करे हे तो तुम्हारा अनुमान ऐसा है कि जैसे घट कार्य है इसलिये कर्त्तासे पैदा हुवा है तैसेही पृथिव्यादिक भी कार्य है इस लिये कर्त्तासे पैदा हुये हे इस अनुमानसे पृथिव्यादिकमें कर्त्तासे पैदा होना सिद्ध करो हो क्योंकि ओर तो कर्त्ता पृथिव्यादिकका कोई बनसके नही इस लिये इनका कर्त्ता ईश्वर मानो हो तो हम पूछे हे कि तुम कर्त्ता किसको कहो हो जो कहो कि कृतिका

पैदा करे है तो इस श्रुतिका यह तात्पर्य हुवा कि परमात्माके निजरूप कर्तापणा नहीं है मायारूप उपाधिकी दृष्टिसे ईश्वरमे कर्तापणाहै और तैत्तिरीयोपनिषदमे लिखाहै कि " सो ऽकामयत बहुस्या प्रजायेय " इसका अर्थ यहहै कि वह इच्छा करताहुवा बहुत होऊं तो इसश्रुतिका यह तात्पर्यहुवा कि परमात्माही बहुत जगत् रूप करके पैदा हुवा और मुण्डकोपनिषदमे लिखा है कि " तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगा सहस्रशः प्रभवते सरूपास्तथा क्षराद्विविधाः सौम्यभावाः प्रजायते तत्र चैवा पियन्ति " इसका अर्थ यह कि सो यह सत्या है जैसे प्रज्वलित अग्निसे विस्फुलिंग अर्थात् तणगारा हजारो पैदा होय है सदृश तैसे परमात्मासे नाना प्रकारके सौम्य भाव पदार्थ पैदा होय है उसी मे प्रवेश करजाय है इस श्रुतिका यह तात्पर्य हुवा कि जैसे अग्निसे उत्पन्न अग्निके कण जो है सो अग्निही है तैसे परमात्मासे उत्पन्न जो जगत् सो परमात्माही है और उन्ही श्रुतियोंमे ऐसा लिखा है कि उसी परमात्मानेही जीव हो करके देहमें प्रवेश किया जीव शब्दका अर्थ प्राणोंका धारण करनेवाला ऐसा है इस लिये शरीरमे प्रवेश किया परमात्माने जीव नामको पाया अब जो श्रुतिके कथनसे परमात्मामें ज्ञान इच्छा यत्न मानोतो श्रुतिसे ही जीव और जगत् इनको परमात्माही मानों इसीलिये हम तुम्हारे को कहेंहै कि सर्वज्ञके वचनको मानो तो परमानदसे पूर्ण होजावो परन्तु जिनके अज्ञानके संस्कार दृढहै तिनको ऐसा मानना कठिन है कदाचित कोई शुभ कर्मके उदयसे कोई प्रकारमे मानभी लेवेतो ऐसा जानना अत्यन्तही कठिन है अब कहो तुमने तुम्हारे मरजीके माफिक परमात्मामें ज्ञान इच्छा यत्न माने सो इनको नित्य कैसे कहोहो जो कहो कि जीवके ज्ञान इच्छा यत्न अनित्य है इसलिये परमेश्वरमे जीवकी अपेक्षा यहही विलक्षण पणाहै कि इसमे यह गुण नित्यहै तो हम कहे है कि तुम ईश्वर नया बनाते हो वा ईश्वर जैसा है तैसा वर्णन करो हो जो कहो कि हम तो ईश्वर बनाते नही किन्तु ईश्वर है तैसा वर्णन करेंहै तो हम कहेंहै कि तुमही विचारकरो एकमे बहुत हो जाऊं यह इच्छा ईश्वरमे प्रलय समयमें कैसे बण सके जो प्रलयसमयमें यह इच्छा ईश्वरमें रहे तो प्रलय होवेही नहीं क्योंकि श्रुति परमेश्वर को सत्य संकल्प वर्णन करेहै इस लिये प्रलयकालमे सृष्टि होजाय जो कहो कि प्रलय कालमें सारे पदार्थोके अभाव रहे है इस लिये अभावोंकी सृष्टि मान लेवगे तो हम कहे है कि प्रलय कालमें तो अभाव और भाव तुम्हारे मानें दोनोही रहे नहीं क्योंकि सृष्टिका पूर्वकाल और सृष्टिका उत्तर काल इनका नाम प्रलय है तो सृष्टिके आदिकी ये श्रुति है कि " सदेव सौम्येद मग्र आसीत् " इसका अर्थयहै कि पूर्व कालमें हेसौम्य ये जगत् सत्नामपरमाही हुवा तो इस श्रुतिमें एव शब्दहै इसका अर्थ भाषाके माहिही ऐसा है तो इस शब्दके यह स्वभाव है कि यह शब्द जिस शब्दके आगाडी होय उस शब्दका जो अर्थ उससे जुदे पदार्थोंकी निषेधको कहेहै जैसे यहा घटही है इस वाक्यमे ही शब्द घट शब्दके अगामी है तो घट पदार्थसे जुदे पदार्थोके निषेधको कहे है तैसे सृष्टिके आदिकी श्रुतिमे यह शब्द अर्थात् "ही" इस अर्थका कहनेवाला एवशब्द सत् शब्दके अगाडी है तो सतसे जुदे सर्व पदार्थोके निषेधको कहेगा तो प्रलयमें अभावोंकी सृष्टि कैसे होसके और " सर्वे आत्मानः समर्पिता निरंजनः परमं साम्य मुपैति ये प्रलय कालकी श्रुति है इसका अर्थ यह है कि सारे आत्मा अर्पण किये परमा

त्माका परसाम्य अर्थात् परमात्माका अभेद प्राप्त होयहै जो कहो कि साम्य शब्द तो सादृश्यपने को कहै आप इसका अभेद अर्थ कैसे कहो हो तो हम कहे हे कि साम्य शब्दका अभेद नही कहे किन्तु परमसाम्य शब्दका अर्थ अभेद कहे है उससे भिन्न और उसके बहुत धर्मो करके युक्त होय सो तो सम और जोवोही होय सो परमसम जो कहो कि यह अर्थ आप को न अनुभव से करोहो तो हम कहे हे कि सृष्टिके आदिकी श्रुतिके अर्थके अनुभवसे करेहे जो ऐसा अर्थ न करें तो सृष्टिके आदिकी श्रुति और प्रलयकी श्रुति इन दोनो श्रुतियोंकी एक वाक्यता अर्थात् एक अर्थ होय नही जो कहो कि यह दोनो श्रुति तो भिन्न समयकी है इसलिये एक अर्थ करना निष्फल है तो हम कहे हे कि सृष्टिका आदि और सृष्टिका अन्त सृष्टिके न होनेमे बराबर हे जो कहो कि आदि और अन्त कैसे बराबर होसके तो हम कहेहे कि आदि अन्त व्यवहार तो आपेक्षिक है सृष्टिके न होनेकेकाल तो दोनोंही है जो कहो कि आदि अन्त व्यवहार आपेक्षित है तो आदि अन्तमें अन्तादि व्यवहारभी होणाचाहिये तो हम कहेहे कि देखो सृष्टिका पूर्व काल पूर्व सृष्टिकी अपेक्षा प्रलयकाल है और इस सृष्टिकी अपेक्षा सृष्टिका आदिकाल है ऐसेही भविष्यित् प्रलयमें समझो जोकहो कि इस सृष्टिके पूर्वभी सृष्टिही इसमें क्या है प्रमाण तो हम कहे हे कि " धाता यथा पूर्वमकल्पयत् " श्रुतिका प्रमाण है इसका अर्थ यह है कि परमेश्वरने जैसे पहले जगत् रचा है तसेही जगत् रचदिया जो कहो कि भविष्यत् प्रलयके पीछे भी सृष्टि होगी इसमे क्याप्रमाण तो हम कहे है कि भूत प्रलयके पीछे यह सृष्टि हुई तैसेही सृष्टि भविष्यत्प्रलयके पीछे भी होगी ये अनुभवही प्रमाण है अब विचार करिके देखो कि प्रलय कालमें परमात्मामें इच्छा सिद्ध न हुई तो ईश्वरकी इच्छा नित्य कैसे मानीजाय ईश्वरकी इच्छा नित्य सिद्ध न हुई तैसे ईश्वरका यत्नभी नित्य सिद्ध नही होगा जो कहो कि ईश्वरका ज्ञान भी इच्छा और यत्न इनकी तरह है अनित्य मानणा पडेगा तो हम कहे हे कि परमात्माका ज्ञान अनित्य नही है किन्तु नित्य है जो कहो कि न्याय शास्त्रका मत यह है कि विषयके नही होनेसे ज्ञानका ज्ञानपना रहे नही तो प्रलय कालमे कोईभी भाव अभाव नही होनेसे ईश्वरका ज्ञान नित्य कैसे मान्या जाय तो हम कहे हे कि ईश्वरका ज्ञान प्रलय कालमे ईश्वरकोही विषय करेगा इसलिये विषयका न होना न हुवा इसलिये ईश्वरका ज्ञान नित्य है जो कहो कि परमात्माका ज्ञान परमात्माको विषय करे है इसका प्रमाण क्या तो हम कहेहे कि गीताकी दशवी अध्यायमें अर्जुनने कहा है कि " स्वय मेवात्मनात्मान वेत्थ त्व पुरुषोत्तम " अर्थ यहहै कि हे पुरुषोत्तम आपही आपसे आपको जानो हो जो कहो कि इस कथनसे तो परमात्मा ज्ञान रूप सिद्धि होता है क्योंकि इस कथनमे जानना और जानने वाला और जाण्यागया ये तीनू एक मालूम होय हे तो ईश्वरमे ज्ञान सिद्ध न हुआ किंतु ईश्वर ज्ञानरूप सिद्ध हुवा तो न्याय शास्त्रमें ईश्वरको नित्य ज्ञानका आश्रय कहा है सो कैसे हो सके इसका उत्तर क्या तो हम कहेहे कि इसका उत्तर तो न्याय शास्त्रके आचार्योंको पूछो उन्होंनेही ईश्वरको ज्ञानका आश्रय कहा है अब देखो उनको इतना भी विचार न हुवाके ईश्वरको ज्ञानका आश्रय मानेंगे तो ईश्वर जड सिद्धि होगा क्योंकि उन्होंने ज्ञानको गुण माना है और ईश्वरको द्रव्य माना है तो ईश्वर चैतन्यसे जुदा पदार्थ होनेसे जड ही सिद्ध होय जैसे उनके मतमे ज्ञानसे जुदा पदार्थ होनेसे जीव जोहै सो जडहै

इसीसे मुक्त अवस्था जीवकी जडरूप करके स्थिति न्याय शास्त्रमे माने हे इस मुक्तिके विषयमें हम पदार्थ निरणय करके पश्चात् मुक्तिका स्वरूप लिखेंगे इस जगह तो हमको परमात्मा ज्ञानरूप सिद्ध करना था सो हो गया अब हम यह और पूछे हे कि तुम परमात्मामें सुख नही मानोहो सो किस प्रमाणसे नहीं मानोहो जो कहो कि हमारे यहां श्रुति ऐसीहै "असुखम्" इसका अर्थ यह है कि परमात्मामें सुख नही है तो हम कहेहे कि "प्रज्ञानमानद ब्रह्म" ये बृहदारण्यकी श्रुति हे इसका अर्थ यहहे कि ब्रह्म जो परमात्मा सो ज्ञानरूप ह और आनदरूपहे तो परमात्मामे आनन्द सिद्ध होगया जोकहो "असुख" इस श्रुतिकी क्या गति होगी तो हम कह हे कि इस श्रुतिकी एक गतितो यह कि सुख नाम विषय सुखका है तो असुख शब्द करके श्रुति परमात्मामे विषय सुखका निषेध करे है जो कहो कि सुख आनन्द यह दोनों शब्द परयाय वाची है अर्थात् एकही अर्थके कहने वाले हो तो इस श्रुतिकी दूसरी गति यह है कि परमात्मामे सुखके आधारपनेका निषेध करे हे अर्थात् परमात्माको सुखरूप कहे है ऐसे परमात्मा सच्चिदानन्दरूप सिद्ध हुवा जो कहो कि परमात्मा सच्चिदानन्दरूप हुवा तो जीव सच्चिदानन्द केसे होय यहतो अनित्य ज्ञानवाला है नाना प्रकारके दुःखोको भोगनेवाला है तो हम पूछहे कि तुम जीवका स्वरूप जड मानोंहो तो तुमने जीवका जडपणा देखा हे वा नही जो कहो कि जीवका जडपणा हमने देखा है तो हम पूछह कि तुमने जडपणा किस समयमे देखा है जो कहो कि सुषुप्तिमे देखा है तो हम कहे ह कि सुषुप्तिमें ज्ञान सिद्ध हो गया क्योकि जो सुषुप्तिमें ज्ञान न होता तो जडपणाको कैसे जानते जो कहो कि नहीं देखा है तो सुषुप्तिमे जीवको जड कहना असगत हुवा क्योंकि जागनेके पीछे तुमको ऐसा ज्ञान होय हे कि म जड होकर सूता रहा तो ये ज्ञान अनुभव है अथवा स्मरण है जो कहो कि अनुभवहे तो ये कथन असगत है क्योंकि अनुभव तो विषय मौजूद होय तब होय है सो जीवका जडपणा जाग्रत अवस्थामें मौजूद नही इस लिये जड होकर सूता रहे यह ज्ञान अनुभव होसके नही जो कहो कि स्मरण है तो हम पूछे है कि स्मरण अनुभव होय है तिसकाही होय है वा जिसका अनुभव न होय उसकाभी स्मरण होय है जो कहो कि जिसका अनुभव न होय उसकाही स्मरण होयहे तो हम कहे हे कि तुमको सारे जगत्के पदार्थोका स्मरण होना चाहिये क्योंकि तुमको सारे जगत्के पदार्थोका अनुभव नही ह जो कहो कि अनुभव होय उसकाही स्मरण होय है तो तुम्हारा जडपणा सुषुप्तिमें नही दीखा है ये कथन असगत हुवा क्योंकि जो सुषुप्तिमें जडपणेका अनुभव न होय तो जाग्रत् अवस्थामे जडपणाका स्मरण कैसे हो सके इसलिये सुषुप्ति समयमें तुम्हारे कथनसेही जीवमें ज्ञान सिद्ध होगया अब कहो तुम जीवके ज्ञानको अनित्य मानोंहो तो जीवमें ज्ञानकी उत्पत्तिभी मानोहोगे तो हम पूछे ह कि तुम ज्ञानके कारण किनको मानोहो जो कहो कि ज्ञानका समवायीकारण तो जीव है और असमवायीकारण जीवका और मनका सयोग है और ईश्वरको आदि लेके ज्ञानके निमित्त कारण है तो हम कहे ह कि सुषुप्तिमे ज्ञान होना चाहिये क्योंकि सुषुप्तिमें सारे कारण मौजूद है जो कहो कि और कारण तो सब मौजूद ह परतु चर्मके और मनका सयोग ज्ञान सामान्य अर्थात् सर्व ज्ञानोका कारणहे सो सुषुप्तिमे बणसके नही

क्योंकि उससमयमें मन पुरीततिनाम नाडी जिसमें प्रवेश करजाय है उसनाडीमें चर्म नही है तो हम पूछेंहे कि जब मनपुरीततिमें प्रवेश करजायहै तब ज्ञान होवे नही तो अज्ञान रहेगा तो अज्ञानका प्रत्यक्षतो तुम सुपुप्तिमें मानोगेनही क्योंकि बाह्य प्रत्यक्षमें तुम इन्द्रिय और मन इनके संयोगको कारण मानोंहो और मानस प्रत्यक्षमें आत्मा और मन इनका संयोग और चर्म और मन इनका संयोग ऐसे दोय सयोगोंको कारण मानों हो तो अज्ञान बाह्यपदार्थतोहै नही इसलिये इंद्रिय और मन इनके संयोगकी अपेक्षा तो अज्ञानके प्रत्यक्षमें है नही तो अज्ञानके प्रत्यक्षमें मानस प्रत्यक्षकी जो सामग्री उसकी अपेक्षा होगी सो बणसके नही क्योंकि यद्यपि पुरीततिमें मन प्रवेश कर गया तब आत्माका और मनका संयोग तो है परन्तु चर्मका और मनका सयोग नहीं मानों हो तो कहो तुम सुपुप्तिमें अज्ञान कैसे सिद्ध करो हो जो कहो कि प्रत्यक्ष सामग्री नही है तो सुपुप्तिमें अनुमान सिद्धि करेंगे तो हम कहे है कि तुम वह अनुमान कहो परन्तु दृष्टान्त ऐसा कहो कि जो तुम्हारे और हमारे दोनोंके सम्मत होय जो कहो कि जैसे मूर्छा में द्वैतकी प्रतीति नही है इसलिये मूर्छामें अज्ञान है तैसे सुपुप्तिमेंभी द्वैतकी प्रतीति नही है इस लिये अज्ञान है इस अनुमानसे सुपुप्तिमें अज्ञान सिद्ध हो गया तो हम पूछे है कि तुम मर्छा जो अज्ञान है उसकाभी प्रत्यक्ष तो मानोगे नही इसलिये मूर्छामें किसके दृष्टान्तसे अज्ञानको सिद्ध करोगे जो कहो कि सुपुप्तिके दृष्टान्तसे सिद्ध करेंगे तो हम पूछे है कि तुम्हारी सुपुप्तिको दृष्टान्त करोगे या अन्यकी सुपुप्तिकूं दृष्टान्त करोगे जो कहो कि हमारी सुपुप्तिमें तो विवाद है इस लिये अन्यकी सुपुप्तिको दृष्टान्त करेंगे तो हम कहे है कि तुम्हारा अनुभव विलक्षण है कि अपनी सुपुप्तिको तो जानोनही और अन्यकी सुपुप्तिको जानो हो जो कहोकि अन्यकी सुपुप्तिका प्रत्यक्ष अनुभव तो हैनही इसलिये ऐसा अनुमान करेंगे कि जैसे चेष्टा करके रहित हूं इसलिये सुपुप्तिवाला हूं तैसे अन्य पुरुषभी चेष्टा करिके रहित है इस लिये सुपुप्तिवाला है ऐसे अनुमानसे अन्य पुरुषमें सुपुप्तिको सिद्ध करेंगे तो हम कहे है कि तुम्हारी सुपुप्तिका अनुभव मानों सुपुप्तिका तुम अनुभव नही मानोगे तो इसको दृष्टान्तसे अन्यकी सुपुप्तिको कैसे सिद्ध करोगे इसलिये अपनी सुपुप्तिमें अनुभव मानना ही पडेगा कारण सुपुप्तिमें अनुभव मानो तो उसको नित्य भी मानना ही पडेगा क्योंकि तुमने जो ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण माना है वो सुपुप्तिमें नही है अर्थात् चर्मका मनका संयोग सुपुप्तिमें है नही अब जो सुपुप्तिका अनुभव नित्य सिद्ध हुवा तो जिसकू जीव माना सो परमात्मा ही सिद्ध हुवा क्योंकि परमात्मा पहिले नित्य ज्ञान रूप सिद्ध हो गया है जो कहो कि जीव नित्य ज्ञानवाला हुवा तो भी परमात्मासे तो भिन्न ही है ऐसे मानोगे तो हम पूछे है कि तुम भेद कितने प्रकारके मानो हो जो कहो कि भेद हम तीन प्रकारके माने है तिनमें एक तो स्वगत भेदहै जैसे वृक्षमें पत्र पुष्पादिकके कमती ज्यादा होनेसे भेद मालूम होय है और दूसरा सजातीय भेद जैसे एक वृक्षमें दूसरे वृक्षका भेद है और तीसरा विजातीय भेदहै जैसे वृक्षमें पाषाणादिक का भेद है अब देखो कि जीव सावयव नही इस लिये जीवमें स्वगत भेद बनसके नही और जीव परमात्मामें विजातीय नही इस लिये भी जीवमें विजातीय भेद नहीं है किन्तु सजातीय

भेद है तो हम कहे है कि यह कथन तुम्हारा असगत है क्योंकि किंचित् विलक्षणता विना भेद हो सके नहीं जो किंचित् विलक्षणता विनाभी भेद होय तो आपका भेद आपमें भी रहणा चाहिये इसलिये जीव परमात्मा ही है जो कहो कि जीव नित्य ज्ञानरूपहै ताभी जन्य ज्ञानका आश्रय है यही जीवमे परमात्मासे विलक्षणता है तो हम पूछे है कि तुम जन्य ज्ञानकिसकू कहो हो जो कहो कि पुरीतति नाडीमसे जब मन बाहिर आवे है तब आत्माका और मनका सयोग होय है उससे जो ज्ञान पैदा होयहै सो जन्य ज्ञान है तो हम कहहे कि आत्माका और मनका सयोगतो बनेही नही क्योंकि आत्मा और मन इन दोनो द्रव्योंको तुम निरवयव माने हो और सयोगको तुम अव्याप्य वृत्ति मानो हो अर्थात् सयोगका यह स्वभाव है कि, यह जहा होवे उसके एक देशमें तो आप रहे है और उसहीके अन्य देशमे सयोगका अभाव रहेहै जैसे वृक्षमे वानरका (बन्दर) सयोग है सो शाखा देशमेंहै और मूलदेशमें नहीं है अब जो आत्मा और मन इनका सयोग मानोंगे तो सयोग अव्याप्यवृत्ति नहीं हो सकेगा क्योंकि तुम्हारे मतमे आत्मा और मन इनको निरवयव मानो हो इसलिये इनमें देश बन सके नहीं अब जो आत्मा मनका सयोग नहीं होसका तो मनका मानना भी असगत हुवा कि तुमने मनके सयोगसे आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्ति मानी है सो मनका सयोग आत्मामें बनसके नहीं इसलिये मनका मानणा व्यर्थ है अब देखो कि जो तुम मनको द्रव्य मानते हो सो नही बनता क्योंकि आत्मामे ज्ञानकी उत्पत्तिके अर्थ तुमने मनको माना है सो ज्ञान तो नित्य सिद्ध हो गया आत्मा इसमें जुदा सिद्ध हुवा नहीं और जो इस मानमेही मनका सयोग मान करके कोई अनित्य ज्ञानकी कल्पना करलेवो सो बने नही क्योंकि मनतो तुम्हारे मतमें द्रव्य है और ज्ञान जो है सो गुण है इनका सयोग बनसके नहीं द्रव्योंकाही सयोग होय है ये न्यायवालोंका नियम है इसलिये मनका मानणा व्यर्थहै और कहो कि तुम चर्म और मनके सयोग करके आत्मामे ज्ञानकी उत्पत्ति मानोहो तो यह कहो कि सुषुप्तिके अव्यवहित उत्तर क्षणमे प्रथम चर्मसे मनका सयोग कौनसे देशमे होयहै चर्मतो पुरितति के विना सर्व शरीरमे है जो कहो कि मनके प्रथम सयोगका देशतो लिखा नहीं तो हम कहे है कि कोई देश मानलेवो तो मन तुम्हारे मतमे परिमाणु रूप है तो ये मन जिस देशमें चर्म सयुक्त होगा उसही देशमें आत्मामे ज्ञानको पैदा करेगा अथवा अन्य देशमें भी ज्ञानको पैदा करेगा जो कहो कि उसही देशमें ज्ञानको पैदा करेगा तो हम कहे है कि ऐसे मानणा तो असगत है क्योंकि ज्ञानकी प्रतीति सर्वशरीरमे होय है जो कहो कि अन्यदेशमे भी ज्ञानको पैदा करे है तो हम कहे है कि आत्मा तुम्हारे मतमें व्यापक है इसलिये घट देशम भी ज्ञानकी प्रतीति होनी चाहिये ये जो कहो कि जितने देशमे चर्म है उतनेही मे ज्ञानको पैदा करे है जैसे पृथ्वी घटके पैदा करनेके योग है परन्तु जितने देशमे स्निग्ध है अर्थात चिकनी है उसमेंही घट होय है तो हम कहे है कि पृथ्वीको तो तुम सावयव मानों हो इसलिये कोई देशतो घट होनेके योग्य मान सकोगे और कोई देश घट होणेके अयोग्य मान सकोगे आत्मा तो तुम्हारे मतमें निरवयव है इसके दोभाव कैसे हो सके इसलिये ऐसे मानणा भी असगतही है जो कहो कि आत्मामें आरोपित देशमानेंगे तो हम कहे है कि आरोपित नाम तो मिथ्याका है जो आत्मामें देश मिथ्या हुवा तो उस देशमें ज्ञानका मानणा भी मि

थ्याही होगा जैसे रज्जुमे सर्प आरोपित है तो उसमे नीलपणा आदि लेकरके सारे धर्म आ-रोपित ही ह अव कहो आत्मामें ज्ञान और देश इनका आरोप कौन करेगा अर्थात् आत्मा आरोप करेगा अथवा कहो कि दोनूमें से चाहे जिसको आरोपका कर्त्ता मानि लेवेगे तो हम कहे है कि न्यायके मतमे तो आत्मा और मन दोनोंही जड़ है ये आरोपके कर्त्ता कैसें होसके अब जो आरोपका कर्त्ता कोई सिद्ध न हुवा तो आत्मामें आरोपित देश मानणा असंगत हुवा आरोपित देश मानणा असगत हुवा तो उस देशमें ज्ञानकी उत्पत्तिके अर्थ मनका मानणा असगत हुवा ऐसे पृथ्वीको आदि लेके मनपर्यन्त द्रव्योका मानणा असगतही है अब हम तुमको पूछेहे कि गुण जो तुम मानो हो सो प्रथमरूप किसको कहो हो जो कहो कि रूप शब्द करके कहाजाय सो रूप तो हम कहेहे कि रूप शब्द करके तो रूप शब्दभी कहाजाय है इसलिये रूप शब्दको रूप मानणा चाहिये जो कहो कि रूप शब्दसे भिन्न और रूप शब्द करिके कहाजाय सो रूप तो हम कहे हे कि रूप शब्द करके तो रूप नाम जो पुरुप सोभी कहा जाय हे और वो रूप शब्दसे भिन्नभी है तो उस पुरुपको रूप मानना चाहिये और विचार करो कि व्यवहार ओर लक्षणतो पदार्थ होय तबही होय है सो रूपके उपादान कारण तो हे पृथ्वी जल तेज और असमवायकारण हे उपादानोंके अवयवोका रूप सो न तो उपादान कारण सिद्ध हुवे और न उपादानोंके अवयव सिद्ध हुवे तो कारणोंके विना रूपकी सिद्धि कैसे मानी जाय इसलिये रूपका-मानना असगत हे ऐसेही रसना इन्द्रियो करके जानाजाय ऐसा जो गुण सो रस और घ्राण इन्द्रियो करके जाणा होय ऐसा जो गुण सो गंध ओर केवल त्वगिन्द्रिय करके जाणा जाय ऐसा जो गुण सो स्पर्श इन लक्षणो करके इन रसगध स्पर्शोका मानणाभी असंगतही है अब कहो तुम सख्या किसको कहो हो जो कहो कि यह एक है येदोय है इत्यादिक जो व्यवहार तिनका जो असाधारण कारण सो सख्या तो हम पूछेहे कि तुम असा धारण कारण किसको कहो हो जो कहो कि जो एक कार्यका कारण होय सो असाधारण कारण है तो हम पूछे हे कि यह एक हे येदोय है इत्यादिक जो ज्ञान तिनका कारण सख्या हे अथवा नही तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि ये एकहे दोय है इत्यादिक जो ज्ञान तिनका कारण सख्या है तो हम कहे है कि सख्याको यह एकहे ये दोय है इत्यादिक व्यवहारोका असाधारयकारण मानना चाहिये क्योकि यह तो अपने ज्ञानकीभी कारण हुई इसलिये यह एककी कारण न हुई किन्तु व्यवहार और ज्ञान दोनोंकी कारण हुई जो कहो कि व्यवहार और ज्ञान दोनोंकी कारण हुई तोभी व्यवहारकी कारण हुई इस लिये व्यवहारकी असाधारण कारण हे तो हम कहेहे कि तुमने परमेश्वर काल इत्यादिकको भी असाधारण कारण क्यो नही माने सो कहो यह परमेश्वर और काल इत्यादिकभी सर्व कार्योके कारण हे तोभी एक एकके कारण होगे जो कहो कि एक एक कार्यकी दृष्टि साधारण कारणोकोभी असाधारण कहेंगे तो हम कहे है कि सर्व कार्योंकी दृष्टिसे साधारण कारण मानोगे और एक कार्यकी दृष्टिसे असाधारण कारण मानोगे तो स्वरूपसे कारण नही है ऐसेभी कहना पडेगा तो सख्याभी स्वरूपसे कारण नही है ऐसेभी कहणा पडेगा तो सख्याकी स्वरूपकारण नही होनेसे सख्याका मानना असगत होगा तो परमात्माका

माननाभी असगत होगा क्योंकि परमात्माभी स्वरूपमें कारण नही है तो हम कहे है कि परमात्मासे तो तुम्हारी मानी हुई श्रुति सत्यरूप वर्णन करे हे इस लिये परमात्मा तो है और सख्याको स्वरूपते कुछभी कही नहीं इसलिये संख्याको स्वरूपसे कुछभी कही नहा इसलिये सख्याका मानणा असगतही है ऐसेही यह इतने प्रमाणवाला है इस व्यवहारका जो असाधारण कारण सो परिमाण वाला और यह इससे जुदा है इस अव्यवहारका जो असाधारण कारण सो पृथकू ओर यह इमसे सयुक है इस व्यवहारका जो असाधारण सा सयोग और ये इससे परे हे इस व्यवहारका जो असाधारण कारण सो परत्व और यह इसस अपर हे इस अव्यवहारका जो असाधारण कारण सो अपरत्व इनका माननाभी असगतही है और विभागका मानणाभी असङ्गतही हे क्योंकि सयोगका नाशकरनेवाला जो गुण सो विभाग है जो सयोगही नहीं तो इस सयोगका नाश करनेवाला गुण मानणा असगतही हे अत कहो कि तुम गुरुत्व किसको कहते हो जो कहो कि प्रथम जो यत्न क्रिया तिसका जो असम वायि कारण सो गुरुत्व तो हम पूछे ह कि तुम असमवायिकारण किसको कहते हो तो तुमको कहनाही पडेगा कि कार्यके समवायि कारणमें समवायिसम्बन्धकारके रहे और उस कार्यका कारण हो सो असमवायिकारण तो हम कहेहे कि कार्यतो हुवा और तुम्हारी मानी क्रिया उसके उपादानकारण होगी सो पृथ्वी और जल सिद्ध हुये नहीं तो आधार विना गुरुत्व गुणका मानना असगत हुवा ऐसेही द्रव्यत्वका माननाभी असगतही है क्योंकि आद्यस्यन्दनका अर्थात् प्रथम झरणेका जो असमवायि कारण सो द्रव्यत्व ये द्रव्यत्वका लक्षण है तो झरणारूप जो क्रिया है सो यहा कार्य्य मानी जायगी उसके उपा दान होगी तो पृथ्वी, जल, तेज, सोतो सिद्ध हुये नही इसलिये आधारविना द्रव्यत्वका मानणा निष्फल हे ऐसेही चूर्णके पिण्ड होणेका कारण गुण स्नेह माना है और यत्नमें उसकी स्थिति मानी है तो यत्न सिद्ध हुवा नही इसलिये स्नेहका मानणा असगतही हे और शब्दके गुणपणेका खण्डन आकाशके खण्डनमे विस्तारसे लिखा है इसलिये शब्दगुण का मानना व्यर्थ है और ज्ञान जो हे सो परमात्मारूप सिद्ध हो चुका है इसलिये ज्ञानको गुण मानना असगत हे और सुखभी आत्मारूप है इस लिये इसको गुण मानना असगत है ओर आत्मा नित्यसुखरूप है इस लिये इसमे दु ख और द्वेष येभी बन सके नही और पहिले आत्मामें इच्छा और यत्न इनके सिद्ध नही होनेसे कर्त्तापणा सिद्ध हुवा नही इसलिये इसमें धर्म और अधर्म मानना असगत है और सस्कार तुमने तीन माने ह १ वेग २ भावना ३ स्थितिस्थापक इनमे वेग तो तुम पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मन इनमें मानोहो सो ये सिद्ध हुये नहीं और स्थितिस्थापकको तुम पृथ्वीमें मानोंहो सो सिद्ध हुये नही भावना तुम अनुभवसे जन्य मानोंहो और अनुभवको तुम जन्य मानोंहो सो अनित्य ज्ञान सिद्ध हुवा नही और विषय कोईभी सिद्ध नहीं हुवा इसलिये इन तीनों प्रकारके सस्कारोंका मानणाभी असगत हुवा अब जो कहो कि गुणोंका मानना असगत हुवा तो हम कर्मसे अर्थात् क्रियाको सिद्ध करेंगे तो हम कहे है कि तुम्हारी क्रियाका लक्षण यह है कि सयोगसे भिन्न और सयोगका असमवायिकारण होय सो कर्म तो जो सयोगही सिद्ध न हुवा तो उसका कारण कर्म माननाभी असगतही हुवा अब देखो जो तुमारे मानें

हुवे पदार्थ द्रव्य गुण कर्म कोई भी सिद्ध न हुवा जो कहो कि गौतम ऋषिजी सर्वज्ञ हुएथे और कणादि मुनिनेभी पदार्थके निर्णयके अर्थ तप कियाथा फेर तुमने इनके माने पदार्थोंको युक्ति और इनके माने प्रमाणसेही तुमने खण्डन करदिया तो पदार्थ तो हमारा सिद्ध न हुवा परन्तु मोक्ष उनका कहाहुवा सिद्ध होगया तो हम कहे है कि तुम मोक्ष किसको मानोहो और तुम्हारे ऋषियोंने मानी जो मोक्ष सो कहो जो तुम कहो कि इक्कीस गुणोंका ध्वंस अर्थात् नाश होना उसीका नाम मोक्ष है तो हम तुमको पूछे है कि तुम्हारे सर्वज्ञोंने आत्माको मोक्षमे गुणोंके नाश होनेसे जड़ बनाया अर्थात् पाषाण बनादिया जैसा तुम्हारे सर्वज्ञोने पदार्थोंका निर्णय किया है तैसाही मोक्षभी हुवा परंतु उनके चित्तमे विवेक शून्य विचार हुवा क्योंकि ऐसा कोई विवेकी पुरुष नही होगा कि अपने को आप सत्यानाशमें मिलावे क्योंकि इस तुम्हारी मोक्षमे जाकर जड बनना अर्थात् पाषाणवत् होजाना इससे तो देवलोक आदिकभी अच्छे है इसीलिये श्रीहेमाचार्य्यकी कीहुई स्याद्वाद मजरीकी टीकामें ऐसा उपहास किया है कि "वृन्दावनमे रमणकरण गोपियोंके साथ रहनेकी वाञ्छा करता हुवा और वैशेषककी मानी मुक्ति गौतम ऋषि जानेकी इच्छा नहीकरता हुवा" अब देखो कि आत्मा ज्ञानरूप तो पहलेही सिद्ध हो चुकी है और सुखरूपभी सिद्ध होचुकीहै तो मोक्षमें जडरूप आत्मा कैसे बनसकेगी और जो तुमने कहा कि वे ऋषि सर्वज्ञ थे तो हम कहे है कि सर्वज्ञ होते तो कदापि ऐसा नही कहते कि पदार्थका निर्णय होनेसे तत्व ज्ञान होता है सो तत्व ज्ञान तो न हुवा परन्तु उलटा भ्रम ज्ञान तो फैल गया इस लिये वे सर्वज्ञ नही किन्तु आत्माके सर्व नाश करनेवाले थे जो तुम कहो कि आत्माका नाश कैसे किया तो हम कहे है कि पक्षपात छोडकर विवेकसे विचार करो कि आत्मा ज्ञानमई आनन्दरूप परमात्म स्वरूपसे मोक्षमे विराजमान सिद्ध होना चाहिये तिसको उन्होने जड रूप बना दिया इसलिये वे सर्वज्ञ नहीथे जो कहो कि ये तो सर्वज्ञ न ठहरे और इनके कहे हुये पदार्थ भी सिद्ध न हुये और मोक्ष भी सिद्ध न हुई तो दूसरा सर्वज्ञ कौन है सो कहो तो हम कहे है कि सर्वज्ञका वर्णन हम चौथे प्रश्नके उत्तरमे कहेंगे अब ग्रन्थके बढ जानेके भयसे विस्तार नही किया कारण यह कि पाठक गण आलस्यके वश हो पढ न सकेंगे

इति श्रीमज्जैनधर्माचार्य मुनिचिदानंद स्वामिविरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीय प्रश्नके अन्तर्गत न्यायमत निर्णय समाप्तम् ॥

वेदान्तमत मर्दन अर्थात् खण्डन ॥

अब वेदान्तकी प्रक्रिया दिखाते है, जो कि वे पदार्थ मानते है उनकी रीतिमे ही उनकी प्रक्रिया सिद्ध नही होती "अध्यारूपो अपवादाभ्या निस प्रपञ्चो प्रपचते" ॥ दूसरे ऐसी श्रुति कहते है "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापीसर्व भूतान्त रात्मा कर्माध्यक्ष, सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" ॥

इसका अर्थ ऐसा लिखते हैं कि अध्यारोप करके अपवाद करना है जैसे एक हाथी रा गज बारूदका बनाय करके ओर उडाय देनाहै ऐसे ही ब्रह्मका जो प्रपञ्च सोनिस प्रपञ्च होना चाहिये तो अब तुमको पूछे हैं कि जैसे तुमने अध्यारोप करके अपवाद किया तो इस रीतिसे तो जो ब्रह्म नि प्रपचथा उसका तुमने निःप्रपचपणा अध्यारोप किया उस अध्यारोपका जब अपवाद किया तो प्रपच सिद्ध हो चुका तो जगत् सिद्ध हो गया क्या कि जो अध्यारोप कियाथा सो अध्यारोप तो अनहुई वस्तुका करते है अथवा किसी जिज्ञासुके समझावने वास्ते किसीमे किसी वस्तुका अध्यारोप करके समझाते है सो तुमने भी उस ब्रह्म निः प्रपचका अध्यारोप अर्थात् मिथ्या आरोप कियाथा उसका अपवाद करनेसे तो उस ब्रह्ममें प्रपच जो कहिये जगत् अनादि कालका सिद्ध हो चुका क्योंकि जिस ब्रह्मको तुम मानते हो जो वह अपने स्वरूपमें स्थित होता तो कदापि प्रपचमें नही पडता जो तुम कहो कि पहले ज्ञानवान था ओर पीछे ज्ञानका आवरण हुवा तो अब जो तुम्हारे महा वाक्योंसे ज्ञान होकर जगत् मिथ्या जानकर ब्रह्मरूप हो जायगा तो हम कहे है कि जैसे तुम्हारा पहले ब्रह्म निःप्रपचथा अर्थात् अज्ञान नहींथा सो फिर पीछेसे अज्ञान हो करके जगत् रच लिया तो फेर भी ऐसा ही कर लेवेगा इस लिये तुम्हारे मतमे श्रुति, स्मृति, उपनिषद्आदिक सर्व निष्फल होंगे इसी लिये हम तुमको कहते है कि जगत् अनादिसे है ब्रह्म जो कहिये आत्मा प्रपचमे सिद्ध हो गया ओर देखो तुम्हारेभी यही सिद्धान्त है कि षट् वस्तु अना है क्योंकि यह वदन्तियोंका सिद्धान्त है कि १ ब्रह्म, २ ईश्वर, ३ जीव, ४ अविद्या, या अज्ञान, ५ अविद्याका अर्थात् अज्ञानका चेतनसे सबध ६ अनादि परस्पर इन वस्तुओंका भेद यह षट्वस्तु स्वरूपसे अनादि है जिस वस्तुकी उत्पत्ति होवे नही सो वस्तु स्वरूपसे अनादि कहिये है इस लिय यह छः वस्तु स्वरूपसे अनादि है अब देखो तुमही विचार करो कि अविद्याका चेतनसे सबध अनादि मान करके फिर तुमही कहो हो कि ब्रह्म निःप्रपचा था सो यह तुम्हारा कहना ऐसा हुवा कि "मन्मुखे जिह्वा नास्ति" ऐसा तुम्हारा वचन हुवा अब देखो दूसरा विचार करो जो तुम "एकोदेवः" इत्यादि श्रुतिका अर्थ ऐसा कहो हो कि स्व प्रकाश परमात्मा एक है सो सर्व भूतोंमें गूढ है अर्थात् गुप्त है सर्वमें व्यापक है सर्व भूतोंका अन्तरात्मा है, कर्मका अध्यक्ष है अर्थात साधक है, सर्व भूतोंका आधार है, साक्षी है, ज्ञान रूप है, केवल है निर्गुण है, तो यह श्रुति शुद्ध ब्रह्मका प्रतिपादन करै है और दूसरी श्रुति यह हैकि "एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।एकधाबहु धा चैव दृश्यते जल चन्द्रवत्" इसका अर्थ यह है कि सर्व भूताका आत्मा एक ही है सर्व भूतोमे स्थित है जलमें चन्द्रमाकी तरह एकप्रकार करके और बहुत प्रकार करके दीखे है तो प्रथम श्रुतिमें निर्गुणकारके परमात्माका गूढ यह विशेषण है और गूढ शब्दका अर्थ गुप्त है तो ब्रह्ममे आवरण सिद्ध होगया और दूसरी श्रुतिमे जल चन्द्रके दृष्टान्त करके ब्रह्मका एक प्रकार करके और बहुत प्रकार करके दीखना वर्णन किया है तो ब्रह्मज्ञान रूपहै और साक्षी है अर्थात् ब्रह्म जो है सो द्रष्टा है ओर दृश्य नही है और इस श्रुतिमें एक प्रकार करके और बहुत प्रकार करके ब्रह्मका दीखना वर्णन किया है तो और प्रकार करके तो ब्रह्मका दीखना बनसके नही इसलिये जीव और ईश्वर जो है सो ब्रह्मके आभास है जैसे जलमे चन्द्रमाका आभास होयहै जो कहो कि महा जलकी तरह कोनहै

तो हम कहे है कि एक तो श्रुति यह है कि "अजामेका लोहितशुक्लकृष्णवर्णांबह्वीः प्रजाः सृजमानाम्" ॥ और दूसरी श्रुति यह है कि "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" ॥ तो प्रथम श्रुतिमे तो मायाका वाचक अजा शब्द है तहा एक वचन है और दूसरी श्रुतिमे मायाभिः यहा बहु वचन है। तो मायाके अंशोकी दृष्टि करके तो बहुवचन है और अंशिरूप जो माया तिसकी दृष्टिमें एक वचन है ये जो माया सो जलकी तरह है तो अंशिरूप जो माया सो तो समुद्रकी तरह है और अंशरूप जो माया सो तरंगोंकी तरहहै और जैसे समुद्र एकहै तैसे तो अंशिरूप माया एक है और जैसे तरङ्ग बहुत है तैसे अंशरूप माया बहुत है उसको ही अविद्या कहे है उस मायामें जो आभास है सो तो ईश्वर है और अविद्यामे आभास जीव है और माया और अविद्या यह अनादि है ईश्वर और जीव आभासरूप है और माया कल्पित है इसमें माया और अविद्या यह स्वतःसिद्धहै इसमें श्रुतिप्रमाणहै कि "जीवेशावाभासेन करोति मायाचाविद्याच स्वमेव भवति" इसका अर्थ यहहै कि जीव और ईश्वर इनको अभास करके करे है और माया और अविद्या आपही होय है तो यह सिद्ध हुवा कि सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म अविद्या करके आवृत है सो अविद्या अनादि है और जीव और ईश्वर अविद्या कल्पित है सो हम तुमको पूछे है कि तुम्हारी श्रुतिमें तो जीव और ईश्वर आभास कहे है तो देखो जिसजगह आभास होता है उस आभासको मिथ्या कहते है क्योंकि जिसजगह सत्य हेतु होता है उस जगह तो सत्य वस्तुहै और जिसजगह असत् हेतु होता है उस जगह असत् वस्तु कहते है तो अब तुमही अपने हृदयमें नेत्रमीचकर विचार करो कि तुम्हारे उस आभासके विलासमे जोकि वेदान्तीयोंके ग्रंथोको देखो तो तुमको आपही इनके जालकी खबर पड जायगी देखो कोई तो जीव ईश्वर इनको आभास मान करके मिथ्या कहे है और कोई २ आभास शब्दका अर्थ प्रतिबिम्ब मानकरके जीव और ईश्वर इनको तो सच्चिदानन्दरूपही कहे है और बिम्बत्व प्रतिबिम्बत्व जो धर्म तिनको कल्पित मान करके मिथ्या कहेहै और कोई ऐसे कहे कि निरवयवका प्रतिबिम्ब होवे नही इसलिये जैसे महाकाशमें गृहाकाश और घटाकाश ये कल्पित है तैसे ईश्वर और जीव यह कल्पित है और कोई यह कहे कि अविद्यासे ब्रह्मही एक जीवहै जैसे कुन्तीका पुत्र करणही, राधेका पुत्र हुवा है औरवो जीव हुवा है जो ब्रह्म उसनेही ईश्वर और जीव यह कल्पित किये है जैसे निद्रामे पुरुष ईश्वरको तथा अनन्त जीवोको कल्पित करे है तो स्वप्नके कल्पित ईश्वर तथा जीव यह जैसे ईश्वराभास और जीव आभास है तैसेही आभास ईश्वर जीवहै अब विचार करके देखो जो ईश्वर और जीव ब्रह्म अर्थात् आत्मासे भिन्न कुछ होते तो यह वेदान्ती आपसमें विवाद नही करते परन्तु ये आपसमे विवाद करके अपने अपने मत सिद्धकिये चाहे इसलिये ऐसा सिद्ध होवे है कि इन्होंनेही अनहुवे जीव और ईश्वरको कल्पित किया है सो इनकी कल्पना करना असिद्ध हुई और हम जाने है कि ऐसेही अज्ञानियोंके वास्ते कठोपनिषदकी यह श्रुतिहै कि "अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वय धीराः पण्डितम्मन्य माना । दन्द्रम्यमाना. परियंति मूढा अन्धेनैव नीय मानायथान्धा" ॥ इसका अर्थ यहहै कि अविद्याके मध्यमें वर्तमान और आपमें हम धीर है हम पण्डित है ऐसे अभिमान करे वे अत्यन्त कुटिल है और अनेक प्रकारकी जो गति तिसको प्राप्त होतेहुए दु मो

करके व्याप्त होते हे जैसे अन्धेके आश्रयसे चले अध. खैर ! अब हम तुमको यहभी कहते हे कि ईश्वर और जीवको आत्मासे भिन्न मानभी लेवो तो भी तुमारे कहनेसेही वो ईश्वर, वा जीव आत्मासे अभिन्नही ठहरता है तुम ऐसा कहते हो कि ईश्वरको मे ब्रह्म हू ये अखण्ड ज्ञान हे और जीवको म ब्रह्म यह ज्ञान है नही और ब्रह्मको नही जानो यह ज्ञानहै इस लिये जीव अविद्या अभिमानी हे तो हम तुमको पूछे है कि तुम जीव समष्टिकोही ईश्वर माना हो वा जीव समष्टि से विलक्षण मानो जो कहो कि जीव समष्टि जो हे सो ईश्वर है तो तुम पूछे है कि जीव समष्टि जो हे सो ईश्वर है तो जीव समष्टिकों सर्वज्ञ मानोगे जो जीव समष्टि सर्वज्ञ मानो तो हम पूछे हे कि यह सर्वज्ञता प्रत्येक जीवकी है वा सर्व जीवोंकी मिली सर्वज्ञताहै जो तुम कहो कि प्रत्येक जीवोंमें तो सर्वज्ञता नही है यह अनुभव सिद्ध है किन्तु जीव समष्टिमे सर्वज्ञता होसके है क्योंकि जसे एक २ शास्त्रके पढेहुये छः पुरुष है तहा प्रत्येक पुरुष षट्शास्त्रज्ञ नही हे तोभी षट्समुदाय जो है सो षट् शास्त्रज्ञ कहावे है तैसेही सर्वज्ञता ईश्वरमेभी है तो हम तुमको पूछे हे कि प्रत्येक जीवोंको तो तुम अल्पज्ञता मानों हो और समुदायमे सर्वज्ञता मानो हो और छः शास्त्रोंका दृष्टान्त देकरके जो सर्वज्ञता सिद्ध करी सो दृष्टान्त विषम है क्योंकि षट्शास्त्रका विषय जुदा है जिसका विषय जुदा है उसकी समुदायकरी एकता होना नही बनसके विचार करके देखो नींबू, आम, नीम, जामुन, अमरूद, अनार इन सबोंके समुदाय मिलकर एक रस होना ऐसेही प्रत्येक जीव अल्पज्ञ अविद्याभिमानीको प्रत्येक जीव माना है कि जिसको ऐसा ज्ञान हे कि मे ब्रह्मको नहीं जानूं हूँ ऐसी समुदायको जो तुम सर्वज्ञ मानों हो तो हम कहे हे कि धन्य है ! अद्वैतवादी वेदान्तियोंकी ऐसी मूर्ख मण्डलीको परमेश्वर मानरक्खा है अजी विचारतो कुछ करो कि एकही मूर्ख अनन्त अनर्थोंका हेतु होय है तो मूर्खमण्डलीरूप ईश्वर कितने अनर्थोंका हेतु होगा ऐसा परमेश्वर माननेका इनको यही है कि इनको आत्मज्ञानका शुद्ध अनुभव न होगा इस जन्ममें ये ऐसेही भटकते रहे तो अब जो कहो कि ईश्वरमें सर्वज्ञता है सो विलक्षण है तो हम कहे हे कि मायाकी वृत्तिरूप कहोगे तो माया जो है सो अविद्या समष्टिरूप माना हो तो अविद्या समष्टिकी वृत्तिरूपही होगीतो ईश्वरकी सर्वज्ञता पूर्वकही सर्वज्ञतासे विलक्षण न हुई किन्तु तद्रूपही हुई जो कहो कि ईश्वरके उपाधि तो माया है सो शुद्ध सत्वप्रधान है और जीवके उपाधि अविद्या है सो मलीनसत्वप्रधान हे मायामे जो आभास सो ईश्वर और अविद्यामें जो अभास सो जीव है तो शुद्धसत्वप्रधान माया ईश्वरकी उपाधि है सो उस उपाधिकी शुद्धतासे ईश्वर सर्वज्ञ है और मलीनसत्वप्रधान अविद्या जीवकी उपाधि हे तो उस उपाधिकी मलीनतासे जीव अल्पज्ञ है तो ईश्वरमें जो सर्वज्ञता है सो शुद्धसत्वप्रधानमाया तिसकी वृत्तिरूप हे इसलिये विलक्षण है और माया और अविद्या इनमे सत्वकी शुद्ध और अशुद्धता इनकरकेही भेदहै और वस्तुगत्या यह दोनों एकही है प्रत्येक अंशकी दृष्टिसे इसको अविद्या माने है और अंश समुदायकी दृष्टिसे माया माने है तो हम कहे है कि तुम इस कथनका विचार तो करो कि जैसे एक नीमका पेड कडवा है तो हजार दो हजार नीम मिलकर उन पेडोंको समुदाय मिलकर वो कडवापन मटकर एक मीठापन होजाय ऐसा कदापि नही होगा तैसेही प्रत्येक अंश मलीन ह तो

उनका समुदाय शुद्ध कैसे होसके इसीलिये सांख्यमतवाले ऐसा कहते है कि " ईश्वरासिद्धे. " यह सांख्य सूत्र है इसका अर्थ यह है कि ईश्वर कोईभी युक्तिसे सिद्ध नहीं होता तो अब हम कहते है कि तुम्हारी माया और अविद्याका करपा हुवा ईश्वर और जीव तो सिद्ध न हुया अब तुम यह औरभी कहो कि अद्वैत क्योंकर सिद्ध करते हो सो कहो जो तुम कहो कि "एकोदेवः" इस श्रुतिको लेकर एक ब्रह्मको सिद्ध करा हो तो हम तुमको पूछे है कि ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ पदार्थ हैही नहीं ऐसा तुम्हारा सिद्धान्त है तो माया और अविद्या कहांसे उत्पन्न हुई ? जो कहो कि ब्रह्मने उत्पन्न करी तो ब्रह्मको तो तुम निर्गुण मानते हो तो निर्गुणमें उत्पन्न करनेका गुण क्योंकर संभव हो सकता है जो तुम कहो अज्ञान अविद्या माया उत्पन्न कीहुई नहीं है तो तुमने अपने हाथसेही अपने अद्वैत मतकी जडको उखाडके फेंक दिया दूसरा भी विचार करो कि अद्वैतकोभी सिद्ध करना और षडवस्तुको अनादि मानना अनादि शब्दका अर्थ तो तुम यही करोगे कि जिसके उत्पन्न होनेकी कोई आदि नहीं अर्थात् उत्पन्न हुवाही नहीं सनातन है तो जब तुम्हारे ब्रह्म ईश्वर जीव और अविद्या अर्थात् अज्ञान और चेतनका आपसमें संबंध और इन पांचोका परस्पर भेद इसको अनादि मानते हो तो अब तुमही विचारको कि एक ब्रह्मके अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीहै और अपनही सिद्धान्तमें छः वस्तु अनादि मानना यह वचन तुम्हारा कहना कैसाहुवा कि जैसे कोई निर्विवेकी पुरुष कहने लगा कि मेरी माता बांझ थी एप्राहुवा अब देखो हम तुमसे जगत्के मध्य पूछते है कि जगत् क्या चीज है और जगत् कैसे हुवा ? जो तुम कहो कि अज्ञानसे कल्पित है तो हम पूछे है कि जगत् अज्ञानसे कल्पित है ऐसा कैसे माना जाय देखो इससमयके कैसे २ विचित्र पदार्थोंकी रचनाकाहै तो यह रचना ज्ञानसे हुई है अथवा अज्ञानसे हुई है तो ऐसा कोईभी विवेकी पुरुष नहीं होगा सो अज्ञानसे कहेगा किन्तु ज्ञानसेही कहेगा तो हम वेदान्ती लोगोंकी बुद्धिको धन्यवाद देते है कि देखो यह लोग कैसे बुद्धिके तीक्ष्णहै कि जगत्को अज्ञानसे कल्पित माने है तो अब हम तुम्हारेको यहबात और पूछे है कि जगत् अज्ञानसे कल्पित है तो किसके अज्ञानसे कल्पित है जीवके अज्ञानसे कल्पित है वा ईश्वरके अज्ञानसे वा ब्रह्मके अज्ञानसे कल्पित है जो कहो कि जीवके अज्ञानसे कल्पित है तो हम कहे है कि अनन्त जीवोंके कल्पित अनन्त जगत् मानोंगे तो यह जगत् जो तुमको और हमको दीखे है सो किसजीवका कल्पित जगत् है यह कहो तो विनगमना नहीं होनेसे किसीभी एक जीवके अज्ञानसे कल्पित नही मान सकोगे और जो ऐसे कहो कि ईश्वरके अज्ञानसे कल्पित है तो हम कहे है कि ईश्वरको तो तुमभी अज्ञानी नहीं मानोहो इसलिये ईश्वरके अज्ञानसे जगत् कल्पित है ऐसे माननो असङ्गत है और जो यह कहो कि ब्रह्मके अज्ञानसे कल्पित है क्योंकि जीव और ईश्वर यह तो जगत्के अन्तर्गत है इसलिये ये तो आपही अज्ञान कल्पित है तो हम पूछे है कि ब्रह्ममे अविद्या जो है सो कल्पित अथवा स्वभावसिद्ध है जो कहो कि स्वभावसिद्ध है तो हम कहे है कि स्वभावसिद्धिकी निवृत्ति होवे नहीं इसलिये इनके माने ज्ञानके साधन सर्व व्यर्थ होंगे क्योंकि ज्ञान साधनोंसे ज्ञान पैदा करनेका प्रयोजन इनके येही है कि अविद्या निवृत्ति होय सो अविद्या स्वभाव सिद्धि मानों तो स्वभाव सिद्धकी निवृत्ति होवे नही जो स्वभाव सिद्धकीभी निवृत्ति होय तो ब्रह्मके

सच्चिदानन्द स्वभावकी निवृत्तिभी होनीही चाहिये इस लिये ब्रह्ममें अविद्याको स्वतःसिद्ध माननी असंगतही है जो कहो कि कल्पित है तो हम पूछे है कि ब्रह्ममें अविद्या जो है सो अज्ञानसे कल्पित है वा ज्ञानसे? जो कहो कि अज्ञानसे कल्पित है तो हम पूछे है कि ब्रह्ममें अविद्या जीवाज्ञान कल्पित है अथवा ईश्वराज्ञान कल्पित है अथवा ब्रह्माज्ञान कल्पित है जो कहो कि जीव अज्ञान कल्पित है तो हम पूछे है कि जीव और ईश्वर यह अविद्या कल्पित है यह तुम्हारा मत है तो यह कहो कि जीवकी कल्पिक जो अविद्या तिस ब्रह्ममें अविद्या जो है सो कल्पित है वा जीवकी कल्पिक जो अविद्या तिससे भिन्न जीवमें ब्रह्म वृत्ति जो अविद्या तिसकी कल्पिक अविद्या मानोहो जो कहो कि ब्रह्ममें जो अविद्या है सो जीवकी कल्पिक अविद्यासे कल्पित है तो हम पूछे है कि ब्रह्माश्रित अविद्या और जीवकी कल्पिक अविद्या ये भिन्न है वा एकही है? तो तुम यहही कहोगे कि एकही है क्योंकि वेदान्त वादी जीवको ब्रह्माश्रित जो अविद्या तिससेही कल्पित माने है तो हम कहे है कि ब्रह्माश्रित जो अविद्या सो जीवकी कल्पिक अविद्यासे कल्पित है यह कथन असंगत हुवा क्योंकि ब्रह्माश्रित अविद्या और जीवकी कल्पिक अविद्या तो एकही हुई इसलिये आपसेही आप कल्पित है ये अर्थ सिद्ध हुवा तो ऐसे मानना अनुभव विरुद्ध है आपसे आप कल्पित होय तो जगत् का कल्पिक ईश्वर तुम मानो हो सो बन सके नही और जो यह कहो कि जीवमें ब्रह्मवृत्ति जो अविद्या ताकी कल्पिक अविद्या जीवकी कल्पिक अविद्यासे भिन्न माने है तो हम कहे है कि रज्जु का जो अज्ञान तिसकरके कल्पित जो सर्प उस सर्पमें जो अज्ञान उस अज्ञान करके रज्जुमें अज्ञान कल्पित है ऐसा अर्थ सिद्ध हुवा तो तुम ही विचार दृष्टिसे देखो इस कल्पनासे अविद्या ब्रह्ममें सिद्ध होय है वा असिद्ध होय है और जो ये कहो कि ईश्वरके अज्ञान से कल्पित है तो हम कहे है कि ये कथन तो सर्वथा असंगत है, क्योंकि देखो! निश्चल दासजीने "विचारसागर"की चतुर्थ तरङ्गमें लिखा है कि जैसे जीवन्मुक्त विद्वान को आत्म को विषय करनेवाली अन्तःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" एसी वृत्ति होय है तैसे ईश्वर को भी माया की वृत्ति रूप "अहंब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान होय है और यह कही है कि आवरण भङ्ग इस का प्रयोजन नही है तो यह सिद्ध होय है कि ईश्वरको अज्ञानका आवरण नहीहै अब जो ईश्वर में अज्ञान है ही नही तो ब्रह्ममें अविद्या ईश्वर के अज्ञान से कल्पित है ये कैसे होसके परन्तु हम यहा यह और पूछे है कि विद्वान् की जो "अहं ब्रह्मास्मि" ये वृत्ति होयहै तो या वृत्ति अन्तःकरणकी परिणामरूप होगी तो अन्तःकरण जो है सो सावयव है तो ये वृत्ति भी सावयवही होगी जो वृत्ति सावयव भई तो अवयवीरूप वृत्तिमें आवरण भङ्ग करता है ऐसे वृत्तिके अवयवभी आवरण भङ्ग मानणेही पडेंगे जैसे सूर्यमें तमोनाशकता होनेसे तेजःपिंडरूप जो सूर्य्य तिस अवयवो को आवरण भङ्गकता सिद्ध होगई तो ऐसे ही मायाकी वृत्तिके अवयवरूप होंगे वे जिन को तुम व्यष्टि अज्ञान मानों हो उनको आवरण भङ्गकता होगी तो ब्रह्म में आवरण कैसे सिद्ध होगा इसका समाधान क्या है सो कहो? क्योंकि इस प्रश्नका तात्पर्य ये है कि ईश्वर में तो तुम अविद्या मानोही नही क्योंकि ईश्वर को तुम सर्वज्ञ मानो हो और उसमें अविद्याका आवरण मानो नही तो उसमें जो सर्वज्ञता सो मायाकी वृत्तिरूप मानोहो सो उस मायाको शुद्धसत्त्वप्रधान मानोहो और उस

मायाको व्यष्टि अज्ञानकी समष्टिरूप मानो हो तो वह माया उपाधि जिसमें रहेगी उसमें स्वभाव सिद्ध आवरणका अभाव रहेगा जो माया में स्वभाव सिद्ध आवरणका अभाव रहा तो उसमायाकी अंशरूप है जीवोंकी उपाधि तो उसमे भी स्वभावसिद्ध आवरणका अभाव मानणा पडेगा तो हम कहेहे कि ब्रह्म मे जीव या ईश्वरसे कल्पित अविद्या मानणी बनसके नही जो कहो कि ब्रह्ममें अविद्या ब्रह्मके अज्ञानसे कल्पित है तो हम पूछे है कि उस अविद्याका कल्पिक अज्ञान उस अविद्यासे भिन्न है वा उस अविद्या रूप है जो कहो कि उस अविद्यासे भिन्न है तो हम कहेहे कि उस अविद्याके कल्पिक अज्ञानकोभी कल्पित ही मानोगे तो अनवस्था होगी जो कहो कि वो अज्ञान है सो कल्पित अविद्या रूपही है तो हम कहे है कि इससे तो ऐसा सिद्ध होय है कि अविद्या स्वतः सिद्ध होगई स्वत शब्दका अर्थ स्वाभाविक है य अपना जो भाव तो इसका अर्थ निपकृष्ट अर्थ होगया कि स्व सत्तासे जन्य होय सो स्वाभाविक तो स्व सत्ता शब्द करके अविद्या वाली हुई तो हम पूछे हैं कि अविद्याके ब्रह्मका सत्ता करके सत्तावाली मानो हो या इसमें जो सत्ता है सो ब्रह्म सत्तासे भिन्न है जो कहो कि अविद्या जो है सो ब्रह्मसत्तासे सत्तावाली है तो हम कहे है कि य तुम्हारी मानी अविद्या ब्रह्मरूपही भई ब्रह्मसे विलक्षण नही हुई जैसे घट जो है सो पृथ्वी की सत्ता से सत्तावाला है तो घट पृथ्वी है जो कहो कि घट जो है सो पृथ्वी है तोभी पृथ्वीसे जलानयनादिक कार्य होवे नही और घटसे जलानयनादिक कार्य होवे है तैसे ही अविद्या जो है सो ब्रह्म ही है तो भी ब्रह्म से जगत् होवे नही और अविद्या से जगत् होय है ऐसे मानोगे तो हम कहे हे कि इतना और मानो कि जैसे घट जो है तो कुम्हारके ज्ञानसे मट्टीके घटकी उत्पत्ति होती है रज्जु सर्पकी तरह भ्रम ज्ञान जैसे नही है तैसे ही अविद्या जो अज्ञान है सो भी परमात्मा जो सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मके अलौकिक ज्ञानसे जो अनादि उसी रीतिसे मानो तो सारे विवाद मिटजाय क्योंकि छः वस्तु तुम भी अनादि मानते हो जो तुम कहो कि हमारे तो अद्वैत ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ पदार्थही नही है तो हम तुमको कहे है कि तुम ब्रह्मके स्वरूपभूत अलौकिक ज्ञानसे रचित मानलो तो तुमको कहना ही पडेगा कि अविद्याको ब्रह्मरचित मानो तो कार्यकी उत्पत्ति उपादान कारण बिनाही मानणी पडेगी सो बनसके नही क्योंकि घट आदिक कार्य जो है सो मट्टीरूप उपादान कारण विना और निमित्तकारणविना घट उत्पत्ति होय नही इसलिये निमित्तभी कार्य होवे नहीं अब जो अविद्याको ब्रह्म रचित मानो तो ये ब्रह्म अविद्याका उपादान कारण मानो तब तो निमित्त कारणके विना निरनिमित्त उत्पत्ति माननी पडेगी और जो ब्रह्म अविद्याका निमित्त कारण मानो तो निर उपादान कार्यकी उत्पत्ति मानणी पडेगी और उपादान कारण और निमित्त कारण इन दोनों कारणोंके विना कार्य होवे नही य अनुभव सिद्ध है इसलिये ब्रह्मसे अविद्याकी उत्पत्ति मानणा असङ्गत है तो हम तुमको पूछे हे कि अहो अद्वैतवादियो! जगत्को ईश्वर करके रचित मानो हो तहा दोय कारण कैसे बने है सो कहो जो कहो कि हम माया विशिष्ट चेतनको ईश्वर माने हे और ईश्वरसे जगत्रूप कार्यकी उत्पत्ति माने है तहा ऐसे कहे हे कि ईश्वर जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वरको जगत्का कारण माने तहा जैसे घटादिक कार्यके कारण कु-

लाल और मृत्तिका ये भिन्न निमित्त उपादान कारण बने हैं तैसे तो बन सके नहीं किन्तु उपाधि प्रधानता करके तो उसही ईश्वरको जगत्का उपादान कारण मानें हैं और उसही ईश्वरको चेतनप्रधानता करके निमित्तकारण मानें हैं और हम यह दृष्टान्त देते हैं कि मकड़ी अपने रचित तन्तुकी कारण होय है तो शरीररूप उपाधिकी प्रधानता करके तो स्वतः तन्तुकी उपादान कारण होय है और चेतनप्रधानता करके वही मकड़ी स्वतन्तुकी निमित्त कारण होय है तो ये मकड़ी रचित तन्तुकी अभिन्न निमित्त उपादान कारण सिद्ध हुई है तैसे ही ईश्वर जो है सो जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है तो हम तुमसे इतना और पूछे हैं कि जीव और ईश्वर इनको अविद्याके कार्य माना हो तहां निमित्त कारण और उपादान कारण किसको मानो हो तो तुम यह श्रुति प्रमाण देते हो कि "जीवेश रावाभासेन करोति" इसका अर्थ यह है कि जीव और ईश्वर इनको आभास करके अविद्या करै है जीव और ईश्वर ये अविद्या रचित हैं यह अर्थ श्रुति सिद्ध हो गया तो हम इसके कारणोंका विचार करते हैं तो जीव और ईश्वर इनके कारण होय होंगे १ तो ब्रह्म अविद्या तो इनको तुम उपादान कारण ही माना हो तहां ब्रह्मको तो विवर्त उपादान मानो हो और अविद्याको परिणामी उपादान मानों हो और निमित्त कारण यहां कोई बनतह नहीं इसलिये यहां निर्निमित्तही जीव ईश्वरकी उत्पत्ति माननी पड़ेगी तो हम कहै हैं कि यह नियम तो रहा नहीं कि निरनिमित्त कार्य होवे नहीं इसलिये अविद्याकी उत्पत्ति भी निर्निमित्त ही मानो,अब देखो जो तुम ब्रह्म अविद्यासे सबकी उत्पत्ति मानकर जो अद्वैतको सिद्ध करो हो तो तुम्हारा षट्वस्तु अनादि मानना ये वचन अन्यथा होगा और जो षट्वस्तु अनादि मानोगे तो अद्वैत सिद्ध कदापि नहीं होगा अब इन दोनो वचनोंका परस्पर विरोध होनेसे एकवचनकी भी प्रतीति विवेकी पुरुष न करेंगे और भी देखो कि ब्रह्मके अतिरिक्त जगत् आदिक कुछ भी पदार्थ नहीं जगत् आदिक सब आत्मासे उत्पन्न हुआ, तो हम पूछे हैं कि इसमें प्रमाण क्या है तो तुम इस श्रुतिको कहो हो कि " आत्मन आकाश सभूत आकाशाद्वायु " इत्यादि श्रुतिको प्रमाण देवो हो तो इस श्रुतिका अर्थ यह है कि आत्मासे आकाश पैदा हुवा और आकाशसे वायु पैदा हुई जो ऐसा अर्थ है तो हम तुम्हारेको पूछे हैं कि आकाश तुम किसको कहो हो तुमको कहनाही पड़ेगा कि आकाश नाम अवकाश अर्थात् जगह देनेका है तो अब तुमही नेत्र मीचकर हृदयमें विचार करो कि आकाश तो पीछे उत्पन्न हुवा तो आत्माबिना अवकाशके किस जगह ठहरी बिना आकाशके आत्माका ठहरना ऐसा हुवा कि जैसे कोई विचार शून्य पुरुष कहने लगा कि मेरे मुखमें जीभ नहीं है अब न तो तुम्हारा अद्वैत सिद्ध हुवा न तुम्हारा अविद्या कल्पित जगत् सिद्ध हुवा किन्तु ये जगत् अनादि स्वतःसिद्ध हो गया अब देखो जो तुम जगतको रज्जु सर्पका दृष्टान्त देकर मिथ्या कहते हो सो जगत् मिथ्या नहीं ठहरता है जो तुम कहा कि जगत् सत् असत्से विलक्षण है इसलिये मिथ्या है जैसे सत असतसे विलक्षण रस्सीसे सर्प पैदा होता है जो तुम ऐसा कहो हो तो हम तुमसे पूछे हैं कि तुम्हारी अनिर्वचनीय ख्यातिकी व्यवस्था क्या है ? सो कहो तो तुम अपनी ख्यातिकी व्यवस्था इसरीतिसे कहोगे कि अन्तःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकलके विषयाकार होय है तिससे आवरण भंग होकर विषयका प्रत्यक्ष ज्ञान होय है और जहां सर्प भ्रम होय

है तहां अन्त:करणकी वृत्ति निकलके विषय सम्भव होय है परन्तु तिमिरादि दोष प्रतिबन्धकहै इसलिये वृत्ति जो है सो रज्जुसमानाकार होवे नही इसलिये रज्जु चेतनात अविद्यामे क्षोभ होय करके वो अविद्याही सर्पाकार होजाय है वो सर्प सत् होय तो रज्जुके ज्ञानकी निवृत्ति होवे नही और जो वो सर्प असत् होय तो वन्ध्या पुत्रकी तरह प्रतीति होवे नही इसलिये वो सर्प सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय है उसकी जो ख्याति कहिये प्रतीति अथवा कथन सो अनिर्वचनीय ख्याति कहिये है और जैसे सर्प अविद्याका परिणामहै तैसे उसका ज्ञानभी अविद्याहीका परिणाम है अन्त:करणका परिणाम नही क्योंकि जैसे रज्जुज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति होय है तैसे उसके ज्ञानकी भी निवृत्ति होय है वो ज्ञान अन्त:करणका परिणाम होय तो उसका बाध होवे नही इसलिये वो ज्ञानभी अनिर्वचनीय है परन्तु रज्जूपहित चेतनाश्रित अविद्याका जो तमोंश उसका परिणाम सर्प है और साक्षी चेतनाश्रित जो अविद्या उसके सत्वांशका परिणाम उस सर्पका ज्ञानहै और अविद्यामें जो क्षोभ सो उस सर्पका और उसके ज्ञानका एकही निमित्त है इसलिये भ्रमस्थलमें सर्पादि विषय और उनका ज्ञान एकही समयमे उत्पन्न होय है और रज्जुके ज्ञानसे एकही समयमें दोनों निवृत्ति होय है ये तो बाह्य भ्रमस्थलका प्रकार है और स्वप्नमे तो साक्षी आश्रित अविद्याकाही तमोंश विषयाकार होय है और उसकाही सत्वांश ज्ञानाकार होय है इतना भेद है भ्रमस्थलमें सारे विषय साक्षी भास्य है और रज्जु आदिकमें सर्पादिक और उनका ज्ञानभ्रम कहिये है सो भ्रम अविद्याका परिणाम है और चेतनका विवर्त है उपादानके समान स्वभाववाला अन्यथा स्वरूप परिणाम कहिये है और अधिष्ठानसे विपरीत स्वभाववाला अन्यथास्वरूप विवर्त्त कहिये है और मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जूपहित चेतनहै रज्जु नही क्योंकि रज्जु तो आपही कल्पितहै कल्पित जो है सो कल्पितका अधिष्ठान बने नहीं और रज्जु विशिष्ट चेतनके सर्पका अधिष्ठान मानेतो भी चेतनही अधिष्ठान है क्योंकि रज्जु आपही कल्पितहै इसलिये रज्जुमे सर्पाधिष्ठानता बाधितहै और तैसेही सर्पज्ञानका *अधिष्ठान ज्ञानभीहै ऐसे भ्रमस्थलमे विषयका और उसके ज्ञानका अधिष्ठान* उपाधि भेदसे भिन्नहै और विशेष रूप करिके रज्जुकी अप्रतीति अविद्यामे क्षोभद्वारा दोनोंकी उत्पत्तिमे कारण है और रज्जुका विशेष रूप करिके ज्ञान दोनोंकी निवृत्तिमे कारण है जो कहो कि अधिष्ठानके ज्ञान विना मिथ्या पदार्थकी निवृत्ति होवे नही ये तुम्हारा सिद्धान्त है तो सर्पका अधिष्ठान रज्जूपहितचेतन है रज्जु नही इस लिये रज्जु ज्ञानमे सर्पकी निवृत्ति सम्भवे नही तो इसका समाधान ये है कि रज्जु तो इनके मतमे अज्ञानका कार्य है इस लिये रज्जुमें तो आवरण रहे नही क्योंकि आवरण जो है सो अज्ञानकी शक्ति है और अज्ञान जडाश्रित रहैनही ये तुम्हारा मत है किन्तु जब साभास अन्त:करणकी वृत्ति विषयाकार होय है तब वृत्तिसे रज्जूपहित चेतनाश्रित जो आवरण सो नष्ट होय करके अधिष्ठान चेतन तो स्वप्रकाशता करके प्रकाशै है और आभास करके विषयका प्रकाश होय है तो रज्जूपहित चेतन ही सर्पका अधिष्ठान है उसका ज्ञान हुवा ऐसे मानो इसलिये रज्जुके ज्ञानसे सर्प निवृत्ति सम्भवे है जो कहो कि सर्प ज्ञानका अधिष्ठान तो साक्षी चेतन है उसका ज्ञान हुवा नही इसलिये सर्प ज्ञानकी निवृत्ति कैसे होगी ? तो हम कहे है कि चेतन

में स्वरूपसे तो भेद नहीं किन्तु उपाधिके भेदसे भेद है सोभी उपाधि भिन्न देशमें स्थित होय तब तो उपहितमें भेद होय है और उपाधि एक देशमें स्थित होय तब उपहितमें भेद होवे नहीं इसलिये वृत्ति जब विषयाकार भई तब विषय और वृत्ति एक देशस्थित होणेसे विषयोपहित चेतन और वृत्युपहित चेतनका भेद नहीं इस कारणसे विषयाधिष्ठान चेतनका ज्ञानही वृत्युपहित चेतनका ज्ञान है ऐसे सर्प ज्ञानाधिष्ठानका ज्ञान होणेसे सर्प ज्ञानकी निवृत्ति सम्भव है अथवा जब अन्त करणकी वृत्ति मन्दान्धकारावृत रज्जुसे सम्बन्ध हो करके रज्जुके विषय आकारको प्राप्त होवे नहीं तब इदमाकार वृत्तिमें स्थित जो अविद्या सोही सर्पाकार और ज्ञानाकार होय है उस अविद्याका तमोंश सर्पाकार होय है और उसका सत्वांश ज्ञानाकार होय है और वृत्युपहित चेतन होनेका अधिष्ठान है और वृत्ति विषय देशमें गई इसलिये विषयोपहित चेतन और वृत्युपहित चेतन ये दोनों उपाधि द्वय एक देश स्थित होनेसे एक है तो वृत्ति जब विषयके विशेषाकारको प्राप्त हुई और उससे विषयके अधिष्ठान चेतनका आवरण हुवा और विषयका विशेष रूप करके ज्ञान हुवा तो साक्षी चेतनका ही आवरण दूर हुवा इस लिये सर्प और उस ज्ञानकी निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञानसे सम्भवे है जो कहो कि प्रथम पक्षका त्याग करके ये द्वितीय पक्ष कहनेमें तुम्हारा तात्पर्य क्या है? तो हम कहे है कि प्रथम पक्षमें विषयोपहित चेतनाश्रित अज्ञानका परिणाम सर्प है ऐसे माननेमें ये दोष है कि जहा बहुत पुरुषोंको सर्प भ्रम होय तहा एक पुरुषको रज्जुके यथार्थ ज्ञान भये सर्वपुरुषोंका भ्रम निवृत्त होना चाहिये क्यों कि विषयाधिष्ठान चेतनाश्रित अविद्याका परिणाम जो सर्प उसकी निवृत्ति एक पुरुषको रज्जुका यथार्थ ज्ञान हुवा तिससे ही होगी और द्वितीय पक्षमें ये दोष नहीं है क्यों कि जिसकी वृत्तिमें स्थित अविद्याका परिणाम सर्प और ज्ञान निवृत्ति हुवा उसका भ्रम निवृत्ति हुवा और जिसकी [illegible] स्थित अविद्याका परिणाम सर्प और ज्ञाननिवृत्ति होवे नहीं उसका भ्रम निवृ[illegible] भ्रमस्थलमें विषय और ज्ञान ताका अधिष्ठान वृत्युप[illegible] है और

मिथ्या वेदमिथ्या भय दुःखकूं निवृत्ति करेहैऐसा विचारसागरके पञ्चम तरङ्ग मे लिखा है तौ अब तुम ही विचार करो कि जो तुमने रज्जु सर्पकी प्रतिभासकी सत्ता मानींहैं तो रज्जु प्रातिभासिक हुवा और उसका साधक रज्जुका विशेषरूप करके जो अज्ञान ताकू मान्याहै तो इस अज्ञानके व्यवहार की सत्ता है इसलिये ये अज्ञान व्यवहारिकहै और रज्जु के ज्ञान से प्रातिभासिक सर्प की निवृत्ति मानी है तो ये रज्जुका ज्ञानभी व्यवहारिक है तो सर्प प्रातिभासिक कैसे हो सके? जो सर्प प्रातिभासिक होय तो व्यवहारिक रज्जु का अज्ञान इस सर्प का साधक हो सके नहीं और रज्जुका व्यावहारिक ज्ञान सर्पका बाधक होसके नही एसे ही स्वप्नमें समुझो कि व्यावहारिक जो निद्रा सो तो स्वप्न की साधकहै और व्यावहारिक जो जाग्रत् वा सुषुप्ति ये स्वप्न के बाधक है तो स्वप्न प्रातिभासिक कैसे होसके? और देखो कि ब्रह्म को तुम सर्वका साधक मानो हो तो ब्रह्मकी परमार्थ सत्ता है और सर्व जगत् की व्यवहार सत्ता है अब जो समानसत्ताकाही साधक होय तो ब्रह्म किसी का भी साधक नहीं होना चाहिये इस लिये सर्व की साधकता बाधकता को निर्वाह के अर्थ सर्व का एक ही सत्ता मानो अब जो सर्व को प्रातिभासिक सत्ता मानोगे तब तो ब्रह्मको भी मिथ्या मानना पडेगा सो तो तुमको भी अङ्गीकार नहीं है और जो सर्वकी व्यवहार सत्ता मानो हो ब्रह्म व्यवहारिक पदार्थ सिद्ध होगा तो तुम व्यवहारिक पदार्थ को जन्य मानो हो तो ब्रह्म को भी जन्य मानणा पडेगा तो ये भी तुमको अङ्गीकार नहीं है इसलिये सर्वकी शास्वती सत्ता मानो इस सत्ता के मानणेमें ब्रह्ममें मिथ्यात्वकीभी आपत्ति नहीं है और तैसेही ब्रह्ममें जन्यता की भी आपत्ति नहीं है जोतुम कहो कि ऐसे माननेंमें जगत् की नित्यताकी आपत्ति होगी क्योंकि शास्वति सत्ता माने तो जगत् भी नित्य होगा सो अनुभव विरुद्ध है क्योंकि जगत् की उत्पत्ति नाश प्रत्यक्ष सिद्ध है तो हमतुमको कहे है कि उत्पत्ति और नाश मानणा असङ्गतहै क्यों कि हम पहले तुम को घट वस्तु अनादि तुम्हारेही सिद्धान्तमे मानी हुईका दृष्टान्त देकर खण्डनकर आये है उसको स्मरण करके सतोष करो जो कहो कि जगत् की नित्यता मे हमारे अचार्यो की सम्मति नहीं है तो हम कहे है कि श्रीकृष्णजी महाराजने गीताके पञ्चदश अध्याय मे अर्थात् १५ (पद्रहवें) अध्यायमें ऐसा कहा है कि "ऊर्द्धं मूलमधःशाखमश्वत्थ प्राहुरव्ययम्" तो यहा जगत् को अव्यय कहाहै अव्यय नाम नित्यकाहै और "ऊर्द्धमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थस्सनातन" यह कठोपनिषद् की श्रुति है इसमें ससार वृक्षका सनातन कहा है तो सनातन शब्दका अर्थये है कि सदा रहता ससार नित्य सिद्ध हो गया जो कहो कि ससार जो है सो भावरूप करके नित्य है इस लिये इसको अव्यय और सनातन कहा है तो हम पूछे है कि भावरूप करकेनित्य उसका अर्थ ये है कि बीज अकुरा न्यायसे नित्य अथवा कोई इससे भिन्नभीप्रकार कहो तो तुम येही कहोगे कि बीज अकुरान्यायसे नित्य है यही भावरूप करके नित्य इस वाक्यका अर्थ है तो हम कहे है कि इसका बीज जीव आत्मा है तो परमात्मारूप बीजसे तो ससाररूप वृक्षका उत्पन्न मानोहो परन्तु ससाररूप वृक्षसे परमात्मारूप बीजकी उत्पत्ति तुम मानो नहीं सोभी मानणी चाहिये क्योंकि येभी तुम अपने अनुभवसे समझो कि बीज और वृक्ष दोनोंकी समानसत्ता होय है इसलिये परमार्थसेही जगत् शास्वतरूप सिद्ध होगा जो जगत् शास्वतरूप सिद्ध हुवा

तो ये रज्जु सर्पके दृष्टान्तसे मिथ्या कैसे होगा जैसे जगत् परमार्थसे सत्य है तैसेही रज्जु सर्प और स्वप्न पदार्थभी परमार्थ सत्य है जो कहो कि परमार्थ सत्य है तो इनकी निवृत्ति कैसे हो जाय है तो हम कहे है कि तुम सारे जगत्की अज्ञान कल्पित मानो हो तो आकाश आदिक निरवयव और अविनाशी कैसे प्रतीत होय है और घटादि पदार्थ चिरस्थायी कैसे प्रतीत होय है और चातुर्मास (वर्षा ऋतु) में अनन्त जीव गिंगे विणठी कैसे प्रतीति होय है जो कहो कि ये अविद्या मायाकी महिमा है तो हम कहे है कि यह परमात्मा सर्वज्ञ अलौकिक केवल ज्ञानकी महिमा है कि जिनने अपने ज्ञानसे जैसी रचना देखी वैसीही रचना भव्य जीवोंके लिये वर्णनकी है जिनको तुम रज्जु सर्पादिक कहो हो और प्रति भासित मानोही व शीघ्रही निवृत्त हो जाय है और तुम्हारे मान व्यावहारिक सर्पका जैसे मरनेके पश्चात् शरीर प्रतीति होय है तैसे रज्जु सर्पका शरीर प्रतीत होय नहीं और स्वप्न पदार्थकोभी तुम प्रतिभास मानोहो और स्वप्नके पुरुषका शरीर मरनेके अनन्तर प्रतीति होय नहीं और मरु भूमि अर्थात् मारवाड़के जलको तुम प्रातिभासक मानोहो और भ्रम निवृत्तिभी हो जाय है तो भी तुमको उसकी प्रतीति होती रहे और इसी विचित्रताको तुम्हारे बाह्य नेत्र मूदकर ज्ञानरूपी चक्षुसे विचार करके देखो और सर्वज्ञके कहेहुये वचनके ऊपर प्रतीति करो तो तुम्हारा उसी समय अज्ञान दूर होकर तुम सच्चिदानन्दरूप सादि अनन्त सुखको प्राप्त हो जावो जो तुम ऐसा कहो कि सर्व ये मिथ्या है ऐसी दृष्टिसे मुक्ति प्राप्त होय है इस कारणसे जगत्को मिथ्या कहे हैं तो हम तुमको पूछे हैं कि तुम्हारा जगत्का मिथ्या कहनेमें अभिप्राय क्या है ? तो तुमयही कहोगे कि ज्ञानके साधनोंमें वैराग्यभी बताया है तो वैराग्यकी कारणता है और दोष दृष्टि सो जगत्में मिथ्यात्व कहनेके विना बनसक नहीं इस लिये शिष्यके ऊपर अनुग्रह करनेके अर्थ दयालु जो आचार्य तिन्होंने जगद् जो शास्त्ररूप है तो भी अविद्याकी कल्पना करके उसको कल्पित रचित बताया है क्योंकि पुरुष जिसको मिथ्या कल्पित मान लेवे है उसकी इच्छा करे नहीं जैसे मरुस्थलके जलको मिथ्या जाननेवाला पुरुष जलकी इच्छा करे नहीं इसलिये शिष्यकोभी ये लाभ होय है कि वैराग्यके बलसे भोग दृष्टि निवृत्त होकरके शिष्यकी बुद्धि अन्तरमुख होजायहै उस अंतर मुखहोजानेसे शुद्ध चिद्रूप आत्माका उसको साक्षात्कार जीवन मुक्तिका आनन्द प्राप्त होय है आचार्योंका ये अभिप्राय है, जो तुमने ऐसा निर्णय किया है तो हम कहे है कि आचार्योंने ऐसा लिखा है कि अधिष्ठानके ज्ञानसे कल्पित पदार्थका त्रैकालिक अभाव होय है तो आचार्योंको सर्व अधिष्ठान सच्चिदानन्द परमात्माका साक्षात्कार रहा है य ता तुम्हारे भी अभिमत है क्योंकि आपही उनके वचनोंको प्रमाण मानोहो अब आपही विचार करो जिन पुरुषोंको जिस वस्तुका त्रैकालिक अभाव न होवे वे पुरुष उस वस्तुका कैसे मानसके इसलिये शिष्योंके अनुग्रहके अर्थही अलीक अविद्याको कल्पित करके उस करके कल्पित जगत का बताय करके मिथ्या कहकरके शिष्योंको वैराग्य करावे है जो कहो कि जिस समय में उन अचार्यों को अज्ञान रहा उस समय में वो अज्ञान अलीक कैसे होगा तो हम कहे है कि उनके गुरुने अलीक अज्ञान कल्पित किया है ऐसा मानों ऐसे परम्परा गुरु जो है तिन में मूल गुरु परमात्मा है और वेद उसका उपदेशहै तो वेदमें अविद्या वर्णन की है

अत्र अविद्या को अलीक नहीं मानो तो वेद अज्ञानीका किया हुवा उपदेश सिद्ध होगा जो ये उपदेश अज्ञानी का किया सिद्ध हुवा तो प्रलाप वाक्य होगा जो प्रलाप वाक्य होगा तो इस मे आत्मविद्या के लाभका असम्भव होने से ब्रह्मविद्या की सम्प्रदायका उच्छेद होगा इसलिये अविद्या अलीक ही कल्पित है जो कहो कि अलीक अविद्या प्रथम तो कल्पित करणी और पीछे इसको निवृत्ति करणे मे आचार्योंका अभिप्राय कहा है देखो ये शिष्टपुरुषो का वाक्य है कि "प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूराद्‌स्पर्शनं वरम्" इसका अर्थ यह है कि कर्दम को स्पर्श करके प्रक्षालन करे इसकी अपेक्षा कर्दमका स्पर्शही नही करे ये उत्तम है तो हम कहे है कि जैसे भार धारण करके निवृत्त करणे से पुरुष के अपना आनन्द अभि॰व्यक्त होय है तैसे सदा भाररहित पुरुष के आनन्द अभिव्यक्त होवे नही यह सबके अनुभव सिद्ध है इसलिये दयालु आचार्यों ने जगत् को अज्ञानकल्पित बताय करके मिथ्या कहा है और उनकी दृष्टि तो ब्रह्ममे ही है देखो आप उनका ये वाक्य है कि "देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनीतियत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः" इसका अर्थ येहै कि देहाभिमान निवृत्त होकर जब परमात्म ज्ञान हो जावे तब जहा जहा मन जावे है तहा तहां समाधि होय है अर्थात् परमात्मा भिन्न दृष्टि उनकी नही होयहै तो हम कहे है कि जगत् मे मिथ्यात्व की भावना करानेसे जैसे वैराग्य होय है तैसे परमात्म दृष्टि करानेसे भी वैराग्य होय है इसलिये जिस उपासकों की सर्वमे परमात्म दृष्टि है वो अत्यन्त विरक्त होय है क्योंकि विरक्तमे भोग्याभाव बुद्धिकारण है सो जैसे मिथ्यात्व बुद्धिसे होयहै तैसे सर्व आत्मा भावसे भी होय है देखो ऐसे उपासकोके अर्थ श्रीकृष्णजीने नवम अध्यायमे प्रतिज्ञा कीहै कि "अनन्याश्चिन्तयतो मां ये जनाः पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यम्" इसका भावार्थ ये है कि सबमे भाव मेरा करके उपासन करे है उनका योगक्षेम मै करूहूं अलब्धका लाभ योग है और लब्धकी रक्षा जो है सो क्षेमहै और येभी भगवान् ने कही आज्ञा नहीं की है कि सर्वमें मिथ्यात्व दृष्टि करनेवाले को मै योग क्षेम करू हू ऐसा नही कहाया इसलिये वैराग्यके अर्थभी सर्व आत्मदृष्टिकी कर्त्तव्य है अब हम ये पूछे है कि तुमने जो रज्जु सर्प को भ्रम कल्पित कहा है और उसके दृष्टांतसे जगत् को आत्मा मे कल्पित बताया है तहॉं दृष्टान्त दार्ष्टान्त का साम्य कहा नही सो कहो परन्तु पहले ये कहो कि वृत्तिविषय देशमें गई और तिमिरादिक देशसे रज्जु समानाकार भई अर्थात् रज्जु के सामान्य अंश के आकार को तो प्राप्त हुई और रज्जु के विशेष अंश के समानाकार भई नही तब रज्जु चेतनाश्रित अविद्यामे तथा साक्षी चेतनाश्रित अविद्यामें क्षोभ हो करके अथवा इदमाकार वृत्तिमे स्थित अविद्या में क्षोभ करके उस २ अविद्या का तमोंश तथा सत्वांश सर्पाकार और ज्ञानाकार परिणाम कू सम कालमें प्राप्त होय है और रज्जु का विशेष रूप करिके अज्ञान अविद्यामे क्षोभ द्वारा दोनों की उत्पत्ति मे निमित्त है और रज्जु का विशेष रूप करिके ज्ञान दोनों की निवृत्ति मे निमित्त है ऐसे मान करिके सर्प और सर्प के ज्ञान को तुम ने भ्रम कहा है और रज्जु का जो विशेष रूप करि के ज्ञान तिसकरके सर्प और ज्ञान दोनों की निवृत्ति कही है परन्तु रज्जुसर्पमें तो इदन्ता प्रतीति होय है सो सर्प की तरह कल्पित है अथवा नही ये तुमने पूर्व कही नहीं सो कहो जा

कहो कि रज्जु सर्प में इदन्ता कल्पित नहीं है किन्तु रज्जु की ही इदन्ता सर्प में प्रतीति होय है और सर्प के विषय से अनिर्वचनीय इदन्ता रज्जु की इदन्ता के समानजातीय उत्पन्न होवे नहीं क्योंकि विचारसागरके षष्ठ तरङ्गमें ऐसे लिखा कि जहाँ दोय पदार्थ समीप देशस्थ होवे तहा भ्रम स्थलमें अन्यथा ख्याति माननी और तहा अनिर्वचनीय ख्याति नहीं माननी चाहिये जो कहो कि अनिर्वचनीय ख्याति नहीं मानेंगे और इस स्थलमें अन्यथा ख्याति मानेंगे तो तुम्हारे सिद्धान्तमें हानि होयगी क्योंकि तुम्हारे मतमें अन्यथा ख्याति नहीं मानी है इससे तो न्यायके मतवाले माने है तो हम कहे है कि ऐसे स्थलमें हमारे मतमें अन्यथा ख्यातिका ही अङ्गीकार है परन्तु पूर्व दो प्रकारकी अन्यथा ख्याति कही है एक तो अन्य देश स्थित पदार्थ की अन्य देशमें प्रतीति ये अन्यथा ख्याति है और दूसरी अन्यथा ख्याति ये है कि अन्यकी अन्य रूपसे प्रतीति इनमें प्रथम अन्यथा ख्यातिको तो हम नहीं माने है और दूसरी अन्यथा ख्याति हम माने है क्योंकि सन्मुखमें पदार्थ तो सुक्ति है और रजतका ज्ञान होय है तो यहा तो हम दोनों ही अन्यथा ख्याति माने नहीं किन्तु अनिर्वचनीय ख्याति ही माने है इसमें कारण ये है कि नहीं होय उसकी भी प्रतीति यदि होय तो वन्ध्या पुत्रकी भी प्रतीति होणी चाहिये परन्तु जहा सन्मुख देशमें दोय पदार्थ होवें तिनमें एक पदार्थमें अन्य पदार्थका धर्म प्रतीति होय तहा अन्यथा ख्यातिका अङ्गीकार है जैसे स्फटिकमें जपा पुष्पके सन्निधानसे रक्तताकी प्रतीति होयहै तहा स्फटिकमें अनिर्वचनीय रक्तता उत्पन्न होवे नहीं किन्तु जपा पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीति होय है तो अन्यका अन्यरूप करके भान है इसलिये अन्यथा ख्याति है परन्तु स्फटिकमें जहा जपा पुष्पका सम्बन्ध होय तहा पुष्पकी रक्तताका भान स्फटिकमें होय है इसमें कारण यह है कि जहा अन्तःकरणकी वृत्ति रक्त पुष्पाकारहोय है तहाही वृत्तिका विषय रक्तपुष्प सम्बन्धी स्फटिक है इसलिये पुष्पकी रक्तताका स्फटिकमें प्रतीति होयहै ऐसे ही जहा रज्जुमें सर्प भ्रम होय है तहा तो अन्यथा ख्याति सम्भव नहीं क्योंकि भिन्न देश स्थित होनेसे रज्जुका सर्प सम्बन्ध नहीं है और ज्ञेयके अनुसार ही ज्ञान होय है ये नियम है तो ज्ञेय रज्जु और ज्ञान सर्पका यह कथन विरुद्ध है इसलिये रज्जु देशमें अनिर्वचनीय सर्प उत्पन्न होय है ऐसे मानणा उचित है और रज्जु सर्पमें इदन्ता प्रतीति होय है सो अनिर्वचनीय नहीं है क्योंकि रज्जु और अनिर्वचनीय सर्प ये दोनों एक देशमें स्थित है इसलिये रज्जुकी ही इदन्ता सर्पमें प्रतीति होय है ऐसे मानणेमें कारण यह है कि परमात्मा सत्ता सर्व पदार्थोंमें प्रतीति होयहै तो स्वप्न पदार्थोंमें भी प्रतीति होय है अब उस सत्ता को स्वप्न के पदार्थों की तरह अनिर्वचनीय तो मानसकै नहीं क्योंकि सत्ता परमात्मारूप है इसको स्वप्न पदार्थों की तरह अनिर्वचनीय मानणे में सत्य जो है सो मिथ्याहै ऐसा मानणा होगा सो विरुद्ध है इसलिये ऐसे मानहै कि परमात्मा रूप जो स्वप्नाधिष्ठान तिसकी सत्ता ही स्वप्न पदार्थों में प्रतीति होय है ऐसे विचारसागर षष्ठ तरङ्गमें लिखा है इसलिये रज्जुकी इदन्ता ही अनिर्वचनीय सर्प प्रतीति होय है ये तुम्हारा मत है तो हम पूछे है कि रज्जु की जो इदन्ता सो अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसका विषय है अथवा सर्प विषयक जो अविद्या वृत्ति तिसका विषय है तो तुम येही कहोगे कि अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसका ही विषय है अथवा सर्प विषयक जो अविद्या वृत्ति तिसका वि

पय है तो तुम ये ही कहोगे कि अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसका ही विषय है क्योंकि रज्जुकी इदन्ता व्यावहारिक है और प्रातिभासिक पदार्थ तिनका ये भेद है कि व्यावहारिक पदार्थ तो अन्तःकरण की वृत्ति के विषय होय है और प्रातिभासिक पदार्थ अविद्याकी वृत्ति के विषय होय है और व्यावहारिक पदार्थ तो प्रमातृ वेद्यहै अर्थात् इनका ज्ञाता तो चिदाभास है और प्रातिभासिक पदार्थ साक्षिभास्य है अर्थात् इनका ज्ञाता साक्षी है तो हम पूछे है कि रज्जुको देख करके अल्पान्धकारावृत रज्जु देशमें अन्तःकरणकी वृत्ति गई और रज्जुके सामान्याकार तो भई और रज्जुके विशेषाकारको प्राप्त भई नहीं तब "अयं सर्पः" अर्थात् ये सर्प है ऐसा भ्रमात्मक ज्ञान होय है ऐसे तुम मानो हो तहां दोय ज्ञान मानो हो वा एक ज्ञान मानो हो जो कहो कि दोय ज्ञान माने है तिनमें रज्जु के समान्य अंश का विषय करनेवाला तो अन्तःकरण की वृत्ति रूप ज्ञानहै और सर्प को विषय करनेवाला अविद्याकी वृत्ति रूप ज्ञान है तो हम कहे है कि तुम्हारा ऐसा मानणा तो असंगत हैक्योंकि तुमही ऐसे कह आये हो कि ये सर्प है यहां ज्ञान एकही प्रतीति होय है इसलिये आख्याति मतका मानणा भी असंगतही है कदाचित् ऐसा कहो कि स्मरणात्मक और प्रत्यक्षात्मक ये दोय ज्ञान "अयं सर्पः" ऐसे दोय ज्ञानका निषेध अभिमत है और प्रत्यक्षात्मक ये दोय ज्ञान सो तो हमारे अभिमत है तो हम पूछे है कि अन्तःकरणकी जो वृत्ति सो इदन्ताको विषय करेगी तो रज्जुमें विषय करेगी सर्पमें विषय नहीं करसके क्योंकि अनिर्वचनीय सर्प अन्तःकरणकी जो वृत्ति तिसका विषय नहीं है किन्तु अविद्याकी जो वृत्ति तिसका विषय है ऐसा तुम मानोहो अब जो धर्मी प्रातिभासिक सर्प हो तो अन्तःकरणकी वृत्तिका विषयही नहीं तो रज्जुकी इदन्ता सर्पमें कैसे प्रतीति होय तुम तुम्हारे दृष्टान्तको स्मरण करो पुष्पकी जो लाली सो तदाकार वृत्तिनेही पुष्प सबन्धी स्फटिकको विषय किया है इसलिये पुष्पकी लालीका स्फटिकमें प्रतीति होय है और यहां तो इदन्ताकार वृत्तिने इदं शब्दका अर्थ जो रज्जु उसके सम्बन्धी सर्पका विषय किया नहीं इसलिये रज्जुकी इदन्ता सर्पमें कैसे प्रतीति होवे सो कहो १ और अयं सर्प यहां ज्ञान एकही प्रतीति होय है दोय ज्ञान प्रतीति होवे नहीं और यहां दोय ज्ञान मानो हो तो अनुभव विरोध होय है इस विरोधका परिहार क्या है सो कहो २ और जब रज्जु ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति होय है तहां रज्जुका ज्ञाता तुम परमात्माको मानोंहो तो परमात्माको ज्ञान भए साक्षीको ज्ञान जो सर्प तिसकी निवृत्ति कैसे होय सो कहो जो अन्यको रज्जुका ज्ञानभये अन्यको भ्रमकी निवृत्ति होय तो हमारेको ज्ञानभये तुम्हारेको भी भ्रमकी निवृत्ति होनी चाहिये ३ और जो सर्प प्रमाताके ज्ञानका विषय नहीं है और साक्षीका विषय है तो प्रमाताको भय नहीं होणा चाहिये किन्तु साक्षीको भय होणा चाहिये सो साक्षीको भय होवे नहीं ये तुम भी मानो हो ४ और जैसे व्यावहारिक सर्पका ज्ञान प्रमाताको होवे है उस समयमें ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप जो त्रिपुटी तिसको साक्षी प्रकाश करता हुवा स्वःप्रकाश करके प्रकाश करे है तैसेही प्रातिभासिक सर्पका जो ज्ञान होवेहै तबभी साक्षी त्रिपुटीका ही प्रकाशक प्रतीति होय है ये तुमही रज्जु सर्प भ्रम होय तब अनुभवसे विचार करके देखलेवो क्योंकि जब यहां दोय ज्ञान मानो और उनके विषय दोय मानोगे तो ये भये और एक प्रमाता है ऐसे पांचको साक्षी प्रकाशक मानणा पड़ेगा तो हम तुमको पूछे है कि ऐसा

कोई ग्रंथमें लिखा है कि नहीं क्योंकि आजतक ऐसा लेखदेखा सुनाभी नहीं कि साक्षी पञ्च पुटीका प्रकाशक है ५ अब जो तुम ऐसा कहो कि प्रमाताको जब अन्धकार वृत्त रज्जुमें इदन्ताका ज्ञान हुवा उस समयमें इदमाकार वृत्युपहित साक्षीको भी विषयता इदन्तामें है तो जैसे रज्जुकी इदन्ता प्रमाताकी विषय भई तैसे साक्षीको भी विषय भई अब जो अनिर्वचनीय सर्प और उसको विषय करनेवाला ज्ञानये सम कालमें उत्पन्न भये उसकालमें वोही साक्षी सर्प और ज्ञान दोनोंका प्रकाश करै है इसलिये रज्जुकी इदन्ता सर्पमें प्रतीति होय है जैसे प्रमाताकी विषय पुष्पकी लाली स्फटिकमें प्रतीति होय है ऐसे इदन्ता और सर्प एक चिद्विषय होनेसे अन्यथ ख्याति है इस प्रकारसे अन्यथा ख्याति मानणेमें स्फटिकमें भी लालीकी अन्यथा ख्याति बन जायगी क्योंकि एक प्रमातृ रूप जो चित्त तिसकी विषयता लाली और स्फटिक दोनोंमें है ऐसे तो प्रथम प्रश्नका समाधान हुवा १ और द्वितीय प्रश्नका समाधान ये है कि ज्ञानमें स्वरूपसे तो भेद है नहीं किन्तु विषय भेदसे भेद है तो यहां विषय है दोय एक तो रज्जुकी इदन्ता है। और दूसरा प्रातिभासिक सर्प है ये दोनों साक्षीरूप जो ज्ञान तिसके विषय है यातें हमने आरोप बुद्धिसे ज्ञानदोय कहे हैं और वस्तुगत्या साक्षीरूप ज्ञान एकही है इसलिये एकही ज्ञान प्रतीति होय है २ और तृतीय प्रश्नका समाधान यह है कि यद्यपि आवरण भंग होकरके रज्जुका विशेष रूप करके ज्ञान प्रमाताको हुवा है तथापि साक्षी त्रिपुटीका प्रकाशक है इसलिये साक्षीकाभी विषय रज्जु है तो जैसे रज्जुका ज्ञान प्रमाताको हुवा तैसे साक्षीको भी हुवा इसलिये अन्यको ज्ञान हुये अन्यके भ्रमकी निवृत्ति नहीं भई किन्तु जिसको ज्ञान हुवा उसकेही भ्रमकी निवृत्ति भई इस कारणसे अन्यको ज्ञान भये अन्यके भ्रमकी निवृत्तिकी आपत्ति नहीं है ३ और चतुर्थ प्रश्नका समाधान यहहै यद्यपि सर्प प्रमाताके ज्ञानका विषय नहीं है साक्षीकाही विषय है तथापि अन्त करणकी उपादान भूत जो अविद्या तिसका परिणाम सर्प और तिसका ज्ञान है और अन्त करणकी उस अविद्याका परिणाम है तो उपादान ते भिन्न कार्य्य होवे नहीं ये अनुभव सिद्ध है जैसे घटकी उपादान मृत्तिका है तो घट जो है सो मृत्तिकाहीहै तैसे अन्त.करण और सर्पज्ञान ये भी अविद्याके परिणाम है तो अविद्या इनकी उपादान भई जो अविद्या इनकी उपादान भई तो ये अविद्यारूप भये जो ये अविद्यारूप भये तो अन्त.करणकी वृत्ति जो है तिसका उपादान अन्त करण है तो अविद्याही वृत्तिकी उपादान भई तो अविद्याकी वृत्तिका विषय सर्प है तो अन्त करणकी वृत्तिका विषय सर्प हुवा इसलिये प्रमाताको भय होय है ४ और पञ्चम प्रश्नका उत्तर यह है कि अविद्याकी सर्पका विषय करनेवाली जो वृत्ति सो तो सूक्ष्म है इसलिये प्रतीति होवे नहीं और रज्जुकी इदन्ता पूर्वोक्त प्रकारकरके सर्पका धर्म प्रतीति होय है इस लिये इस स्थलमें साक्षी पञ्चपुटी प्रकाशक है तो भी त्रिपुटी प्रकाशकताहीसे प्रकाश है ५ यह तुमने जो हमारे पाच प्रश्नोंके उत्तर दिये सो तुम्हारे सब उत्तर अशुद्ध है देखो तुमने इदन्ता और अनिर्वचनीय सर्प इनको एक चिद्विषय मान करके प्रथम प्रश्नका उत्तर कहा है तहा हम यह पूछें है कि एक चिद्रूप जो साक्षी है जो विषयका प्रकाश करै है सो वृत्तिकी सहायतासे प्रकाश करै है अथवा वृत्तिकी सहायता बिना प्रकाश करै है जो कहो कि वृत्तिकी सहायतासे प्रकाश करै है तो हम पूछे है कि साक्षी जिस वृत्तिका सहायतासे जिस विषयका प्रकाश करै है यह उसही वृत्तिकी सहायता

उस विषयसे अन्य विषयकाभी प्रकाशक होय है अथवा नही जो कहो कि अन्य विषयकाभी प्रकाशक होय है तो हम कहे है कि जैसे साक्षी अविद्याकी वृत्तिसे सर्पका प्रकाश करता है वा इदन्ताका प्रकाशक है ऐसे मान करके तुम अन्यथा ख्याति बनावोगे तो तैसे जीव साक्षामें सर्व ज्ञाताकी आपत्तिभी मानणा पडेगा क्योंकि जैसे सर्पसे भिन्न इदन्ताहै तैसे अन्य सारे पदार्थ सर्पसे भिन्न हे तो उनका प्रकाशक भी जीव साक्षीको मानणा पडेगा ऐसे जीव साक्षीमें सर्वज्ञताकी आपत्ति होगी जो कहो कि ऐसे माननेमे आपत्ति है तो ऐसे मानोंगे कि साक्षी जिस वृत्तिसे जिस विषयका प्रकाशक होय है उस वृत्तिसे अन्य विषयका प्रकाश होवे नही इस लिये जीव साक्षीमें सर्वज्ञताकी आपत्ति नही है तो हम कहे है कि इदन्ता जो है सो अविद्याकी वृत्ति करके सर्पका प्रकाशक जो साक्षी ताकी विषय नही होगी तो सर्पमे इदन्ताकी प्रतीति असिद्ध होगी तो अन्यथा ख्यातिका मानणा असगत हुवा जो कहो कि साक्षी वृत्तिकी सहायता विनाही विषयका प्रकाश करे है तो हम कहेहे कि शुद्ध चिद्रूप जो आत्मा तिसमें साक्षी भाव जो है सो वृत्ति दृष्टिसे कल्पितहै और वृत्ति निरपेक्ष जो आत्मा तिसमें साक्षीभाव नही है इसलिये वृत्तिकी सहायता विना साक्षीके विषयका प्रकाशक मानणा असङ्गत है और जो प्रौढ वादसे वृत्ति निरपेक्ष शुद्ध आत्माको विषयका प्रकाशक मान लेवे तो वृत्ति निरपेक्ष शुद्ध आत्माही ब्रह्म है सो ब्रह्म समस्त ब्रह्माण्डको प्रकाशक है तो ये ब्रह्मरूप शुद्धात्मा जैसे रज्जुकी इदन्ताको विषय करता हुवा रज्जु सर्पको विषय करेगा इस लिये अन्यथा ख्याति सिद्ध होगी तैसे हम ऐसा कहेगे कि ये ब्रह्मरूप शुद्धात्मावलम्बिकादि स्थानमें स्थित जो सर्प तिसका विषय करता हुवा रज्जुको विषय करे है इस लिये रज्जु सर्प भ्रमस्थलमेंभी अन्यथा ख्यातिही मानो अनिर्वचनीय ख्यातिका उच्छेदही होगा जो कहो कि रज्जु और सर्प एकदेश स्थानही है इसवास्ते रज्जु सर्प स्थलमें अन्यथा ख्याति सम्भव नही तो हम तुमको पूछे है कि जहा एक देश स्थित दोय पदार्थ प्रतीयमान होयहे सो भी एकके विषय होयहै तहा अन्यथा ख्याति मानो हो वा भिन्न विषय होय है तहा भी अन्यथा ख्याति मानोहो तो तुम येही कहोगे कि विषय होयहै तहाही अन्यथा ख्याति होयहै क्योंकि स्फटिकमें लाल रगकी प्रतीति होय है तहा पुष्पकी लाली और स्फटिक एक वृत्ति विषय होय है इस लिये स्फटिकमें लाली की अन्यथा ख्यातिहै तो हम पूछे है कि जहा लालपुष्पसंबन्धी पाषाणहै तहा पाषाणमें लालीकी प्रतीति होवे नही इसमे कारण क्या है सो कहो तो तुम ये कहो गे कि पाषाण मलिन है इसलिये पाषाण में पुष्पकी छाया होवे नहीं तो हम कहे है कि अन्यथा ख्यातिके मानने मे छाया भी निमित्त सिद्ध भई अब हम पूछे है कि शुद्ध वस्तुमें छाया होय है ये तो तुम्हारे अनुभव सिद्ध है तो जहा पुष्पका सम्बन्ध तो स्फटिक से नहीं है और पुष्पकी छाया स्फटिकमे है तहा पुष्प और स्फटिक एक देशस्थ नही है तोभी लाली की प्रतीति स्फटिकमे होयहै इसलिये एक देशस्थत्व जो है सो अन्यथा ख्याति में निमित्त नही है किन्तु छाया जो है सोही निमित्त है ऐसा मानणाही पडेगा तो जहा रज्जु सर्प भ्रम होय है तहाभी रज्जु और सर्प येदोंनो एक देशस्थ नही है तो भी जैसे स्फटिक मे लाली की छायाहै तैसे रज्जुमे सर्पका सादृश्य है

इस लिये अन्यथा ख्याति ही मानों अनिर्वचनीय सर्पकी उत्पत्ति मानणेमें गौरव दोष है इस कारण से अनिर्वचनीय ख्याति का उच्छेदही होगा इस तुम्हार प्रथम प्रश्नके उत्तर म तुम्हारी अनिर्वचनीय ख्याति मानणा असङ्गत है ॥ और द्वितीय प्रश्नका उत्तर तुमने ये कहा है कि आरोप बुद्धि से दोय ज्ञान कहे है और वस्तुगत्या साक्षीरूप ज्ञान एक है इस लिये ज्ञान एकही प्रतीति होय है तो हम कहे है कि जैसे ये रज्जु है इस ज्ञानको तुम अन्तःकरणकी जो वृत्ति तद्रूपनान मानों हो और इसको साक्षी भास्य मानो हो क्यों कि ये वृत्तिरूप ज्ञान घटकी तरह स्पष्ट प्रतीति है तैसे ही ये सर्प है ये ज्ञानभी अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसकी तरह साक्षी का विषय होकरके प्रतीति होय है इस लिये इसको साक्षी रूप मानणा अनुभव विरुद्धही है और जो प्रौढिवादसे इसको ही साक्षीरूप ज्ञान मानों गे तो वृत्तिरूप जो ज्ञान तिसका उच्छेदही होगा क्योंकि विषय भेद से ही ज्ञान में भेद सिद्ध होजायगा तो वृत्ति ज्ञान मानणा व्यर्थ ही है इसलिये द्वितीय प्रश्नका समाधान भी असङ्गत ही है ॥ और तृतीय प्रश्नका समाधान तुमने ये कहा है कि जैसे रज्जु जो है सो विषय रूप करके प्रमाता का विषय है तैसे साक्षीकाभी विषयहै इसलिये अन्यके ज्ञान से अन्यके भ्रमकी निवृत्ति की आपत्ति नही है तो हम पूछे है कि उपाधि भेद से तुम उपहित में भेद मानो हो अथवा नही जो कहो कि उपाधि भेदे से उपहित में भेद माने है क्योंकि विचारसागरकी द्वितीय तरङ्ग मे लिखा है कि अन्तःकरणरूप उपाधियोंके भेदसे जीव साक्षी नानाहै इसलिये अन्यके सुखदुःखोंका अन्यको भान होवेनही और जो साक्षी जो सुखदुःखोंको प्रकाश करे है सो भी वृत्ति की सहायता से ही प्रकाश करेहै इस लिये जब अन्तःकरणमे सुख दुःख पैदा होय है उस कालमे अन्तःकरणकी सुखाकार दुःखाकार वृत्ति होय है उन वृत्तियो से साक्षी सुखदुःखोका प्रकाश करे है कि उपाधि भेदसे उपहित में भेदहै तो अन्यके ज्ञान से अन्यके भ्रमकी निवृत्ति की आपत्ति दूर होवेही नही क्योंकि अन्तःकरण वृत्त्युपहित साक्षीको तो विशेष रूप करके रज्जु का ज्ञान होगा और अविद्या वृत्त्युपहित साक्षीका भ्रमनिवृत्त होगा उपाधि भेद सा साक्षी में भेद है ये तुम्हारे कथन से सिद्ध हैइस लिये तृतीय प्रश्नका उत्तर भी असङ्गत ही है ३ और चतुर्थ प्रश्नके समाधान में तुमने ऐसे कहाहै कि उपादान कारण एक अविद्या है इसलिये अन्तःकरणकी वृत्ति और अविद्या की वृत्ति एकहीहै तो सर्प अविद्याकी वृत्ति का विषय है तो अन्तःकरणकी वृत्तिका ही विषय है इस लिये प्रमाता को भयहोय है तो हम कहे है कि तुम्हारे कहे प्रकार करके तो सर्व जीवोके अन्तःकरण कीवृत्ति सर्प विषय वृत्ति से अभिन्न है इस लिये सर्व जीवो को भय होना चाहिये सो होवे नही इस हेतुसे चतुर्थ प्रश्नका उत्तर असङ्गत हीहै ४ और पञ्चम प्रश्नका उत्तर तुमने ये कहा है कि सर्प को विषय करणे वाली अविद्या की वृत्ति तो अति सूक्ष्म है इस लिये प्रतीति होवे नहीं और पूर्वोक्त प्रकार करके रज्जु की इदन्ता जो है सो सर्पका धर्म प्रतीति होवे है इसलिये साक्षी पञ्चपुटिका प्रकाश है तोभी त्रिपुटी प्रकाशकही प्रतीति होय है तो हम पूछे है कि अविद्याकी प्रतीतिमें सूक्ष्मताह सो किम्प्रयुक्तहै जो कहो कि अविद्या अतिसूक्ष्म है सो इसवृत्तिकी उपादान कारण है इस लिये ये वृत्ति अति सूक्ष्म है तो हम कहे है कि ये कथन तो तुम्हारा

तुम्हारे मतसे ही असङ्गत है क्योंकि तुम्हारे मतमें सर्व जगत् अज्ञान कल्पितहै तो सर्व जगत्की प्रतीति नहीं होणी चाहिये जो कहो कि साक्षात् अविद्याका कार्य्य अतिसूक्ष्म होय है जैसे साक्षात् अविद्याका कार्य है इसलिये आकाश जो है सो अतिसूक्ष्म है तैसे ही सर्प विषयक वृत्ति भी साक्षात् अविद्याकी कार्य है इसलिये अविद्या सूक्ष्म है तो हम कहे है कि रज्जु सर्प जो है सो भी तुम्हारे मतमे साक्षात् अविद्याका कार्य है इसलिये इसका भी मत्यक्ष नही होणा चाहिये अब विचार करो कि तमोगुण कार्य्य रज्जु सर्प की प्रतीति होय है तो वृत्ति जो है सो तो सत्वगुणकी कार्य्य है इसकी अप्रतीति तो कैसे हो सके और रज्जुकी जो इदन्ता है उसकी सर्पमें प्रतीति पूर्वोक्त होय करके दुघटहै इसलिये प्रथम प्रश्नका समाधान भी असङ्गत ही है जो कहो कि दोय ज्ञान माननेमें पूर्वोक्त दोष होय है तो "अयं सर्पः" यहां ज्ञान एकही मानेगे तो हम कहे है कि रज्जुकी जो इदन्ता उसकी प्रतीति सर्पमें हो सके नही इसलिये सर्पमे जो इदन्ता है उसकू रज्जुकी इदन्तासे भिन्न मानों क्योंकि इदन्ता जो है सो पुरोदेशवृत्ति धर्म से विलक्षण नहीं है रज्जुजोहै सो तो पुरोदश जो भूतल तद्वृत्ति है और सर्प जो है सो पुरोदश जो रज्जु तद्वृति है इसलिये दोनों की इदन्ता भिन २ है अब जो दोनों इदन्ता भिन्न भई तो इदन्ता विशिष्ट सर्पको विषय करणेवाली जो वृत्ति सो अविद्या की वृत्ति नही होसके किन्तु अन्तःकरणकी ही वृत्ति होगी क्योंकि सर्पदर्शन से प्रमाताको ही भय होय है ये अनुभव सिद्ध है अब जो सर्प विषयक वृत्ति अन्तःकरणकी वृत्तिरूप भई तो रज्जु जैसे प्रातिभासिक नही है तैसे सर्पभी प्रातिभासिक नही होगा जो सर्प प्रातिभासिक नहीं होगा तो ये अज्ञान कल्पित नही होगा जब अज्ञान कल्पित नही होगा, जब अज्ञान कल्पित नही ठहरा तो तुमने जो अज्ञान कल्पितरूप जगत् मानाथा उसमें तुम्हारी मानी हुई अनिर्वचनीय ख्याति उच्छेद हो गई जैसे बारूदके उडनेसे गोलीका उच्छेद हो जाता है जो तुम ऐसा कहो कि अपने पञ्चविधि ख्यातिमेंसे कोई भी ख्याति अङ्गीकार नही करी सो तुम कौनसी ख्याति मानोगे तो हम कहे है कि जैसे अनादि स्वास्त सत्ता रूप जो जगत् सिद्ध हुआ है उसको स्मरण करके सत् ख्यातिको अंगीकार करो यही उत्तम सिद्धान्त है जो कहो कि इस सत् ख्यातिकी व्यवस्था केसे है तो हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें जहा वीतराग सर्वज्ञकी वाणीरूप अमृतसे भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित किया जायगा उसजगह वर्णन करेगे वहा से देखना, अब हम तुमको ऐसा कहे है कि रज्जु सर्वरूप जो दृष्टान्त सो तो अज्ञान कल्पित सिद्ध हुवा नहीं तो इसके दृष्टान्तसे आत्मामे अज्ञान कल्पित भी सिद्ध न हुवा तो जगत् अज्ञान कल्पित न हुवा तो तुम दृष्टान्त दार्ष्टान्तका सम्भव कैसे बतावो हो सो कहो तुम ऐसा कहोगे कि आत्मा जो है सो सत्चित्आनन्दअसंग कूटस्थ नित्य मुक्त है तो जैसे रज्जुको दोय अश है इद रूप तो रज्जुका सामान्य अंश है और रज्जु जो है सो विशेष अश है जो भ्राति कालमें मिथ्या कल्पित पदार्थसे अभिन्न हो करके प्रतीति होवे सो तो सामान्य अश कहिये है और जिस अशकी भ्राति कालमें प्रतीति होवे नहीं सो विशेष अश कहिये है जैसे जहा रज्जुमें सर्प भ्रम होय है तो उस भ्रमका आकार ये सर्प है ऐसा है तो इस शब्दका अर्थ इदम्पदार्थ सर्पमें अभिन्न हो करके भ्राति कालमें प्रतीति होवेहै इसलिये ये रज्जुका सामान्य अशहै तैसेही स्थूल सूक्ष्म सघात है ऐसे स्थूल सूक्ष्मकी भ्राति

समयमें मिथ्या संघातसें अभिन्न हो करके सत् प्रतीति होय है इसलिये आत्माका सत्यरूप सामान्य अंश है और जैसे सर्पकी भ्रांति कालमें रज्जुके विशेष अंशका प्रत्यक्ष होवे नहीं किन्तु रज्जु की वि शेष रूपसे प्रतीति भये सर्प भ्रमदूर होवे है इसलिये रज्जु विशेष अंश है तैसे स्थूल सूक्ष्म संघातकी भ्रान्ति समयमें आत्माका असंकूटस्थ नित्यमुक्त स्वरूप प्रतीति होवे नहीं किंतु असंगादिरूप आत्माकी प्रतीति भये संघातकी भ्रांति दूर होवेहै इसलिये असंगता कूटस्थता नित्यमु क्तादिक जो है सो आत्माके विशेषरूप है जैसे भ्रांति समयमें सर्पका आश्रय जो रज्जु तिसका सामान्य इदंरूप सर्पका आधार है और विशेषरूप अधिष्ठान है तैसे मिथ्या प्रपंचका आश्रय जो आत्मा तिसका सामान्य सत्रूप स्थूल सूक्ष्मका आधार है और अस गतादिक विशेषरूप आधिष्ठान है जो कहो कि सर्पका आधार और अधिष्ठान तो रज्जु है और रज्जुसे भिन्न जो पुरुष सो सर्पका द्रष्टा है तैसे आत्मा जगत्का आधार और अधिष्ठान है तो इससे भिन्न जगत्का द्रष्टा कौन होगा जैसे सर्पका आधार और अधिष्ठान जो रज्जु सो सर्पका द्रष्टा नहीं है किंतु रज्जुसे भिन्न जो पुरुष सो सर्पका द्रष्टा है तैसे आत्मासे भिन्न जगत्का द्रष्टा कौन होगा सो कहो तो हम कहे है कि मिथ्या वस्तु अधिष्ठानमें कल्पित होय है सो अधिष्ठान दोय प्रकारका होय है एक तो जड अधिष्ठान होय है और दूसरा अधिष्ठान चेतन होय है सो जहा अधिष्ठान जड होय है तहा तो द्रष्टा अधिष्ठानसे भिन्न होय है जैसे सर्पका अधिष्ठान रज्जु है सो जड है तो इस रज्जुसे भिन्न जो पुरुष सो सर्प का द्रष्टा है और जहा चेतन अधिष्ठान होय है तहा अधिष्ठानसे भिन्न द्रष्टा होवे नहीं जैसे स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी चेतन है सोही स्वप्नका द्रष्टा है तैसे जगत्का अधिष्ठान आत्मा है सोही जगत्का द्रष्टा है ये व्यवस्था स्थूल दृष्टिसे कही है क्योंकि सिद्धांतमें तो सर्पका अधि ष्ठान साक्षीही है सोही द्रष्टा है इसलिये पूर्वोक्त शंका समाधान देही नहीं ऐसे आत्माके अज्ञानसे जगत् प्रतीति होय है जिसके अज्ञानसे प्रतीति होय है जैसे रज्जुके अज्ञानसे सर्प प्रतीति होय है सो रज्जुके ज्ञानसे निवृत्त होय है तैसे आत्माके अज्ञानसे जगत् प्रतीत होय है सो आत्माके ज्ञानसे निवृत्त होय है इसलिये आत्मा ज्ञान सिद्ध करने योग्य है ऐसा विचारसागरके चतुर्थ तरङ्गमें दृष्टांत दार्ष्टांतका साम्य कहा है तो हम तुमको पूछे है कि अधिष्ठानका सामान्यरूप करके ज्ञान भ्रमका कारण है या अधिष्ठानका विशेषरूप करके अज्ञान भ्रमका कारण है या अधिष्ठानका सामान्यरूपकरके ज्ञान और विशेष रूप करके अज्ञान ये दोनोंका कारण है जो कहो कि अधिष्ठानका सामान्यरूप ज्ञान भ्रमका कारण है तो हम कहे है कि अधिष्ठानका विशेषरूप करके ज्ञानभये भी भ्रम होना चाहिये क्योंकि रज्जुका विशेषरूप करके जो ज्ञान तिसका आकार ये है कि ये रज्जु है तो इस ज्ञानमें ये इतना अंश सामान्य ज्ञान है सो तुमने भ्रमका कारण माना है इसलिये तुमको अधिष्ठानका विशेषरूप करके ज्ञान होय तिससमयमेंभी सर्पभ्रम होणा चाहिये सो होवे नहीं इस कारणसे अधिष्ठानका सामान्यरूप करके ज्ञान भ्रमका कारण मानना असंगत है जो कहो कि अधिष्ठानका विशेषरूप करके अज्ञान भ्रमका कारण है तो हम कहे है कि जिस समयमें रज्जु सर्वथा अज्ञात है उस समयमेंभी तुमको सर्प भ्रम होणा चाहिये क्योंकि उस समयमें तुम्हारा मान्या हुवा भ्रमका कारण जो अधिष्ठानका विशेषरूप करके अज्ञान सो मौजूद

है इसलिये अधिष्ठानका विशेषरूप करके जो अज्ञान उसको भ्रमका कारण माननाभी असंगत है जो कहो कि अधिष्ठानका सामान्यरूप करके ज्ञान और विशेषरूप करके अज्ञान ये दोनो कारण हे तो हम पूछे हैं कि ये दोनो ज्ञात हुये कारण है वा ये दोनों अज्ञातही कारण हे वा दोनों में एक तो ज्ञात हुवा और द्वितीय अज्ञात कारण है जो कहो कि ये दोनो ज्ञात हुये कारण है तो हम कहे हे कि तुमको सर्पभ्रम होणाही नही चाहिये क्योंकि तुमही अनुभवसे देखो जहा तुमको सर्पभ्रम होय हे तहा रज्जुका सामान्यरूप करके ज्ञानतो प्रतीति होय है और विशेषरूप करके अज्ञान प्रतीति होवेनही इसलिये दोनो ज्ञात हुये कारण है ऐसे मानणा असगत है जो कहो कि दोनों अज्ञातही कारण हे तो हम कहे हैं कि जिस समयमें तुमको रज्जुका सामान्यरूप करकेभी ज्ञानही है और विशेषरूप करकेभी ज्ञानही है उस समय में भी तुमको भ्रम होणा चाहिये क्योंकि उससमय में रज्जुका सामान्यरूप ज्ञान और विशेप रूप अज्ञान ये दोनोही अज्ञान है जो कहो कि दोनोंमें एक तो ज्ञात और दूसरा अज्ञात हुये भ्रमके कारण है तो हम तुमको पूछें हे कि सामान्य रूप जो ज्ञान सोतो ज्ञात और विशेप रूपकरके अज्ञान जो अज्ञात ऐसे भ्रमका कारण कहो हो विशेप रूप करके जो अज्ञान सो ज्ञात और सामान्य रूप जो ज्ञान सो अज्ञात ऐसे भ्रमका कारण कहो हो जो कहो कि प्रथम पक्षमाने है तो हम कहे है कि प्रथमपक्ष वनजायगा क्योंकि वहा सामान्य रूप सो ज्ञात है और विशेप रूप जो अज्ञान सो अज्ञात है परन्तु इसके दृष्टान्तसे जो तुम आत्मामें जगत्को अज्ञान कल्पित बतावो हो सो कैसे होगा क्योंकि आत्माका विशेषरूप जो अज्ञान सो ज्ञात नही है क्योंकि मै मेरेको नित्य मुक्त असङ्ग कूटस्थ नही जानू हू ऐसी प्रतीति होय है इस लिये दृष्टान्त दार्ष्टान्तका साम्य हुवा नहीं तो आत्मामें जगत् अज्ञान कल्पित मानणा असङ्गतहुवा औरभी देखो कि आत्मामें जगत् अज्ञान कल्पित होय तो जैसे रज्जुका विशेप रूप करके ज्ञान होनेसे सर्प जो है सो सर्वथा निवृत्त होजाय है तैसे आत्माका विशेप ज्ञान होनेसे जगत् निवृत्त हो जाना चाहिये सो होवे नही ये अनुभव सिद्ध है जो कहो कि हम अध्यास दो प्रकारके माने है १ एक तो सोपाधिक अध्यास माने है और दूसरा निरुपाधिक अध्यास माने है जहा भ्रमकी निवृत्ति होनेसे भी अध्यस्तकी प्रतीति उपाधिके सद्भावपर्यन्त मिटे नही उस स्थानमें तो हम सोपाधिक अध्यास कहे है जैसे नदी के तट उपर स्थित जो पुरुप तिसको अपना शरीर जलमे प्रतीत है सो मिथ्या है वहा पुरुषके चित्तमे भ्रम नही है आपने तटस्थ शरीरमे ही तो पुरुषकी सत्य बुद्धि है और जलमे प्रतीयमान जो शरीर तिसमें मिथ्या बुद्धि दृढ हे तथापि जलमे प्रतीत जो आत्मा शरीर तिसका अधिष्ठान होवे नही क्योंकि यहा जो अध्यास है सो सोपाधिक है जो कहो कि यहा उपाधि क्या हे तो हम कहे है कि यहा जल हे सो उपाधि है सो ये उपाधि जहातक वनी रहे तहातक शरीरका अदर्शन होवे नही और जहा रज्जुमें सर्पकी प्रतीति है तहा निरुपाधिक अध्यास कहे है कि सर्पभ्रम निवृत्ति भये सर्पमे मिथ्या बुद्धि होनेसे सर्पकी प्रतीति होवे नहीं क्योंकि यहा कोई उपाधि ऐसी नही हे कि जिसके रहनेसे भ्रमकी निवृत्ति होनेसभी सर्प प्रतीति होतीरहे तो आत्मामे जगत्की प्रतीति है यहा सोपाधिक अध्यास है इसलिये आत्माका विशेप रूप ज्ञान होनेसे जगत्की निवृत्ति होवे नही तो हम कहे है कि आत्मामे

जगत्को अज्ञान कल्पित सिद्ध करनेके अर्थ रज्जु सर्प दृष्टांत न हुवा और जब दृष्टान्तका और दार्ष्टान्तका साम्य कहने लगे तब सोपाधिक भ्रमको दृष्टान्त कहा है ऐसे उपदेश करनेसे शिष्य को सतोष कैसे हो या ऐसे उपदेश करने वाले गुरुको तो आत्मा अर्थात् बुद्धिमान् जो शिष्य है सो भ्रान्त समझेंहै और कुगुरु मानकरके छोडदेते हैं जो कहो कि भ्रम स्थलमे भ्रमको दृष्टान्त कहै तो क्रम विरुद्ध उपदेश नहीं है इस लिये सोपाधिक दृष्टान्त भ्रमको कहै तो कुछभी हानि नहीं है तो हम कहे है कि जहा तीरस्थ पुरुषको जलमें अपने शरीरका भ्रम होय है तहा भ्रमाधिष्ठान जल है उसका ज्ञान पुरुषको समान रूप करकेभी है और विशेष रूप करकेभी है आत्माका तो तुम सामान्य रूप ज्ञान और विशेषरूप अज्ञान मानो हो इस लिये दृष्टान्त और दार्ष्टान्त विषम है जो कहो मरुभूमिका जो जल तिसको दृष्टान्त करेंगे क्योंकि मरुभूमिका सामान्यरूप ज्ञान और विशेष रूप करके अज्ञान इनके होनेसेही जल भ्रम होय है और मरुभूमिका विशेषरूप करके ज्ञान होनेसे जलका भ्रम रहे नहीं परन्तु जलकी प्रतीति होती रहे है तैसे ही आत्माका सामान्य रूप ज्ञान और विशेष रूप अज्ञान इनके होनेसे तो आत्मामें जगत् भ्रम हुवा है और आत्मा विशेष रूप ज्ञान होनेसे जगत् भ्रम निवृत्तहो जाता है परन्तु जगत्की प्रतीति होती रहै ऐसे आत्मामें जगत्का सोपाधिक अध्यास सिद्ध होगया तो हम तुम को पूछे है कि आत्मा मे जगत् अज्ञानकल्पित है इसलिये तुम दृष्टान्तों करके आत्मामे जगत् को अज्ञानकल्पित सिद्ध करोहो या तुम अपना मत अन्य शास्त्रों से विलक्षण दिखाने को और अपना मत सिद्ध करने के अर्थ आत्मा में जगत् को अज्ञान कल्पित बतावोहो सो कहो जो कहो कि आत्मा मे जगत् अज्ञान कल्पित है इसलिये हम दृष्टान्तों करके जगत् को अज्ञान कल्पित बतावे है तो हम पूछे है कि आत्मा मे अज्ञान जो है सो कल्पित है वा नहीं तो तुम यही कहोगे कि कल्पित ही है तो हम तुम को पूछे है कि किससमयमें कल्पित हुवा है तो तुम ये कहोगे कि अनादि कल्पित है तो तुमही कुछ बुद्धि का विचार करो कि जो वस्तु अनादि होय सो कल्पित कैसे होसके इसलिये जगत् अज्ञानकल्पित नहीं है क्योंकि तुम जगत् का उपादान कारण मानों हो परन्तु जो जगत् का उपादान होय तो आत्मज्ञान होनेसे तुम को जगत् की प्रतीति नहीं होनी चाहिये क्योंकि उपादानकारणके नाशहोनेसे कार्य रहे नहीं ये सब के अनुभव सिद्ध है और जो कहो कि सोपाधिक अध्यास होय तहा उपादान के नाश हो सेभी जबतक उपाधि की स्थिति होवे तब तक कार्यप्रतीति रहे है तहा मरु जल का दृष्टान्त कहा है तो हम तुम को पूछे है यहा उपाधि है सो कहो जो कहो कि यहा अन्तःकरण जो है सो उपाधि है तो हम कहे है कि अन्तःकरण जो है सो तो जगत् के अन्तर्गत है इसलिये ये भी उपाधि होसके नहीं इसलिये जगत् से भिन्न कोई उपाधि कहो सोजगत् से भिन्न कोई उपाधि कह सकोगे नही इसीलिये तुम लोग अज्ञान अर्थात् अविद्या के कलंक से रहित हो सको नही जो कहो कि हमारे अद्वैत मतके सिद्ध करनेवाले आचार्य लोग जिन मे शिरोमणि शङ्कर स्वामीने अज्ञान कल्पित मान कर जगत् की निवृत्ति के वास्ते अज्ञान को मिथ्या ठहरायकर "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञान से अविद्याको दूर कर ब्रह्मरूप हो गये और जो उनकी आज्ञा को मानेगा सो भी ब्रह्मरूप ज्ञानको प्राप्त

होकर जन्म मरणसे मिट जायगा अहो ! अद्वैतवादियो ! यह तुम्हारा कहना कैसा है कि जैसे कोई निर्विवेकी पुरुष कहने लगा कि मेरे बापने घी (घृत) बहुत खायाथा नहीं मानोतो मेरा हाथ सूंघ कर देखलो ऐसा ही मसले वा दृष्टान्तसे तुम्हारे शंकरस्वामीको ब्रह्म ज्ञान होने से ब्रह्म रूप होगये अजी कुछ नेत्र मींचकर हृदय कमल ऊपर वीतराग वचन को स्मरण करके विचार तो करो कि शंकर दिग्विजयमे शंकरस्वामीका हाल जो आनन्दगिरिने लिखा है उसकोतो विचार दृष्टिसे देखो तो तुमको आप ही मालूम हो जायगा कि इस स्थूल शरीरमे ब्रह्मज्ञान कहने मात्र ही होगा ननु कारण शरीरे तो जब कारण शरीरमे ही नहीं तो आत्मामे ब्रह्मज्ञान होना असम्भव ही है जो तुम कहो कि आनन्दगिरि महाराज ने शंकर दिग्विजयमे क्या बात लिखी है सो तुम कहो तो अब हम तुम को तुम्हारे शंकरस्वामी का हाल सुनाते है सो तुम एकाग्र चित्त होकर पक्षपात छोडकर नेत्रों को मींच कर श्रवण करो—

जब शंकरस्वामी ने मण्डन मिश्रको जीता तब मण्डन मिश्रने पतिव्रत लिया उसकी स्त्री जिसका नाम सरसवानीथा सो अपने पतिको पतिव्रत लिया देखकर आप ब्रह्म लोकको चली उसको जाती देखकर शंकरस्वामी जीवन दुर्गा मंत्रकरके दिग्बन्धन करते हुये तिसके पीछे हे सरसवाणी ! तू ब्रह्म शक्ति है ब्रह्मके अंगभूत मंडनमिश्रकी भार्य्याहै उपाधि करके सर्वको फलित है तिस कारणसे मेरे साथ प्रसंगकरके फिर तुमको जाना योग्यहै ऐसे शंकरस्वामीने कहा पीछे सरसवाणी शंकरस्वामीके प्रति कहती हुई कि पतिके सन्यासके प्रथमही विधवा होनेके भयसे मैने पृथ्वी त्यागीहै तिसकारणसे मैं फिर पृथ्वीका स्पर्शन न करूँगी, हे ! पति तू तो पृथ्वीमें स्थितहै कैसे तेरे प्रसंगके ताईं एक विषय स्थिति होवे ऐसे शंकरस्वामीके प्रति कहती हुई, फिर शंकरस्वामी कहते भये कि हे माता तूभी भूमिकाके ऊपर छः हाथ प्रमाण ऊंची आकाश मे रहो मेरे साथ सर्व वचनोंका प्रपंच सचार करके पीछेसे जावो इतने आदरपर होकर शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषय वेद, इतिहास, पुराणो विषय समय प्रसंग करके पीछे शंकरके तिरस्कारके ताईं जिसमे दुःखमें प्रवेश है ऐसा जो काम शास्त्र तिसके विषय नायका और नायक इनके भेद विस्तारसे सरसवाणी शंकरको पूछे तब तो शंकर स्वामी इस विषयको जानते नहींथे इसलिये शंकर स्वामी उत्तर न देसके और मौन होतेभये तिस पीछे सरसवाणी शंकर स्वामीको सत्य करके कहती हुई कि तुम्हारे जानने मे यह शास्त्र नहीं आया निश्चय करके तिस शास्त्रकोंमैंही जानतीहूं कालका जानकर शंकरस्वामी सरसवाणीको कहते हुये हे माता ! तुम इस जगह छः महीने रहो पीछे मै सर्व अर्थोंका निश्चय करके उत्तर करूंगा ऐसा कहकर शंकर स्वामी आग्रह पूर्वक सरसवाणीको उसी आकाशमंडलमें स्थापन करके सर्व शिष्योंको यथास्थाने करके चार शिष्याके सहित १ हस्तामलक २ पद्मपाद ३ विधिविद् ४ आनन्दगिरि ये चार प्रधान शिष्योंकेसाथ नगरसे पश्चिम दिशि नामगरमें गये सरस वाणीके प्रश्नोंके उत्तर जाननेके लिये, उस नगरका राजा मरगयाथा उसका शरीर चितामें जलानेके वास्ते रक्खाथा उसको देख शङ्करस्वामीने अपना शरीर उस नगरके एक पर्वतकी गुफामें

स्थापन करके शिष्योंको कहा कि तुम इस शरीरकी रक्षा करना शङ्करस्वामी परकाय प्रवेश विद्याकरके लिङ्गशरीर सयुक्त अभिमानसहित राजाके शरीरमे ब्रह्मरन्ध्रमे प्रवेश करा तब तो राजा जी उठा मो तो उपचार करा उत्सवसे नगरमे ले आये राजा मरा नहीं था यह बात प्रसिद्ध होगई तब तो शङ्करस्वामीको लोगोंने राज गद्दीपर बिठलाया पश्चात् सिंहासनसे उठकर बडी रानीके घरमें गये तहा जाकर उस रानीसे काम क्रीडा करने लगे उस वक्त शङ्करस्वामी कुशलतासे उस रानीको आलिङ्गन करनेसे उत्पन्न हुवा जो सुख सम्भोग ता स्वरूक शकरस्वामीने उस रानीके मुखके साथ तो अपना मुख जोडा अर्थात् एक शरीर गत होगये दोनों जने बहुत आलिगन करनेमें तत्पर हुये तो शङ्करस्वामी रानीके कुच स्थनोंपर किये हायो करके स्पर्श करते हुये सुखमें मग्न हो गये तब रानी उनकी अलाप चतुराई देख कर चित्तमे विचार करने लगी कि देह मात्र मेरा भर्ता है परन्तु इसका जीव मेरा भर्ता नहीं है तो कोई सर्वज्ञ है ऐसा विचार करके रानीने अपने नौकरोंको चारों दिशामे भेजा और कह दिया कि जो पर्वत और गुफामें बारह योजनके बीचमें शरीर जीव रहित होवे सो सर्व जलादो शङ्कर स्वामी तो विषयमे मूर्छित होगये अर्थात् स्त्रीके भोग सुखमे लीन हो गये और इधर रानीके नौकरोंने चारों शिष्योंको रक्षक देखकर शङ्करस्वामीके शरीरको चिताम रखना आरम्भ किया और उनके शरीरको अग्नि दाह करके दाह करने लगे तब तो शकरस्वामीकेचारो शिष्य उस नगरमे गये जहा शङ्करस्वामीथे उनको विषयमें बन्ध बुद्धि देख कर शङ्कर राजाके आगे नाटक करने लगे शकरस्वामीको परोक्ष करके उपदेश करने लगे सो उपदेश यह है (१) यस्सत्य मुख्य शब्दार्थानुकूल, तत्वमसि २ राजन् (२) यद्य तत्व विदित नृपु भावतत्वमसि राजन् (३) विश्वोत्पत्यादि विधि हेतु तत्व तत्वमसि २ राजन (४) सर्व चिदात्मक सर्व मद्वैत तत्वमसि २ राजन् (५) परतार्किकेरीश्वरसर्व हितुस्तत्वमसि २ राजन् (६) यदि यद्वैता गदिभिर्ब्रह्म सर्वस्य, तत्वमसि २ राजन् (७) यज्जैमिनिगीतम खिल कर्म तत्वमसि २ राजन् (८) यत्पाणिनि प्रादात् शब्द स्वरूप तत्व मसि राजन् (९) यत्साख्याना हेतुभूत तत्वमसि २ राजन् (१०) अष्टागयोगेनअनन्त रूप तत्व मसि २ राजन् (११) सत्य ज्ञान मनत ब्रह्म तत्व मसि २ राजन् (१२) नह्येतदद्दश्यप्रपञ्च तत्वमसि राजन् (१३) यद्ब्रह्मणो ब्रह्मविधा धीश्वरा ह्यभवन्, तत्वमसि राजन् (१४) त्वद्रूप मेव मस्माभिर्विदित राजन् तव पूर्व मस्याश्रमस्थम् ॥ इन परोक्तियों करके राजा प्रतिबोधित हुवा सर्वके सन्मुख तिस राजाकी देहसे निकल कर जब गये तब तो उस तर्ही कदरामें अपने शरीरको न प्राप्त हुवे तब तो अपने शरीरको चितामे देखा, देख कर कपाल मध्यमें होकर प्रवेश करा, तब शरीरके [illegible] अग्नि प्रज्वलित हो रहीथी, तब तो निकलना दुष्कर हो गया फेर

न निकल सके तब असमर्थ हो करके नृसिंहजीकी स्तुतिकी तब निकले और जब शिष्योंने तत्त्वमसिका उपदेश दिया जब उस उपदेशको सुनकर पिछली समृति आई तो अब देखो और तुमही विचार करो कि तुम्हारे मुख्य शिरोमणि आचार्य्य शंकरस्वामीनेही स्थूल शरीर छोडनेसे लिङ्ग शरीरसे राजाके शरीरमे प्रवेश किया तो पिछले शरीरकी स्मृति न रही तो फिर वे ब्रह्म ज्ञान पायके ब्रह्म हो गये ये तुम्हारा कहना असिद्ध हो गया जब तुम्हारे शङ्कर स्वामीकोही ब्रह्म ज्ञानकी प्राप्ति लिङ्ग शरीरमे न हुई तो आत्मामें कहांसे होगी तो जब उनकोंही न हुई तो अब तुम्हारेको क्योंकर ब्रह्मकी प्राप्ति होगी अब देखो विचार करो कि न तो तुम्हारी अज्ञान कल्पित अविद्या सिद्ध हुई न तुम्हारा कल्पा हुवा जगत् मिथ्या ठहरा न तुम्हारा अद्वैत सिद्ध हुवा न तुम्हारे सिद्धान्तसे ब्रह्मज्ञान होना सिद्ध हुवा अब जो तुम्हारेको आत्मार्थकी इच्छा है तो शुद्ध मार्गके उपदेश देनेवालेके चरणोंकी सेवा करो ॥ अलम् विस्तरेण ॥

इति श्रीजैनधर्माचार्य मुनिचिदानद स्वामिविरचिते स्याद्वादानुभव रत्नाकरे द्वितीय प्रश्नोत्तरअतर्गत वेदातमत निर्णय समाप्तम् ॥

अथ दयानन्द मत निर्णय।

अब वेदान्त मतकी समीक्षा करनेके अनन्तर वर्तमान कालमें जो आर्यसमाज नवीन प्रवृत्त हुआ है उसका वर्णन किया जाता है, इस मतका मुख्य आचार्य्य दयानन्द सरस्वती नाम करके हुवा जिस ने अपने प्रयोजनके लिये वेद और अन्यान्य शास्त्रोंको एक देश मानकर उनका नवीन अर्थ बनाकर भ्रमजालमें फँसानेका उद्योग किया है । इसमतके मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य भूमिका आदि हे जिनमे अपनेको शुद्धप्ररूपक बतलाते हुए अनेक गप्पे लिखी है इस लिये उसके स्वमन्तव्य अर्थात् अपनी इच्छानुसार जिन २ वस्तुवोंको मानता है उनका निराकरण उसीकी मानी हुई वस्तुवोंसे भव्य जीवोंके कल्याणकी इच्छासे यहा करता हूँ कि ये भ्रमजालमें फँसकर संसारमें न डुले ॥

अब सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि प्रथम "दयानन्दसरस्वती"ने जो ईश्वर माना है वही नही बनता क्योंकि प्रथम जिसरीतिसे ईश्वर उसने माना है सो लिखते हे-कि प्रथम "ईश्वर" कि जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम है जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव, पवित्र है, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु न्यायकारी, सर्व सृष्टिका कर्ता, धर्ता, हर्ता, सर्व जीवोंको कर्मानुसार सत्य न्यायसे फल दाता आदि लक्षण युक्त है उसीको परमेश्वर मानता हूँ ॥

अब हम कहे है कि सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर को मानना ठीक है यह तो कही जैनियोंका शास्त्र देखकर उठा लिया है क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि कवि तस्कर अर्थात् चोर होता है अब देखो कि तुम गुण कर्म, स्वभाव यह भी मानते हो तो हम तुमको पूछते है

कि तुम्हारे जो वेद मत्र है उनमें तो ब्रह्म परमात्माको निर्गुण कहा है सो मन्त्र यह है कि जो सत्यार्थप्रकाशमे जो कि पहले अनुमान सं० १९३२ अथवा सन् १८७५ ई० में बनाया था उसके सप्तम समुल्लासके २२६ पत्रकी १३ वी पंक्तिमें लिखा है मन्त्र- एकोदेव सर्व भूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताकेवलो निर्गुणश्च ॥ अब देखो उस तुम्हारे मन्त्रमें तो उस परमात्माको निर्गुण कहा है और तुमने उसको गुणवाला मान लिया तो हम जानते है कि भागका नशा कुछ जादा हो गया दीखे, इसलिये इसका अर्थ यथार्थ न समझा दूसरा जो कर्म मानते हो सो भी ईश्वरमें नहीं बनता है क्योंकि ईश्वर जो कृतकृत्य है अर्थात कोई कृत्य करनेको बाकी नहीं अर्थात् आनन्द रूप है यही उसका स्वभाव है सर्वज्ञ निराकार ये भी ठीक है परन्तु सर्वव्यापक किस रीतिसे मानते हो सो कहो क्या शरीर वाला मानकर अथवा ज्ञानसे मानते हो २ जो कहो कि शरीर वाला मानकर कहते है तब तो तुम्हारा निराकार मानना वान्झके पुत्र समान हो गया जो कहो कि ज्ञान करके मानते है तो तुमने जैनियोंकाही शरण लिया दीखे है और देखो जो तुम कहते हो कि सृष्टिका कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता सर्व जीवोंको कर्मानुसार सत्य न्याय से फल दाता ऐसा विशेषण देनेसे उलटा कलक लगाते हो क्योंकि पहले तुमने उस ईश्वरको मन्त्रमें निर्गुण कहा तो कर्त्तादि न्यायसे फल दाता क्योंकर कहना बनेगा जो इन चीजोंका कर्त्ता आदिक उसमें गुण है तो फिर जिस ईश्वरको निर्गुण कहा तो परस्पर उस कर्त्तामें वह तो व्याघात दूषण हुवा अर्थात् " मम मुखे जिह्वा नास्ति" अब हम तुमसे पूछते है कि ईश्वरको कर्त्ता मानकर उसी ईश्वरको कलक लगाना है इससे तुम्हारा प्रयोजन क्या है तो तुम यही कहोगे कि नाना प्रकारकी विचित्र रचना अवरजरूप है इसलिये जगत् कार्य ठहरा इस अनुमानसे हम ईश्वरको कर्त्ता सिद्ध करते है तो हम तुमको पूछते है कि कारण कितने मानते हो जो कहो कि उपादान साधारण और निमित्त ये तीन कारण माने है तो अब देखो यहा विचार करो कि उपादान कारण तो प्रकृतिको मानोगे और साधारण कारण जो कि क्रिया आदिक उसको मानोगे निमित्तमें ईश्वरकी इच्छा मानोगे तो अब हम तुम्हारेको पूछे है कि सबसे पहले जो सयोगकी क्रिया उसमे उपादान तो प्रकृति हुई निमित्त ईश्वर हुवा तो इस जगह असाधारण कारण कोई नही दीखता है तो जब असाधारण कारण माननाही असङ्गत हुवा तो तुम्हारे माने हुवे तीन कारणोंके विना कार्य नही होता है यह कहनाभी असङ्गत हुवा इस लिये शाश्वत अनादि मानना ठीक है अब उस ईश्वरको अजन्मा निराकार इस जगतसे भिन्न मोक्ष भये हुये जीवसे न्यारा ईश्वर माननेमें तुम्हारा प्रमाण क्या है? मुक्त हुवे जीवसे भिन्न ईश्वरका होना किसी युक्तिसे सिद्ध नहीं कर सकते और न कभी हमको उसे प्रत्यक्ष दिखा सकते होतो हम कैसे मानलें कि मोक्ष हुए जीवोंसे अतिरिक्त कोई ईश्वर है। जो तुम कहो कि ईश्वर घट पटकी तरह भौतिक पदार्थ नहीं है जिसको हम तुमको प्रत्यक्ष दिखलावे क्योंकि नेत्रादिक इन्द्रियोंसे तो उसका प्रत्यक्ष नहीं होता परन्तु ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होताहै अथवा कर्तृत्वादि गुणोंसे ईश्वरका ज्ञान हमको हुवा है क्योंकि स्वाभाविक गुणोके प्रत्यक्षसे गुणोंकी प्रत्यक्ष युक्ति सिद्धहै अब हम तुमको पूछते है कि किन गुणोके प्रत्यक्ष होनेसे ईश्वरके गुण

प्रत्यक्ष होते है? जो तुम कहो कि नाना प्रकारकी विचित्र रचना देखकर हम ईश्वरको कर्त्ता मानते हे तो हम तुमको पूछते है कि पहलेही हमने तुम्हारे ईश्वरको तुम्हारी पुस्तकके मन्त्रसेही निर्गुण ठहराया है तो फिर गुणोसे गुण प्रगट होतहै ये कहना तो तुम्हारा असम्भवही है। जो तुम ईश्वरको सत् चित् आनन्दरूप मानते हो तब सृष्टिके रचनमें वा पालन करनेमे वा प्रलय करनेमें जीवोके कर्मोके फल देनेमें इत्यादिक कामोमें आनन्दके वदले महादुःखरूप दिनरात अग्र सोचमेही वना रहेगा जो तुम कहो कि वो सर्वशक्तिमान् है तो जो अन ईश्वरवादी अर्थात् सृष्टिका कर्त्ता ईश्वरको न माननेंवालोके साथ झगडा भी करता होगा? जो तुम कहो कि अनुमान उपमान आगमसे अर्थात् शब्द प्रमाणसे सिद्ध करेंगे तो हम कहे है कि जबतक प्रत्यक्ष प्रमाण न होगा तो अनुमान वा उपमानभी नहीं वनेंगा क्योंकि देखो जिस पुरुषने अग्निसे धुआनिकलता प्रत्यक्ष नहीं देखा है उस पुरुषको धूम देखनेसे अग्निका अनुमान कदापि न होगा ऐसेही जिस पुरुषने गऊका स्वरूप प्रत्यक्ष नही देखा उसपुरुषको जगलमे जानेसे गवयको देखकर कदापि उपमान प्रमाण नही वनेगा क्योंकि पहिले स्वरूपको उसने जाना नही और जो आगमोसे सिद्ध करोगे अर्थात वेदोमे सिद्ध करोगे तो वेदभी उसही ईश्वरके किये हुये मानतेहो तो जब तुम्हारा ईश्वर सिद्ध हो चुकेगा जिसके वाद उसके कहे हुये वचन अर्थात् वेदका प्रमाण मान्या जायगा क्योंकि कुड़ा अर्थात् भीत नाम दीवार होगी तो चित्राम रचा जायगा जहा दीवार नही तहां चित्रामका सभव कहा? जो तुम कहो कि पृथ्वी आदिकका वनाने वाला कोई ईश्वरहै तो अन हम तुमको पूछते है कि वह जो सृष्टिका रचने वाला ईश्वर है सो शरीर वाला है अथवा अशरीर वालाहै जो वह शरीर वाला है तो क्या हमारा सा शरीर विशिष्ट वा पिशाचोंका सा अदृश्य शरीर विशिष्ट है? अब देखिये प्रथम पक्षको तो प्रत्यक्ष बाधा है क्योंकि प्रत्यक्षमे तो ईश्वर दीखता नही और कार्य उसका बनाया हुवा तुम प्रत्यक्ष दिखाते हो क्योंकि घास, वृक्ष, पुरुष, अभ्रा, धनुष, कार्य दीखते है क्योंकि प्रमेय होनेसे यह तो तुम्हारा अनेकान्त हेतु हुवा। दूसरे पक्षमें अशरीरी मानोंगे तो उस ईश्वरका कुछ माहात्म्य विशेष कारण है अथवा हमारे लोगोंके कर्मोका वैगुण्य अर्थात् हमारे शुभ अशुभ कर्मोसे नही दीखता है तो प्रथम पक्षसे तो तुमको सोगध खानेसे होगा क्योंकि प्रमाणका अभाव है दूसरा इतरेतराश्रय अर्थात् अन्योन्याश्रय दोषभी होता है क्योंकि उसका विशेष माहात्म्य जव सिद्ध होगा जव उसका अदृश्यपन सिद्ध होगा जो पेश्तर अदृश्यत्व सिद्ध हो जाय उसके वाद महिमा सिद्ध होगा और द्वितीय पक्ष कि जो हमारे कर्मोके शुभ अशुभसे विचार करे तो सन्देह नही दूर होगा क्योंकि वाझाके पुत्रके समान यह सत्य है या असत्य या हमारे कर्मोका दूषणहै या उसका अदृश्यत्वहै इसमेभी प्रमाण कोई नहीं और जो तुमने कहा कि निराकार है तो हेतु विरुद्ध है क्योंकि घटादि कार्य शरीरवालेके किये हुये दीसे है और अशरीरसे कार्यमें प्रवृत्ति होना मुशकिल है आकाशकी तरह जैसे आकाश अरूपी वस्तु कोई कार्य्य नही कर सकती इस लिये तुम्हारा शरीर अशरीर दोनो पक्षोमें युक्ति सिद्ध न हुवी औरभी देखो वृक्ष विजली और बद्दल धनुषादि उत्पन्न होना विनाश होना दीखता है और उसका कर्त्ता कोई नही हुवा। अब

एक बात हम तुमसे और पूछते है कि जगत्की रचना करनेमें एक ईश्वर है या कई है जो तुम कहो कि एकही ईश्वर है बहुत होनेसे एक कार्यमें प्रवृत्त होनेसे असमजस हो जायगा क्योंकि किसीको कैसेही समझमें आवेगा और किसीको वैसेही तो यह भी तुम्हारा कहना अयुक्त है क्योंकि देखो कि अनेक किडी अपने बिलादिकको मिलकर बनातीहै अथवा कई कारीगर मिलकर मकानको बनातेहै अथवा अनेक मक्खी मधुछत्ताको मिलकर रखती है तो उसमे तो कोई असमजस नहीं दिखलाई देता, खैर ! अब तुम एकही ईश्वरको मानो तो जो तुम्हारी ईश्वरके ऊपर ऐसीही प्रीति है तो तुम्हारे जुलाहे धुना आदिक इन सबोंके किये हुवे घटादि कार्य है इनकोभी क्यों नहीं ईश्वर कृत मान लो? जो तुम कहो कि इनका तो कर्ता प्रत्यक्ष देखनेमें आता है तो क्योंकर ईश्वरको कर्त्ता मानलें तो हम जानै है कि जो कार्य तुम्हारे देखनेमें नहीं आते उनको इश्वरके किये मानते हो जब तो तुम्हारी बडी चतुरता है क्योंकि जैसे कोई एक धनवाला था सो कृपणपनसे अर्थात् मूँजी होनेसे अपने जो पुत्र भाई स्त्री अपने स्वजनोंको धनके खर्च हो जानेके भयसे शहरको छोडकर जगलमें जावसा अब हम तुमसे एकबात और पूछते है कि वो जो सर्व व्यापक है सो भी नहीं बनता है शरीर आत्मासे व्यापक है अथवा ज्ञान आत्मासे? जो पहला पक्ष अङ्गीकार करोगे तो भी जगत्में व्यापक होनेसे और पदार्थोंको अवकाश नाम जगह ही नहीं मिलेगी, दूसरे पक्षमे हम भी ऐसा मानते है कि ज्ञान अतिशय करके ज्ञानात्मा परम पुरुष तीन जगत्की क्रीडा अर्थात् रचनाको देखता हुवा जो तुम ऐसा अगीकार करोगे तब तो ठीक है परन्तु वेदसे विरुद्ध होगा क्योंकि तुम्हारे यह ऐसी श्रुति कही है कि "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतःपादित्यादि" ॥ ऐसा कहे है जो तुम कहो कि नियत देशपर स्थित हो करके अन्य देशकी यथावत् पदार्थोंकी रचना करे ऐसा नहीं हो सकेगा तो हम तुमको पूछें है कि जगत्को बनाया है तो खित्यादिवत् देह व्यापार करके बनाया है अथवा सकल्प मात्र करके बनाया है? पहले पक्षमें तो पहाड आदिक बनानेमें तो बहुत कालक्षेप हुवा होगा और उस ईश्वरको बडी मिहनत और मजदूरी करके बनाना पडा होगा जो तुम कहो कि सकल्प मात्रसेही जगत्को बना दिया है तब तो एक देश बैठा हुवाही बनाता तो कोई दूषण नहीं था अब देखो जो सामान्य देवता आदिकहै सो सकल्प मात्रसेही सर्व कार्य कर लेते है अब एक और भी सुनो कि जो उस इश्वरको सब व्यापक मानोगे तो अशुचि निरतर उसका वासभी होगा नरकादिको मेंभी उसकी रोज सजा मिलती होगी अर्थात् परमाधर्मी मारते होंगे तब तो कोइभी ऐसा क्षण नहीं कि उसको सिदाय दु सके सुख मिले जो तुम ऐसा कहो कि तुम्हारेभी ज्ञानात्मा तीन जगत्में प्राप्त होता है तब अशुचिका आस्वादन तुम्हारेभी ईश्वरको प्राप्त हुवा और नरकादि दुःख पानेका प्रसग हुवा । अब हम तुमको कहे है कि तुम्हारेको उत्तर देना तो न आया परन्तु गुलालकी जगह राख तो उडाने लगे क्योंकि देखो हमारे यहा तो स्वस्थानपर ही ज्ञान करके विषयको देखता हुवा न वहा जाय करके जब तुम्हारा अशुचि हमारे माने ईश्वरको देना क्यों हुवा अर्थात् आपत्ति न हुई चेत् यदि तुम लोगोंको अशुचिज्ञान मानसेही रसका आस्वाद होता होगा तो जो ऐसा है तो दूध, चीनी, रोटी खाना पीना चिन्तवन

करनेहीसे तृप्ति हो जायगी फिर उसका यत्न करना निष्फल होगा इसीलिये ज्ञानात्मा सर्वव्यापक सिद्ध हुवा कदाचित् तुम कहोगे कि वो सर्व शक्तिमान् है चराचरको रचता है तो जिस समयमे उसने ससार रचाया उस समयमे उसको ज्ञान न हुवा कि इनको मे रचुगा और यह लोग मेरे शत्रु हो जायगे पहले रचादिया और पीछे उनको बुरा कहना इसलिये जो उनको नही मानने वाले है उनको पेश्तरही क्यो रचा और जो उसने रचा तो सर्वज्ञ नही हुवा अब हम तुमसे यह और पूछते है कि उस ईश्वरने जगत्को स्वाधीन रचा है या करुणा करके रचा है तो जब स्वाधीन पनेसे रचा ह जब तो जीवोंको सुख दुःखका होनाही असभव है और जो उनको सुख दुःख होता है तो विचारोंको क्यों नाहक रच दिया जो तुम कहो कि अगले जन्मके किये हुये शुभ अशुभ कर्मोंके होनेहीसे उनको दुःख सुख ईश्वर देता है जो ऐसा है तो स्वाधीन सृष्टि रचीथी इस कहनेको जलाजलि देनी पडेगी जैसे कि किसीने कहा कि गधाके सींग है ऐसे तुम्हारा कहना स्वाधीन हुवा इसलिये कर्मजन्यसेही अर्थात् कर्मोसेही इस जगत्की नाना प्रकारकी रचना माननी ठीक है ईश्वरकी कल्पना करना निष्फलही है क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष विचार करते है तो प्राणियोंको अर्थात् जीवोंको धर्म अधर्मसेही इस जगत्में दुःख सुख नाना प्रकारके प्राप्त होते है सो इन शुभ अशुभ कर्मोहीसे सृष्टि होती है कर्मोकी अपेक्षा करके जो ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानोगे तो कर्महीको ईश्वर मानलो॥ अब दूसरे पक्षमे जो करुणा नाम दयासे जगत् बनायाथा तो वह दया क्या ठहरी वह तो बिलकुल निर्दया प्रतीति होती है क्योंकि सर्प, बिच्छू, मच्छर, डास, सिंह, व्याघ्र, भेडिया, अनेक जातिके पशु आदिक अथवा वृक्ष आदिकोंमें काटे वाले वृक्ष अथवा धतूरे आदिक इत्यादि अनेक प्रकारके दुःख देनेवाली चीज़ोंको क्यों उत्पन्न कीथी।जिसके जीमें दया होती है वह सबको सुख देनेके सिवाय दुःखकी जड मात्रकोभी उखाडकर फेक देता है तो अब देखो जिसको तुम दयालु कहते हो उन्होंने कैसी २ अनेक जीवोंको दुःख देनेवाली चीजोंको पैदा किया है तो इससे तुम्हारा दयालु ईश्वर न ठहरा। अब हम तुमसे यह और पूछते है कि जगत् रचनेका ईश्वर में स्वभाव है अथवा अस्वभाव है, जो प्रथमपक्ष अङ्गीकार करोगे तो जगत्को बनाते २ एक क्षण भी उसको सुभीता न मिलेगा और जो वह विश्राम लेगा तो इसके स्वभाव की हानि होगी दूसरा नानाप्रकारके जो पदार्थ रचनेसे मानते हो सो भी नही बनता है क्योंकि जब वह पहाड वा वृक्ष आदिक अथवा सड्क आदिको बनाना जिस काम मे लगेगा उसी काम में स्वभाव है और जब दूसरे काम मे लगेगा तो उसके स्वभाव की हानि होगी दूसरा अस्वभाव मानोगे तो जगत्को रचता है यह रचने का स्वभाव ही उस मे नही ह क्योंकि जैसे आकाश कुछ नही है औरभी देखो कि जो उसमें रचने की शक्ति है सो नित्य है वा अनित्य है जो कहो कि नित्य है तो जिस ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है उस ईश्वर से प्रलय भी नहीं होगा क्योंकि उसकी शक्ति अनित्य हो जाय गी नित्य नही रहेगी जो कहो कि प्रलय करनेवाले ईश्वरको जुदा मान लेंगे तो हम तुमसे कहे ह कि एक तो रचनेवाला दूसरा प्रलय करनेवाला उन दोनोंके आपस में ऐसा झगडा होगा जैसा १९४२ के .३ के साल में झगडा हुवा था सो वे तो

रहते ही रहे और हिन्दुओका रावण और मुसल्मानोंके ताजिये अजमेर में रक्खे रहे इस कहने से हमारा अभिप्राय यह है कि एक तो तुम्हारा ईश्वर सृष्टिको उत्पन्न करने वाला दूसरा उसके प्रलय करनेवाला आपस मे लडते थे और लडते रहे और अगाडी लडेंगे और यह जगत् जैसा है तैसाही बना रहेगा इसलिये जगत् जो है सो इसका कर्ता कोई सिद्ध नहीं हुवा कदाचित् दूसरा पक्ष अनित्य मानोंगे तो इधर तो तुम्हारा ईश्वर सृष्टि रचेगा उधर से शक्ति अनित्य होने से मिटता चला जायगा जैसे चातुरमास म बालक जो अज्ञानी भाड, किला, मकान, खाड, पेडे बालक बनाते है इधर फूटते चले जाते ह इसीतरह से बालकों की तरह तुम्हारा ईश्वर सृष्टिका कर्ता अनित्य शक्तिवाला ठहरा तो सप्तारकी रचना वा प्रलय कुछ भी न बनी अब जो कदाचित् तुम ऐसा कहो कि सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्ता ये तीन काम तीन गुणोंसे होते है रजोगुणसे सृष्टिको रचता है और सतोगुणसे सृष्टिका पालन करता है और तमोगुणसे सृष्टिका प्रलय करता है इन तीन गुणोंकी तीन अवस्था होनेसे अवस्थावालेमेंभी भेद हो जाता है इसलिये एकही ईश्वरमें तीनो बातें बन सकती हे तो हम तुमसे पूछते है कि रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण, ये तीनोंगुण तो प्रकृतिके हैं और ईश्वर प्रकृतिसे भिन्न है और पवित्र मानते हो तो यह तुम्हारा कहना असङ्गत हो जायगा क्यों नाहक ईश्वरमे रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण, मानते हो, जैसे और जीव रजोगुण, सतोगुण, तमोगुणमें फँसे हुये जन्म मरण करते है तैसे तुम्हारा ईश्वरभी जन्म मरण कर्ता होगा, किञ्चित् औरभी • तुमसे हम कहते हैं कि जो विवेकी पुरुष निष्प्रयोजन प्रवृत्त नहीं होते है किञ्चित् प्रयोजनसे प्रवृत्त होते है तो तुम्हारा ईश्वर सृष्टिके रचनेमे प्रवृत्त हुवा तो स्वार्थ वा करुणासे जगत्को बनाया जो कहो स्वार्थसे बनाया तो वह ईश्वर तो कृतकृत्य है अर्थात् कोई काम करनेको नही है क्योंकि परिपूर्ण सच्चिदानन्दरूप है जो कहो कि करुणासे सृष्टिको बनाया तो उस ईश्वरके करुणा नही ठहरती है दूसरेको दुःख देनेकी इच्छा जिसके है उसको करुणा किस तरह बने है क्योंकि सबसे पहले सृष्टि नहीं रची गईथी तिसके पहले जो जीवथे उनके सृष्टिके पहिले इन्द्रिय शरीर विषय आदिकके न होनेसे फिर उनको सृष्टिमे रचकर दुःखमें डालकर फिर उनको दुःखित देखता है और फिर तुम कहते हो कि वो ईश्वर दयालु है और भी देखोकि करुणा सिद्धि होगी तो सृष्टि सिद्धि होगी और सृष्टि सिद्धि होगी तो करुणा सिद्ध होगी इतरेतराश्रयदूषण होगा इसलिये जगत्का कर्ता ईश्वर कोई युक्तिसे सिद्ध न हुवा किन्तु कलङ्कित ईश्वर ठहराकि तिसके वाक्यको विडम्बना अर्थात् शेखसिल्लीकीसी वातें उस ईश्वरकी होती भई इसलिये सृष्टि अनादि सिद्ध हुई न तु ईश्वरकर्त्ता ॥ दिग् इति अलम् विस्तरेण ॥ १ ॥

चारों वेदो (विधा धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानताहू वे स्वय प्रमाणरूप है कि जिनका प्रमाण होनेसे किसी अन्य ग्रन्थकी अपेक्षा नहीं जैसे सूर्यका प्रदीप अपने स्वरूपका स्वत. प्रकाशक और पृथिव्यादिकाभी प्रकाशक होता है वैसे चारो वेद है और चारो वेदोके ब्राह्मण, छः अङ्ग छः उपाङ्ग चार उपवेद और ११२१ वेदोकी शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियोंके

बनाये ग्रन्थ है उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदोंके अनुकूल होनेसे प्रमाण और जो इनमे वेदविरुद्ध वचन है उनका अप्रमाण करताहूं ॥ अब हम तुमसे ये बात पूछते है कि चारोंवेदोंके ब्राह्मण, छः अङ्ग छः उपाङ्ग चार उपवेद और ११२७ वेदोंकी शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महाऋषियोंके बनाये ग्रन्थ है उनको वेदोंके अनुकूल होनेसे अर्थात् वेदोंके मिलेहुये वाक्य मे मानताहूं जो वेदोसे विरुद्ध है उसको नही मानताहूं ऐसा तुम्हारे स्वमन्तव्यमे लिखा हुवा है तो अब हम तुमसे पूछते है कि तुमको इतनी चीज वेदोंसे विरुद्ध यह ज्ञान स्वतः उत्पन्न हुआ अथवा किसी अन्य पुरुषसे अथवा ईश्वरने आयके तुम्हारे कानमें कहा अथवा किसी पिशाचादि देवताने आके कहा प्रथम पक्ष जो तुम कहो हो कि हमको स्वतः उत्पन्न हुई कि इतनी वेदों की जो व्याख्यारूप महाऋषियों के बनाये ग्रन्थ है जो वेदसे नही मिलेगी उसको नही मानूंगा तो अब हम तुझसे कहते है कि महाऋषियों को नही दीखता था कि हम वेदसे विरुद्ध क्यों लिखते है जो उन्होने जानकर लिखा तो वे महाऋषि काहेके किन्तु महागप्पी थे और जो उन्होने अपने ज्ञानसे यथावत अर्थ लिखा है और तुम उनको महाऋषि कहते हो तो फिर तुम उस वाक्यमे क्यों विकल्प उठाते हो कदाचित तुम्हारा स्वार्थ अर्थात् मत सिद्धि करनेके वास्ते उनके वचनसे दूषण आता हो इसलिये उनके वाक्योंको वेदविरुद्ध कहकर जोकि अगरेजी फारसी पढे हुये बालजीवोंके बहकाने के ताई कहकर उस वचन को अप्रमाण करना तो हम जाने कि तुम्हारी बराबर पक्षपाती अन्याय आचरण करने वाला और कोई दूसरा न होगा यहां जो अगरेजी फारसी पढनेवालोको बाल कहनेका बुरा लगे तो हम कहते है कि वे लोग परंपरासे अपने स्वमत गुरुगमसे वाकिफ नही थे और उन्होने अपनी अगरेजी फारसीके बुद्धिबलसे कुतर्क उठायकर वेदका नाम श्रवणकर इसके जालमे फसकर नियम धर्म कर्मोसे हाथ उठालिया "सत्यासत्य विचारशून्य इति बाल." न कि माताका दूध पीनेवालो को बालक कहते है ॥ क्योंकि सम्पूर्ण वेदको न मानकर एक मन्त्रभागको अगीकार किया और अन्योंको क्षेपक अर्थात् तुम्हारे स्वार्थ सिद्ध होनेके जो वाक्य मिले उनको तो प्रमाण माने जिससे तुम्हारा मतरूपी स्वार्थ बिगडता था उस वाक्यको वेदविरुद्ध कहकर छोड दिया तो अब तुम्हारे माने हुवे स्वमन्तव्यको अर्थात् तुम्हारे बनाये हुवे ग्रन्थोको जो कि तुम्हारा पक्षपाती निरविवेकी धर्म, कर्म, यात्रा, तीर्थादि छोडनेके अर्थ मूंजी कृपण अर्थात् धनका लोभी संसारमें जन्म मरण करनेवालाही अगीकार करेगा और जो विवेकी धर्मशील सत्य असत्य विचार करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष कोई पूर्व महात्मा महाऋषि आपत वचनोंके प्रमाण विना अगीकार न करे इसलिये यह तुम्हारा स्वमन्तव्य मानना निरविवेकियोंके वास्ते सिद्ध हुवा न कि विवेकी लोगोंके वास्ते ॥ १ ॥ ७ ॥

दूसरा पक्ष कहो तो वहभी नही बनता है क्योंकि विरजानन्द सरस्वती मथुराके रहनेवाले कि जिनके पासमे तुमने यह विद्या अध्ययन की वे तो विचारे आत्मार्थी थे और सन्यस्तमार्ग को पूरा पूरा जानते थे वे तो सत्य उपदेशके सिवाय तुम्हारासा पाखण्ड उपदेश नही करतेथे जो तुम तीसरे पक्षको अंगीकार करो तो मनुष्यके सिवाय और कोई

देव नहीहै ऐसा तुम खुदही मानतेहो और जो तुम कहो कि चौथे पक्षको अंगीकार करे तो हम तुमसे पूछते है कि क्या ईश्वरने तुमको ऐसा आकर कहा कि मन्त्रभागके सिवाय और वेद असत् है जो तू अर्थ करेगा सो अर्थ तो मेरे वेदका ठीक होगा और जो तेरेसे पहले मुनियोंने जो भाष्य और व्याख्यान किया है सो वह उनका किया ठीक नहीं ६ अंग और ६ उपांग मनुस्मृति आदिक किंचित् महाभारत उनमें भी जिसको तू मानेगा वह अंश तो ठीक है अलावह उसके अंग उपांग आदिकोंमें भाष्य टीका स्मृति, पुराणादिक सब अशुद्ध है तेरे माननेके योग्य नहीं है इत्यादिक बातें सुषुप्तिमें कही वा स्वप्नमें वा जागृत अवस्थामें कहीं जो कहो कि सुषुप्तिमें कही तो यह कहना तुम्हारा नही बनता क्योंकि सुषुप्तिमें सोये हुये पुरुषको किसी तरहकी खबर नहीं रहती है उसहीका नाम सुषुप्ति है, क्योंकि जागकर पुरुष कहता है कि मे आज ऐसा सोया कि निद्रामें कुछ खयाल नरहा जो कहो कि स्वप्नमें आकर कहा तो भी स्वप्नमें ईश्वर साकारथा कि निराकारथा जो स्वप्नमें साकार होकर कहा तब तो तुम्हारा ईश्वर निराकार माना हुवा गधाका सींग हुवा जो कहो कि निराकारने ही हमसे स्वप्नमें कहा है तो तुमको कैसे भान हुवा कि यह निराकार ही है अर्थात् ईश्वर है क्योंकि स्वप्न देखी हुई वस्तुका आता है और कोई स्वप्नकी बातका सनदभी न करें इसलिये स्वप्नभी असंभवही है जो कहो कि जागृतमें हमको ऊपर लिखी बातें कहीथी तो वह ईश्वर क्या ठहरा पक्षपाती बडा अन्याई ठहरा क्योंकि इतने महर्षि सैकडों हजारोंको कि जिनके वाक्यको असंख्य मनुष्य मानते है उनकी बातोंका प्रमाण करते और उनके धर्मपर चलतेथे उनको सबको झूठा बनाकर तुम्हारेको कहा कि हम जानते है कि तुमने उसको कुछ रिशवतदी होगी अथवा अच्छे २ माल खिलाये होंगे अथवा तुमने उसका बडा उपकार किया होगा अर्थात् मरतेसे बचाया होगा और पहले जो ऋषि मुनियोंने तुम्हारे माने हुये ईश्वरको शायद लकडियोंसे पीटा अथवा उसका धन ले लिया होगा इसीवास्ते तुम्हारी मिथ्या गप्पें चलरहीहै "अहो इति आश्चर्य्यं पश्यतीहरः" कि सब ऋषियोंको झूठा बनाकर आप सच्चा बनता है जैसे सुनार सबके देखते हुये चोरी करता है तैसे तू भी सब मुनियों ऋषियो, कि जो वर्त्तमानमें विवेकी पुरुष है उनके सामने वाक्यरूप चोरी कर रहा है और सत्यवादी बनता है अब हम तुम्हारेको इतना और पूछते है कि जब तुम्हारा माना हुवा ईश्वर ही किसी युक्तिसे सिद्ध न हुवा तो उसका बनाया हुवा वेद क्योंकर प्रमाण होगा जिस जगह पर पुरुष प्रमाणिक नहीं है उनका वाक्य क्योंकर प्रमाण होगा सेर ! अब हम यह तुमको पूछते है कि वह जो वेद है सो किसी पुरुषका बनाया हुवा है अथवा अपौरुषेय है जो पुरुष का बनाया हुवा है तो सर्वज्ञकृत है या असर्वज्ञ कृत ? प्रथमपक्ष कहा तो देखो कि तुम्हारे यहा सिद्धान्तोंमें कहा हैकि " अतीन्द्रियाणामर्थाना साक्षाद्द्रष्टा न विद्यते । नित्येभ्यो वेद वाक्येभ्यो यथार्थ विनिश्चय " अब दूसरा पक्ष असर्वज्ञ कृत मानोगे तो असर्वज्ञके वचनका प्रमाण किसीको नहीं है जो कहो कि अपौरुषेय है तो यहभी कहना असंभव है क्योंकि घोडेके सींग और

* जैसे इन दिनो अर्थात् आज कल आर्य्यसमाजी लोग मास भक्षणादि पर वाद विवाद कर रहे है और अपने २ को सच्चा कह रहे है ।

आकाशके फूल जैसा अपौरुषेयका वाक्य है क्योंकि वेदका तुम वर्णात्मक मानते हो तो वर्णात्मक जो है सो विना कण्ठ, तालु, मुखके उच्चारण कदापि न होगा तो जैसे और कुमार सभवादि जो वर्णात्मक रचना है सोही वेदोंमें वर्णात्मक अक्षरोंकी रचना है सो क्या पुरुष विना इन वर्णोंका उच्चारण होगा ? इसलिये ये वेद ईश्वरकृत नही है इसका कर्त्ता कोई पुरुष विशेष देहधारी किसी धूर्त्तका बनाया हुवा है उसने अपना नाम नहीं रक्खा और ईश्वरके नामसे प्रसिद्ध किया है। अब हम तुमको यह बात पूछते हैकि तुम वेदको ईश्वर कृत वारवार कहते हो तो वेद शब्दका अर्थ क्या है देखो " विद् ज्ञाने " धातु है जिससे वेद शब्द सिद्ध होता है क्योंकि " विदन्ति येनासौ वेदः " इसका अर्थ यह है कि जिस करके मनुष्य सब कुछ पदार्थको जाने अर्थात् वेद तो वेद नाम ज्ञानका है तो ज्ञान तारतम्यता करके सर्व मनुष्योंके हृदयमें अनादि अर्थात् सनातन समवाय सबन्ध करके जीवात्माका गुण है परन्तु किसी जीवात्माका कर्मोका तिरोधान होनेसे ज्ञानका आविर्भाव होता है किसी जीवात्माके कर्मोके जोरसे तिरोधान अर्थात् छुपा हुवा रहता है तो जब इस शब्दसे वेद नाम ज्ञानका सिद्ध हुवा तो जीवात्माका वाक्य है सोही वेद है इस अर्थसे ऐसा कदापि न होगा कि ऋग्वेद, यजुरवेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चार पुस्तक वेद है और नही, सो नही हो सकता क्योंकि देखो जिन पुस्तकोंको तुम वेद करके मानते हो तैसेही सर्व मत वाले जो कि उनके मुख्य आचार्य हुये है उनके कहे हुवे वाक्योंको वेदही मानते है तो अब देखो तुम्हारे माने हुये ईश्वर कृतका वेद, और उनके माने हुये वेद नही ऐसा कहना तो तुम्हारा जैसे बाजारकी कूजडी बेचने वाली कहती है कि मेरा बेर मीठा औरोंका खट्टा है ऐसा हुवा क्योंकि तुम्हारे कहनेसेही नही हो सकेगा किन्तु विवेकी पुरुष तो युक्ति सिद्धसे अंगीकार करते है अब देखो जब कि ईश्वरकृत होगा तो उस वाक्यमें विषमवाद कभी नही होता क्योंकि देखो ईश्वरको तुम पिताके तुल्य स्वामीके तुल्य मानते हो और उपकारके वास्ते उसने वेद बनाया है तो उस ईश्वरने एक जगह तो कहदिया कि मास खाना अच्छा नही महापाप है क्योंकि 'माहिंस्यात् सर्वाणि भूतानि'' इसका अर्थ यह है किकिसी प्राणीको दुःख न देना किसीको न सताना किसीको न मारना, सबको अपने बराबर जानना, मासादिक भक्षण न करना, मास खानेमें पाप है। दूसरी जगह कहता है कि होम करके मासादिक खाय तो कुछ दोष नही है ऐसा प्रथम बनाये हुये सत्यार्थप्रकाशके दशवे समुल्लास ३०२ के पन्नामे लिखा है इसका वृत्तान्त तो हम आगे लिखेंगे यहा तो सिर्फ वेदके वचनोंका विरोध दिखलानाथा और फिर उसी पुस्तकके चतुर्थ समुल्लासमें १४९ के पन्नामें ऐसा लिखा है कि जो चीज आप खाय उसीसे होमादिक करे और गऊका यज्ञादिक करे और देव पितृ आदिकोंकोभी मास आदिकके पिंड देनेमें कुछभी पाप नही है। फिर दूसरी जगह ऐसा लिखा है कि जो पशु मनुष्योंका उपकार करे उनको नही मारना चाहिये यह वृत्तान्त पन्ना ३०२ उसी पुस्तकमें लिखा है सो इसका खण्डन मण्डन तो आगे करेंगे लेकिन् इस जगह तो जो वेदको तुम मानते हो सो वेद ईश्वरकृत नही ठहरता किन्तु आपसमे वचन विरोध होनेसे जो तुम्हारे दिलमें बात आई उसको मान लेनी और जो न मनमें आई उसको न माना ऐसेही किसी धूर्त्तने तुम्हारे वेदको रचा

होगा न तु ईश्वरकृत् अब तीसरा तुम्हारा मन्तव्य मानना है सोभी ठीक नहीं है वह यह है ॥ ३ ॥

"जो पक्षपात रहित न्यायाचरण सत्य भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदा से अविरुद्ध है उस को "धर्म" और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण मिथ्या भाषणादि ईश्वराज्ञा भङ्ग वेद विरुद्ध है उस को अधर्म मानता हूँ" ॥ जो तुमने ईश्वराज्ञा और वेद से अविरुद्ध उस को धर्म, इससे विपरीत उसको अधर्म ऐसा माना यह तुम्हारा मानना ठीक नहीं क्यों कि जिसको तुमने ईश्वर माना उस ईश्वर काही किया हुवा वेद और वो ईश्वर दोनों ही सिद्धि न हुये तो उसकी आज्ञा और उसके कहे हुये वेदका धर्म क्योंकर ठीक होगा इसवास्ते "वीतराग" सर्वज्ञ काही कहा हुवा धर्म ठीक होगा इसवास्ते जैनियों की शरण लेवो और पाखण्डको छोड कर अपनी आत्माका कल्याण करो और चौथे मन्तव्य में जो तुमने जीवका लक्षण लिखा है जिसमें ज्ञानादि नित्य गुण सो तो ठीक परन्तु इच्छा, द्वेष, दुःख और अल्पज्ञ यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं क्योंकि इन्छा, द्वेष, दुःख, अल्पज्ञता कर्मोंके संयोग से है जब कर्म का संयोग दूर हो जायगा तो वोही जीव सर्वज्ञ सच्चिदानन्द रूप हो जायगा ऐसा मानना ठीक है और पांचवें मन्तव्य में जो ईश्वर जीव में भिन्नता मानी सो भी असङ्गत है क्योंकि जब तक कर्मों का संयोग है तब तक जीव संज्ञा है कर्मों का संयोग मिट जायगा जब वही जीव ईश्वर हो जायगा उस ईश्वर से अतिरिक्त ईश्वर मानना असङ्गत है छठे मन्तव्यमें जो अनादि तीन पदार्थ माने है सो भी तुम्हारा मानना ठीक नहीं क्योंकि जीव और अजीव इन दोनों पदार्थोंके अतिरिक्त कोई तीसरा पदार्थ नहीं जो तुमने ईश्वरको तीसरा पदार्थ माना है सो वो तुम्हारा ईश्वर ही सिद्ध न हुवा सातवा मन्तव्य जो प्रभाव से अनादि माना है, जिन द्रव्योंमें संयोग और वियोग होनेका स्वभाव है वो सदासे ही अनादि है और आठवाँ मन्तव्य जो सृष्टि मानी है कि पृथक् द्रव्योंका मेल करके नाना रूप बनाना यह भी तुम्हारा मानना ठीक नहीं क्योंकि जिनमें संयोग वियोग होनेका स्वभाव अनादि है उनका दूसरेसे मेल बनना ये असम्भव ही है देखो जैसे मिश्रीमें मीठापन स्वभावसे होता है अब उसको कोई निर्विवेकी कहने लगे कि हलवाईने मिश्री मीठी करी है इसलिये यह मानना भी असङ्गत है। अब नवा मन्तव्य जो कि सृष्टिका प्रयोजन यही है कि जिसमें ईश्वरके सृष्टि निमित्त गुण, कर्म, स्वभावका साफल्य होना जैसे किसीने किसीसे पूछा कि नेत्र किसलिये है उसने कहा देखनेके लिये है वैसे ही सृष्टि करनेके ईश्वरके सामर्थ्यकी सफलता सृष्टि करनेमें है और जीवोंके कर्मोंका यथावत् भोग करना आदि भी ईश्वरके सृष्टि निमित्त गुणकर्म स्वभावका सफल होना ऐसा जो तुमने माना है तो ईश्वरको बडा भारी कलङ्क लगाते हो क्योंकि सृष्टिके बनानेमें तो उसकी सफलता हुई और जो सृष्टि नहीं बनाता तब तो उसका ईश्वरपनाही नहीं रहता तो हम जाने हैं कि वह ईश्वर क्या ठहरा तुम्हारा बडा भारी मजूरया जो वह तुम्हारी सृष्टिकी मजदूरी न करता तो तुम उसको ईश्वर भी न मानते, अब देखो कि उस ईश्वरको कैसा दुःख हो गया। कि जैसे कोई एक पुरुष पाषाणको आकाशमें फेंककर अपना शिर उसके नीचे

करदिया तो देखो उस निर्विवेकी पुरुषका शिर फटा तो कैसा उसको दुःख हुवा जैसाही उस ईश्वरको दुःख होने लगा क्योंकि देखो जब उसने सृष्टिरची तब वह अपने चित्तमे ऐसा समझता होगा कि मे सृष्टि रचताहू तो सर्व जीव मेरी आज्ञा मानेंगे और मेरे हुक्ममें चलेंगे सो तो न हुवा और उलटा उसका खडन करनेवाले पैदा हुये और उसकी उलटी धूल उड़ाने लगे अर्थात् अवज्ञा करने लगे जो तुम कहो कि वह सर्वज्ञथा तो पहले उसकी सर्वज्ञता कहा गई जो लोग उसकी आज्ञाको नही मानते उनको क्यों रचाया, इसलिये वो सर्वज्ञभी नही और उलटा उस विचारेको पश्चात्ताप करना पडता होगा देखो जैसे कोई मनुष्यने अपने पुत्र स्त्री भ्राता आदि वा नौकर आदिकको उन सबोंकी अच्छी तरहसे पालना करके परवरिशकी और जब वे अपने २ होशहवाशमें दुरुस्त हुये तब वे उस पुरुषकी आज्ञासे विपरीत चलने लगे और उसकी अवज्ञा करने लगे इस बातको देखकर अपने दिलमे पश्चात्ताप करने लगे कि मैं इनकी परवरिश न करता तो ये मेरी अवज्ञा और मुझको दुःख क्यो देते औरभी देखो कि जो तुम उसको सर्व शक्तिमान् मानते हो सोभी असङ्गत है क्योंकि जो शक्तिमान् होते है उनके सामने उनसे विपरीत कोई नही कर सकता है कदाचित् कोई करेभी तो उसका दड वो शक्तिवान् पुरुष उसीवक्त उसको देता है अब हम तुमको प्रत्यक्षका प्रमाणभी देते है देखो कि वर्तमान् कालमे अङ्गरेज लोगोका जो राज्य है उसमें राजा आदिक उनके हुक्मके प्रतिकूल अर्थात् उनके हुक्मके बिना जो कोई अपनी हेकडी वा अभिमानसे कोई काम करले तो उसी समय उसको राज्यसे उठाकर अपनी एजेंटी कर देते है और उसका कुछ अ-खत्यार नही रहने देतेहै अब देखो यहा विचार करो कि मनुष्य आदिमे जो प्रबल अर्थात् प्रता-पवान् तेजस्वीके सामने निर्बल राजा आदिकका जोर नही चलता तो फिर ईश्वर सर्व शक्ति-मान् सृष्टिका रचनेवाला उसके विरोधी जो सांख्य बौद्ध आदि उसको नही माननेवाले और उसकी अवज्ञा करनेवाले निरन्तर स्वतन्त्र होकरके जैनी लोग उसका खडन करते है इससे तुम्हारा ईश्वर सर्व शक्तिमान् नही ठहरा किन्तु इन लोगोंकी शक्ति प्रबल दीखती है तो तुमने जो उसकी सर्व शक्ति मानी वो बाझके पुत्रके समान है। दशवा मन्तव्य जो तुमने सृष्टिकाकर्त्ता ईश्वर अवश्य करके माना सो मानना ठीक नहीं क्योंकि पेश्तरही हम उसका सब रीतिसे खडन कर चुके है। ग्यारहवा मन्तव्य तुम्हारा मानना ठीक नही है। बारहवा जो "मुक्ति विषयमे मानते हो सोभी ठीक नही है सो तुम्हारी मु-क्तिका" विषय यह है अर्थात् सर्व दुःखोंसे छूटकर बन्ध रहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टिमें स्वेच्छासे विचरना नियत समय पर्यन्त मुक्तिके आनन्दको भोगके ससारमें आना॥ और तेरहवेंसे तेईसवें तक तो निष्प्रयोजन तुम्हारा मानना है सो निष्प्रयोजन होनेसे हमने इसका कुछ विचार न किया और चौवीसवा जो तीर्थ मन्तव्य है उसको हम यहा लिखते है " पुरुषार्थ प्रारब्धसे बडा " इसलिये है कि जिससे सञ्चित् प्रारब्ध बनते जिस-के सुधरनेसे सब सुधरते है और जिसके बिगडनेसे सब बिगडते है इसीसे प्रारब्धकी अपेक्षा पुरुषार्थ बडा है ॥ और २५ से ३७ तक मन्तव्य तुम्हारा निष्प्रयोजन है ॥ और ३८ वा जो मन्तव्य तुम्हारा आप्तका लक्षण, ठीक नहीं सोभी लिखते है " आप्त " जो यथार्थ

वक्ता, धर्म्मात्मा, सबके सुखके लिये प्रयत्न करता है उसीको " आप्त " कहता हूँ ॥ ३९ वा " परीक्षा पाच प्रकारकी है इसमेंसे प्रथम जो ईश्वर उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेद विद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टि क्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पाचवी अपने आत्माकी पवित्रता विद्या इन पाच परीक्षा आसे सत्याऽसत्यका निर्णय करके सत्यका ग्रहण असत्यका परित्याग करना चाहिये ॥ अब ४० से लेकर ५१ तक जो मन्तव्य है उसको निष्प्रयोजन होनेसे इस जगह उसका विचार नहीं किया ॥

अब तुम्हा रा १२ वा मन्तव्य जो कि मुक्ति विषयमें तुमने लिखा है कि मुक्ति गया हुआ मनुष्य भी कुछ कालके बाद आनन्द भोगकर फिर ससारमें आता है तो हम तुमसे पूछे है कि क्या उसको प्रकृति अर्थात् अज्ञान अविद्या खेंचकर लाती है वा वोही अपनी इच्छासे चला आता है अथवा मुक्त जब होता है तब उसमें अविद्याका लेश बना रहता है ॥ ईश्वर ही उसको जगत्में अर्थात् ससारमें जन्म मरण करता है इन चार विकल्प से हम तुमको पूछते है प्रथम पक्ष जो तुम अङ्गीकार करोगे जब तो वो जो तुम्हारी प्रकृति अर्थात् अविद्या जडपदार्थ है तो जडपदार्थ तो तुम्हारे मतमे तुम्हारे कहनेसे कुछ करही नही सकता तो इससे तो वो मुक्त हुवा जीव ससारमे आना ये बात बनती ही नही है द्वितीय पक्ष अङ्गीकार करो तो वो भी तुम्हारा मानना युक्तिसिद्ध नहीं होताहै क्योंकि जो जीव मुक्त हुआ है तो पहले जन्म मरणके दुःखसे छूटनेके लिये तब, जप योगाभ्यास ज्ञानादि अनेक साधनोंसे अविद्याको दूरकर अनादिकालका जन्ममरण था उसको मिटायकर अपने स्वरूप आनन्दको प्राप्त होकर फिर वह जानता हुवा इस ससारके जन्ममरणरूपी दुःखकी वाञ्छाकर क्योंकर निर्विवेक होकर इस ससारमे आवेगा और जो कदाचित् उसका ससारमें आना मानोगे तो उसका जो पहले लिखे हुवे साधन उनसे जो उत्पन्न हुवा ज्ञानादि विवेक सो सर्व निष्फल हो जायगा अब देखो जैसे कोई पुरुष अन्धा था और वह नेत्रोंके न होनेसे अनेक तरहके मार्गमे दुःख पाता था और बहुत दुःखीथा अब उस पुरुष को सद्गुरु डाक्टर जराह आदिके मिलनेसे उसके नेत्रमें जो धुन्धरूपी मेल था सो दूर हो गया और आंखे उसकी दिव्य हो गई और सब वस्तु उसको यथावत् दीखने लगी अब कहो वह पुरुष जिसको नेत्रोंसे अच्छी तरह दीखने लगा कांटोंके झाडमें अथवा कूँवादिमें क्योंकर पडेगा अर्थात् कदापि नही पडेगा क्योंकि उसको पहले अन्धेपनमें पडकर जो दुःखका किया हुवा अनुभव उसके चित्तमे स्थिर है तो यहा पक्षपात छोडकर विचार करो कि जिसको अपना स्वरूप ज्ञान हुवा वह ससार मे फिर क्योंकर आवेगा अब देखो सत्यार्थप्रकाशके नवें समुल्लास ॥ २९४ ॥ के पत्र में ऐसा लिखा है कि " जैव इसका जन्म मरणादिक कारण जो अविद्यादिक दोष उनसे किये गयेथे जो कर्म के भोग सब नष्ट हो जाते है और आगे जो कर्म किये जाते है सो सब ज्ञान ही के लिये करता है सो अधर्म कभी नही कर्त्ता किन्तु धर्म ही करता है उससे ज्ञान फल ही वह चाहता है अन्य नहीं फिर उसके जन्म मरण का जो मूल अविद्या सो ज्ञान से नष्ट हो जाता है फिर वो जन्म धारण नहीं करता " अब देखो तुम ही विचार करो कि जब वोह जन्म धारण नहीं करता है तो वो फिर ससार मे क्योंकर आता है ? अब जो वह आता है

तो तुम्हारा सत्यार्थप्रकाश का लिखना कैसा हुवा कि जैसे मथुराके चौवेलोग भाँग पीकर गप्पे ठोकते हे अर्थात् निष्प्रयोजन गाल बजाते हे इसलिये इस जगह तुम्हारी मुक्तिका आना सिद्ध न हुवा और भी देखो यहां विचार करो कि कारणके नष्ट होने से कार्य कदापि उत्पन्न नही होगा क्योंकि देखो जन्म मरणरूप जो संसार कार्य है सो उसका कारण अज्ञान अर्थात् अविद्या है सो ज्ञान से नष्ट होगया तो सादि अनन्त मोक्ष जीवके वास्ते सिद्ध होगया। जो अब चौथे ४ पक्ष में कहो कि नियत समय पर्यन्त मुक्तिके आनन्द भोग कर लेता है जब फेर ईश्वर संसार में उस मुक्त जीवको लाय कर जन्म मरण कराता है जो ऐसा कहो तो वह ईश्वर न ठहरा किन्तु अन्यायी, पक्षपाती, निष्प्रयोजन जीवोंको दुःख देने मे तत्परहुवा उसकी दयालुता न रही और न्याय भी न रहा क्योंकि देखो वेद भूमिका सत्यार्थप्रकाशादि ग्रंथो में सृष्टिकी उत्पत्ति में लिखते हो कि अगाडी सृष्टिके जो जीवो मे कर्म थे उनके अनुसार सर्व जीवों को जैसा जिस जीव का कर्म है वैसाही रचता हुवा जब तुम ऐसा मानते हो तो उन मुक्त हुवे जीवों में कोईतरह का कर्म वा अविद्या अथवा अज्ञान रहा ही नथा तो फिर उन मुक्त जीवोंको किस निमित्त ससारमे ईश्वरने रचा जो विना निमित्त कारणके मुक्त जीवोको ससार में रचा तो तुम्हारे कहनेसेही ईश्वर जो है सो निर्विवेकी अज्ञानी निर्दयालु सिद्ध होगया जो तुम कहो नहीजी यो तो सर्वज्ञ दयालु, न्यायकारी ईश्वर है तो मुक्त जीवोको विना कारण ससारमें रचता है तो तुम्हारेको वचन व्याघात दूषण आता है "मममुखे जिह्वा नास्ति" अर्थात् मेरे मुखमें जिह्वा नही है अब विवेकी पुरुष बुद्धिसे विचार करते हे कि देखो इसके मुखमें जिह्वा तो है नही तो फिर यह बोलता कैसे है ऐसे ही तुम लोगोको भी विचार करना चाहिये कि जब ईश्वर कर्मके अनुसार जीवोको योनि वा शरीर देता है तो फिर मुक्त हुये जीवोको ससारमे रचना ईश्वरमें न्यायका असभव होता है अब जो तुमको अपनी आत्माके कल्याण करनेकी इच्छा है तो इस कपोलकल्पित मतको छोडकर जो सर्वज्ञ "वीतराग" देवने मोक्षका वर्णन किया है उसीको अगीकार करो अब जो तुम कहो कि मोक्ष हुवे जीवोको फिर ससारमे आना न माने तो मोक्षमें बहुत जीव इकट्ठे होनेसे मोक्ष भर जायगा और ससार खाली हो जायगा और सृष्टि क्रम न रहेगा और कोई ईश्वरको न जानेगा और हरिद्वारके मेलेमें जैसे भहदल हो अर्थात् भीड भाडका अथवा धक्का मुकी होने लग जायगी इसलिये मोक्षसे आना ही ठीक है अब देखो कि ऐसी २ तुम्हारी बातें सुन करके हमारे जीमे बडी करुणा आती है कि जे विचारे आर्य्यसमाज वाले कैसे भोले अर्थात् समाजके भ्रमजालमे फँसकर कैसी निर्विवेकता बुद्धिकी कल्पनाकर आत्म अनुभव रहित बुद्धिमत्ता दिखलाते हे अजी कुछ विचार तो करो क्या तुमने भी जैसी मुसल्मान वा ईसाई, वल्लभकुली आदिकों कीसी मुक्ति अर्थात् मोक्ष तुम्हारे ईश्वरने भी मकान बनारक्खा दीसै, सो भर जायगा तो फेर दूसरा मकान बनाना पडेगा तो अब देखो मुसल्मान ईसाई लोगोंके तो बीबी और मेम मिलती है क्या तुम्हारे भी ऐसी औरतें मिलती सो मोक्ष भरजायगा ऐसा तो तुम मानते ही नहीं हो क्योंकि जिस समयमें जो जीव मोक्ष होता है उसके स्थूल कारण शरीरादि अथवा पुण्य पापादिक अथवा परमाणु आदिक

कुछ नहीं रहता खाली ईश्वरमें व्याप्य व्यापक भाव करके ईश्वराधारसे अपनी इच्छाके अनुसार सब जगह विचरता है तो फिर मोक्ष भर जायगा ऐसा कहना आकाशके फूल जैसा हुवा । दूसरा जो तुम कहते हो कि संसार उच्छेद हो जायगा तो हम जानते हैं कि दयानन्द सरस्वती जीने कहीं जीवात्माकी गणना अर्थात् गिनतीभी गिनकर किसी ग्रंथमें लिखी दीखे इसलिये संसारका उच्छेद हो जायगा सो तो तुम्हारे वेद मंत्रोंमें कहीं दीखती है नहीं तो फिर अपनी मनकल्पना करके संसारका उच्छेद हो जायगा ऐसी स्वमति कपोल कल्पना करके क्यों अविद्या अज्ञानको बढाते हो देखो सर्वज्ञका वचन है कि संसारमें घटे नहीं और मोक्षमें बधे नहीं तो इस सर्वज्ञके वचनका अभिप्राय समझना कठिन है क्योंकि देखो यहां एक दृष्टान्त देते हैं:—कि संसारमें पानी अर्थात् वृष्टि हरसाल होती है उस पानीके प्रवाह (बहने) से मट्टी और पत्थरभी बहुत बहते हुवे बडी २ नदियोंमें जाते हैं और वह नदी समुद्रकी खाडियोंमें जाती है और वह खाडी समुद्रमें जाती है तो उस पानीके सङ्गमें लाखों करोडों मन पत्थर मट्टी आदिकभी बह जाती है तो अब देखो कि इस आर्यवर्त्त या किसी और विलायतमें खाडा या गढा नहीं होगया अथवा जो कुछ पातालमें नहीं चले गये और वह समुद्र उस मट्टी पत्थर आदियोंसे भरभी नहीं गया अर्थात् ऐसा न हुवा कि समुद्र सूख करके निर्जल हो गया हो तो अब इस जगह अगर आत्मार्थी हो तो एक अंश लेकर अपनी बुद्धिमें विचार करे तो दार्ष्टान्त यथावत् मिलता है कदाचित् पक्षपाती होकर निर्विवेकतासे आत्माको डुबानेवाला अज्ञानरूपी अभिमानमें चढकर जो न माने तो उपदेशदाताका कुछ दोष नहीं कदाचित् सृष्टिक्रम बिगड जानेके भयसे जो मुक्त गया जीव आजाता है तो हम तुमको कहते हैं कि मुक्त हुवा जीव फिर संसारमें आगया तोभी तो सृष्टिक्रम बिगड गया क्योंकि देखो जो कि उपदेश देना और मुक्तिके जो साधन हैं उन करके सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्त होना यहभी तो तुम्हारे सृष्टिक्रममें है जब तो जैसाही किया और जैसाही न किया सब निष्फल होगा क्योंकि कृतनाश अकृत आगम ये दूषण हो जायगा इसलिये ये ऐसाही अंगीकार करो कि मोक्ष गया हुवा जीव फिर संसारमें नहीं आता है इसके माननेसे सृष्टिक्रम नहीं बिगडेगा और योगाभ्यास ज्ञानादि होनेसे अविद्या दूर होकर संसारकी निवृत्ति हो जाती है इन साधनोंको निष्फलता न आवेगी अब जो कहो हरिद्वारकेसी भीड हो जायगी और धक्कामुक्की होगी ऐसा जो तुम कहो तो यहां कुछ बुद्धिका विचार करो कि उस मेलाम कैसे मनुष्य स्थूल शरीरवाले इकट्ठे होते हैं जो सेरभर खांय और अढाई सेर विष्ठा करें निर्विवेक अज्ञानसे भरे हुवे अथवा दूकान्दारभी बहुत इकट्ठे हो जाते हैं अथवा स्त्री आदिक तरकारी भाजी बेचनेवाली और बिसाती लोगभी बहुत इकट्ठे हो जाते हैं जब ऐसी तुम्हारी मोक्ष है तब तो मुसल्मान ईसाइयोसेभी बढकर ठहरा इसीलिये तुम्हारे ईश्वरने ऐसा विचारा कि हरिद्वारमें तो अंगरेज लोग बन्दोबस्त करलेते हैं परन्तु मैं तो अकेला हूँ क्योंकर बन्दोबस्त करूंगा इसवास्ते मुक्त हुवे जीवोंको फिर संसारमें ले आता है जैसे अंगरेज लोग न्हवा न्हवा कर कहते हैं कि "चलो" इससे मालूम होता है कि कुछ अंगरेजोंके कानूनभी सीखे हैं इसीलिये दयानन्द सरस्वती अंगरेजोंकी बहुत

पुष्टि करता है जो कहो कि ईश्वरको कोई नही जानेगा तो हम कहते है कि ईश्वरने अपने जनानेके वास्ते निरपराधी मुक्त जीवोंको फिर ससारमें गेर जन्म मरण करना और अपनी ईश्वरताको जनाना तव उस ईश्वरका न्यायकारीपन और दयालुता कहां रही क्योंकि वेतो विचारे निर्दोष, निरपराधी मुक्तिदशामें अपने आनन्दमेंथे उनको उस ईश्वरने जन्म मरणरूपी सृष्टिमें गेरकर उनको दुःखी करता हुवा आप तमाशा देख रहा हे और उसको कोई तरहकी दया नही आती तव वो ईश्वर क्या ठहरा एक जबरदस्त शेतान ठहरा इसीलिये जो विवेकी पुरुष है सो ऐसे ईश्वरको न मानकर मुक्तिमें सदा आनन्दको प्राप्त रहते हैं फिर कभी उनका इस संसारमे कदापि आना नहीं होगा अर्थात् कभी जन्म मरण करना न होगा परन्तु जिन्होने ऐसा झूठा ईश्वर कल्पित बनाया है अर्थात् मान रक्खा है उन जीवोंको उस कल्पित ईश्वर माननेका यही उनके शिरपर दण्ड होगा कि अनेक कष्ट करके योगाभ्यास ज्ञानादि साधनोंसे मुक्ति पायकर फेर ससारमे जन्म मरण करना और दुःखोंको भोगना दिगू इति ॥

अब देखो जो तुम्हारा २४ वॉ मन्तव्य तीर्थ विषयमें है उसमे जो तुम तीर्थ नही मानते हो सोभी तीर्थ ठहरता है अब देखो पक्षपात छोडके कुछ विचार करो कि तीर्थ शब्दका अर्थ क्या है और किस धातुसे तीर्थ शब्द बना है तो अब देखो कि (तृप्लवन तरणयोः) इस धातुसे तीर्थ शब्द सिद्ध होता है तो इस शब्दका अर्थ क्या हुवा कि (तारयतीतितीर्थः) कि जो तारे उसीका नाम तीर्थ है सो तीर्थ दो प्रकारकेहे एक तो जङ्गम और दूसरा स्थावर तो जङ्गम तो उसे कहते हे कि जो आत्मविद्याका उपदेश देनेवाले विद्वान् अर्थात् त्यागी विवेकी पक्षपातसे रहित इस ससारको असार जानके अध्यात्मविद्यासे आतम अनुभव जिन्होने किया है एक तो वो नतु अज्ञानी, अनाचारी, वेषधारी, पक्षपाती, अध्यात्मविद्याके अजान मत्त ममत्वी, अर्थात् अपने मतके जालमे फंसानेवालेको तीर्थमे नही ॥ इस जङ्गम तीर्थको तो तुमभी अङ्गीकार करते हो सो इसमें तो हमको कहनेका कुछ जरूर नहीं ॥ दूसरा जो स्थावर तीर्थ उसको कहते हे कि जो आचार्योंने पर्वतोंमे या अन्यभूमिमें श्रेष्ठ जानके अथवा जो मूर्ति आदिको स्थापन किया है ये दो प्रकारके तीर्थ हुवे इन दोनो तीर्थोंको मानना चाहिये अब इसी मन्तव्यमें जो तुम्हारे २१ मन्तव्यमे मूर्तिको " मे अपूज्यमानताहूँ" सो अब हम इस स्थावर तीर्थ और मूर्ति पूजनको युक्तियों और प्रमाणसे सिद्ध करते है अब देखो विचार करो कि (तारयतीतितीर्थः) तो अब तरणरूप जो कार्य ठहरा तो इसमें कारणभी अवश्य होना चाहिये क्योंकि विना कारणके कार्य्यकी सिद्धि नही होती है तो कारण किसको कहते हे और कारण कितने प्रकारके हे, तो हम कहते हे कि कारण दो प्रकारके होते है एक तो उपादान कारण, दूसरा निमित्त कारण इन दोनो कारणोंमेंसे एकभी कारण न्यून होतो कार्य कदापि नही होगा इसलिये दोनों कारणोंको अवश्यमानना चाहिये तो अब देखो इस जगह विचार करो कि स्थावर तीर्थ तो निमित्त कारण है और उपादान कारण जो जीव तरनेवाला उसका जो प्रमाण और कर्तव्य वो उपादान कारण है जो कहो कि वो स्थावर तीर्थ निमित्त कारण कैसे है तो देखो हम कह हे कि जो गृहस्थी अपने पुत्र कलत्र संसारी कार्यमे फँस रहा है उससे जो कोई कहे कि तुम एक मास तक

एकान्त बैठ करके ईश्वर अर्थात् आत्मध्यान करो तो उससे कदापि ऐसा न होगा कि सब कामको छोड़के और उस आत्मध्यानमें लगे ऐसा कदापि न होगा अब देखो किसी आचार्य्यने उपदेश देकर कहा कि अमुक जगह जो तीर्थ है उस जगह जाय कर जा परम श्वरका ध्यान अर्थात् स्मरण करे और उस भूमिका स्पर्श करे तो उसका जल्दी कल्याण होगा अर्थात् पापोंसे दूर होजायगा ऐसा सुनकर उस पुरुषको कांक्षा हुई कि उस तीर्थकी यात्रा करू मेरेको दो महीना लग जाय तो लगो। अब देखो कि दो महीना उसको यात्रामें लगे तो दो महीने तक उसका जो कि घरमें रहकरके असत्य भाषणादि दिन रात अनेक अनेक संसारी कामोंका पापादिक स्त्री आदिकका सेवन इन्द्रियादिकोंका विषय करताथा सबसे निवृत्त हुवा और सत्य भाषणादि इन्द्रियोंके विषयका त्याग, स्त्री सेवन और संसारी कर्मोका त्याग एक वेर भोजन करना धरती पर शयन करना और अनेक बातोंको त्याग करके ईश्वरका स्मरण करना अथवा आत्मविचार करना अथवा महत्पुरुषोंके अर्थात् आत्मविद्याके उपदेश करने वाले उनका दर्शन जगह २ होना उनसे जो आत्मविद्याका उपदेश पाना और उनका भोजन आदिसे सत्कार करना इत्यादिक नाना प्रकारके कल्याण कारी लाभ होते है और जो घरमें बैठे हुये नाना प्रकारके अनर्थ करे उनसे निवृत्त होता है अर्थात् दूर होता है इसमें निमित्तकारण वो तीर्थ हुवा वो तीर्थ न होता तो ऊपर लिखी हुई बातोका लाभ अलाभ कदापि न होता इसवास्ते तीर्थ अवश्य होना चाहिये, इति तीर्थ सिद्धिः॥ अब पक्षपातको छोड़के बुद्धिसे विचार करो कि तीर्थसे पापकी निवृत्ति होती है और आत्मविद्याका लाभ होता है वा नहीं तो उस गृहस्थी संसारी अविद्यामें फँसे हुये जीवको कदापि ऐसा लाभ न होता इसवास्ते सर्वज्ञानी पुरुष दयालु सर्व उपकारक जगत्बन्धु निस्पृह होकर उपदेश देते हुवे जो जीव आत्मार्थीके लिये ऊपर लिखा हुवा उपदेश सूर्यके समान करता हुवा जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करता है और सबको प्रकाशता है इसलिये पक्षपातसे रहित होकर प्रकाश करता है तो उसके प्रकाश होनेमें कुछ दूषण नहीं परन्तु उल्लू अर्थात् घुग्घू की सूर्यके प्रकाशमें आखें बन्द हो जाती है अर्थात् उसको कोई पदार्थ नही सूझता है तो इसमें कुछ सूर्यका दूषण नही है किन्तु उस उल्लू जानवर काही दूषण है इसीरीतिसे जो सर्वज्ञ आत्मविद्या वालोंने तीर्थयात्रा आदिक उपदेश दिये है सो उन्होने उन सर्व जीवों के उपकारके लिये ही दिये है इसीलिये उनकी दयालुता सिद्ध होती है जो अविद्या अज्ञानसे भरे हुवे मत ममत्वोंमें भरे हुये भागके नशेमें आखोंको मींचकर विचार करनेवाले उल्लूके समान होकर ऐसे उपदेशों को न माने तो उनके उपदेशोंका कुछ दूषण नही वो उनकी अज्ञान रूपी भङ्गका दूषण है तीर्थ विषयमें दिग् इति॥

अब मूर्तिपूजनभी अनादि सिद्ध है क्योंकि मूर्तिसे हरेकको ईश्वरका ज्ञान हो सक्ता है और तुमने तेरह वें समुल्लासमें मूर्तिपूजनके विषयमें अज्ञान दशासे लिखा है इसीलिये हम तुम्हारा अज्ञान दूर करनेके लिये संक्षेपसे प्रश्नोत्तर लिखते हैः—

(वादीका प्रश्न) मूर्तिपूजन जैनियोंने चलाया? (उत्तर) सबके पहले जैन मतही

१ सिद्धान्तीकी ओरसे उत्तर और वादीकी ओरसे प्रश्न ऐसा जानना चाहये।

था और जितने मत हैं सबही पीछे निकले हैं इसीवास्ते प्रथम मूर्त्तिपूजनभी जैनियोंने चलाया प्रथम जैनमत सिद्ध करनेके लिये इसही प्रश्नके उत्तरमें पीछेसे लिखेंगे (प्रश्न) जैनियोंने मूर्त्तिका पूजन क्यों चलाया है ? (उत्तर) भव्य जीवोंको ज्ञान होनेके वास्ते (प्रश्न) मूर्त्तिसे मनुष्योंको क्या ज्ञान होगा ? (उत्तर) मूर्त्ति पूजनेसे ईश्वरका ज्ञान होगा (प्रश्न) ईश्वर तो निराकार है और मूर्त्ति साकार है तो उस ईश्वरकी मूर्त्ति क्योंकर बनेगी ? (उत्तर) जिस ईश्वरको तुमने निराकार मानकर सृष्टिका कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता माना है उस ईश्वरका बोध होना तो शशाके सींगका बोध होना जैसा है जैसे तुम भंगपीकर उस नशेके उत्तरमें निराकार ईश्वरका मन्त्रोंसे बोध कराते हो तैसा कुछ जैनी लोग नही कहते किन्तु जैन आचार्य्य अध्यात्म अपनी आत्माका साक्षात्कार करके उस साकार ईश्वर जो कि ३५ वानी ३४ अतिशय आठ महा प्रतिहार्ज चोसठ इन्द्र करके पूजित, राग द्वेष रहित निस्पृह करुणानिधान, सर्व जीवोपकारी, जगद्बन्धु, जगद्गुरु, दीनदयालु, अपक्षपाती, सूर्यसमान, अज्ञानरूपी तिमिर दूर करने वाला, तरण तारण, निमित्त कारण; मोक्षरूप कार्यका साधक है ऐसे ईश्वरका प्रत्यक्ष स्वरूप देखकर उसके अभावमें उसकी मूर्त्ति बनायकर उस ईश्वरका बोध कराना है । (प्रश्न) मूर्त्ति तो जड होती है उससे क्योंकर बोध होगा ? (उत्तर) देखो काँच जड पदार्थ है अब उस जड पदार्थ रूपी काँचमें अपना मुख देखनेसे अपने मुखका यथावत् चेहरेका बोध उस जड पदार्थसे हो जाता है इसरीतिसे उस मूर्त्तिसे भी ईश्वरका बोध हो जाता है । (प्रश्न) काँचके देखनेसे तो चेहरा मालूम होता है परन्तु मूर्त्ति देखनेसे तो जैसा हमारे चेहरे का साक्षात्कार होता है तैसा ईश्वरका नही होता है ? (उत्तर) तुमको अपनी आत्माका कल्याण करनेकी इच्छा नही है किन्तु विवाद करनाही जानते हो क्योंकि देखो विचार करो कि जैसा उस काँचमें अपनी मूर्ति, चेहरा, आकृतिका बोध होता है उसीरीतिसे उस शांतिरूप मुद्रा देखनेसे शांतिरूप भावको प्राप्त होता है । (प्रश्न) उस पाषाणकी मूर्त्तिसे देखकर शांत होता है तो क्या और पाषाणादि देखनेसे शान्त नही होता अथवा जो मूर्त्तिका बनानेवाला उसीको देखनेसे क्या शांति नही होता तो मूर्त्ति बनानेवालेसे शांति नही हुवा तो मूर्त्तिसे क्या होनाथा (उत्तर) अब हमको तुम्हारी बातें सुनकर बडी करुणा आती है क्योंकि देखो तुम लोग विवेकरूप ज्ञानको छोड़कर कुतर्करूपी भंग पीकर बेसमझकी बातें करते हो क्योंकि उस मूर्त्तिमें आचार्य्योंने तो उस ईश्वरकी संकेतरूप स्थापनाकी है और मूर्त्तिके बनानेवालेकी वा इतर पाषाणादि स्थापना नही की है जिससे उस ईश्वरका बोध हो । (प्रश्न) क्या स्थापना करनेसे ईश्वर उसमे आ बैठता है जो उस स्थापनासे बोध होता है? (उत्तर) उस ईश्वरकी यथावत् सूरतको देखकर उसका प्रतिरूप प्रतिमा अर्थात् उसकी नकलको देखनेसे यथावत् बोध होता है जब तक नकल न देखेगा तब तक असलकी प्रतीति न होगी । (प्रश्न) नकल कितने प्रकारकी होती है? (उत्तर) नकल दो प्रकारकी होती है एक तो असद्भूत, दूसरी सद्भूत । (प्रश्न) असद्भूत और सद्भूत किसको कहते हैं? (उत्तर) असद्भूत उसको कहते हैं कि जैसे अक्षरका लिखना जैसे "दयानन्द सरस्वती" यह जो अक्षर है सो असद्भूत स्थापना है इसको देखनेसे कुछ उनका शरीर आकार आदि प्रतीति न होगा, सद्भूत उसको कहते हैं कि

दयानन्दका फोटोग्राफकी खेंची हुई तसवीर दयानन्दी मत वाले रखते हे उस सद्भूतसे यथावत् दयानन्द सरस्वतीका बोध होता हे इसीलिये स्थापनाको जरूर मानना होगा जो स्थापनादिक कोन मानोगे तो ककारादि अक्षरोंका बना हुवा वेद इतिहास मनुस्मृति आदि कुरान बाइबिल इत्यादिककाभी मानना न होगा। (प्रश्न) मूर्तितो मनुष्यकी बनाई हुई है और जड है? (उत्तर) ककारादि अक्षरभी स्याही कलम कागजसे मनुष्योंके लिखे हुवे अपने २ संकेत जड पदार्थ ह तो उनमेभी न होगा। (प्रश्न) उनके बाँचनेसे यथावत् बोध होता है? (उत्तर) यह तुम्हारा कहना मिथ्या है जो बाँचनेसे होता हे तो तुम्हारे बनाये हुवे सत्यार्थप्रकाशके तृतीय समुल्लासमे जो कि हवन करनेकी वेदी बनानेके लिये जिस वेदीमें होम किया जाता है उस वेदीका जो चिह्नादिक और पात्रोंके चिह्न लिखे हुवे पत्र ४१ से लेकर ४२ तक तो जब अक्षरोंसेही बोध होता तो तुम्हारा लिखना व्यर्थ हुवा इसीलिये बुद्धिमें विचार करो कि जैसे तुमने उनके चिह्न अर्थात् उनके आकार बनायकर बोध कराया है इसरीतिसे उस सद्भूत प्रतिमाका आकार देखनेसे ईश्वरकाभी बोध होता है। (प्रश्न) अक्षरोंकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है? (उत्तर) जैसे अक्षरोंकी स्थापना तुम्हारे ज्ञानका निमित्त है तैसेही परमेश्वरका ज्ञान होनेके निमित्त उस मूर्तिको देखना है क्योंकि जब तक कोई बुद्धिमान् पुरुष किसी वस्तुका नकशा (चित्र) बिना देखे उस वस्तुका यथावत् स्वरूप नही जान सकेगा इसीलिये बुद्धिमान् आत्मार्थी सत् असत् विचार शील स्थापनाको अवश्यही मानेगा (प्रश्न) हमारे वेद आदिकोंमें तो परमेश्वरको निराकार ज्योतिस्वरूप, सर्वव्यापक, होनेसे मूर्ति नही बन सकती है? (उत्तर) अब हम तुम्हारी बुद्धि विलक्षणता देखकर जैसे कोई बाल हठग्राही पक्षीकी तरह एक वचन सीखकर बार बार उसीको उच्चारण करता है क्योंकि देखो हम पेस्तरही तुम्हारे मतव्यको लेकर तुम्हारा ईश्वर निराकार ज्योति स्वरूपक किसी युक्ति वा प्रमाणस सिद्ध न हुवा ऐसा हम पेस्तर लिख आये है अब देखो बडी हसीका बात है कि तुम्हारे ईश्वरका आकार मूर्ति नहीं तो फेर उसको मुख बिना वेदका उच्चारण करना नहीं हो सकता है जो कहो कि बिनाही मुखके परमेश्वर शब्दका उच्चारण कर सकता है तो इस कहनेमे तुम्हारा कोई प्रमाण नही जो कहो कि वेद प्रमाण है तब तो जब ईश्वरही सिद्ध न हुवा तो वेद क्योंकर हो" सके है इसीलिये जो शब्द मानना है सो स अक्षर शब्द वर्णात्मक है तो जब वो वर्णात्मक शब्द ठहरा तो बिना मुख, जिह्वा, कण्ठ, तालुके उच्चारण न होगा अर्थात् वर्णात्मक स अक्षर शब्द है सो मुखसे उच्चारण होगा तो जब मुख सिद्ध हो गया जब शरीरके बिना मुख नही होता तो शरीरभी सिद्ध हुवा इसलिये जो कोई वादी वर्णात्मक स अक्षर शब्दरूप जो पुस्तकमे लिखा हुवा ईश्वरका वचन मानेगा जब वर्णात्मक स्थापना मानी है तो उस बुद्धिमान् विवेकीको उस ईश्वरका मुख्य शरीरभी मानना पडगा तो जब शरीर ईश्वरका मान लिया तो उसकी मूर्तिभी मानना अवश्य होगा जब मूर्ति मानली तब तो उसका पूजन करना अवश्य होगा। अब पूजनके विषयमें इस प्रपञ्च तीसरे प्रश्नके उत्तरमें जहा कि ढुंढिया मतका वर्णन होगा तहा लिखगे वहा देखो, इस जगह केवल मूर्तिका सिद्ध करनाथा वह कर दिया अर्थात् मूर्ति सिद्ध हो गई अब जो

तुमने आप्तका लक्षण लिखा है सो उसमे यथार्थ वक्ता इतनाही कहना ठीकथा जियादः बढ़ाना निष्प्रयोजन हुवा इस आप्तके लक्षणको हम चोथे प्रश्नके उत्तरमे लिखेंगे तो वहा देखना और जो तुमने पाँच परीक्षाके लिये लिखा सोभी निष्प्रयोजन है क्योंकि जिस बुद्धिमान्‌ने सत् असत्‌का निर्णय करके सत्‌को ग्रहण किया और असत्‌का त्याग किया उसीमे ईश्वर वेदादि सब अन्तर्भाव हो जावेगे अब तुम्हारे मन्तव्यका माना हुवा पदार्थ ठीक न हुवा ऐसेही तुम्हारे सत्यार्थप्रकाशकी जो गप्पे हे उनकोभी किञ्चित् बाल जीवोंके डुबानेके वास्ते लिखी है सो भी दिखलाते हे और जो कि जैनमतके विषयमे जैन ग्रन्थोंमे नही है ओर वे मानतेभी नही हे उनके ग्रन्थोका नाम लेकर अपनी स्वकपोल कल्पित करके बाल जीवोंको बहकानेके वास्ते लिखी हे उनकोभी लिखकर दिखाते हे अब देखो सत्यार्थप्रकाशमे कैसी २ गप्पे लिखी हे क्योंकि देखो सत्यार्थप्रकाशके तीसरे समुल्लासके ४५ वे पृष्ठमे ऐसा लिखा है कि चार प्रकारके पदार्थ होमके वास्ते हे एकतो जिसमे सुगन्ध गुण होय जैसे कि कस्तूरी केशरादिक और दूसरा जिसमे मिष्ठगुण होय जैसे कि मिश्री शर्करादिक और तीसरा जिसमे पुष्टकारक गुण होय जैसा कि दूध घृत और मासादिक और चौथा जिसमें रोग निवृत्तकारक गुण होय जैसा कि वैद्यक शास्त्रकी रीतिसे सोमलतादिक औषधियाँ लिखी हे उन चारोंका यथावत् शोधन उनका परस्पर संयोग और सस्कार करके होम करे अब देखो इस लिखनेसे तो मालूम होता है कि ईश्वरने मास होमनेके लिये जो हुक्म दिया है तब तो वह ईश्वर निर्दयी ठहरता हे क्योंकि उसने आपही तो सृष्टि रची और आपही जीवोंके मासका होम करना कह्या तब तो उपकार नही किया किन्तु अपकार किया ॥ अब देखो तीसरे समुल्लासमें ४७ के पन्नामे लिखा है कि जब अश्वमेधादिक यज्ञ होय तब तो असख्य सब जीवोंको सुख होय इससे सब राजा धनाढ्य और विद्वान् लोग इसका आचरण अवश्य करें ॥ दूसरे अब चतुर्थ समुल्लासमे ११२ के पृष्ठमें लिखा है कि पिता भ्राता पति और देवर ये सब लोग स्त्रीकी पूजा करें तो स्त्रीका पूजन तो वाम मार्गियोंमे होता है तो हम जाने कि दयानन्द सरस्वती जीको वाम मार्गियोंसेभी परिचय दीखे ॥ तीसरे चतुर्थ समुल्लासमें १२३ के पृष्ठमे पाच प्रकारका यज्ञ कहा है १ ऋषि यज्ञ अर्थात् सध्या उपासना, २ देवयज्ञ अर्थात् अग्नि-होत्रादिक, ३ भूत यज्ञ अर्थात बलि वैश्वदेव, चौथे नृयज्ञ अर्थात् अतिथिं सेवा; पाचवे पितृ यज्ञ नाम श्राद्ध और तर्पण अपने सामर्थ्यके अनुकूल और चतुर्थ समुल्लासके १३९ पृष्ठमें जो पदार्थ आप खाय उससे पञ्च महायज्ञ करे अर्थात् पितृ देव पूजाभी उसीसे करें अर्थात् श्राद्ध और होम उसीका करे मधुपर्क विवाहादिक और गोमेधादिक और देव पितृकार्य इनमें मासको जो खाता होय तो उसके लिये मांसके पिण्ड करनेका विधान है इससे मासके पिण्ड देनेमेभी कुछ पाप नही ॥ १६० के पृष्ठमे लिखा हे कि जबतक पितृ ऋणादिक को न उतारे और जो सन्यास ले तो वो उल्टा ससारमेंही डूबे इस विषयमे १६५ के पन्ने तक कई गप्पे लिखी हे सो हम कहातक लिखे और १६७ के पृष्ठमें लिखा है कि पाप पुण्य रहित जब शुद्ध होता है तब सनातन परमोत्कृष्ट जो ब्रह्म उसको प्राप्त होता हे फिर कभी दुःखसागरमें नही आता अब देखो इस जगह तो

दयानन्दका फोटोग्राफकी खची हुई तसवीर दयानन्दी मत वाले रखते हैं उस सद्भूतसे यथावत् दयानन्द सरस्वतीका बोध होता है इसीलिये स्थापनाको जरूर मानना होगा जो स्थापनादिक को न मानोंगे तो ककारादि अक्षरोंका बना हुवा वेद इतिहास मनुस्मृति आदि कुरान बाइबिल इत्यादिककाभी मानना न होगा। (प्रश्न) मूर्तितो मनुष्यकी बनाई हुई है और जड है? (उत्तर) ककारादि अक्षरभी स्याही कलम कागजसे मनुष्योंके लिखे हुवे अपने २ सकेत जड पदार्थ हे तो उनसेभी न होगा। (प्रश्न) उनके बाँचनेसे यथावत बोध होता है? (उत्तर) यह तुम्हारा कहना मिथ्या है जो बाचनेसे होता है तो तुम्हारे बनाये हुवे सत्यार्थप्रकाशके तृतीय समुल्लासमें जो कि हवन करनेकी वेदी बनानेके लिये जिस वेदीमें होम क्रिया जाता है उस वेदीका जो चिह्नादिक और पात्रोंके चिह्न लिखे हुवे पत्र ४१ से लेकर ४२ तक तो जब अक्षरोंसेही बोध होता तो तुम्हारा लिखना व्यर्थ हुवा इसीलिये बुद्धिमे विचार करो कि जैसे तुमने उनके चिह्न अर्थात् उनके आकार बनायकर बोध कराया है इसरीतिसे उस सद्भूत प्रतिमाका आकार देखनेसे ईश्वरकाभी बोध होता है। (प्रश्न) अक्षरोंकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है? (उत्तर) जैसे अक्षरोंकी स्थापना तुम्हारे ज्ञानका निमित्त है तैसेही परमेश्वरका ज्ञान होनेके निमित्त उस मूर्तिको देखना है क्योंकि जब तक कोई बुद्धिमान् पुरुष किसी वस्तुका नकशा (चित्र) बिना देखे उस वस्तुका यथावत् स्वरूप नहीं जान सकेगा इसीलिये बुद्धिमान् आत्मार्थी सत् असत् विचार शील स्थापनाको अवश्यही मानेगा (प्रश्न) हमारे वेद आदिकोमें तो परमेश्वरको निराकार ज्योतिस्वरूप, सर्वव्यापक, होनेसे मूर्ति नहीं बन सकती है? (उत्तर) अब हम तुम्हारी बुद्धि विलक्षणता देखकर जैसे कोई बालक हठग्राही पक्षीकी तरह एक वचन सीखकर बार बार उसीको उच्चारण करता है क्योंकि देखो हम पेस्तरही तुम्हारे मतव्यको लेकर तुम्हारा ईश्वर निराकार ज्योति स्वरूपक किसी युक्ति वा प्रमाणसे सिद्ध न हुवा ऐसा हम पेस्तर लिख आये हे अब देखो बडी हँसीका बात हे कि तुम्हारे ईश्वरका आकार मूर्ति नहीं तो फेर उसको मुख बिना वेदका उच्चारण करना नहीं हो सकता है जो कहो कि बिनाही मुखके परमेश्वर शब्दका उच्चारण कर सक्ता हे तो इस कहनेमे तुम्हारा कोई प्रमाण नहीं जो कहो कि वेद प्रमाण है तब तो जब ईश्वरही सिद्ध न हुवा तो वेद क्योंकर हो सके है इसीलिये जो शब्द मानना है सो स अक्षर शब्द वर्णात्मक है तो जब वो वर्णात्मक शब्द ठहरा तो बिना मुख, जिह्वा, कण्ठ, तालुके उच्चारण न होगा अर्थात् वर्णात्मक स अक्षर शब्द है सो मुखसे उच्चारण होगा तो जब मुख सिद्ध हो गया जब शरीरके बिना मुख नहीं होता तो शरीरभी सिद्ध हुवा इसलिये जो कोई वादी वर्णात्मक स अक्षर शब्दरूप जो पुस्तकामें लिखा हुवा ईश्वरका वचन मानेगा जब वर्णात्मक स्थापना मानी है तो उस बुद्धिमान् विवेकीको उस ईश्वरका मुख्य शरीरभी मानना पडेगा तो जब शरीर ईश्वरका मान लिया तो उसकी मूर्तिभी मानना अवश्य होगा जब मूर्ति मानली तब तो उसका पूजन करना अवश्य होगा। अब पूजनके विषयमें इस ग्रन्थके तीसरे प्रश्नके उत्तरमे जहा कि ढूंढिया मतका वर्णन होगा तहा लिखग वहा देखो, इस जगह केवल मूर्तिका सिद्ध करनाथा वह कर दिया अर्थात् मूर्ति सिद्ध हो गई अब जो

लगाय कर एक दुःखरूपी सागरमे पटकके तिस पर भी वे विचारे जीव कोईतरह का जिनको बोध नही था कि भला क्या वस्तु है और बुरा क्या है फिर उनके लिये नानाप्रकारके पदार्थ रचकर उनकी प्रवृत्ति का कराना और मैथुनादिक अर्थात् स्त्री सेवनादिक मे प्रवृत्त कराना फिर पीछे स उनको अग्नि, वायु, सूर्य आदिकको उपदेश देकर उनको उपदेश कराना कि तुम ईश्वर की उपासना करो ब्रह्मचर्य्य पालो सन्यास लेवो तो तुम्हारा मोक्ष होगा ऐसा उपदेश देना तो पहलेही उनकी मैथुनादिक पाप प्रवृत्ति मे चेष्टा कराई थी क्या ये भी दयालुताकी बात है कि प्रथम विश्वासघात करना और फिर उनको उपदेशदेना क्या अच्छी बात है कि विचारे ईसाई मुसल्मानके खुदा को तो बुरा २ बताना और अपने ईश्वरको अच्छा बताना इस कारण से तो एक मसल (कहावत) किजैसे लोग कहते हे "उष्ट्राणा च विवाहेषु गर्दभाःस्तुतिपाठकाः ॥ परस्पर प्रशंसन्ति अहोरूप महोध्वनिः" ॥ इस मसलाका तात्पर्य क्या है कि ऊटके व्याहमे गधा गाने वाले आयेथे अब आपसमे दोनोंकी कीर्ति अर्थात् प्रशसा होने लगी क्या प्रशसा होने लगी कि गधा तो कहने लगे कि अहो तुम्हारा केसा उत्तमरूप है किन्तु तुम्हारे रूपको देखकर जगत् सब लज्जित होता है इस अपने रूपकी प्रशंसा सुनकर ऊटभी मग्न मस्त होकर कहने लगा कि तुम्हारी कैसी वेदकीसी ध्वनि है अर्थात छः राग और ३६ रागिनी सप्तस्वर आदिकको तुम्हारे सिवाय जगत्मे कोई नही जानता हे अब देखो कि इस दृष्टान्तका दार्ष्टान्त क्या हुवा कि उस ईश्वरकी तो तुमने ऐसी शोभा करी कि निराकार, सर्वव्यापक, दयालु, सर्व शक्तिमान् बनादिया और उस ईश्वरने तुम्हारे लिये वेदोको रचकर जीवहिसा करायकर स्वर्ग वा मोक्ष म पहुँचानेके लिये सत्यशास्त्र रचकर उसमें भी एकचोरी रक्खी कि पहलेके ऋषि मुनि उनको तो यथावत् अर्थ न मिला और वर्त्तमान काल मे दयानन्द सरस्वतीके कान मे आयकर फूकमारा कि तू वेदभूमिका सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों को रचकर लोगो को उपदेशदे जिसमें प्राचीन सर्व मतोको निषेधकर सबकी एकता कर प्रीतिबढा सो अब प्रीतिका बढना तो न रहा किन्तु दया दान ईश्वरका पूजन तीर्थयात्रा अतिथियो को भोजनदेना अन्यमतसे द्वेष आदिकी निन्दा आदितो बहुत बढगया और आर्य्यावर्त्त से जो ऊपर लिखा हुवा धर्म इस जालके फैलाने से जो भोले जीव फसेहुये सनातन धर्म आत्मस्वरूप अध्यात्म विद्याके उपदेशसे छूटगये । अब और भी देखो कि सत्यार्थप्रकाश के २९५ के पत्रेसे लेकर २९६ तक कैसी गप्प लिखीहै वह यह है कि " परमेश्वरने जब सृष्टिरची है कि जबतक ससार का अत्यन्तप्रलय न होगा तबतक भी वे मुक्तजीव आनन्दमें रहगे और जब अत्यन्त प्रलय होगा तब कोई न रहेगा ", ब्रह्मका सामर्थ्यरूप और एक परमेश्वरके विना सो अत्यन्त प्रलय तबहोगा कि जब सबजीव मुक्तहोजायगे बीच मे नही सो अत्यन्तप्रलय बहुतदूर हे सभवमात्र होता है कि अत्यन्त प्रलयभी होगा बीचमे अनेकबार महाप्रलयहोगा और उत्पत्ति भी होगी इससे सब सज्जनोको अत्यन्त मुक्तिकी इच्छा करनीचाहिये क्योंकि अन्यथा कुछ सुख नहीं होगा तबतक मुक्तिजीवों को नही तो तबतक जन्म मरणादिक दुःखसागरमे डूबही रहेगे । अब देखो यहा विचारकरो कि जब अत्यन्त प्रलयहोगा तब कोई न रहेगा ब्रह्मका सामर्थ्यरूप और एक परमेश्वर के बिना सो अत्यन्त प्रलय तबहोगा तो अब इसजगद

ऐसा लिखा है और अपनी मानी हुई मोक्षमें जायकर फेर संसारमें आजाना इस जगह तो ब्रह्म प्राप्त होना मानलिया और उस जगह ईश्वरसे अलग होकर स्वेच्छा विचरना ऐसी २ स्वकपोल कल्पित बातें करके जो कि मिथ्या अविनिवेशकरके ग्रन्थोंको रचकर भोले जीवोंको बहकाना मायावी कादी काम है अच्छे पुरुषोंका नहीं अब १७१ पृष्ठमें जो लिखा है कि यज्ञके वास्ते जो पशुओं की हिंसा है सो विधिपूर्वक हनन करना हिंसानहीं अब देखो कि विधि से करना वह हिंसा न ठहरी तो यह तो अपनी कल्पना से जो मोज आई सो मान लिया तो बुद्धिमान् जो विवेकी पुरुष है सो तो सत् असत् का निर्णय करके सत्य ही को ग्रहण करेंगे कुछ धूर्तो का माना हुवा नहीं अङ्गीकार करेंगे सातवें समुल्लासके २२५ व पृष्ठ में ऐसा लिखा है किजो परमेश्वरको प्राप्त होता है फिर कभी उसको दुःख लेश मात्र भी नहीं होता ७ वे समुल्लास के २३७ वे पृष्ठ में यह लिखा है कि परमेश्वर ने जो जीवों को रचे हैं सो केवल धर्म आचरण और मुक्त्यादि सुखके लिये ही है ऐसा ही २३२ के पृष्ठ में लिखा है कि ईश्वर है अत्यन्त दयालु जब जीवों को ईश्वरने रचा तब विचारके सब को स्वतन्त्र ही रख दिये क्योंकि परतन्त्रके रखने से किसी को भी सुख नहीं होता अब देखो कि एक जगह तो जीव ईश्वर प्रकृति को अनादि मान लेना अर्थात् ये किसी के उत्पन्न किये हुये नहीं और फिर आप ही लिखते हैं कि ईश्वर ने जीवोंको रचा दूसरा देखो कि ईश्वर ने जीवो को स्वतन्त्र रचे थे फिर फल देने मे परतन्त्र कर देना ऐसे २ वाक्योंके परस्पर विरोध वचन होनेसे विद्वान् लोग ऐसे वचन को गधा के सींग के समान समझेंगे । अब १९२ पृष्ठ में ऐसा लिखा है कि आदि सृष्टि में गर्भवास से उत्पत्ति नहीं भईथी और किसी को बाल्यावस्था भी नहीथी किन्तु सब स्त्री और पुरुषों की युवावस्था ही ईश्वर ने रचीथी फिर वे उस समय अच्छा वा बुरा कुछ नहीं जानते थे जहा जिस का नेत्रथा अथवा बुद्धयादिक जिस बाह्य पदार्थ में युक्त भय उसकी दुक [illegible] देखते भे परन्तु ये अच्छा वा बुरा ऐसा नहीं जानते थे पर प्राण शरीर अथवा इन्द्रिय इन में चेष्टा गुणथा ऐसा नहीं जानते थे कि ऐसी चेष्टा करनी फिर चेष्टा होने लगी बाह्य पदार्थों के साथ स्पर्शादिक व्यवहार होने लगे उनमें से किसीने कुछ पत्ता वा फल [illegible] घास स्पर्श किया वा जीभके ऊपर रक्खा तथा दांतो से चबाने लगे उसमें से कुछ भी[illegible] तर चलागया कुछ बाहिर गिर पडा उसको देखके दूसरा भी ऐसा करने लगा फि[illegible] करते २ व्यवहार बढता चला तथा सस्कार भी होते चले होते २ मैथुनादिक व्यवह[illegible] भी होने लगे सो पाच वर्षतक उस समय किसी को पाप वा पुण्य नहीं लगता था वै[illegible] आज कल में पाच वर्षतक बालकों को पाप पुण्य नहीं लगता फिर व्यवहार करते अच्छा बुरा भी कुछ २ जानने लगे फिर परस्पर उपदेश भी करने लगे कि यह अच्[illegible] है यह बुरा है और परमेश्वर ने भी उक्त पुरुषोंके द्वारा वेद विद्या का प्रकाश किया वेदद्वारा मनुष्यों को उपदेश भी करने लगे उनके उपदेश को किसीने सुना अ[illegible] किसीने न सुना सुनके भी किसीने विचारा और किसीने न विचारा अब दे[illegible] पक्षपात छोडकर आंख मीचकर विवेक सहित बुद्धिका विचार करो कि वो ई[illegible] दयालु क्यांकर ठहरा क्योंकि जीवो के साथ में जबरदस्ती शरीर, प्राण, इन्द्रिये आ[illegible]

ऐसी सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थोंमे धर्मसे विरुद्ध और अधर्मका हेतु अनेक बातें लिखी है सो जिज्ञासुके निष्प्रयोजन होनेसे कहांतक लिखें एक दिग् मात्र उनके भ्रमजालको दिखाया है ॥ (प्रश्न) अजी ! आपने ऐसी २ बातें जो लिखी है सो वेदभूमिका दूसरी वार छपाई हुई सत्यार्थप्रकाशमें तो नहीं है फिर ये बातें आपने कहासे लिखी है ? (उत्तर) भो देवानो प्रिया ! वेद भूमिकाके ३४१ के पत्रमे ऐसा लिखा है कि:-इस वेदभाष्यमें शब्द और उनके अर्थ द्वारा कर्मकांडका वर्णन करेंगे परन्तु लोगोंके कर्मकाडमे लगाये हुये वेद मत्रोंमेंसे जहा जहा जो कर्म अग्निहोत्रसे लेके अश्वमेधके अन्त पर्यन्त करने चाहिये उनका वर्णन यहा नही किया जायगा क्योंकि उनके अनुष्ठानका यथार्थ विनियोग ऐतरेय शतपथादि, ब्राह्मण, पूर्वमीमांसा श्रौत और ग्रह्यसूत्रादिकोंमें कहा हुवा है उसीको फिर कहनेसे पिसेको पीसनेके सम (तुल्य)अल्पज्ञ पुरुषोंके लेखके समान दोष इस भाष्यमेंभी आजा सकता है अब देखो निष्पक्ष होके जो आत्मार्थी होगा सो अपनी बुद्धिसे विचार करेगा कि दयानन्द सरस्वतीने कैसी माया चारी अर्थात् भोले जीवोको भ्रमजालमे गेरनेके वास्ते छलरूपी वचन लिखे है कि अग्निहोत्रसेलेकें अश्वमेधकें अन्त पर्यन्त करने चाहिये उनका वर्णन यहां नहीं किया जायगा,क्योंकि जिन शास्त्रोंका हम पहले नाम लिख आये है उनका अर्थ कियाँ हुवा ठीक है तो इसकोभी यज्ञोंमें पशुका होम करना उससे उपकार मानना सम्मत हुवा जो इसको पशुओंका मारना बुरा अर्थात् पाप मालूम होता तो कदापि उस अर्थको मंजूर न करता भोले जीवोको ऐसा दिखाया कि पिसेका क्या पीसना इससे भोले जीव मेरे छलरूपी वचनको न पकडेंगे जो कि ऐसा वचन मे न लिखूँ और जो यज्ञोंमें होम करना लिखुँगा तो और मतवाले अर्थात् जैनी लोग जैसे पहलेकें अर्थोंको अधर्म कहते है तैसेही मेरे अर्थकोभी कहने लगेंगे इस डरसे इस दूसरे सत्यार्थप्रकाशमें न लिखा और इसका हाल मुझे अच्छी तरहसे मालूम है सो भी कुछ लिखताहूँ कि पहले ये १५-१६ के सालमें मथुरामें स्वामी विरजानन्द सरस्वतीके पासमें विद्याध्ययन किया करताथा सन्यासीभेषमें रहता दण्डादिक धारण करताथा फिर वहासे जब इसकी विद्या पूर्ण हुई तो यह देशोंमें विचरने लगा तब नखदेश्वर महादेव और शालिग्रामजी इन दोनोंका पूजन करना और भस्म लगाना और रुद्राक्षका कंठा पहरना ऐसा इसका उपदेश था फिर कुछ दिनके पश्चात् किसी दादू पन्थी व कबीरपन्थीकी इसके कानमें फूंक लगनेसे फिर चोवीसके सालमें हरिद्वारके मेलामें सन्यासियोंसे कई तरहकी बात चीत होनेसे इसने दण्डादिक पुस्तकादि सबको छोडकर एक लङ्गोटी मात्र रखने लगा तो यह तो इसने अच्छा किया परन्तु मूर्तिका खण्डन करने लगा क्योंकि कानमें फूक लगी हुईथी कई वर्षतक तो इसीरीतिसे गगा किनारे घूमता रहा और सस्कृतमें बात चीत करता एक फरुखाबादमें किञ्चित् इसकी दुकानदारी जमी और १९३० के सालमें कलकत्तामें गया वहासे भाषाभी बोलने लगा और उन दिनोहीमें ये सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ भी रचा था उस ग्रन्थकी बाते मैने लेकर सत् असत् दिखलाया है और उसी सत्यार्थ प्रकाशमें जैनियोंके मध्ये जो इसने गप्पे लिखी है अर्थात् झूठ बातें चारवाक्य मतकी लेकर और जैनियोंका मत भोले जीवोंके बहकानेके लिये बतलाया जिसके ऊपर पंजाबमें

एकतो तुम्हारा ब्रह्मका सामर्थ्य रूप और शब्द कहने से दूसरा परमेश्वरहुवा इनके सिवा कुछ न रहेगा जब सबजीव मुक्तहोजायँगे बीच में नहीं सो अत्यन्त प्रलय बहुतदूर है सभव मात्र होता है कि अत्यन्त प्रलयभी होगा इन वचनों के देखनेसे तो बुद्धिमान् ख्याल करेंगे कि संभव मात्रसे तो निश्चय न हुआ कि निश्चयकरके अत्यन्त प्रलयहोगी तो ये वचन संदेहयुक्त हुवा दूसरा देखो कि जब सर्वजीव मुक्तहोगये तो उनके मूल कारण जो अविद्या जिससे जो पुण्य पापादिक होते हैं सो भी न रहे तो फिर सृष्टिभी न रहेगी तो फिर वह ईश्वर अपनी ईश्वरता किसको जनावेगा तो तुमकहो कि फेर वह जैसे सृष्टियी वैसेही रचेगा तो तुम्हारा ईश्वर कर्मों के अनुसार फल देता है तो कर्मतो उन जीवोंके बाकी नहींथे तो फिर किसके फल से जन्मदेगा और फिर वो कैसी रचना करेगा जो कहो कि पहली सी रचना करेगा जब तुम्हारे ईश्वरकी दयालुता और न्यायकारीपना ऐसे हुवा जैसे आकाश का फूल हुवा—अब और भी देखो कि दशमे समुल्लास के ३०१ के पृष्ठसे लेकर ३०३ तक जो मासखानेका विषय लिखा है सो भी हम लिखकर दिखादेते हैं ३०१ के पृष्ठमें सुवर और कुक्कुट (मुरगा) इनके मासको तो धर्मशास्त्रकी रीतिसे खाना बुराकहा और ३०२ के पृष्ठमें जितने मनुष्यों के उपकारक पशु उनकामास अभक्ष्य है तथा विनाहोमसे अन्य और मास भी अभक्ष्य है तो अब इससे तुम्हारा तात्पर्य यहीहुवा कि होमकरके अन्य और मासखाय तो शुद्ध है तबतो मासखाने में तुम्हारीभी इच्छा होगई तबतो विचारे मुसल्मान लोगों को मनाकरना और आप खाजाना तो होमकरना तुम्हारा मुसल्मानों से बढकर ठहरा—फेर उसी पृष्ठमें लिखा है कि अच्छा एकजीव के मारने में पीडाहोती है सो सब व्यवहारको छोड देना चाहिये ? यहासे लेकर ३०३ के पृष्ठके ५॥ वी पंक्तितक इन्ही बातोंकी पुष्टि होती चली आई और ६ सतरसे साफ लिखा है कि जहा गोमेधादिक लिखे हैं वहा वहा पशुवोंमें नरको मारना लिखा है इससे इस अभिप्रायसे नरमेध लिखा है कि मनुष्य नरको मारना कहीं नहीं क्योंकि जैसे पुष्टि बैलादिक नरोंमें है वैसी स्त्रियोंमें नहीं है और एक बैलसे हजारहा गाय गर्भवती होती है इससे हानिभी नहीं होती है योही लिखा है- "गौरनुबन्ध्योपोगीयोमीय." यह ब्राह्मणकी श्रुति है इसमें पुल्लिङ्ग निर्देशसे यह जाना जाता है कि बैल आदिकको मारना गौको नहीं और जो वन्ध्या गाय होती है उसकोभी गो मेधमें मारना लिखा है ॥ "स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत" ये ब्राह्मणकी श्रुति है इससे स्त्रीलिङ्ग और स्थूल पृषतीसे विशेषणसे वन्ध्या गाय ली जाती है क्योंकि वन्ध्यासे दुग्ध और वत्सादिकी उत्पत्ति होती नहीं—और इसी पृष्ठमें फिर आगे लिखा है कि "जो मास खाय वा घृतादिकसे निर्वाह करे वेभी सब अग्निमें होमके विना न खाय क्योंकि जीवके मारनेके समय पीडा होती है उसका कुछ पापभी होता है फेर जब वह अग्निमें होम करेगा तब परमाणुसे उक्त प्रकार सब जीवोंको सुख पहुँचावेगा एक जीवकी पीडासे पाप हुवाया सोभी थोडासा गिनाजायगा अन्यथा नहीं" ॥ अब देखो पक्षपात छोडकर बुद्धिसे विचार करो कि उस ईश्वरने तुमको कैसे कुमार्गमें बुद्धि देकर प्रवृत्त कराया कि अन्नादिक छुडाय करके होमके जरियेसे मासको खिलाया और फिर मुक्ति मार्गभी बता दिया तो वह ईश्वर क्या एक मुसल्मानोंका शैतान हुवा ऐसी

विचार करो कि ये झूंठ नही तो सत्य क्योंकर हो सकती है और जो उसने दूसरे सत्यार्थ प्रकाशमें सप्तभंगीके बारेमें लिखा है कि अन्योन्यभावमें काम होजाय तो सप्तभंगीका मानना व्यर्थ है तो इसका वर्णन तो हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखेंगे सो वहासे जिसकी इच्छा होवे सो देख लेंना परन्तु दयानन्द सरस्वतीको तो कहासे इसके अभिप्रायकी मालूम हो किन्तु इनके शारीरिक सूत्रके बनानेवाले अच्छे२ विद्वानों को ही अभिप्राय ज्ञात न हुवा क्योंकि जो मनुष्य जिस वस्तुका प्रतिपादन करेगा अर्थात् विधि जानेगा तब ही वह निषेध करेगा क्योंकि बहरेको गीत सुनाना फिर उससे पूछना कि इसका राग क्या है तो जब वह सुनताही नहीं है तो राग कहासे बतलायेगा और देखो कि नवकारका अर्थ भी अपनी मन कल्पनासे बनायकर भोले जीवोंको बहकाता है (प्रश्न) वो क्या नवकारका अर्थ इसने कल्पना करके बहकाया है १ (उत्तर) वह नवकार यह है " णमो अरिहंताण ॥ १ ॥ णमो सिद्धाण ॥ २ ॥ णमो आयरियाण ॥ ३ ॥ णमो उवज्झयाण ॥ ४ ॥ णमो लोये सव्वसाहूणं ॥ ५ ॥ एसो पचणमुक्कारो ॥ ६ ॥ सव्वपावप्पणासणो ॥ ७ ॥ मगलाणच सव्वेसि ॥ ८ ॥ पढमंहवइ मंगल ॥ ९ ॥" अब विवेकी बुद्धिमान् जो पुरुष होय सो इसका विचार करो कि जिन पद इस अक्षरोंमे तो हे नही और दयानन्द लिखता है कि यद्यपि जिन पद इसके अर्थमें जोडना जरूर चाहिये अब देखो कि जैसा दयानन्द सरस्वतीने जो ईश्वरको माना है उसके मन्त्रोंका अर्थ बनालिया और अगले अर्थ करनेवालोंको झूठा करदिया तो वो ईश्वरतो निराकार घोडाके सीगके समानथा उसके मन्त्रोका अर्थ तो इसकी मन कल्पना नुसार भोले जीवोंने मान लिया परन्तु जैनियोंका ईश्वर तो सर्वज्ञ वीतराग निष्पक्षपाती जगत्बन्धु, जगद्गुरु, उपकारी, दयालु, ३४ अत्तसे ३५ वाणी महा प्रतिहार्ज सयुक्त त्रिगडामे विराजमान् चार निकायके देवतों करके सव्यमान ६४ इन्द्र चमर ढोलते हुये चतुर्विद सिंह २ पर्गदाके सामने साक्षात् त्रिलोक्यको जानने वाला प्रत्यक्ष देशना देता हुवा ऐसे ईश्वरके वाक्यमे दयानन्द सरस्वतीकी मिथ्या कल्पना कदापि सिद्ध न होगी इत्यादिक अनेक बातें मिथ्या स्वकपोल कल्पित लिखी हे उसको हम कहा तक लिखे एक दिङ्मात्र दिखा दीनी है इन्ही बातोंके देखनेसे विवेकी बुद्धिमान् आत्मार्थी पुरुषो विचारलेना (प्रश्न) वह हाऊकी मसल ससारमे सब कोई देते हे सो इस मसलका तात्पर्य्य क्या है जिससे बाल जीव डर जाते हे (उत्तर) भो देवानो प्रिय! वो इस मसलके दृष्टान्त तो दो है परन्तु इस जगह एक देता हू वह मसलका दृष्टान्त यहहै-कि किसी नगरमें एक धनाढ्य (साहूकार) था, उसके सन्तान नही होता था सो एक दिन उसको कोई महात्मा मिला उससे वह गृहस्थी कहने लगा कि महाराज मेरे सन्तान नहीं है कोई ऐसा उपाय बतावो कि जिससे मेरे सन्तान हो इतना वचन सुन महात्मा कहने लगा कि भो देवानो प्रिय! तु घबराये मति तेरे सन्तान होगा परन्तु छोटी उमरमे साधूकी सुहबत पायकर साधु हो जायगा जब गृहस्थी कहने लगा कि महाराज साधु न होनेका तो उपाय मै कर लेऊगा अर्थात् साधू नही होने दूगा परन्तु सन्तान होना चाहिये महात्मा कहने लगा कि हा जायगा इतना कहकर महात्मा तो चला गया और कुछ दिन पश्चात् उसके सन्तान हुवा जब वह पाच तथा सात वर्षका हुवा उसके पहले ही उसको हाऊका डर तो उसे बताही रक्खाया फिर उससे कहने लगे-

गुजरावाले ग्रामके एक श्रावकने छापा भी छिपाया और जो बातें इसने लिखीथीं वहभ पना जब इसको पूछा तो ये पूरा पूरा न देसका और जो कि बम्बई आदिमें जैनियोंके ग्रन्थ छपे थे वोभी इसके हाथ लगनेसे इसके देखनेमेंभी वह ग्रन्थ आये जब तो इसने अपनेजीमें विचार किया कि देखो जैनी लोग तो अहिंसा धर्मको प्रतिपादन करते हैं और मैं वेदका अर्थ जो पहलेके ऋषि मुनियोंने किया है उसी यज्ञ आदिक पशुओंका मारना प्रतिपादन करूंगा तो इनके धर्मको देखकर मेरे जालमें कोई न फँसेगा तो मैंने जो आर्य्यसमाजका मत चलाया है वह क्योंकर प्रवृत्त होगा इसलिये जैनियोंके ग्रन्थको देख कर इसनेभी किञ्चित् अहिंसा धर्मके लिये वचनरचनासे अर्थात् मायासे दूसरा सत्यार्थप्रकाश बनाया है (प्रश्न) जो आप कहते हो कि जैनियोंका ग्रन्थ देखके पहले सत्यार्थप्रकाशके अथ पीछे दानकर दूसरा सत्यार्थप्रकाश प्रवृत्त किया है तो यह जैनी क्यों नहीं होगया? (उत्तर) भोले वालोंप्रिय ! जिनको अपनी आत्माका विवेक नहीं वही मनुष्य अपने चलाये हुये मतकी पुष्टि करनेके लिये छल कपट रचेंगे और वही अपने मतको पुष्ट करना अर्थात् अपनेको जगत्में पुजाना चाहते हैं जिनके चित्तमें जगत्से पुजानेकी इच्छा है वह अपनी आत्माका अर्थ नहीं कर सकते हैं दयानन्द सरस्वतीको तो जगत्में अपना नाम प्रसिद्ध करना था जो जैनी होता तो जगत्में प्रसिद्ध न होता इसलिये जैनी न हुवा आत्मार्थी होता तो वीतरागके धर्मको अंगीकार करता । (प्रश्न) भला वीतरागका धर्म अङ्गीकार न किया तो उसने जैनियोंकी निन्दा क्योंकी ? (उत्तर) अरे ! भोले भाइयो ! दयानन्द सरस्वती मसखरा छल जातिमें निपुणथा उसने अपने दिलमें विचार किया कि पहलेके मुनि ऋषि शङ्कर स्वामी आदिकोंनेभी इन जैनियोंके मध्ये हाऊकाभादर बतादिया जैसे बालकको यह देते हैं कि देखो यह हाऊ बैठा है तू जायगा तो तेरा नाक कान कतर लेगा इसलिये तू यहां मत जाना इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्त क्या हुवा कि अगाडीके मुनि ऋषि जो कि अनानीय उन्होंने जैनियोंको नास्तिक शब्दसे भोले जीवोंको जगत्में बहकाय रक्खाया क्योंकि जो वे नास्तिकरूपी हाऊको न बताते तो उनका हिंसारूपी मांस भक्षण पशुओंका होम आदिक धर्म न चलता इसीलिये दयानन्द सरस्वतीनेभी अपने चित्तमें विचार लिया कि इन जैनी लोगोंको तो नास्तिकरूप हाऊ प्रसिद्ध न करूंगा तो लोग मेरेको नवीन-मत जानके मेरे जालमें कोई न फंसेगा । इसलिये दयानन्द सरस्वतीने जैनियोंको नास्तिकरूप हाऊका डर दिखाया और स्वकपोल कल्पित अपने दिलका जाना हुवा वेद मन्त्रोंका अर्थकर वेदका नाम लेकर भोले जीवोंको जालमें फँसाकर आर्यसमाज नाम आर्यमतको चलाया अर्थात् अगाडीके मतोंसे एक नवीन मत चलाया । (प्रश्न) आपने पहले कहाथा जैनीलोग नहीं मानते उन बातोंकोभी जैन मतके नामसे भोले जीवोंको बहकानेके लिये लिख दीनी हैं सो वह बातें कौन सी हैं? (उत्तर) द्वादशसमुल्लासके ४०२ के पृष्ठमें २० पंक्तिसे जो चारवाककी बनाई हुई बातें लिखकर ४३० के पृष्ठ तक पांच भूतोंसे चैतन्य अतिरिक्त नहीं है उनसे एक चैतन्य नवीन उत्पन्न हो जाता है ऐसी बातें न तो जैनियोंने पहले मानी है, न अब कोई जैनी मानता है, और न अगाडी कोई जैनी मानेगा जब तीन कालमें जैनियोंके नहीं तो फिर उसने जैनियोंका नाम लेकर लिखदिया अब तुमही

(प्रश्न) आपने प्राचीन सत्यार्थप्रकाशकी बाते कही परन्तु नवीन सत्यार्थप्रकाशमें ऐसी बातें नही हे (उत्तर) भोदेवानांप्रियो ! तुमने जो प्रश्न किया सो तो ठीक है परन्तु नवीन सत्यार्थप्रकाश जो सरस्वती जीने पीछेसे मायावी तस्कर वृत्तिसे लिखा हे उसका जो तुम इस जगह निर्णय लिखोगे तो यह ग्रंथ बहुत भारी हो जायगा और सपूर्ण तुम्हारे प्रश्नोंके उत्तर न लिख सकोगे इसलिये इसको पूर्ण करके जो तुम्हारी नवीन सत्यार्थ प्रकाशके जालको देखनेकी इच्छा होय तो जो कुछ हमने स्याद्वादनुभवरत्नाकरमें तुमको लिखाया है इसको और नवीन सत्यार्थप्रकाशका जो निर्णय पीछेसे लिखावें उन दोनोंको मिलायकर दयानन्द मत निर्णय अर्थात् नवीन आर्यसमाज भ्रमोच्छेदनकुठार इस नामका ग्रंथ जुदाही छपाय देना इसलिये इस ग्रंथके बढ जानेके भयसे विस्तारसे सर ॥

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्य मुनि चिदानन्द स्वामी विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीयप्रश्नोत्तरान्तर्गत दयानन्द मत अर्थात् नवीन आर्य्यसमाज निर्णय समाप्तम् ॥

॥ अथ यवनीय अर्थात् मुसल्मानीय मत निर्णय ॥

दयानन्दीय आर्य्यसमाजके अनन्तर इन्हीके भ्रातृवर्गरूप " कुरानीमत " मुसल्मानो का है जोकि मुहम्मदसे चला है अर्थात मुहम्मद इनका पैगम्बर हुवाहै उसनेही जगली लोगों अर्थात् अरबीलोगों को बहकायकर कुरानी मत चलाया यहभी ऐसा कहता है कि खुदाके सिवाय और कुछ वस्तु न थी जमीन आसमान वगैरह सब उस खुदाने बनाये है ऐसा उनकी कुरान मे लिखा है कि जो आसमान और भूमिका उत्पन्न करनेवाला है जब वह कुछ करना चाहता है यह नही कि उसको करना पडता है किन्तु उसे कहता है कि होजा (म० १ सि० सू० २ आ० १०८) इस में ऐसा लिखाहुआ हे । अब हम तुमको पूछते हे कि आसमानके विदून खुदा कहा रहताया ? जो तुम कहा कि चोदवें तबकपर रहताया तो विना आकाशके वह चोदवा तबक कहाया ? तो यह तुम्हारा कहना कि खुदाने आसमान बनाया असभवही है फिर हम तुमको पूछते है कि वह चोदवें तबकपे किस चीजपर बैठाया जो तुम कहो कि कुरसीपर बैठाया तो कुरसी खुदाने बनाईथी या कुरसीने खुदाको बनायाया जो खुदाने कुरसी बनाईथी तबतो पेश्तर वह किसपर बैठाया और जो कुरसीने खुदाको बनाया जबतो उस खुदा का माननाही व्यर्थहुवा कुरसी कोही खुदामानों तो कुरसी तो जड़ पदार्थ है अब यहा, न तो तुम्हारा खुदा ठहरा और न उसका कुरसी पर बैठना ठहरा दूसरा हम तुमसे यह पूछते है कि तुम्हारा खुदा कहता है उससे कि होजा ऐसा शब्द किसने सुना था और जब किसीने सुना नही तो तुमने कुरानमें क्योंकर लिखा जो तुम कहो कि हमने सुना था तब इस तुम्हारे कहनेसे तो सृष्टि

कि देख तू बाहिर जाता है परन्तु वह जो एक प्रकारके साधु होते है महावीर महावीर और झोली पात्तरा भी रखते है एक मोटा सा झब्बा अर्थात् " रजो हरण" और हाथमें मुखपति रखते है उन लोगोंके पासमे नहीं जाना उनके पासम छुरी, कतरनी रहती है सो वे नाक कान कतर लेते है सो इसलिये उनके पासमे नहीं जाना ऐसा उस लड़केके चित्तमें डर रूपी हाऊ बैठा दिया अब वो लड़का जब किसी ऐसे साधु महापुरुषको देखे तब परमें भग जाय एक दिन ऐसा हुवा कि साधु मुनिराज गोचरी लेकर अर्थात् भिक्षा लेकर वस्तीके बाहर जाताथा उधरसे वह लड़का अताथा उस साधूको देखकर वस्तीके बाहिर भगा और साधू भी उसी मार्ग हो करके चलने लगा जब वह लड़का पीछे फिरके देखता जाय और अगाड़ी को भागता और साधू भी उसके पींछे अपनी इरियासुमती शोधता हुवा चला जाताथा जब तो लड़केने अपने दिलमें पुख्ता जानलिया कि जो मेरे माँ बाप कहते थे सो आज ये जरूर मेरे नाक कान काटेगा ऐसा विचारता हुवा वह एक बड़े दरख्तके ऊपर चढ़गया साधु मुनिराज भी एकान्त जगह देख कर उसी पेड़ के नीचे जाकर बैठ गये और अपनी क्रिया करने लगे जब तो उस लड़के ने सोलह आना अपने चित्त में विचार लिया कि आज यह दुष्ट मेरे नाक कान अवश्य कतर लेगा अब इस दुःख से कैसे बचूंगा परंतु ऊपर से नीचेको निगाह किये हुवे उस साधुकी क्रियाको देखता रहा जब उस साधुने झोरी पात्रा खोलकर भोजन करना आरम्भ किया तब उस लड़केने विचारा कि इसके पास में छुरी कतरनी तो नहीं दीखे है और यह तनक २ बातमें अपने झब्बा से पृथिव्यादिक को पोछता है अर्थात कीड़ी आदिको अलग करता है सो येतो कोई दयालु महात्मा दीखता है मेरे घरवालों ने कोई मेरेको इनकी संगत करने के ताई धोखा दिया है ऐसा विचार कर कि जो कुछ होने वाली है सो तो मिटेगी नहीं तो यहा इस पेड़के ऊपर कबतक बैठा रहूगा ऐसा विचार करके उस पेड़ से नीचे उतरा और उस मुनिराज को शांतरूप देखकर नमस्कार किया उस समय उस मुनिराज ने अमृतरूपी 'धर्म लाभ' सुनाकर उपदेश देकर उसके जो चित्त में डरथा सो दूर करदिया तबतो वो लड़का अमृतरूपी उपदेश के अक्षरों को पानकर अर्थात् कानों में श्रवण कर अमर होने की इच्छा करता हुवा कि अहो तरण तारण निष्कारण परदुःख निवारण मेरेको आत्मस्वरूप प्रगट कराने के लिये अपने चरण कमलों की सेवा में रक्खो जिससे मै कृतार्थ होजाऊ और मेरा जन्म मरण रूपी दुःख जो है उससे निवृत्त होजाऊ आज तक जो मेरे माता पिताने मायाजाल में फैसा कर आप लोगोंको डररूपी 'हाऊ' जो बैठारा था सो आज मेरे चित्तसे आपके दर्शन करने से वह हाऊ रूप डर उठ गया फिर वह लड़का अपने घर जाय कर अपने माता पिताको उपदेश देकर जिन मत मे दृढ़कर आप दीक्षा लेकर अपनी आत्माका कल्याण करता हुवा ॥ इसी दृष्टान्त से बाल जीवों को जैन मत नास्तिक रूप हाऊ बनाय कर डर दिखाय दिया है इसलिये इस डर से बाल जीव जैनियों का संग कम करते है जिस किसी भव्य जीव का कल्याण होनेवाला होगा उसको कैसा ही कोई बहकावो परन्तु जिन धर्म का अवश्यमेव संग हो जायगा।

छुपे कर्मोको जानता हू " (म० १ सि० १ सू० २ आ० २९-३१) " अब देखो खुदा क्या था बड़ा धोखेबाज था क्या शैतानोको ऐसा दम देकर उनको धमकाने लगा और अपनी बड़ाई अपने मुँहसे करके और अपनी हुकूमत जमाने लगा क्या इस रीतिसे भी धोखा देकर हुकूमत जमती है तो ये बात खुदाकी नही कि दूसरेसे किसी का हाल पूछकर फिर अपनी सर्वज्ञता जताना यह काम धूर्त्तोका है नकि सत्पुरुषोका और भी देखो जब हमने फरिश्तोंसे कहा कि बाबा आदमको दंडवत् करो देखो सबोंने दंडवत् किया परन्तु शैतानने न माना और अभिमान किया क्योंकि वह भी काफिर था " (म० १ सि० १ सू० २ आ० ३२) " अब देखो यहा विचार करो कि वह खुदा बडा बे समझ था क्योंकि जिसने उसका हुक्म न माना उस शैतानको पैदा किया और उसका तेज भी उस शैतान पर न पडा और खुदाके हुक्मको न अंगीकार किया जब तो उस शैतानने उस खुदाका छक्का छुडा दिया तो हम जानते है कि तुम्हारे मुसल्मानोसे भिन्न जो करोडो काफिर हैं उस जगह उस खुदा और मुसल्मानोकी तो क्या चल सकती है "हम ने कहा कि ओ आदम! जो तेरी रूह विहिश्तमें रहकर आनन्दमें जहा चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्षके, कि पापी हो जावोगे। शैतानने उनको डिगाया कि और उनका आनन्द खो दिया, तब हमने कहा कि उतरो तुम्हारे मे कोई परस्पर शत्रु है, तुम्हारा ठिकाना पृथ्वी है और एक समयतक लाभ है आदम अपने मालिककी कुछ बाते सीखकर पृथ्वी पर आगया ॥ (म १ सि०१सू० २ आ० ३३-३४-३५)" अब देखो तुम्हारे खुदाकी कैसी अज्ञानता है कि हालही तो स्वर्गका आशिर्वाद दिया और थोडीसी देरमें कहने लगा कि तुम यहासे निकल जावो अब देखो जो वो सबाववाला होता तो क्यों तो रहनेका हुक्म देता और क्यो निकालता और जो सामर्थ्यवाला होता तो उस बहकानेवाले शैतानको दण्ड देता अब देखो यह तो ऐसा हुवा, कि (मसला) "निर्बलकी जोरू सबकी भाभी" उस शैतानके साथ तो कुछ न बन पडी और विचारे आदमको निकाल दिया गोया कि 'कुम्हारीके बजाय गधियाके कान एंठे"—और जो उसने वृक्ष उत्पन्न कियाथा वह किसके लिये कियाथा क्या अपने लिये, या दूसरेके लिये, जो दूसरेके लिये तो उसको क्यों रोका ? अब देखो ऐसी बातोंसे तो वह खुदा नपुसक और अज्ञानी ठहरता है क्योंकि शैतानको सजा देनेमें वह कमजोर अथवा नपुसक हुवा और अज्ञानी इसलिये हुवा कि वह नही जानताथा कि दरख्त किस लिये उत्पन्न करूँ क्योंकि आदमको तो जमीनपर भेज दियाथा फिर वह वृक्ष काट डाला गयाथा या रक्खा गयाथा जो काट डालाथा तो पहले क्यो बनायाथा क्या विचारे, आदमको दु:ख देनेके लिये जो रक्खाथा तो फिर खुदा जिस किसीको उस विहिश्तमें भेजेगा उसीको वह शैतान बहका देगा तो फिर खुदा उसको जमीनपर गिरा देगा तब तो उस खुदाने जाल रचा है छी! छी! उस खुदाको कि वृक्षका वा शैतानका कुसूर लगाय कर उसे विहिश्तमे न रहने दे क्या वहा अच्छी २ बीबिया रहती है इसलिये दरख्त रचकर गरीबोको धोखा दिया यह खुदा क्या है एक शैतानोका जमादार है "और देखो कि:-इस तरह खुद मुर्दोंको जिलाता है और तुमको अपनी निशानिया दिखलाता है कि तुम समझो ॥ (म० सि० १ सू० २ आ० ६७) अब जो खुदा मुर्दोंको जिलाता है तो वो

पहले ही हो गई फिर खुदाने क्या रचाथा इसलिये तुम्हारे कहनेसेही तुम्हारी बात गलत होती है? दूसरा अब हम यह भी पूछते है कि जब खुदाने सृष्टि रचीथी उस समय दूसरा तो पदार्थ कोईथा नहीं फिर यह सृष्टि क्यों कर रची गई क्यों कि बिना कारणके कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती जो कहो कि उसकी कुदरतने सृष्टिको रचदिया तो हम तुमको पूछते हे कि वह कुदरत किसको दिखानीथी क्योंकि जब कोई दूसराथाही नहीं तो कुदरत किसको दिखानाथा जो तुम कहो कि कुदरत रूहोंको दिख लाईथी तो रूह तो पेश्तरथीही नहीं पीछेसे उत्पन्न किया जो तुम कहो कि नहीं साहब खुदाने हमें पैदा कियेके बाद हमसे कहा कि ये कुदरत हमारी है तो हम जानते हे कि वह खुदा नहीं होगा किन्तु वह शैतान होगा सो अपने मनानके तई अपनी बड़ाई करता होगा भोली रूहें तो उसके फन्दमें आगई और जो रूह उसके फन्दमें न फँसी उनहीको उसने कह दिया कि यह शैतानके बहकाये हुवे काफिर है अरे भोले भाइयो कुछ विचार तो करो कि जो कुदरत वाला खुदा होता तो उसके हुकमसे बरखिलाफ वह शैतान और काफिर रूह क्यों चलती । अब और भी देखो कि " जिसने तुम्हारे वास्ते पृथ्वी बिछोना और आसमानको छत बनाया (म० १ सि० १ सू० २ आ० २१) " अब हम पूछते है कि भला उसने छत तो बनाई मगर थम्बा किसका बनाया था और जो कहो कि वैसेही खडी रही तो यह बात अप्रमाणिक है कि बिना थम्बाके छत कहां रह सके ? अब क्या वह खुदा कहीं चला गया जो बिना थम्बेके तुम्हारी मसजिद आदिक न बनी " और आनन्दका सन्देशा दे उन लो गोंको जो कि ईमान् लाये और काम किये अच्छे यह उनके वास्ते बिहिश्त है , जिसके नीचे चलती हे नहरें जब उसमेंसे मेवेके भोजन दिये जायगें तब कहेंगे कि वह वस्तु है जो हम पहले इससे दिये गयेथे और उनके लिये ये पवित्र बीबियाँ सदैव रहनेवाली ह (म० १ सि० १ सू० २ आ० २४) " अब हम तुम्हारी बिहिश्तकी क्या शोभा करें कि जिस जगह मेवाखानेको मिलता है और जिसके नीचे नहर बहती है अर्थात् जलभी उस जगह बहुत है तो हम जानते हे किसी जंगली मनुष्यने काबुलके जंगलकी बातें सुनी होगी क्यों कि उस जगह मेवा होता है उसहीको बिहिश्त मान लिया दीखे अगर जो तुम कहो कि जो खुदापर ईमान लाता है उसीको बिहिश्त मिलती ह तो उस जगहमें तो पशु पक्षीभी बहुत रहते है तो हम जानते ह कि तुम्हारे खुदाने उन हैवानोंहीके वास्ते ईमान दिया दीखे है जो कि बुद्धिमान् पुरुष होगा वो तो ऐसे जंगली खुदापर कभी ईमान न लावेगा और फिर तुम्हारा खुदा लिखता है वहा वह वस्तु है कि जो हम पहले इससे दिये गये थे और उनके वास्ते पवित्र बीबिया भी सदैव रहने वाली है तो अब हम तुमसे पूछते है कि ऐसी क्या वस्तुथी कि जो खुदाने पेश्तर दीथी और जबतक कोई ईमान न लायेंगे तो उन बीबियोंको कौन भोगेगा तो हम जानते हेकि वो खुदाही इनसे भोग करता होगा तो वो खुदा क्या ठहरा किन्तु कृष्णलीला करता होगा । फिर लिखते है कि आदमको सारे नाम सिखाये फिर फरिश्तोंके सामने करके कहा जो तुम सच्चे हो मुझे उनके नाम बतावो ? कहा हे आदम! उनको उनके नाम बतादे तब उसने बतादिये तो खुदाने फरिश्तोंसे कहा कि क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि निश्चय म पृथ्वी और आसमानकी छुपी वस्तुओंको और प्रगट

कुरानमें भी लिख दिया कि खुदाका मुँह चारों तरफ है ऐसी बातें सुनकर कुरानको बना लिया तो हम जानते हे कि विचारे भोले जीवोंसे धन छीननेके वास्ते ऐसी ऐसी गप्पे ठोकदी हे अब और भी देखो "जब हमने लोगोंके लिये कावेको पवित्र स्थान सुख देने वाला बनाया तुम नमाजके लिये ईब्राहीमके स्थानको पकड़ो ॥ (म० १ सि० १ सू० २ आ० ११७) " अब देखो कि पेश्तर तो खुदाने कहा कि जिधर तुम मुँह करो उधर मेरा मुँह है और दूसरी जगह कहने लगा कि हमने कावेको पवित्र स्थान बनाया तो जब तक कावेको पवित्र नही बनाया था तो पेश्तर अपवित्र स्थानमे क्योंकर तुम्हारा खुदा रहाथा क्या पहले उसको स्थान बनानेका स्मरण न हुवा तो खुदा भी हम जानते है कि बैठा२ सोचही करता रहता है अब क्या करूं " और देखो जो लोग अल्लाहके मार्गमे मारे जाते है उनके लिये यह मत कहो कि यह मृतक हे किन्तु वे जीते है (म० १ सि०२ सू० २ आ० १४४)" क्या अफसोसकी बात है कि खुदाके मार्गमे मरने मारनेकी क्या जरूरत है इससे साफ माळूम होता है कि कुरान खुदाका बनाया हुवा नही है किसी मतलवीने अपने मतलब सिद्ध करनेके वास्ते ऐसी बातें लिखदी है कि लोभ देनेसे खूब लड़ेगे और जो ऐसा खुदाके नामका धोखा न देते तो वे लोग उसके साथ कदापि न लड़ते उसका मतलब सिद्ध न होता इसलिये उस मतलवीने विचारे उस खुदाको क्यों निर्दयी ठहराया अब और देखो "(म० १ सि० २ सू० २ आ० १७४, १७५, १७६, १७९,) इसमें लिखा है कि अल्लाहके मार्गमें लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते है, मारडालो तुम उनको जहां पावो, क्तलसे कुफ़बुरा है । यहां तक उनसे लड़ो कि कुफ़ न रहे और होवे दीन अल्लाहका, उन्होने जितनी जियादती तुमपर, करी उतनी ही तुम उनके साथ करो" ॥ अब देखो जो तुम्हारा खुदा ऐसी बातें न कहता तो मुसल्मान लोग अन्य मतवालोंको इतना न सताते विना अपराधके मारना उन विचारोंका खून उस खुदा और खुदाके वहकाने वालोपर होगा क्योंकि जो तुम्हारे मतको ग्रहण न करेगा उसीको तुम"कुफ़" कहते हो उसके कतल करनेमे तुमको वा तुम्हारे खुदा-को जरा भी रहम न आया तो खुदाने पहले ही ऐसा विचार क्यो न किया कि ये रूहें तो मेरा कहना न करेंगी तो उनको क्यो रचाया और देखो" (म० १ सि० ५ सू० ४ आ० ९०, ९१, ९२) अपने हाथोंको न रोके तो उनको पकडलो और जहां पावो मारडालो ॥ मुस-ल्मानोंको मुसल्मानका मारना योग्य नही जो कोई अनजानिसे मारडाले बस एक गर्दन मुसल्-मानको छोड़ना है और खून वहा उन लोगोंकी ओरसे हुई जो उस कौमसे हुवे तुम्हारे लिये दान करदेंगे जो दुश्मनकी कौमसे हे ॥ और जो कोई मुसल्मान जानकर मार-डाले वह सदैव काल दोजखमें रहेगा उसपर अल्लाहका क्रोध और लानत है" अब इस लिखावटको देखनेसे विल्कुल पक्षपात और अन्यायकारी दीखती है क्योंकि मुसल्मानके मारने से तो उसको दोजख मिलेगा अर्थात् नरक मिलेगा और मुसल्मान से अतिरिक्त लोगों को मारने से विहिश्त अर्थात् स्वर्ग का मिलना इनदोनों बातो को जोकोई बुद्धिमान् विचारेगा तो कदापि इस कुरानको खुदाका वचन न मानेगा ॥ अब देखो ऐसा लिखा है कि " निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथ्वी को छःदिन मे उत्पन्नकिया फिर करारपकड़ा अर्शपर दीनता से अपने मालिकको पुकारो ॥(मं०२

क्या अभी सोता है क्या शैतानसे डरता है कि मुसल्मानोंके मुर्दोंको जिलाऊंगा तो शैतान मुझको कूटेगा (मारेगा) इसवास्ते अभी नहीं जिलाता है तब तो खुदाभी डरता है तो उस खुदासे शैतान और काफिर लोग जबरदस्त ठहरे कि जो तुम्हारे खुदाकोभी डरा दिया इसलिये इस खुदाको छोड कोई दूसरा खुदा मानों जो किसीसे न डरे–औरभी तुम्हारी गप्पें देखो कि–"आनन्दका सदेशा ईमानदारोंको अल्लाह, फरिश्तो, पैगम्बरों, जबराईल, और मीकाईलका जो शत्रु है अल्लाहभी ऐसे काफिरोंका शत्रु है ॥ (मं० १ सि० १ सू० २ आ० ९०)" इस कहनेसे तो कुरान खुदाकी बनाई हुई नहीं किसी निर्विवेकी पुरुषका बनाई हुई है क्योंकि खुदाकी बनाई हुई होती तो तुम लोग सृष्टिभी तो खुदाकी रची मानते हो तो तुमही विचार करो कि कौन उसका शत्रु है और कौन उसका मित्र है किन्तु उसके तो सब बराबर है जो उसकेभी शत्रु मित्र हैं तो वो न्याय कारी नहीं और पक्षपाती हुवा और शरीरवालाभी हुवा जब शरीरवाला हुवा तो जो तुम कहते हो कि खुदा शरीर रहित है यह तुम्हारा कहना व्यर्थ हुवा जो तुम कहो कि अच्छेको मित्र बनाता है और बुरेको शत्रु मानता है तो जब वह शत्रु मानता है तो उनके छ डनेके वास्ते फौजभी इकट्ठी करेगा फौज इकट्ठी करेगा तो खर्चा कहासे लायेगा हम जानते हैं कि इसीलिये कुरानमें "(मं० २ सि०६ सु०५आ० १०)" में ऐसा लिखा है कि "और अल्ला हको अच्छा उधार दो अवश्य मे तुम्हारी बुराई दूर करूगा और तुमको बिहिश्तमें भेजुगा" और कही ऐसाभी लिखा है कि मुहम्मदकोभी खुदाने साक्षी कियाथा तो हम जानते है कि उधार लेनेकोही साक्षी किया होगा तो ऐसे शत्रु खुदाने क्यों बनाये कि जिनके वास्ते फौज रखनी पडी और करजा लेना पडा जब तो खुदाने सृष्टी क्या रची एक पत्थर फेंककर अपना शिर मार लिया तो खुदा तो एक बडे जाल में फस कर बडी आफत में फँस गया और देखो कि ऐसा लिखा है, "ऐसा न हो कि काफिर लोग ईर्षा करके तुमको ईमान फेर देवें क्योंकि उन में से ईमानवालोंके बहुत से दोस्त है ॥ (मं० १ सि० १ सू० २ आ०१०१)" अब देखो कि पहले तो उस मूर्ख खुदाने उन काफिरोंको पैदा किया और फिर धोखा उठा कि ईमान्दारों को ईमानसे डिगादे तो पैदा क्यों किया था इस कहनेसे तो खुदा अज्ञानी महामूर्ख मालूम होता है इसलिये अब दूसरा खुदा मानो जो तुम्हारा कल्याण हो और देखो कि "तुम जिधर मुँह करो उधर ही मुँह अल्लाहका है (मं० १ सि० १ सू० २ आ० १०७)" अब यहा विचार करो कि जब अल्लाहका मुँह सब तरफको है तो फेर तुम लोग सिर्फ पश्चिमकी ओर ही मुँह करके नमाज क्यो पढते हो और फिर तुमतो मूर्तिपूजन अर्थात् बुतको बुरा समझते हो तो फिर तुम्हारा जो बडा भारी बुत अर्थात् मसजिद काबेकी तरफ बनाना और उसी बुतमे जाकर नमाज पढना जब तो यह तुम्हारा खुदा एक देशी होगया अर्थात् उस बुतमे ही जायकर बैठ गया जब तो तुम्हारा यह कहना ऐसा हुवा कि गधेका सींग कि जिधर तुम मुँह करो उधर ही अ ल्लाहका मुँह है अब और भी देखो कि जब खुदाका मुँह चारों तरफको था तब तो वह सोता कैसे था और जो सोवेगा तो एक तरफका नाक मुँह वगैरह सब टूट जायगा इसलिये हम जानते हैं कि मुहम्मदने किसी पुराणीजी सोहवत कर ब्रह्माका नाम सुन करके अपनी

शूर बनगया–छी! छी!! छी!!! क्या खुदा है क्यों नाहक उसको हैरान करके क्यो कलंकित करते हो जब वो खुदाही जगत् बन बैठा तो कुरान किसके वास्ते बनाई थी और किसको उपदेश देना था तबतो इस खुदाने जगत् क्या रचा अपना आपही सत्यानाश करलिया अब जितने दुःख होते है सो खुदा कोही होते हे और जो कि कुरानमें लिखा है कि काफिरोंको जहां पावो वहाही कतलकर डालो उनको जिन्दा मत छोडो अब देखो सिवाय खुदाके और तो कोई दूसरा इस जगत्में है नहीं जगत्में खुदाही खुदा है तो खुदाने खुदाओंको मारनेके वास्ते हुकम दिया जब वह खुदा तो मारें जायगे तब तुम किस पर ईमान लावोगे कौन बिहिश्त देगा किसकी नमाज् पढोगे इसलिये हे भोले भाइयो! जो तुम्हारेको तुम्हारा कल्याण करना है तो–"अहिंसा परमो धर्मः" ऐसा जोपरूपक वीतराग सर्वज्ञ सर्व उपकारी दीनबन्धु दीनानाथ उस ईश्वरको अंगीकार करो इन कुरानियोंकी सुहबत अर्थात् पोपोंकी सोहबत छोड़कर अपनी आत्माका अर्थ करो, औरभी देखो कि तुम्हारे खुदाने मुहम्मदसे पहलेभी कई पैगम्बरोंको पैदा कियेथे और उनको अपना साझी बनायाथा जब उनसे साझेमें झगड़ा पडगया तब मुहम्मदको पैदा करके अपना साझी बनाया उस खुदाकी क्या मजेकी बात है कि किसीको आगसे और किसीको नूरसे और किसीको मट्टीसे अर्थात् शैतानको अग्निसे फरिश्तोंको नूरसे और पैगम्बर आदिको मट्टीसे बनाया अब जो नूर और आगसे बनाये हुवोंको छोडकर मट्टीसे बनानेवालेको साझी किया तो वह खुदाभी हम जाने मट्टीसेही पैदा हुवा दीखे क्योंकि अपने सजातीयसे सब कोई प्रीति करता है विजातीयसे कोई नही मोहब्बत करता है तो इससे तो माळूम होता है कि तुम्हारा खुदाभी आकारवाला है निराकार नहीं और भी देखो कि मूसा पैगम्बर तो खुदाका बनाया हुवा थोड़ेहीसे दिनमें ईमानसे अलग होकर साझा अलग कर लिया तब उसने मुहम्मदको पैदा किया और अपना साझी बनाया तो उस मुहम्मदकी दूकान किस जगह खुली है जहां वह बैठा काम कर रहा है और खुदाको कितना रुपया कमाय करके देताथा या जो कुरानमें लिखा है कि खुदाको कोई उधार दो तो क्या खुदा कर्जा लेता था या जमानत देनेके वास्ते अपना साझी बनाया था–देखो तुम्हारी कुरानमें ऐसा लिखा है "वह कौन मनुष्य है जो अल्लाहको उधार देवे अच्छा बस 'अल्लाह दुगुन करे उसको उसके वास्ते' (मं० १ सि० २ सू० २ आ० २२७)" इसी आयतके भाष्यमें तफसीर हुसेनीमें लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहबके पास आया उसने कहा कि "ए रसूल! खुदा कर्ज क्यों मागता है? उन्होने उत्तर दिया कि तुमको बिहिश्तमें लेनेके लिये उसने कहा जो आप जमानत लें तो मे दूं मुहम्मद साहबने उसकी जमानत लेली"। अब देखो कि इस कुरानीने कैसा जाल रचा है पुराणियों अर्थात् पोपो सेभी बढ गए क्योंकि "जैसे को तैसे मिले मिले ब्रह्म के नाई, उसने मागी दक्षिणा उसने नाच दिखाई ॥

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्यमुनि चिदानंदस्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीयप्रश्नोत्तराऽन्तर्गत कुरानी मत समाप्तम् ॥

सि० ९ (सू० ॥ आयत ५३, ५६)" अब देखो जब खुदाने छः दिनमें जगत्को बनाया फिर अर्श अर्थात् ऊपर के आकाश में सिंहासन के ऊपर आराम किया तो भला अबदेखो विचारतो करो कि पेश्तर तो हम आगे तुम्हारी कुरानकी साक्षी देकर लिख आये हैं कि ऐसा तुम्हारे कुरान में लिखाहै कि होजा तो अबदेखो कि एक जगह तो ऐसा कहना और फिर दूसरीजगह यह कहना कि छ० दिनमें खुदाने रचाया अब देखो कि एकहीपुस्तक में कैसा की बात होगई जब खुदा को इतनाही ज्ञान न था कि मै पहले क्या कहताहू और पीछे क्या कहताहू तो फिर वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ क्योंकर होसकता है और फिर वह किसी को बिहिश्त और किसी को दोजख क्योंकरदेगा, किस ज्ञानसे देगा और छ दिन में जब जगत्को रचा तबतो वह बिचाराखुदा मजदूर ठहरा और मजदूरहोता है सो अलबत्त थक जाता है तो खुदा भी तुम्हारा थका और आराम किया वह कितने दिनतक सोतारहा और फिर कब उठा क्या अभी सोताही है जो वह अभीतक सोता है तो तुम्हारी नमाज अर्थात् बांग उसको जगावेगी तबतो क्रोधितहोकर तुमको भी शैतान न बनादे इसलिये हमको तुम्हारा तरस आता है तुमको बार २ समझाते हैं कि खुदा को छोड़कर कोई सर्वज्ञ पक्ष-पातरहित दयालु खुदाको अङ्गीकार करो जिससे तुम्हारा कल्याणहो अब तुम्हारे कुरानकी बातें कि जो गप्पें हैं सो तो हम कहांतक लिखें किन्तु युक्तिसे सृष्टिके मध्ये फिरभी पूछते हैं सो कहो जो तुम खुदाके सिवा और कोई कारण नहीं मानतेहो तो यह तुम्हारा कहना खुदाको बहुत कलंकित करता है जो कहो कि खुदाको जगत् के रचने में क्या कष्टक लगता है सो कहो तो हम कहते हैं कि बिना उपादान कारणके कार्य होवे नहीं तो खुदा क्योंकर जगत् रचसका है जो तुम कहो कि खुदा सर्व शक्तिमान् है बिना उपादान के ही रचसकता है तो हम तुमको पूछते हैं कि खुदाकी शक्ति है सो उससे भिन्न है वा अभिन्न है जो कहो कि भिन्न है तो जड है कि चेतन है जो कहो कि जड है तो नित्य है वा अनित्य है जो कहो कि नित्य है तो अव्वल तो वह शक्ति तुम्हारी जड है तो जडसे तो कोई कार्य सिद्ध नहींहोता अगरकहो कि खुदाकी कुदरत है तो हम पूछते हैं कि जगत् जबतक नहीं रचाया उसके पहले एकखुदा के सिवाय और कुछ नहीं था फिर कहतेहो कि हम खुदाकी नित्य शक्ति ने सृष्टिरची यह शक्ति ठहरी नित्य तो यह तुम्हारा कहना कि खुदाके सिवाय कुछनहीथा ऐसाहुवा कि जैसे उन्मत्त पुरुषके वचन में किसीको प्रतीत न हो तुम्हारे वचनने तुम्हारेकोही कायलकिया अगर कहो कि वह शक्ति अनित्य है शक्ति का उपादान कारण कोई और खुदाकी शक्ति मानों फिरभी उसकेतई और कोई शक्तिमानो इसरीतिसे शक्ति मानने में तुम्हारी किसी शक्तिका पता न लगेगा जो कहो कि वह चेतन है तो वहभी फिर नित्य है कि अनित्य है इसीरीति से अगर विकल्प हम करेंगे तो फिरभी तुमको यही दूषण प्राप्तहोंगे जो कहो कि अभिन्न है तबतो सर्ववस्तु खुदाही कहागया बिहिश्त क्या और दोजख क्या ईमानदार और काफ़र फिरस्ता और शैतान पैगम्बर, बीबिया और पुरुष, नहर, आसमान, पृथ्वी, चोर और साहूकार, बदमाश, ज्वारी, रण्डीबाज, नाई, धोबी, तेली, तम्बोली, भंगी, चमार, कला-ई, गाय, भैंस, छेरी, भेड, हाथी, घोड़ा, ऊंट, कुत्ता, स्याल, बिल्ली, डरपोक, बहादुर, सिंह, हिरन, बाज, बटेर, कबूतर, मक्खी, मच्छर, डांस, पतंग इत्यादिक अनेक खुदाही गढ-

कहो कि चेतन निराकार है तो जो वह चेतन निराकार है तो उस निराकार को किसने देखा था विना देखे प्रतीति करोगे तो शृगाल के सींग होता है वोभी मानना पडेगा अब देखो कुछ बुद्धि का विचार तो करो क्या ब्रान्डी के नशे में मालूम नहीं होता दीखे आप ही तो कहते हो कि ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था और फिर उसको निराकार भी मानते हो क्या खूब बात है कि चुपड़ी और दो दो इससे तो हम जानते है कि मूसाके हाथ कोई पुराणीकी पुस्तक लग गई दीखे है क्योंकि पुराणादिको मे ऐसी गप्पे लिखी है कि कच्छ मच्छ आदि अवतार परमेश्वरके है इसलिये मूसाने मच्छकी जगह छोड करके ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था इतनी बदलके लिख दिया परन्तु इतना खयाल न किया कि कोई सर्वज्ञ मतानुसारी इस मेरी पुस्तक को देखकर चोरी जाहिरात करेगा परन्तु ब्रान्डीके नशेमें मस्त होकर लिख दिया और देखो गहराव पर अन्धेरा था तो इस लिखनेसे तो साफ मालूम होता है कि वह तुम्हारा ईश्वर उल्लू अर्थात् घुघू था क्योंकि उल्लूको दिनमेभी अन्धेरा मालूम होता है क्योंकि उसकोभी कोई पदार्थ नही दीखता है ऐसाही तुम्हारा ईश्वर जलपर डोलता था और उसको कुछ भी नही दीखता था फिर यह तो हुवा जब ईश्वरकोही अन्धेरा मालूम हुवा तो ईश्वरही नही किन्तु कोई पुरुष विशेष अन्धा होगा "तब ईश्वरने कहा कि हम आदमको अपने स्वरूपमे अपने समान बनावें तब ईश्वरने आदमको अपने स्वरूपमे उत्पन्न किया उसने उसे ईश्वरके स्वरूपमे उत्पन्न किया उसने उसे नर और नारी बनाया । और ईश्वरने उन्हे आशीर्वाद दिया (म० १ आ० २६, २७, २९)" "तब परमेश्वर ईश्वरने भूमिकी धूलसे आदमको बनाया और उसके नथुनोमे जीवनका श्वास फूका और आदम जीवता प्राणी हुवा । और परमेश्वर ईश्वरने अदनमे पूर्वकी ओर एक बाडी लगाई और उस आदमको जिसे उसने बनाया था उसमे रक्खा और उस बाडीके मध्यमे जीवनका पेड और भले बुरेके ज्ञानका पेड भूमिसे उगाया । (पर्व० २ आ० ७, ९,) अब (आ० २६, २७, २८)"मे लिखा है कि ईश्वरने कहा कि हम आदमको अपने स्वरूपमें अपने समान बनायेगे और ईश्वरने स्वरूपमे उत्पन्न किया पहले तो कहा कि हम आदमको बनावे फिर हालही उसने उन्हे नर ओर नारी बनाया और ईश्वरने अशीश दी क्या खूब बातें ईसाइयोकी है कि अपने स्वरूपसे बनाया जब तो हम जानते है कि तुमभी पुराणियोके भाई बन्धु हो क्या वेदमेसे चुराय करके ईसाइयोंने पुस्तक बनाई दीखे है जो चोरीसे झूठ बातका सच किये जावे तो कदापि न होगा (प० २ की आ० ७, ८, ९) मे लिखते हो कि "ईश्वरने भूमिकी धूलिसे आदमको बनाया और नथुनोमे जीवका श्वास फूका आदम जीवित प्राणी हुवा " अब देखो क्या गप्पे ठोकी है हालही तो कहते हो धूलसे बनाया हालही कहते हो स्वरूपसे बनाया तो जब आदमको ईश्वरने अपने स्वरूपसे बनाया तब तो वह ईश्वरभी किसी और ने पैदा किया होगा जब तो वह ईश्वर अनित्यही ठहरा तब आदमको कहासे बनाया जो कहो कि मट्टीसे बनाया तो वह मट्टी कहा से आईथी और किसने बनाईथी जो कहो कुदरत अर्थात् सामर्थ्य से मट्टी बनाईथी तब ईश्वरकी सामर्थ्य अनादि है व नवीन जो कहो अनादि है तो हम कहते है कि जगत्का कारण सनातन हुवा तो फिर तुम क्यो कहते हो कि ईश्वरके

ईसाई मत निर्णय।

अब मुसल्मानोंके बाद इन्हींके मिलते हुवे भाई बन्धु ईसाइयों का किंचित् वर्णन लिखते हैं जिससे सज्जन पुरुषोंको मालूम होगा कि इनकी बाइबिलादि पुस्तकें वह ईश्वरकृत नहीं है किन्तु वह किसी जाली पुरुष की बनाई हुई है सो दिखाते हैः-"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सृजा। और पृथ्वी बेडौल और सूनी थी और गहराव पर अंधियारा था और ईश्वर का आत्मा जलके ऊपर डोलता था। (पर्व्व १ आ० १,२)" अब हम तुमसे पूछते हैं कि आरम्भ किसको कहते हो जो तुम कहो कि सृष्टिकी प्रथम उत्पत्ति की, तो हम पूछे हैं कि प्रथम सृष्टि यही हुई थी कि इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी जो कहो नहीं हुई थी तो पेश्तर ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को बनाया तो हम तुम्हारे को पूछे हैं कि आकाश किसको कहते हो जो तुम कहो कि आकाश नाम पोल का है तो जब तक ईश्वर ने आकाश नहीं बनाया था तो तुम्हारा ईश्वर किस जगह रहताथा क्योंकि विना पोलके किस जगह पदार्थ रहेगा और वह ईश्वर रहेगा इसलिये आकाश का बनना असम्भव है तो ईश्वर का बनना ऐसा कहना भी असम्भव ही हुवा और इसी में लिखते हो कि पृथ्वी बेडोल और सूनी थी तो फिर कहते हो कि ईश्वर ने पृथ्वी बनाई तो यह वाक्य क्योंकर मिलेगा एक वचन में तो पृथ्वी ईश्वर ने रची और दूसरे में पृथ्वी बेडोलथी तो एक जगह तो बेडोल कहने से ईश्वर की रची न ठहरी जो कहो कि पृथ्वीको बेडोल अर्थात् ऊंची नीची थी पीछे ईश्वर ने दुरुस्त किया अर्थात् सुधारी तो पेश्तरही ईश्वर ने बेडोल क्यो रची थी? क्या उस को इतना भी शहूर न हुवा कि फिर मुझको इसे ऊंची नीची संवारनी पडेगी और जो उसने ऊंची नीची पृथ्वीको दुरुस्त किया तो क्या पृथ्वी अबार भी ऊंची नीची बहुत देखने में आती है जब तो खुदा की मजदूरी करना व्यर्थ हुवा और ईश्वर को ऐसे २ काम करने भी उचित नहीं क्योंकि यह काम मजदूर लोगों का है इस कामके करने से खुदा तो वर्त्तमान काल के कुलियों अर्थात् मजदूरो से बढिया कुली ठहरा इसलिये यह पुस्तक ईश्वर की की हुई नहीं। दूसरी आयत में लिखते हो" ईश्वर का आत्मा अर्थात् (प्राण) जलके ऊपर डोलता था" अब हम तुमसे पूछते हैं कि तुम वह आत्मा किसको कहते हो अर्थात् क्या पदार्थ है जो कहो कि चेतन है तो साकार है वा निराकार जो कहो कि साकार है व्यापक है या एक देशी है जो कहो कि व्यापक है तो वह तुम्हारा ईश्वर व्यापक होने से सर्व जमीन आसमान भर गया और कुछ जगह खाली न रही जब तो उस को सृष्टि रचने को नहीं मिल सक्ती है क्योंकि जिस जगह एक चीज रक्खी हुई है उस जगह दूसरी चीज नहीं समयासक्नी जो कहो कि एक देशी है तो एक देशी जो पुरुष होता है तो जिस देश में वह रहेगा उसी देश में वह काम करसकता है अन्य देश में कदापि न कर सकेगा इसलिये एक देशी होने से भी सृष्टि का कर्त्ता नहीं बनता है अगर जो

खुल जायँगी और तुम भले और बुरेकी पहिचानमें, ईश्वरके समान हो जावोगे और जब स्त्रीने देखा वह पेड खानेमें सुस्वाद और दृष्टिमें सुन्दर और बुद्धि देनेके योग्य है तो उसके फलमेंसे लिया और खाया और अपने पतिकोभी दिया और उसने खाया। तब उन दोनोकी आखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नगे हैं सो उन्होंने गूलरके पत्तोंको मिलाके सिया और अपने लिये ओढना बनाया। तब परमेश्वर ईश्वरने सर्पसे कहा कि जो तूने यह किया है इस कारण तू सारे ढोर और हर एक पशुनसे अधिक शापित होगा तू अपने पेटके बल चलेगा और अपने जीवन भर धूल खायाकरेगा॥ और मैं तुझमें और स्त्रीमें और तेरे वंश और उसके वंशमें बैर डालूंगा वह तेरे शिरको कुचलेंगे और तू उसकी एडीको काटेगा और उसने स्त्रीको कहा कि मैं तेरी पीडा, और गर्भधारण को बहुत बढाऊंगा तू पीडासे बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पतिपर होगी और, वह तुझपर प्रभुता करेगा॥ और उसने आदमसे कहा कि जो तूने अपनी पत्नीका शब्द माना है और जिस पेडको मैंने तुझे खानेसे बरजाथा तूने खाया है इस कारण भूमि तेरे लिये शापित है अपने जीवनभर तू उसे पीडाके साथ खायगा और काटे और ऊट कटारे तेरे लिये उगायगी और तू खेतका साग पात खायगा" अब देखो ईसाई लोगोंका ईश्वर अज्ञानी मालूम होता है और मूर्खभी मालूम होता है और अपराधीभी बनेगा क्योंकि जो ज्ञानी होता तो उस धूर्त्त सर्प्प अर्थात् शैतानको क्यो बनाता और बनाया इसीसे अज्ञानी हुवा जो वह विवेकी चतुर होता तो वह अपने हाथसे अपनेही कामको क्यों बिगाड़ता क्योंकि उस ईश्वरने आदम और आदमकी औरतको उस बगीचेमें रक्खा और उस दरख्तके फलको खानेसे मना किया यही उसका कामथा सो उस शैतानने उसके हुक्मको न रहने दिया और उसको खिला दिया और ईश्वरको इसीलिये अपराध हुवा कि उस धूर्त शैतानको जोकि ईश्वरके बनाये हुये मनुष्योंको बहकाता और ईश्वरका हुक्म न चलने देता और उनको बुरी बातें सिखलायकर उनको दुःख दिलवाता तो जो ईश्वर उसे पैदा न करता तो लोगोंको दुःखका कारण क्यों होता इसलिये उस शैतानका उत्पन्न करने वाला इस दु.खका मूल कारण ईश्वरही ठहरेगा नतु शैतान। अब देखो यहा क्या मजे की बात है कि धूर्त्तपन तो आप करना और उस बिचारे शैतानको दूषण लगाना क्योंकि एक मसल है (शाबास बहू तेरे घरसको-किया आप लगावे लड़केको) अब देखो शैतान अर्थात् धूर्त्तपन तो वह तुम्हारे ईश्वरने किया कि बाबा आदम और उसकी औरतको कहा कि तुम वो जो बीचमें दरख्त है उसके फलको न खाना और ईश्वरने कहा कि तुम न छूना न हो कि मरजावो अब कहो कि ऐसा धोखा देकरके कि जिसके फल खानेसे भले बुरेका ज्ञान होय उसके तई मना किया और मरजानेका डर दिखलाया तो अब देखो इस ईश्वरने झूठ बोलकर कैसा उसको धोखा देकर शैतानपनेका काम किया अब इससे जियादा ईश्वरके सिवाय कौन शैतान हो सकता है तब तो उस सर्प्प बिचारेने उस औरतसे कहा कि तुम वाडीके बीचमें जो फल लगे हुये हैं उनको खावो जब स्त्रीने सर्प्पसे कहा कि हम तो इस वाडीके पेडोका फल खाती हैं परन्तु उस पेडका फल जो वाडीके बीचमें है ईश्वरने कहा कि तुम उसे न खाना

बिना कोई वस्तु नही थी जो कोई वस्तु नही थी तो यह जगत् कहासे बना जो कहो कि नही जी ईश्वरको सामर्थ्य है तो फिर क्यो बार २ पूछते हो अजी हम तुमसे यह पूछे है कि ईश्वरका सामर्थ्य भिन्न है वा अभिन्न है ? और भिन्न है तो द्रव्य है व गुण है जो कहो कि भिन्न है और द्रव्य है तब तो जगत्का कारण भिन्नरूप द्रव्य होनेसे जगत् कारण सर्व अनादि सिद्ध होगया जब तो तुम्हारा कहना सृष्टिके पूर्व ईश्वरके सिवाय कुछभी वस्तु न थी यह कहना तुम्हारा निष्फल हुवा जो कहो कि सामर्थ्य गुण है तो देखो कि गुणीको छोडके गुण अलाहदा नही रह सकता कदाचित् जो तुम ऐसा मानोगे कि सामर्थ्य रूप गुण ईश्वरका अलग रहेगा तब तो तुम्हारा ईश्वरही नष्ट हो जायगा जो कहो कि अभिन्न है तब तो वो ईश्वररूपी आदम हो गया जब तुम्हारा धूलिसे आदमका बनाया कहना निष्फल हुवा और इन्ही आयतोंमें लिखा है कि "ईश्वरने पूर्वकी ओर एक बाडी अर्थात् बगीचा लगाया उसमे आदमको रक्खा और उस बगीचेके बीचमे जीवनका पेड और भले बुरेके ज्ञानका पेड भूमिसे उगाया" तो हम जानते है कि ईश्वरमे तो भले बुरेका ज्ञान कुछ था नही इसलिये दरख्त लगाया होगा जब ईश्वरकोही ज्ञान नही तो उस दरख्तके फल खानेसे क्योंकर ज्ञान उत्पन्न होगा अब देखो यहा कैसी लडकोंकी सी बात है क्या तुम ईसाई लोगोंमे उस वक्त बुद्धिमान् नथा गैर (प० २ आ० २१,२२) मे लिखा है कि "ईश्वरने आदमको बडी नीदमे डाला और सोगया तब उसने उसकी पसलियों मसे एक पसली निकाली और उसके सायही मास भर दिया और ईश्वरने आदमकी उस पसलीसे एक नारी अर्थात् एक औरत बनाई और उस आदमके पास लाया" तो अब देखो कि जैसे आदमको धूलिसे बनाया था तो उस औरतकोभी उस ईश्वरने धूलिसे क्यों नही बनाया और जो नारीको हड्डीसे बनाया तो उस आदमको क्यों नही हड्डीसे बनाया जो कहो कि नरसे नारी होती है तो हम कहते है कि नारीसे नर होता है और देखो कि जब नरकी एक हड्डीसे औरत बनी तो नरकी एक हड्डी कमती होनी चाहिये और औरतके एकहा हड्डा शरीरमे होना चाहिये सो तो नही दीखती है किन्तु नर और नारी दोनोके हड्डी बराबर मालूम होती है तो हम जानते है कि उसवक्त कोई ऐसा डाक्टर नही होगा कि जो उस वक्त इन गप्पोंको सुनकर जवाब देता क्योंकि उस विलायतमे जगली मनुष्य पशुओंके समानथे इसलिये वह विचारे कुछ न कह सके इसीलिये तुम्हारा मत ईसाइयोका उस विलायतमे चला गया परन्तु इस मुल्कमें विवेकी बुद्धिमान् पुरुष होनेसे तुम्हारी बाईबिलकी गप्पे कोई न मानेगा किन्तु उल्टी हँसी और मसखरी करेगा औरभी देखो (प० ३ आ० १, २, ३, ४, ५, ६, ७, १४, १५, १६, १७, १९) में लिखा है कि "अब सर्प भूमिके हरएक पशुसे जिसे परमेश्वर ईश्वरने बनायाथा धूर्तथा और उसने स्त्रीसे कहा क्या निश्चय ईश्वरने कहा है कि तुम इस बाडीके हरएक पेडसे न खाना । और स्त्रीने सर्पसे कहा कि हम तो इस बाडीके पेडोका फल खाते है परन्तु उस पेडका फल जो बाडीके बीचमें है ईश्वरने कहा कि तुम उसे मत खाना और न छूना न हो कि मरजावो तब सर्पने स्त्रीसे कहा कि तुम निश्चय न मरोगे क्योकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खाओगे तुम्हारी आखे

है कि ईश्वर भी ईर्षा करने लगा तब तो मनुष्यमें भी ईर्षा होना बुरा कहना जे बात वृथा निष्फल होजायगी क्योंकि जो ज्ञानी पुरुष होते हे सो तो ईर्षा छुडानेमें उपदेश देते हैं और ईसाइयोंके ईश्वरने आदमको पैदा किया और उसके ज्ञान होनेसे ईश्वरने कितना दुःख माना और उसके बदलेमे आदमको अमर फल न खाने दिया और उल्टा उस विचारे गरीबको वहाँसे निकाला और अमरफलके ऊपर चमकते खड्गका पहरा रक्खा इसके देखनेसे मालूम होता है कि वह ईसाईयोका ईश्वर वेवकूफ निहायत ईर्षावालाही है । (प० ६ आ० १, २, ४,) में लिखा है कि " उनसे और बेटियाँ उत्पन्न हुई तो ईश्वरके बेटोंने आदमकी पुत्रियोंको ब्याहा और उनसे बालक उत्पन्न हुये और ईश्वरने देखा कि आदमकी दुष्टता पृथ्वीपर बहुत हुई है तब आदमीको उत्पन्न करनेसे परमेश्वर पछताया और अतिशोक हुवा पृथ्वी परसे नष्ट करूंगा, उन्हें उत्पन्नकरके पछताया" अब देखो यहा विचार करो कि ईश्वरके पुत्र हुवे तो ईश्वरके औरतभी होगी जब ही आदमको धूलिसे बनाया ये कहना तो शेखसिल्लीके समान हुवा क्या खूब ईसाइयोंकी बात है कि खूब गप्पे ठोंकी । भला विचार तो करो कि ईश्वरके सिवाय और तो कोई दूसराथाही नही फिर यह पुत्रादिक और आदमकी पुत्री जीव विदून कहासे उत्पन्न हुई और जो उत्पन्न भई तो नर और नारीका होना किस कर्मसे हुवा जो कहो कि बुरे भले कर्मसे हुवा जो कर्म से होगा तो पूर्वजन्मभी तुमको माननाही होगा तुम पुनर्जन्म मानतेहो नही और जीवभी ईश्वर से पहले मानतेही नही जो कहो कि ईश्वरसेही नर और नारी बनता गया तवतो ईश्वरनेही ईश्वरको शापदिया और ईश्वरही औरत बनकर गर्भ धारणकिया और ईश्वरही उत्पन्नहुवा तब ईश्वरकी सृष्टिठहरी तब ईश्वर क्यों पछताया और क्यों अतिशोक किया और उनके बनाने में पश्चात्तापकिया तो पहले अज्ञातदशा से क्यों बनायाथा और जो अज्ञान से बनाया तो फिर सबको नष्टकरूंगा ऐसाभी क्यों विचारा जो ऐसा विचारा तो सबके नष्टहोने से यह ईश्वरभी नष्टहोजायगा फिर ईसाईलोग किसको मानकर अपने पापको क्षमाकरायेंगे इसीलिये ईसाको ईश्वरने शूली दिलवाईथी क्या खूबकाम उस तुम्हारे ईश्वरने किया किसी रीतिसे उसको चैन न पड़ा सिवाय दुःख के और देखो कि ऐसा लिखाहुवा है कि "उस नावकी लम्बाई तीनसौ हाथ और चौडाई पचास हाथ और ऊँचाई तीसहाथकी होवे। तू नाव में जाना तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरे बेटोंकी पत्नियां तेरेसाथ । और तू सारे शरीरों में से जीवता जन्तु दो २ अपनेसाथ लेना जिससे वे तेरे साथ जीते रहें, वे नर और नारी होवें; पक्षी में से उसके भाँति२ के और ढोरमेंसे उसके भाँति २ के और पृथ्वी के हरएक जीवों में से भांति २ के दो २ तुझ पास आवें जिससे जीते रहे और तू अपने लिये खानेको सब सामग्री अपने पास इकट्ठाकर वह तुम्हारे और उनके लिये भोजनहोगा । सो ईश्वरकी सारी आज्ञा के समान नूहने किया (तौ० प० ६ आ० १५, १८, १९, २०, २१, २२)" और देखो नूहने परमेश्वर के लिये एक वेदी बनाई और सारे पवित्रपशु और हरएक पवित्र पक्षियों मेसे लिये और होमकी भेंट उस वेदीपर चढाई और परमेश्वरने सुगन्ध सूघा और परमेश्वरने अपने मनमें कहा कि आदमीके लिये मैं पृथ्वी को फिर कभी शाप न दूंगा इसकारण कि आदमीके मनकी भावना उसकी लड़काई

और न छूना नहीं कि मरजावो तब सर्पने उपकार बुद्धि जानकर स्त्रीसे कहा कि तुम निश्चय न मरोगी क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खावोगी तुम्हारी आंखें खुल जायगी और तुम भले और बुरेकी पहँचानमें ईश्वरके समान हो जावोगी और जब स्त्रीने देखा वह पेड खानेमें स्वाद और दृष्टिमें सुन्दर बुद्धि देने योग्य है तब फल लिया और खाया और अपने पतिको भी दिया उसने भी खाया तब दोनोंकी आंखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं सो उन्होंने गूलरके पत्तोंको मिलाकर सिया और अपने वास्ते ओढना बनाया। अब देखो कोई बुद्धिमान् इन्साफी विचार करके देखे कि इस विचारे सर्पने आदमका कैसा उपकार किया और ईश्वरने कैसा धोखा दिया तिसपर भी ईश्वरको खबर न हुवा कि आदमको धोखा दिया और ज्ञान न होने दिया और उपकार करनेवाले सर्पको भी शाप देने लगा कि तु पेटसे चलेगा और धूल खायगा और तुझमें और तेरे वंशमें स्त्री और स्त्रीके वशमें वैर डालूगा वह तेरे शिरको कुचलेगा और तू उसकी एडीको काटेगा और उस औरतको भी शाप दिया मैं तेरे गर्भ धारणको बहुत बढाऊंगा और पीडासे बालकको जनेगी और तेरी इच्छा पतिपर होगी वह तुझपर प्रभुता करेगा और आदमको कहा तूने अपनी पत्नीका शब्द माना और मैंने तुझे खानेसे बरजा था तूने खाया इसी कारण भूमि तेरे लिये शापित है। अब देखो विना कसूर उन तीनोंको शाप देने लगा अब कहो उन तीनोंका क्या कसूर था अपना कसूर आपको न दीखा भला वह ईश्वर जी दयालु होता तो वह फल ज्ञान और अमर होनेका लगाया था तो मना क्यों करता और जो मने करनेको इच्छाथी तो उस दरख्तको क्यों लगाया इस बाइबिलकी बातोंको बुद्धिमान् पढकर अथवा सुनकर बुद्धिमें विचार करते हैं कि उस ईश्वरने अज्ञानसे उस दरख्तको लगाया और उसका फल जब उसने खाया तब उसको ज्ञान हुवा उस ज्ञानसे उसके दिलमें ईर्षा होकर ऐसा खयाल हुवा कि इस फलको जो कोई खायगा वह मेरे समान हो जायगा तब मेरेको कौन मानेगा इस डरसे आदमको मना करदिया। छी! छी!! छी!!! इस खुदाके मानने वाले पर और उस खुदा पर क्योंकि उस खुदासे तो वह शैतान ही अच्छा था क्योंकि उसने आदमका उपकार किया। भोले भाई ईसाइयो ख्याल बन्दकर कुछ हृदयमें विचार करके ऐसा जो धूर्त्त शैतानोंका शैतान ईश्वर उसको छोडकर "वीतराग राग" सर्वज्ञ देव सर्व जीव उपकारी, दीनदयालु, जगत्बन्धु, देवाधिदेव, श्रीअर्हतदेव, निष्कारण, परदुःखनिवारक निष्पृहके वचनको अंगीकार करो जो तुमको अपनी आत्माका कल्याण करना है तो। (प० ३ आ० २३,२४) इसमें ऐसा लिखा है कि "ईश्वरने कहा कि देखो आदम भले बुरेके जाननेमें हमारे समान होगया और अब ऐसा न होवे कि वे अपना हाथ डाले और जीवनके पेडमेसे भी लेकर खावे और अमर होजाय" सो इसने आदमको निकाल दिया "और अदनकी वाडीकी पूर्व ओरको ठहराये और चमकते हुये खड्गको जो चारों ओर घुमाता था जिससे जीवनके पेडके मार्गकी रखवाली करें"—अब देखो भला ईश्वरको कैसी ईर्षा हुई कि ज्ञानमें हमारे तुल्य हुवा यह बात क्या बुरीहुई क्योंकि ईश्वरके तुल्य होनेसे क्या ईश्वरकी ईश्वरतामें हिस्सा लेता था ईश्वरसे लडता क्या ईश्वरकी रोजी बाटता था। हा!! कैसे खेदकी बात

हुवा उसकी माता 'मरियम' की यूसफसे मगनी हुईथी पर उनके इकट्ठे होनेके पहले ही वह देख पडी कि पवित्रआत्मासे गर्भवती है देखो परमेश्वरके एक दूतने स्वप्नमे उसे दर्शन दे कहा हे दाऊदके सन्तान यूसफ' तू अपनी स्त्री मरियमको यहां लानेसे मत डर क्योंकि उसको जो गर्भ रहा है सो पवित्रआत्मासे है, (इ० प० १ आ० १९, २०) तब आत्मा ईशूको जंगलमें लेगया शैतानसे उसकी परीक्षा की जाय वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास (व्रत) करके पीछे भूखा हुवा तब परीक्षा करनेहारेने कहा कि जो तू ईश्वरका पुत्र है जो कह दे कि यह पत्थर रोटिया बनजावे (इ० प० ४ आ० १, २, ३) अब देखो मरियम क्वारीथी और उस पवित्रआत्मा अर्थात् ईश्वरसे गर्भवती हुई फिर ईश्वरके एक दूतने यूसफ्को कहा तू अपनी औरतको यहा लानेसे मत डरना क्योंकि उसमें जो गर्भ है सो पवित्र आत्मासे है क्या वो ही ईश्वर था वा हेवान कोई जंगली मनुष्य था जब तो यह तुम्हारा ईश्वर निराकार मानना व्यर्थ होगया क्योंकि जब मरियमके गर्भ रहा तो उसका निराकार कुत्तेका सींग है और फिर देखो जब उसके गर्भ रहा तो वो उसकी औरत होचुकी फिर यूसफको स्वप्न देकर उससे कहा कि तू अपनी औरतको लानेसे मतडर अब देखो ऐसी २ जाल रचकर ईश्वर ठहरता है ऐसा पुरुष व्यभिचारी, अनाचारी ठहरता है ऐसी २ बातें देखनेसे न तो वो पुस्तक ईश्वरकी है और न उस पुस्तकका लिखा ईश्वर ठहरता है, औरभी देखो प०४मे जो हम ऊपर लिख आये है उससे ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं जो कहो कि नही जी वह तो सर्वज्ञ था अरे भोले भाइयो ! कुछ तो विचार करो कि जो तुम्हारा ईश्वर सर्वज्ञ होता तो शैतानसे ईसाकी परीक्षा क्यो कराता उस तुम्हारे ईश्वरसे तो वह शैतान जो है सोई बुद्धिमान् विवेकी मालूम होता है क्योंकि इसकी परीक्षाके लिये चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुवा परीक्षा करनेवालेने कहा जो तू ईश्वरका पुत्र है तो कहदे कि यह पत्थर रोटियॉ बन जाओ अब देखो न तो वह ईश्वरका पुत्र ठहरा कदाचित् कहो कि ईश्वरका पुत्र है तबतो ईश्वरके ही तुल्य होता तो जब ईश्वरके तुल्य होता तो फिर वह उसकी परीक्षा क्यों करता क्योंकि ईश्वर जानता ही था यह मेरा पुत्र है या वह ईश्वर भी भूल जाताथा तो न तुम्हारा ईश्वर ठहरा न तुम्हारी इजील पुस्तक ईश्वरकृत ठहरी न वह ईश्वरका पुत्र ईशू ठहरा इसीलिये भोले जीवोंने इस मतको अंगीकार तो करलिया परन्तु विश्वास न आया इसीलिये तुम्हारी इस इंजीलमें (म० १ प० १, आ०१९, २०) मे लिखा है कि हे अविश्वासियो और हठीले लोगो मै तुमसे सत्य कहता हू यदि तुमको राईके एक दानेके तुल्य विश्वास हो तो तुम इस पहाडसे जो कहोगे कि यहासे वहा चला जाय वह चला जायगा और कोई काम तुमसे असाध्य न होगा" अब देखो कि ईसा दुबरदू(रूबरू) मौजूदथा और लोगोको उसके कहनेपर विश्वास न हुवा जो राईके एक दाने भरभी किसीको विश्वास होता तो उनका सर्व काम सिद्धि होता तो जब ईशूके सामनेही जो लोग अविश्वास करतेथे तो इस समय ईसाई लोगोंका क्यो विश्वास हो जो कहो कि नही जी हमको तो ईशूके वचन पर पूरा २ विश्वास है क्योंकि ईसू ईश्वर पवित्र आत्माका पुत्रथा-इसलिये अरे भोले भाइयो ! यह तुम्हारा कहना तो कहनेमात्रही दीखता है क्योंकि तुम लोग दिन रात इस हिन्दुस्थानके शह-

से बुरी है और जिसरीति से मैने सारे जीवधारियों को मारा फिर कभी न मारूंगा (तौ० प०८ आ० २०, २१,) देखो १५ वी से २२ वी तक ६ पर्व में जो हम ऊपर लिखचुके है अब देखो कैसी असभवकी बातें लिखीहै कि इतनी लम्बी, चौडी, ऊची नाव में हाथी घोड ऊंट, बकरी, भेड, आदमी, दास, दासी, बेटा, बेटी, लुगाई, बहू सबको नाव मे बैठावने और भाँति २ के जानवर वगैर सबको और मानेके लिये ऐसा नूहसे कहा अब देखो यह विचारकरो कि वह तुम्हारा स्वर्ग आसमान पर न होगा किंतु कोई समुद्रके किनारे टा पूकों स्वर्ग मानलिया दीखे अहारे ईसाइयो क्या तुम्हारे पुस्तकोंकी तारीफ करें कि ऐसी छोटी २ नाव मे लाखा हाथी, घोडा, ऊट, बेल, छेरी, गाय, पक्षी और आदमी सम गये कोई पूछनेवाला न था नहीं तो तुम्हारी किताबो मे ऐसी गप्पे क्यों लिखीजाती अह ईसाइयों मे ऐसा कोई बुद्धिमान् विवेकी न हुवा जो इन गप्पोंको निकालकरके शुद्धया का प्रक्षेपकरता जिससे ईसाई लोग इस जाल से निकसकर शुद्ध मतको अंगीकार करते स देखो " पर्व ९ की आ० २०, २१, मे नूहने ईश्वरकी वेदी बनाई पशु और पक्षियों मे स होमके वास्ते वेदीपर भेटरक्खे" अब इसके देखने से तो मालूमहोता है कि हिंसकमत के चलाने वाले जो कि वेद आदि ग्रन्थोंमें जो यज्ञ आदि करना उन्ही पुस्तकों वालोंकी सुहबत करके ईसाइयोंने भी जाल रचकर भोले जीवोंको बहकाने लगे ईश्वरके नामसे होमकराना,वेदी बनाना, आग लाजाना, छी ! छी !! छी !!! ऐसे ईश्वर औ ऐसे ईश्वरके मानने वालो को कि जो जीवकी हिंसाकरके वा दूसरोंसे करायकर ईश्वरने सुगन्धसुघ और प्रसन्न होकर कहने लगा कि फिर पृथ्वीको कभी शाप न दूगा इससे तो हमको मालूम होता है कि कोई राक्षस व दानव होगा नतु ईश्वर क्योंकि जो मास खाने अथवा सूघनेसे खुश हुवा और आशीर्वाद देने लगा और फिर यह भी कहने लगा मने सारे जीव धारियोंको मारा फिर कभी न मारुगा,अब कहो वह जो खुदा है क्या शेखचिल्ली है जो ऐसी २ बातें कहता है हे! भोले भाई ईसाइयो ऐसे खुदाको छोडके कोई सर्वज्ञदेव मानों जिससे तुम्हारी आत्माका कल्याण हो फिर देखो ९ वे पर्व्वकी आ० १, ३, ४, और पर्व्व १२ की आ० १, ४, ५, ७, ९ और पर्व्व १२ की आ० ११, १२,१३ और पर्व्व १७ की आ० ९, १०,११, १२, १३, १४ पर्व्व ३२ तक अथवा ३९ तक जो २ गप्प लिखी हे उनका हम कहा तक लिखें जो २ हिंसा धूर्त्ताई, छल वचन जो बाइबिल आदि पुस्तकोंमें लिखा है अब एक लय व्यवस्थाकी पुस्तक तौ० ॥ तौ० लेव्य० व्यवस्थाकी पुस्तक (प० १—२) इ- समे लिखा है कि मसाको बुलाया और इस्राइलके सन्तानसे भेट मगाई कि गाय भेड बैल बकरी अब विचारिये देखो तो सही कि ईसाइयोका ईश्वर गाय, आदिकोंका अपने वास्ते वाळिदान लेनेके लिये उपदेश करता है हा! हा!! हा!!! छी! छी!! छी!!! थू! थू!! थू!!! इस ईश्वर पर जो विचारे पशुओंके मास और खूनका प्यासा है और भूखा है वह कदापि ईश्वर कभी न ठहर सकता है, हिंसक, महापापी, निर्दयी, दुष्ट मालूम होता है इस पुस्तकमें भी ऐसी निर्दयताकी बात देखकर रोमाञ्च खडे होगये, लेखनी थक गई किन्तु चित्त न माना दिलम उमग आई मत्ती रचित इञ्जीलकी झूठी गप्पे पाई, ईसाइयोंमें कैसा अज्ञान मोत छाई ईसूकी जन्म रीति लिखित् हमने भी सुनाई मत्ती क्राइष्टका जन्म इस रातिसे

अथ सनातन धर्म अर्थात् अनादि सिद्धि ॥



अब इस जगह प्रश्न शिष्यकी ओरसे और उत्तर गुरुकी ओरसे जानना क्योंकि पेश्तर हम कह चुके हैं कि जैन मत अनादि सिद्ध है सो पाँचों मत वर्तमानमे जो जियादः प्रचलित है उनहीको वर्णन करके पश्चात् हम अनादिसिद्ध करेंगे ऐसा कह आयेथे सो दिखाते हैं कि (प्रश्न) आपने जो पांचो मतके उपदेशकी रीतिथी सो उनहीके शास्त्र और किताबोकी साक्षीसे उनके सत्यासत्यका विचार दिखाय दिया और आपने अपने मतसे इनको खडन न किया इनहींके मतसे इनका विरोध दिखाय दिया सो कारण क्या? (उत्तर) भो! देवानोप्रियः श्री जिन मतमे किसीकी पक्षपात नही है जो पक्षपात होती तो हम अपने मतको लेकर इनको खण्डन करते क्योंकि जो मत पीछे प्रवर्त्त होते हैं और असर्वज्ञके वचन उनहीमे विपम वाद होता है और वे विपमवादी लोग अपने मतको सिद्ध करते है उनके जालमें आत्मार्थीके विना भोले जीव फँसकर अपनी आत्माको डुबाते हे । (प्रश्न) भला जिन मत अनादि कैसे सिद्ध है? (उत्तर) जिन मतोका हम प्रतिपादनमें सत्यासत्य पदार्थका निर्णय उनहीके मत मूजिब उनका पदार्थ सिद्ध न हुवा तो जैनमत अविपमवादी अनादि सिद्ध हो गया (प्रश्न) भला अविपम वादी किसको कहते हे? (उत्तर) अविपमवादी उसको कहते हे कि जिसके वचनमे पदार्थ निर्णय करनेमे विरोध न होय, हेतु अर्थात् कारण सत्य हो जिससे कार्य्य उत्पन्न हो कदाचित् हेतुमे विपम वाद होतो कार्य्य कदापि उत्पन्न नही हो । (प्र०) तो कारण कार्य तो सभी कोई कहते हे । और सबने अपने २ पदार्थ सिद्ध किये हे और सबको मोक्षके लिये अभिलापारहती है? (उत्तर) हे देवानोप्रियः ! जो सब कोई हेतु सत्य कहते तो उनके कहे हुवे पदार्थभी सिद्ध होते सो तो हम तुमको पहले दिखाय दिये हे किन्तु इन्होने सर्वज्ञ देवका किञ्चित् २ वचन लेकर अपनी मन कल्पना अभिप्राय कारण कार्यके अजान होकर पक्षपातमें लिपट कर शुद्ध मार्गसे विपरीति होकर अपने २ मतकी पुष्टि करने लगे । (प्रश्न) तो क्या जैन मतमें पक्षपात नही? (उत्तर) भो देवानोप्रियः ! जैन मतमें पक्षपात मेरेको नही दीखती है । (प्रश्न) ऐसा तो सबही मतावलम्बी कहते है तो आप सर्व मतावलम्बियोकी पक्षपात और अपने मतकी निर्पक्षपात कैसे कहते हो? सो दिखलाइये ? (उत्तर) अब देखो कि नय्यायिक सोलह (१६) पदार्थ मानता है । और वैशेपिक छः (६) पदार्थ मानता है अब देखो इनमे आपसमे विपमवाद न होता तो आपसमे जुदे २ पदार्थ क्यों मानते? और इनका मूल मंत्रभी सिवाय शिव उपासनाके अर्थात् ईश्वरके कोई जगत्का कर्त्ता धरता, हरता नहीं सो भी अनुमान से सिद्ध करते हे और उसको निराकारभी मानते हे और शिव २ ऐसा करना और फिर महादेवादिकके लिंगको पूजना अपने मतलबके लिये वेदकीभी श्रुति मान लेते परन्तु पूरे वेदको न मानते जो पूरे वेदको मानते तो वेदसे अतिरिक्त पदार्थोकी कल्पना करके अपने ग्रन्थ नवीन रचते और मोक्षभी इनकी ज्ञानमय आत्माको जड़रूप बनाय देना है तो अब देखो इनकी कितनी बातोमे विपमवाद हुवा

रोंकी गली व कूचे २ में थक्के फिरते हो और सैकड़ों रुपया खर्चते हो तो भी तुम्हारे जालमें विवेकी बुद्धिमान्के बिना चमार, चलाई, धोबी, नाई, भूख मरते हुवे खानेका संयोग न मिलता हो किन्तु मोलाभी हो ऐसी नीच जातिके कोई २ तुम्हारे जालमें आफँसते हैं और मुसल्मान लोग तुम्हारेभी उस्ताद हैं क्योंकि मतलबके वास्ते तुम्हारे ईसाई मतको अंगीकार करतेहैं जब उनका मतलब हो जाय तो उसीवक्त छोड़ कलमा पढकर फिरभी मुसल्मान हो जाते हैं इसके देखनेसे तो तुमको राई भरभी, विश्वास नहीं जो राई भरभी होता तो सारे हिन्दुस्थानको ईसाई कर लेते परन्तु किसी ईसाईको विश्वास नहीं कि "आपही मियाँ मांगते और द्वार खडे दरवेश" इस मसलसे मालूम होता है क्योंकि जब ईशू जीताथा उसीवक्त उसके शिष्यने जब पकड़वाय दिया और ईशू पकड़ा गया जब ईशूसे कुछ न हुवा "ईसू आदिसवे सामने खड़ा वहांसे लेकर प्राण भागा" ॥ (ई० म० प० २७ आ०, ११, १२, १३, १४, १५, २०, २३, २४ २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३३, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०) अब देखो यहां विचार करो कि जो मसल हम आगे देचुके हैं वह बराबर मिलती है जो ईशू करामाती और विद्यावाला होता तो देखो जो उसका चेलाथा उसको इस मतपर विश्वास होता. तो क्यों उसके लोभ की खातिर पकड़वाता अपनी जानजाती तो जाती परन्तु अपने गुरुको वो यहूदियोंका राजा जो हुवया उससे मिलकर तुम्हारे ईश्वरके पुत्र ईशूको क्यों पकड़वाता और वे ऐसा २ दुःख उसे क्यों देते और मार मारते और दुर्वचनादिक बोलते और शेषमें उसको सूली पर चढाय कर प्राण त्याग कराय देते इसीलिये तुम्हारे ईशूके ऊपर यह दण्ड हुवा कि उस ईशूने धूर्ताई जाल से जैसे भोले लोगोंको भ्रमजालमें फँसानेके वास्ते ईश्वरका पुत्र बन बैठा अपना प्राण छोड़ना पड़ा और प्रभुकीभी हँसी कराई इसलिये ईश्वर किसीका बाप नहीं और ईश्वरका कोई पुत्र नहीं जो ईश्वरका पुत्र होता तो जिस समय ईशूने चिग्गी मार २ बडे शब्दोंसे ईश्वरको पुकारा परन्तु ईश्वर तो "वीतराग" सर्वज्ञ देव सबके भले बुरे जीवको कृत जानने वाला है वह किसीका पक्षपाती नहीं इसलिये ईसाने जैसा काम किया तैसाही फल पाया और वह ईशू करामातीभी नहीं था जो वह करामाती होता तो उसीवक्त उन लोगोंका स्तम्भन हो जाता और ईशूके शिष्य बनजाते और उसका धर्म अङ्गीकार करलेते सो तो न हुवा किन्तु उसके जालको तोड़कर और उसका प्राण त्याग कर दिया ऐसी २ बातें ईसाई मतकी देखके और उन्हीं पुस्तकोंकी और ऐसी कई पुस्तकोंकी गप्पें अर्थात् हिंसा आदि बुरे बुरे कर्म्मोंकी व्यभिचारीपनेकी और अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये जो जाल बाइबिल, तौरेत, अजील आदिकोंमें लिखी देखकर उनके बाँचनेसे चित्तमें थरथरी होकर रोमाञ्च खडे होगये और हृदयमें दया उत्पन्न होकर हाथकी लेखनी थक गई और इन शून्य बातोंका चित्तसे खयाल उड़ गया क्योंकि इम लोगोंके अहिंसा परमधर्म आत्मअनुभवके विचार बिना काल खोना वृथा जानकर इन मनहूस जंगली ईसाई मतवालोंकी बातोंसे दिक होगई॥

इतिश्री जैन धर्माचार्य मुनिचिदानन्द स्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीय प्रश्नोत्तरान्तर्गत ईसाई मत निर्णय समाप्तम् ॥

कि है' उपादेको जो समझकर अगीकार करेगा उसीका होगा न कोई जैनी न कोई वैश्नव । अब देखो तुमही विचार करो पक्षपातरहित सिद्ध हुवा कि नही और भी देखो कि जैसे २ मतावलम्बियोने अपना २ पक्षपात मत्र उपासनादिकोमे जो किया है तैसाभी इस मतमें पक्षपात सहित कोईभी उपासनाका मत्र नही है किन्तु पक्षपात रहित जो इनका उपासना मत्र मूल है उसीको लिख करके अर्थ सहित दिखाते हे ॥ (१) णमो अरीहताण, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाणं, णमो उझायाण, णमोलोए व्वसासाहूणं, एसो पंचणमुःकारो सव पाप्पणासनो, मगलाणच सव्वेसि पढमं हवे इ मगल" ॥ अर्थः-(णमो अरि हताण) कहता नमस्कार अरिहतको होय, इस अरिहंत पदके तीन अर्थ होते हे । (१) अरि कहता जो शत्रु उनको मारे अर्थात् कर्मरूपी शत्रुओंको दूर करे नतुः (अरि) कहता ससारी शत्रुको नही किन्तु राग द्वेप आदि जोकि ससारके बन्ध हेतु उनको जीते अर्थात् उनको दूर करे उसको मेरा नमस्कार होय अब इस जगह इस अर्थमे किसी जैनी व वैश्नवोका नाम नहीं हिन्दू वा मुसलमान वा ईसाई किसीकाभी नाम नहीं जो राग द्वेप आदि शत्रुवोको जीतेगा उसी (अरिहत) को नमस्कार होगा अब देखो जो इनके पक्षपात होता तो इनके मुख्य जैन मतके चलाने वाले श्री ऋपभदेव स्वामी प्रथम हुयेथे उनसे आदि लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त चोवीस तीर्थकर हुये इस हुडा सर्पनी कालके विपय ऐसी सर्व न उत्सर्पनी अनन्ती होगई अनन्ती हो जायगी जिस हरएकमें चोवीस २ ही तीर्थकर होंगे इस भरतक्षेत्रकी अपेक्षा लकर इसी रीतिसे और क्षेत्रोंमेंभी जान लेना परन्तु सर्व तीर्थकरोंमेंसे किसी तीर्थकरने ऐसी परुपना न करीकि इस (अर्हतं) पदको उठायकर अपने नामका पद चलावे अनादि कालसे सर्व तीर्थकारोंने इसी पदको अङ्गीकार किया और इसी पदोकी महिमाका उपदेश देते गये और देते है, और देते जायगे दूसरा पद कदापि न बदला जायगा, अब देखो कि जो इस मतमें पक्षपात होता वा अनादि न होता ता जैसे सर्व मतावलम्बियोंने पक्षपात सहित उपासना आदिक जुदी २ अङ्गीकार किया तैसा येभी जुदे २ तीर्थकर हुयेथे और उन तीर्थकारोंकी शिप्यादि शाखाभी जुदी २ हुईथी तो येभी जुदी २ अपने २ नामसे चलाते तो चलजाती सो तो किसीने न चलाई किन्तु राग द्वेपरूपी शत्रु दूर होनेसे जो प्राप्त हुई सर्वज्ञता, सर्वदर्शीपना, होनेसे किसीका आपसमे विपम्वाद न हुवा इसीलिये ये मत अनादि अविपम्वादी हम मानते हे और तुमभी अपनी बुद्धिमे विचार कर देखो कि सर्व मतावलम्बियोके विपम्वाद और इस मतमें अविपम्वाद युक्ति करके सिद्ध हो चुका अब इन पदोका विस्तार करके चौथे प्रश्नके उत्तरमे लिखेंगे किञ्चित् अर्थ लिखते हे इसीलिये हमने प्रथम पदकाभी थोडासा अर्थ कर युक्ति दिखाय दीनी । (णमो सिद्धाण) नमस्कार सिद्ध भगवान्को वो सिद्ध नाम किसका है कि अष्ट कर्म करिके रहित, अक्रय, आवागमन करके रहित अर्थात् फिर उसका जन्ममरण न होय उन सिद्धोंको मेरा नमस्कार होय । (णमो आयरियाणं) नमस्कार आचार्यको होय जो ३ ६गुण करके संयुक्त पञ्च आचार पालनेवाला और पटानेवाला उसको नमस्कार होय । (णमो उवझायाण) नमस्कार उपाध्यायको होय जो हे ज्ञेयु और उपादिके बतानेवालेको । (णमो लोए सव्वसाहूणं) जो

सो सपूर्ण वृतात इनका हम पहलेही इसी प्रश्नके उत्तरमे लिख चुके है इसीरीतिसे वेदातियोमेभी पक्षपात दीखती है देखो कि एक अद्वितीय ब्रह्म प्रतिपादन करना ब्रह्मके सिवाय कोई दूसरा पदार्थ नही और फिर अज्ञान अर्थात् अविद्या उसकोभी अनादि मानना। अब देखो ये उनके विषमवाद नही हुवा तो क्या हुवा और एक ब्रह्मको मानके फिर ईश्वरसे सृष्टि मान लेना और इन वेदातियोंमें जुदे २ आचार्य्य जुदी २ प्रक्रियाके कहनेवाले कोई एक जीव वाद कोई अनेक जीव वाद इत्यादि अनेक विषम वाद और ब्रह्मज्ञान अर्थात् "अह ब्रह्मास्मि" इतना ज्ञान होनेहीसे मोक्ष होजाना और इद्रियोका भोग करना (मजा करना) और परमहस बन जाना हमारेको पुण्य पाप कुछ नही है हम शुद्ध ब्रह्म है अब देखो जो पक्षपात न होता तो इत्यादि इन में अनेक भेद क्या होते और शेष जहा इनका मत दिखाया है वहा से समझलेना ऐसेही दयानन्दभी वेदमत्रकोही मानकरके सर्वको खडन करताहुवा यज्ञकरना होमकरना उसीको धर्ममानना किसी जगह तो मोक्ष मे आवागमन मानलेना किसीजगह लिखता है कि अमरहोजाना फिर कभी दु ख न होना ऐसा भी लिखता है इत्यादि पक्षपात सहित अनेक तरहके वचन है सो हम पीछे दिखा चुके है। इसीरीति से मुसल्मान भी मुहम्मदके वचनके सिवाय दूसरे का वचन नही मानते नमाज पढना रोजाकरना, और मुसल्मानोंके सिवाय किसी का धर्म अच्छा नहीं सो भी पीछे लिखकर दिखाय चुकेहे । इसीरीति से ईसाई भी सिवाय ईसा के दूसरेके ऊपर विश्वास नही करते और ऐसा कहते है कि जबतक ईसूके ऊपर विश्वास नही लायेगा तब तक किसी का भला नहीहोगा, इस जगहभी पक्षपात है और पीछे हम लिखचुके है। और रामानुज, नीमानुज, माध्व और वल्लभाचार्य्य, कबीरपन्थी, नानकपन्थी, दादूपन्थी रामसनेही, दरयादासी, सेढपाला, निरजनी, नाथ, कनफडे, योगी इन पन्थवालों के भी अनेक भेदहे जो इनका सब हाल जुदा २ लिखने से अथवा इनके मतादिक लिखने से ग्रन्थ बहुत बढजाने के भयसे नही लिखते क्योंकि जिज्ञासु ज्याद॰ ग्रन्थहोने से आलस्य वश होकर पूर्णरूपसे पढ न सकेंगे इसलिये नही लिखाया है किन्तु वे सब सम्प्रदायी लोग अपना२ पक्षपात करके अपना२ जाल बिछाय कर भोले जीवों को फँसायकर जो जो जिसके दिल म जैसी २ उपासना आदिक आई तैसी २ करायकरके हठग्राही होकर अपने २ पक्षों को खेंचते है और आपस मे लडाइ झगडे करते है एकको एक बुराकहना अपने को भला कहना प्रसिद्ध जगत् में छाय रहा है हम कहातक लिखावें इसलिये तुमही अपने दिल में विचारकरो कि इन लोगो में पक्षपात सिद्धहोगया या नहीहुआ क्योंकि देखो सर्वज्ञ वीतराग सर्वदर्शी के जो वचन है सो सर्व निर्पक्षपात होतेहै। सोही दिखाते है गाथा.—सम् बरोय असवरोय बुद्धोय अहवा अन्नोवासमभावभाविगप्पा । लहसुरक्खो न सदेही ॥ १ ॥ स्वेताम्बरी वा दिगम्बरी है बौद्ध अथवा अन्य कहता है सारूय न्याय वेदातमिमासादि कोई मतवाला होय जिस समयमे भाव भावी कहता अपनी आत्मामें सभाव लावेगा अर्थात करेगा लहै नाम मोक्षको प्राप्त होगा इसमें कोई तरह का सदेह नही । अब देखो इस वचनमें कोईका पक्षपात नहीं जो पक्षपात होता तो जैनमतके सिवाय और दूसरेके लिये मोक्ष होना कदापि न कहता जो सर्वके लिये इसने मोक्ष कहा किन्तु जो उस क्रिया जो

कि है! उपादेको जो समझकर अंगीकार करेगा उसीका होगा न कोई जैनी न कोई वैश्नव। अब देखो तुमही विचार करो पक्षपातरहित सिद्ध हुवा कि नही और भी देखो कि जैसे २ मतावलम्बियोंने अपना २ पक्षपात मंत्र उपासनादिकोंमे जो किया है तैसाभी इस मतमे पक्षपात सहित कोईभी उपासनाका मत्र नही है किन्तु पक्षपात रहित जो इनका उपासना मत्र मूल है उसीको लिख करके अर्थ सहित दिखाते है॥ (१) णमो अरीहताण, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाणं, णमो उज्झायाणं, णमोलोए व्वसासाहूण, एसो पंचणमुःकारो सव पाप्पणासनो, मगलाणच सव्वेसि पढम हवे इ मगल" ॥ अर्थः-(णमो अरि हताण) कहता नमस्कार अरिहतको होय, इस अरिहत पदके तीन अर्थ होते है। (१) अरि कहता जो शत्रु उनको मारे अर्थात् कर्मरूपी शत्रुओंको दूर करे नतुः (अरि) कहता ससारी शत्रुको नही किन्तु राग द्वेष आदि जोकि ससारके बन्ध हेतु उनको जीते अर्थात् उनको दूर करे उसको मेरा नमस्कार होय अब इस जगह इस अर्थमे किसी जैनी व वैश्नवीका नाम नहीं हिन्दू वा मुसरमान वा ईसाई किसीकाभी नाम नही जो राग द्वेप आदि शत्रुवोको जीतेगा उसी (अरिहंत) को नमस्कार होगा अब देखो जो इनके पक्षपात होता तो इनके मुख्य जैन मतके चलाने वाले श्री ऋषभदेव स्वामी प्रथम हुयेथे उनसे आदि लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थकर हुये इस हुडा सर्पनी कालके विषय ऐसी सर्प न उत्सर्पनी अनन्ती होगई अनन्ती हो जायगी जिस हरएकमें चोवीस २ ही तीर्थकर होगे इस भरतक्षेत्रकी अपेक्षा लकर इसी रीतिसे और क्षेत्रोंमेंभी जान लेना परन्तु सर्व तीर्थकरोंमेंसे किसी तीर्थकरने ऐसी परुपना न करीकि इस (अर्हतं) पदको उठायकर अपने नामका पद चलावे अनादि कालसे सर्व तीर्थकारोंने इसी पदको अङ्गीकार किया और इसी पदोकी महिमाका उपदेश देते गये और देते है, और देते जायगे दूसरा पद कदापि न बदला जायगा, अब देखो कि जो इस मतमें पक्षपात होता वा अनादि न होता तो जैसे सर्व मतावलम्बियोंने पक्षपात सहित उपासना आदिक जुदी २ अङ्गीकार किया तैसा येभी जुदे २ तीर्थकर हुयेथे और उन तीर्थकारोंकी शिष्यादि शाखाभी जुदी २ हुईथी तो येभी जुदी २ अपने २ नामसे चलाते तो चलजाती सो तो किसीने न चलाई किन्तु राग द्वेपरूपी शत्रु दूर होनेसे जो प्राप्त हुई सर्वज्ञता, सर्वदर्शीपना, होनेसे किसीका आपसमे विपम्वाद न हुवा इसीलिये ये मत अनादि अविपम्वादी हम मानते है और तुमभी अपनी बुद्धिमे विचार कर देखो कि सर्व मतावलम्बियोके विपम्वाद और इस मतमें अविपम्वाद युक्ति करके सिद्ध हो चुका अब इन पदोका विस्तार करके चौथे प्रश्नके उत्तरमे लिखेगे किञ्चित् अर्थ लिखते है इसीलिये हमने प्रथम पदकाभी थोडासा अर्थ कर युक्ति दिखाय दीनी। (णमो सिद्धाण) नमस्कार सिद्ध भगवान्को वो सिद्ध नाम किसका है कि अष्ट कर्म करिके रहित, अक्षय, आवागमन करके रहित अर्थात् फिर उसका जन्ममरण न होय उन सिद्धोंको मेरा नमस्कार होय। (णमो आयरियाणं) नमस्कार आचार्यको होय जो ३ ६गुण करके सयुक्त पञ्च आचार पालनेवाला ओर पलानेवाला उसको नमस्कार होय। (णमो उवज्झायाण) नमस्कार उपाध्यायको होय जो है ज्ञेय और उपादिके बतानेवालेको। (णमो लोए सव्वसाहूणं) जो

लोकके विषय सर्व साधू, तथा मुनिराज, जो कि मोक्ष मार्गके साधनेवाले उनको नमस्कार होय ॥ अब इन चार पदोंके अर्थमेंभी किसी जैनी वा वैश्नव हिन्दू या मुसल्मान तथा ईसाई इसमे किसीका नाम न आय जैसा सर्व मततावलम्बियोंने जिस २ के मुख्य आचार्यको मानकर नमस्कार करते है तैसा इस मतवालेने न किया क्योंकि जो २ तीर्थंकर उनके शिष्य गणधर आदि श्री पुंडरी महाराजको आदि लेकरके श्री गौतम स्वामी सुधर्मा स्वामी, पर्यन्त तक इस आचार्य्य पदमें नाम न आया इसीलिये पूर्व पदके अर्थानुसार जो युक्ति हम कह आये है सो सर्व इस जगह लगाय लेना और भी देखो कि इनके आचार दिनकर ग्रन्थम जो इनके उपासक है उनके लिये पूजनकी विधि जो लिखी है उसमेंके एक दो श्लोक और एक मत्र अर्थ समेत लिखकरके दिखाते है उसमेंभी पक्षपात रहित मालूम होता है-(श्लोक) शिवमस्तु सर्व जगत, परहितनिरता भवतु भूतगणा, । दोषा मयातु नाश सर्वत्र सुखी भवतु लोक ॥ १ ॥ सर्वोपसतु सुखिनः सर्व्वे सतु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यतु माकाश्चिदु खभाग्भवेत् ॥ २ ॥ अर्थः-शिवमस्तु इति सर्व जगत्का कल्याण हो प्राणीमात्र परोपकारमे सदा तत्पर रहो और दोषमात्रका नाश हो सर्व लोग सुखी रहो ॥ १ ॥ सर्व प्रीति सर्व लोक सुखी रहो सर्व लोगोंके रोग दूर रहो सर्व लोग कल्याणकी वात देखो कोई दु खी मत रहो ॥ २ ॥ श्री सघ पौर जन पद राजाधिप राजसनिवेशानागोष्ठी पुर मुख्याना, व्यहारणा व्यहरे शाति । श्री श्रमण सघस्य शातिर्भवतु, श्री पोर लोकस्य शातिर्भवतु, श्रीजन पदाना शातिर्भवतु, श्री राजाधिपाना शातिर्भवतु, श्री राजासनिवेशाना शातिर्भवतु, श्री गोष्ठीकाना शातिर्भवतु ॥ अर्थ.-साधु साध्वी, श्रावक श्राविका, सर्वजन राजा, देशपतिराजा, (सनिवेश) कहता गॉव, नगर आदि सेठ साहूकार अथवा व्यवहार करने वाले महाजन सर्व लोकके विषय जो भूत प्राणी सबकी शाति अर्थात् कल्याण हो अब देखो कि जो इस मतमें पक्षपात होता तो अपने मतावलम्बियोंके सिवाय और दूसरे लोगोंकी शाति पुष्टि न कहते परन्तु वीतराग सर्वज्ञदेव, सर्वदर्शी, जगतोपकारी, दीनबन्धु, दीनानाथ जगद्गुरु निष्कारण, परदु:ख निवारण, सर्व भूत प्राणियोंके हितकारक उपदेश देता हुवा सबके कल्याणको वाछता हुवा पक्षपात रहित जन्ममरण मिटानेवाला मोक्षदाता शिवपुरका पहुचाने वाला कल्याणमार्गको कहता हुवा इसलिये जो कोई बुद्धिमान् विवेक सहित विचारमान हो वह इस मतको अर्थात् जिन धर्म को अगीकार करके कल्याण करेगा, अब और भी देखो कि इसी पॉच पदका जो मत्र है इसके कई तरहके भेद है और ॐकार भी इन्ही पाच पदो से सिद्धहोता है । (प्रश्न) दयानन्द सरस्वती जीनेभी ईश्वर का नाम ॐकार लिखा है ? (उत्तर) भो देवानांप्रियः ! दयानन्द सरस्वती का जो लेख है सो आकाशके पुष्पके समान है । (प्रश्न) दयानन्द सरस्वती जी तो बडे विद्वान् और अच्छे पण्डितथे आप उनके अर्थको आकाशके पुष्प के समान कैसे कहते हो ? (उत्तर) दयानन्द सरस्वती कहते है कि ईश्वरका नाम (ख) और (ब्रह्म) भी है आकाशकी तरह व्यापक होने से (ख) और सबसे बडा होनेसे (ब्रह्म) है सो इन बाता का खडन तो श्री आत्मारामजी का बनाया हुआ "अज्ञानतिमिर भास्कर" मे अच्छीतरह से किया हुवा है इसलिये हमको कुछ जरूरत नही परन्तु जो ईश्वरका नाम

ॐकार लिखा है सो तो हमभी सत्यकरके मानते है परन्तु जो दयानन्द सरस्वती लिखते है कि (अ) (उ) (म) इन से अग्नि वायु आदिको का ग्रहण करा है सो स्वकपोल कल्पित विवेक शून्यबुद्धी विचक्षण अनघड पत्थरके समान अप्रमाणिक है क्योंकि प्राचीन वैद्यक मतवाले कोई तो तीन अवतारों से " ॐकार " को वनातेहे–ब्रह्मा विष्णु, और शिव अवतारो सेही मानते है सो भी नही वनसक्ता क्योकि तीनो अवतार एकही स्वरूपसे होते और कोई कहते है कि सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से " ॐकार " बनता है क्योंकि " अकार" को रजोगुण विष्णुरूप और " उकार" को सतोगुण ब्रह्मारूप और " मकार " को तमोगुण शंकररूप इन तीन अवतार तीनगुणसे मिलकरके (ॐकार) बना और वेदान्तियों की भी रीति लिखते है सो भी देखो कि " ॐकार " की उपासना बहुत उपनिषदो मे है तथापि " माडूक्योपनिषद् " तिसकी रीतिसे (ॐकार) का स्वरूप लिखतेहे विश्वरूप जो " अकार " है सो तेजसरूप " उकार " से न्यारा नहीं (उकार) रूप है और तेजस रूप जो " उकार " है सो प्रज्ञारूप (मकार) है इन तीनो अक्षरों अर्थात्(अकार) (उकार) (मकार) को अभेद रूप करके जो अमातृक ब्रह्मरूप से अभेदरूप करके (ॐकार) की उपासना कही है ॥ अब देखो (ॐकार) के मानने मे हमने चार रीति कही इन चारो में से आपस मे विषमवाद होने से दयानन्द सरस्वती का कल्पित अर्थ अग्नि, वायु आदिसे (ॐकार) क्योंकर बनसक्ताहै इसवास्ते नवीनमत चलानेवालो की बुद्धि अपने कल्पित मतको सिद्ध करनेके लिये नवीन २ बुद्धि होजाती है इसलिये सब नवीन मत है अब देखो कि अनादि " जिन " मतमें जो (ॐकार) का स्वरूप है सो लिखते है (अरिहता अशरीराआयरियाउवज्झाय मुणिणों पचखवानिप्पन्नो ॐकारो पचपरमेष्ठी) इन पाचों पदोके आदि २ के अक्षर लेने से व्याकरण रीति से " ॐकार " सिद्धहोता है जो कोई व्याकरण सन्धि आदिभी जानता होगा सो भी सिद्धकरलेगा, देखो किश्चित् हमभी कहते है, समान से परे जो समान उन दोनो के मिलने से दीर्घहोता है और (आकार) और (ऊकार) के मिलने से (ओकार) होता है और (मकार) का व्याकरण के सूत्रो से बिंदुरूप अर्थात् अर्धचन्द्र आकारवत् अनुस्वार होजाता है–अब देखो इन पाचपद परमेष्ठी से " ॐकार" सिद्धहुवा इसलिये इन पाच पदके सिवाय भव्य जीवके लिये उपासना करने को दूसरी कोई वस्तु नही है इन पदों का सामान्य रूप अर्थ तो पेश्तर लिखआये है और विशेष अगाडी लिखेंगे, अब देखो सत्य २ रूप (ॐकार) इन पाच पदो से सिद्ध होचुका और इन पाच पदोही के गुणो की मालाके जो मणियें की जो सख्या रक्खी गईहै सो गुणों को अगीकार करके आर्य लोगों के लिये जप स्मरण व्यवहार सर्व प्राचीन मतों से प्रसिद्ध है क्योंकि मालामे १०८ मणियाँ होना इसीलिये १०८ मणियें होने की सज्ञा रक्खी क्योंकि जिन पाच पदोंसे (ॐकार) को सिद्ध किया उन्ही पदोंके गुणको एकत्र मिलाने से १०८ होते है सो प्रक्रिया इस रीतिसे है (अरिहत) पदके १२ गुण, अशरीरि, अर्थात् (सिद्ध) पदके ८ गुण, ([illegible]) पदके ३६ गुण, (उपाध्याय) पदके २५ गुण, और (मुनि) पदके २७ [illegible] नको इकठ्ठे करनेमे १०८ गुण होते है इन्ही पाँच पदोंके गुण की माला [illegible] सर्वत्र सर्व मतावलम्बी १०८ मणियों

मालासे कोई कमी वेशी नही कर सकता इसलिये सब रीतिसे पक्षपात रहित अनादि सिद्धि हो चुका और जो हमने १०८ गुण ऊपर वर्णन किये इनका खुलासा हाल चौथे प्रश्नके उत्तरमे जहां वीतरागका उपदेशके वर्णनमें करेंगे, जो तुमने दूसरा प्रश्न कियाथा उसका उत्तर हम निर्पक्षपात होकर दिया है जो कोई बुद्धिमान्, विवेकी, आत्मार्थी, सत्य असत्यका विचार करके असत्यका त्याग और सत्यका ग्रहण" वीतराग" सर्वज्ञ देव, दीनबन्धु, दीनानाथ, जगद्गुरु, जगत्हितकारी, सच्चिदानन्द, परमानन्द, परोपकारीके उपदेशको अङ्गीकार करके अपना कल्याण करो ॥

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्य्य मुनि चिदानद स्वामी विरचितेस्याद्वादानुभव रत्नाकर न्यायमत, वेदातमत, दयानदमत, मुसलमानमत, ईसाईमत, निर्णय अनादि सर्वज्ञमत सिद्ध द्वितीय प्रश्नोत्तर समाप्तम् ॥

अथ तीसरे प्रश्नके अन्तर्गत प्रथम दिगम्बर आमनाय निर्णय ॥

अब तीसरे प्रश्नके उत्तरको सुनो कि जो तुमने जैन मतके भेदोंको पूछा है सो कहते है श्री महावीर स्वामीके निर्वाणसे ६०९ वर्षके पश्चात् दिगम्बर जिन मतसे विपरीति होकर साधु सहस्र मल्ल अपने आचार्य अर्थात् गुरुसे द्वेष बुद्धि करके वस्त्रादिक सब छोडकर दिगम्बर अर्थात् नग्न होकर समुदायसे निकल गया और उसके साथ उसकी बहन भी नग्न होकर समुदायको छोडकर चल दीये दोनों जने बस्तीमे आहार लेने जातेथे उस समय उस साधवीको नग्न देखकर किसी वेश्याने लज्जासे उसके ऊपर एक वस्त्र अपने मकानके ऊपरसे गिरा दिया वो वस्त्र उसके ऊपर पडनेसे उसके भाईने जो पीछे फिर कर देखा तो उसके ऊपर कपडा पडा हुवा नजर आया तब वह कहने लगा तू एक वस्त्र रख तेरा नग्न रहना ठीक नही और जैनी नामसे अपनेको प्रसिद्ध करने लगा कि मे जैनी हू और उसीसे इनके नग्न होनेकी परम्परा भी चलने लगी फिर इनमे एक कुमदचन्द्र मुनि बहुत प्रबल पडित हुवा उसने असल मत अर्थात् जिन धर्मसे ८४ बोलका मुख्य फरक गेरा और पीछेस तो बहुत बातोका अब तक फर्क पड गया है और कई तरहकी इनके भी बीस पन्थी, तेरा पन्थी आदि भेद हो गये है सो हम इस जगह किञ्चित् इनकी परम्परा दिखाते है और ८४ बातोमे से चार तथा पाच बात जो मुख्य है उनका [illegible] ाते है [illegible]वलम्बी भी उनका विचार कर सकते है पाँच बात यह [illegible]
(२) वस्त्रमे केवल ज्ञान नही (३) स्त्रीको मोक्ष न[illegible]
[illegible]नारे सिवाय दूसरेको मोक्ष नही (५) काल द्रव्य [illegible]

दूषण आवें तो हम यह पूछते है कि आहार कितने प्रकारका होता है (उत्तर) आहारछःह प्रकारका होता है जिसमेसे चार प्रकारका आहार तो देवता नारकी पक्षियोंके अडस व एकेन्द्रिय वृक्ष प्रथव्यादिकका है और तो कर्म कवल आहारमेसें एक कवल आहार निषेध करते हो तो हम तुमको पूछे हे कि वह जो कवल आहारका निषेध करो हो सो क्या उदारीक पुद्गलके अभावसे व उदारीक शरीर रहते भी उदारीक शरीरके भोगके अभावसे अथवा जीवकी अनन्त शक्ति प्रगट होने या कर्मोके अभावसे प्रथमपक्षमे तो तुमभी नही कह सकोगे क्योंकि देस ऊना कोड पूरव की स्थिति मानो हो द्वितीयपक्षमे भी नही सिद्धि होगा क्योंकि कारणके रहते कार्य्यका नाश नहीं होता जो कारण के रहते कार्य का नाश मानोगे तो आयु कर्मके रहते केवलीको मोक्ष होना चाहिये क्योंकि आयु कर्मकेवलीको ससारमे रहनेका कारण है इसीलिये मोक्षमें केवली नही जाता इसवास्ते कारण तो उदारीक शरीर और कार्य उसका भोगादि सो कदापि नष्ट नही होगा अब कारण कार्य्य विपरीति करके भी दिखाते हे कारणके नष्ट होनेसे कार्य अवश्यमेव नष्ट हो जाता है तो देखो कि अहारादि तो कारण ठहरा और उदारिक शरीरका बना रहना कार्य ठहरा तो जो तुम आहारादिक नही मानोंगे तो उदारीक शरीर रूप कार्य क्योंकर रह सकता जो तुम कहो कि देवताके कवल आहार विना सागरोंकी स्थिति क्यों कर रहेगी इस तुम्हारे उत्तरको सुनकर तुम लोगोंकी बुद्धिकी शोभा पानी भरने वाली स्त्री कुवे पर कहती है कि दिगम्बर लोग कैसे बुद्धिमान् है कि नपुंसकसे भी पुत्रकी उत्पत्ति करते हे, और भाई! कुछ बुद्धिसे विचार तो करो कि उदारीक शरीरके प्रसगमे वैक्रिये शरीरका दृष्टान्त देनेसे तुमको शरम नहीं आती कि हमको बुद्धिमान् लोग सभामे हँसेंगे जो तुम कहो कि सर्व मनुष्योंकी तरह केवलीके आहार मानोंगे तो सर्व मनुष्योंकी तरह इन्द्रियजन्य ज्ञानका प्रसंग होजायगा तो केवल ज्ञानको जलाजली देनी पडेगी तो हम तुमको पूछे हे कि केवल ज्ञान शरीरको होता है या जीवको होता है ? तो तुमको कहनाही पडेगा कि शरीरको नहीं जीवको होता है तो शरीरके केवल आहार होनेसे जीवके अतिन्द्रिय केवल ज्ञानको जलाजली मानी तो नैगमनयसे लेकर समभि रुढनयतक जो वचन कहना सो सर्व निश्चय नयको जलांजली हो जायगी इसीलिये बुद्धिमानोकी बुद्धिमे जिन रहस्य आता है क्या पामर लोग भी समझ सकते हे जो तुमको कल्याणकी इच्छा हो तो जो अनादि परम्परा श्री जिन धर्मके ग्रहण करने वाले श्वेताम्बर गुरु उनके चरण कमलकी सेवा करो (ननु) कवल आहार करनेसे रसना इन्द्रियका स्वाद होकर अतिन्द्रिय केवल ज्ञानकी हानि क्यो नही होगी और भोले भाइयो! कछु नेत्र मींचकर बुद्धिका विचार करो इस जगह दृष्टान्त देकर दार्ष्टान्तको सिद्ध करते हेकि किसी व्यवहारीके हजारों मन घी (घृत) रक्खा रहता है तो क्या जलके पीनेसे या अन्नके खानेसे उसके घरका (घी) न रहेगा इसीरीतिसे दूसरा भी कोई साहू-कारके मकानमें हीरा, मोती, पन्ना आदि जवाहिरात भरे हुयेये ? जब उसको भूख लगती तो वो अन्न खाता तो क्या अन्न खानेसे जवाहिरात उसके घरके चले गये ऐसा तो कोई बुद्धिमान् न कहेगा न समझेगा ? अब अन्न खानेसे पानी पीनेसे उस व्यवहारीका घी व

समझो कि अतिन्द्रिय ज्ञान दो प्रकारका है। १ एक तो देश अतिन्द्रिय ज्ञान २ दूसरा अतिन्द्रिय ज्ञान तो देखो कि जब भगवान् गर्भमे आते हे तबहिसे अवधि ज्ञान होता है और दीक्षा लेनेसे मन पर्यव ज्ञान होता हे जिसको तुमभी भगवान् मानते हो और उसके कवल आहारभी करना मानते हो तो देखो कि एकदेश अतिन्द्रिय ज्ञान कवल आहार करनेसे नहीं गया तो सर्व अतिन्द्रिय ज्ञानमें कवल अहार करनेसे क्यों कर हानि होगी इसलिये केवलीको आहार सिद्ध हुवा और भी देखो नवी युक्ति तुमको सुनाते हे कि जेसे कोई मनुष्य धनुष बाण लेकर निशाना मारनेके लिये निशाने पर तीर छोड चुका तो वह मनुष्य निशानेपर बिना लगे बीचसे उल्टा उसी तीरको कदापि नहीं ले सकता केसाही बलवान् चतुर पुरुष होय परन्तु उस बाणको पीछा लानेमें समर्थ न होगा तैसेही जो कोई पुरुष उदारीक पुद्गलका जो भोग बाधा हे उसको मिटानेमें समर्थ न होगा इसी युक्तिसे जो केवली जब तक उदारीक शरीरमें रहेगा तब तक उसको कवल आहार लेनाही पडेगा अब जो तीसरा पक्ष याने जीवकी अनन्त शक्ति प्रगट होनेसे जो केवलीको आहार मानोगेतो उसकी अनन्त शक्तिकी हानि हो जायगी तो हम तुम्हारेको कहे हे कि कोई महात्मा बहुत विद्वान् और लक्ष्मीवान् है सो जो अपने चेलाको आहार करावे अर्थात् भोजन करावे तो क्या उस महात्मा पुरुषकी चेलाको आहार करानेसे विद्या व लब्धी नष्ट हो सकती है ? कदापि न होगी इसलिये केवलीको आहार करनेसे केवली की अनन्त शक्ति कदापि न जायगी ? "ननु" गुरु चेला भिन्न है और केवलीका शरीर अभिन्न है इसलिये आहार नही बनता है तो हम तुम्हारेसे पूछे हे कि अनन्तशक्ति केवलीके जीवको है कि शरीरको है तो तुमको कहनाही पडेगा कि शरीरको नही केवलीके जीवको है तो अब देखो विचार करो कि केवलीके जीवको है तब शरीरके आहार करनेसे क्योंकर केवलीको अनन्त शक्तिकी हानि होगी 'ननु' केवली एक दिनमें एक बार अथवा दो दिन वा चार दिन व आठ दिन क्या पद्रह दिनमें व एक मासमें आहार लेता है जिस रीतिसे केवली आहार लेगा उसही प्रमाण उसकी शक्ति रहेगी शक्ति घटनेसे भोजन करेगा तब तो केवलीकी शक्ति भोजनके आधीन होचुकी अजी कुछ विचार तो करो कि शक्ति तो जीवकी प्रगट हुई है उस शरीरको नही तो केवलीकी शक्ति आहारके आधीन क्योंकर रही इन बातोंसे तुम लोग बिल्कुल विचारशून्य मालूम होते हो जेसे कोई मूर्ख पुरुष कहने लगा कि कि मेरे बापने घी बहुत खाया था सो मानो तो मेरा हाथ सुघ कर देख लो जेसे उस मूर्खके हाथ सूंघनेसे उसके बापका घी खानेका अनुमान नही होता तैसेही शरीरके आहार न करनेसे केवलीकी शक्ति घटनेकाभी अनुमान नहीं 'ननु' केवली जो आहार करता है सो आहारका स्वाद केवल ज्ञानसे करे है या रसना इन्द्रियसे करे है जो कहो केवल ज्ञानसे आस्वाद है तो कवल आहारका प्रयोजन क्या और जो रसना इन्द्रियसे करेगा तो मति ज्ञानका प्रसंग हो जायगा इसलिये केवलीके आहारका मानना ठीक नही है और भोले भाइयो! मत पक्षको छोडके बुद्धिसे विचार करो कि केवल ज्ञान शरीर सु भिन्न है व अभिन्न है जो कहो कि अभिन्न है तो तुम्हारे केवलीका शरीर समेत मोक्ष जाना हुवा, जब शरीर समेत मोक्ष

गया तब तो मोक्ष संपूर्ण भर गई होगी तब तो हम जाने हे कि तुम्हारे आचार्य और कोई नवीन मोक्षका स्थान जुदाही बनावेगे जब तो तुम्हारी मोक्षकी हम क्या शोभा करे जैसी मुसल्मानोकी बिहिश्त वैसीही तुम्हारी मोक्ष ठहरी जो कहो कि शरीरसे भिन्न है तो भिन्नके आहार करनेसे भिन्नकी शक्तिकी हानि माननी निष्फल है। और जो तुमने रसना इन्द्रियके आस्वादसे मति ज्ञानका प्रसग कहा तिसमेभी विचार शून्य तुम्हारी बुद्धि मालूम होती है देखो कि जिन मतमे छठे गुण ठाणे वाले मुनिभी वा जो उत्कृष्ठ श्रावक आदि हे वो भी जो वैरागवान् जिन मतके जानीकार हो तो रसना इन्द्रियका स्वाद नही लेते है तो केवलीने अनादि कालका संबन्ध संयोगसे जो पुद्गल अर्थात् शरीरकी तदाकार वृत्ति तिसको अपनी आत्मासे भिन्न जानकर शरीरसे निमित्त भाव उठाय कर केवल ज्ञान उपार्जन किया तो कहो अब रसना इन्द्रियका आस्वाद क्योंकर लेगा देखो जैसे हलन चलन आदि क्रिया करता है तैसेही आहार आदिकी क्रियाभी जान लेना अर्थात् समझ लेना चाहिये 'ननुः' ॥ अल्प शक्तिवाले जो पुरुष हे वो जिस जगह जीवहिंसा, चोरी, जारी, अधर्म आदि होता है वा सामान्य पुरुषभी जिस जगह निंधनिता अर्थात् बुरी बातोको देखते हे उस जगह अपनी शक्त्यनुसार जीवहिंसादिकको दूर न करे तब तक अपना नेम, धर्म, भोजनादि नही करते तो केवली महाराज तो केवल ज्ञानसे प्रत्यक्ष हिंसा आदिको अधर्मोको देखते है तो सामान्य पुरुषही आहारादि नहीं कर सके तो केवली महाराज तो महा दयावन्त क्योंकर आहारको करेगे ? अजी देखो। जो तुमने सामान्य पुरुषकी शक्तिका दृष्टान्त दिया सो हम तो क्या कहे परन्तु मिथ्यात्वी लोगभी तुम्हारे केवलीकी अनन्त शक्तिकी हँसी करेगे क्योंकि देखो सामान्य शक्तिके धारण करने वाले राजा आदिक अपने धर्मसे विरुद्ध होय ताको दूर करते है तो कहो कि उस तुम्हारे केवलीकी अनन्तशक्ति प्रगट भई तो जैसे वे सामान्य शक्तिवाले हिंसा आदिक को दूर करके अर्थात् विरुद्ध को मिटाय कररहते हे तैसेही तुम्हारे केवलीको भी अनन्तशक्तिके जोरसे सर्व हिंसादिकको मिटायकर रहना चाहिये जो तुम्हारा केवली ऐसा न करे तो उसकी अनन्त शक्तिका प्रगट होना निष्फल हुवा जैसे आकाशमें नानाप्रकारके रङ्ग मालूम होते हे परन्तु कुछ ठहरते नही ऐसी तुम्हारी केवली की अनन्त शक्तिहुई इससे तो उनराजा आदिक सामान्य पुरुषों की अल्पशक्ति उत्तम ठहरती हे क्या तुम्हारे केवली की अनन्त शक्ति एक केवल आहारको निषेध करनेके लिये और हिंसा आदि अधर्मको देखता हुवाभी उस अनन्त शक्तिसे निवारण नही करसका तो बडे आश्चर्य की बात है कि "दुर्लभो देवघातकः" कि उदारिक पुद्गलके भोगके वास्ते तुम्हारे केवली की अनन्तशक्ति प्रगटहुई अजी किसी शुद्ध गुरुके चरण कमल की सेवा करो जिससे तुम्हारे को अनुभव की शक्ति प्रगट हो जाय जब तुम्हारेको जिनधर्म का रहस्य मालूम होगा उससे तुमको आपही मालूम पड़ेगा कि केवली भगवान् की अनन्तशक्ति स्वाभाविक अर्थात् आत्मा शक्ति प्रगटहुई है जिसे किसी का भला बुरा नही होता किन्तु जेसा केवल ज्ञान मे देखते हे तैसी ही शक्ति होतीहै इसलिये केवली महाराज की जो [illegible] उसका जो भोग केवल आहार सो करनाही पड़ेगा

इसवास्ते केवलीके कवल आहार सिद्धहोचुका अब तीन विकल्पों में जैसे आहार सिद्धहुवा तैसे चौथे विकल्प में भी आहार सिद्ध करते हैं । अब देखो कि चार कर्म घाति तो नष्टहोजाते हैं अर्थात् दूर होजाते है और चार कर्म जो अघातिया है सो बनेरहते हैं तो कहो किस कर्मके अभाव से आहार का नष्ट करते हो कदाचित् वदनी कर्म के रहते आहार का निषेधकरोगे तो कदापि नही बनेगा क्योंकि आहार जो है सो वेदनी कर्मकी प्रकृति है इसलिये वेदनी कर्म के रहते आहार का निषेधकरना असम्भव है 'ननु' वेदनी कर्म बाकी है परन्तु मोहनी कर्मका नष्ट हो जानेसे इच्छाका अभाव है इच्छाके न होनेसे आहार कूँ निषेध करते हैं इसलिये वेदनी कर्मका जोर नही क्योंकि मोहनी कर्मके जोरसे वेदनी कर्म जोर देता है तो हम तुम्हारेसे पूछे है कि मोहनी कर्मके न होनेसे वेदनी कर्मका जोर नही मानेगे तो आयु कर्मके रहतेही मोहनी कर्मका नष्ट होना अर्थात् दूर होना ऐसा मानना भी तुम्हारा व्यर्थ होगा दूसरा साता वेदनीका भोग मानना भी निष्फल होगा इस कारणसे नेत्र मीच कर बुद्धिमें विचार करो कि जैसे एक बर्तनमें मिश्री और मिरचका शरबत बनाया तो कहो कि उस शरबतमेंसे मिश्रीका स्वाद आवे और मिरचका स्वाद नहीं आवे ऐसा कदापि बुद्धिमान् विवेकी पुरुष तो कहे नहीं किंतु तुम सरीखा पामर हठग्राही विचारशून्य कहे तो बुद्धिमान् भी प्रमाण नहीं करेगा और भी देखो कि जो असाता वेदनी नही होती तो तत्त्वार्थ सूत्रमें "एकादश जने" ऐसा कहनेसेही कि असातना वेदनी अर्थात् वेदनी कर्म कहनेसे २२ परीसामेंसू केवलीके ११ परीसा कहा है क्योंकि देखो जिस २ कर्मसे जो २ परीसा होता है उसीको हम लिखाकर दिखाते हैं ज्ञानावर्णी कर्मके नष्ट होनेसे प्रज्ञा व अज्ञान परीसा नष्ट होता है और दर्शन मोहनीके नष्ट होनेसे समगत् अर्थात् दर्शन परीसा और चारित्र मोहिनीके नष्ट होनेसे अक्रोध १ अरती २ स्त्री ३ नैशेधकी ४ अचेल ५ याचना ६ सत्कार ७ ये सात परीसा नष्ट होते हैं और अन्तराय कर्मके नष्ट होनेसे अलाभ परीसा नष्ट होता है इन चार कर्मके दूर होनेसे ११ परीसा दूर होते हैं शेष रहे जो ११ परीसा वेदनी कर्मके रहनेसे केवलीमें भी "एकादश जने" इस कहनेसे ११ परीसा ठहरे तो जब केवलीमें ११ परीसा ठहरे तो आहारका निषेध करना आकाशके पुष्पके समान हुवा 'ननु' वेदनी कर्म बाकी है सो साता वेदनी है असाता वेदनी नही इस लिये हम आहारका निषेध करते हैं—तो हम तुमको पूछे है कि जो तुम एक सातावेदनी मानो हो तो तुम्हारे आचार्य्योंने ११ परीसा क्या कहे उनको कोई परीवा, नही कहना था जो तुम्हारे आचार्य्योंने ११ परीसा कहे तो क्या भाँगके नशेमें सूत्र रचना करीथी वा तुम लोग उस सूत्रके अर्थका भाग पीकर विचार करते हो जो ११ परीसा मान करके फिर आहारका निषेध करना मनुष्यकी पूछका वर्णन करना और भी देखो कि जिसको तुम सर्वज्ञ मानते हो वह तुम्हारा माना हुवा सर्वज्ञहीं ठहरता है जो वह तुम्हारा माना हुवा सर्वज्ञ होता तो साढे चार ४॥ कर्मके क्षय होनेसे केवल ज्ञानकी उत्पत्ति मानता ऐसाही तुम्हारे सूत्रोंमें लिखा होता तो तुम्हारा कहना ठीक था परन्तु तुम्हारे सूत्रोंमे तो चार कर्मके अभावसे केवल ज्ञान उत्पन्न होता है इसलिये तुम्हारा असाता वेदनीका न मानना श्वेताम्बरोंमे द्वेष बुद्धिकर अपने मतका आग्रह अर्थात् पक्षपात करना है क्योंकि जो मतमेंसे निकलकर अपना जुदा पन्थ चलाता

हे वही हठग्राहीपणा करता है ननु आत्मार्थी जो तुम कहो कि क्षुधा अर्थात् भोजन करना असाता वेदनी कर्म की उदीरणासे होय है सो असाताकी उदीरणा छठे गुण स्थानमे विच्छेद है तद सप्तम स्थानादिकमे क्षुधाके वेदनेका अभाव है अजी कुछ बुद्धिका विचार तो करो सप्तमादि गुण स्थानोंकी स्थिति कितनी है तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि सातमेसे लेकर बारमें तक अन्तर मुहूर्त्तकी स्थिति है तो क्हो कि अन्तर मुहूर्त्तकी स्थितिका दृष्टान्त देस ऊना क्रोड पूर्वकी स्थितिमे देना इस तुम्हारी विलक्षण बुद्धिको देखकर हमको करुणा आती है कि इनका मिथ्यात कब दूर होगा-'ननु' तिस कालमें मुनि श्रेणी चढे है तब अप्रमत गुणस्थानमे अध्यकरणके प्रारम्भमे चार आवस्यक होय हे १ तो प्रति समय अनन्त गुण विशुद्धतास्थिवन्द अवसरण कहिये घट वो ३ साता वेदनी आदिक पुण्य प्रकृतिमे अनन्त गुणकाररूप रसका बधना और ३ आसादिक अशुभ प्रकृति निराश अनन्त गुण घटित जर्जरीरूप होकर रहे अर्थात् घटती जाय पीछे अपूर्व करणमे गुण श्रेणी निर्जरा गुण संक्रमण स्थिति खंडन ४ आवश्यक होय है तिनके अभावसे आसा आदिक अप्रशस्त प्रकृतिका रस घटनसे अति भेद शक्ति रहती है याते केवलीको असाता वेदनी परीसा उपजानेको समर्थ नही और घाति कर्मका सहाय नही इसलिये परीसा जोर देनेमे समर्थनही इसलिये केवली आहार नही करे-अजी हम तुम्हारेको इसीलिये जैनी नही कहते है क्योंकि ऐसी २ बाते कहते और विचार नही करते कि हमारेको वचनोव्याघात दूषण आवेगा कि मेरे मुखमे जिह्वा नही है तो जो तेरे मुखमे जिह्वा नही तो बोलता कैसे है देखो विचार करो कि एक तो परिसाका मानना निष्प्रयोजन है खैर अब औरभी देखो कि असाता वेदनीकी मंदशक्ति तो तुम्हारेको भी इष्ट है अर्थात् मानो हो तो जैसी मन्द शक्ति है जैसा आहार करनेमे क्या दोष हे इसीलिये हमारा कहना है कि तेसी असाता वेदनी कर्म होय वैसाही केवली आहार करे तो तुम्हारी क्या हानि हे और दूसरा तुम्हारे जैसा कङ्गलोंकी तरह यत्न करके पेट भरते हे वैसे हम केवलीके यत्न करना नही कहते क्योंकि केवली भगवान्के तो विना यत्न करे अर्थात् अनासुरत कर्म फल आहारकी प्राप्ति होती है कारण कि अन्तराय कर्मका अभाव हे जो स्वतः प्राप्ति नही हो तो अन्तराय कर्मका अभाव अर्थात् नष्ट होना असंगत हो जायगा इसलिये केवली महाराजके आहार सिद्धि हो गया-जिस रीतिसे कि केवलीको आहार सिद्ध हो गया ऐसेही वस्त्रमे केवल ज्ञान होना भी कोई बाधा नही सो दिखलाते हे अब देखो कारणसे कार्य्यकी उत्पत्ति होती हे तो जो २ जिसका कार्य है उसको उसही मुजिब कारण होना चाहिये तो धर्मरूपी कार्यके साधनमें धर्म उपकरणरूपी कारण होनेसे धर्मरूपी कार्य्यसिद्ध होता हे देखो कि मुँहपत्ती रखनेसे जो सूक्ष्म जीव शरीर ऊपर बैठे हे अथवा मुहके आडीरखनेसे मक्खी, मच्छर आदि मुँहमे नही जायगा क्योंकि मुँहमे जानेसे उनकी हानि होगी इसलिये मुँह पत्तीका जीव रक्षा धर्म उपकरण धर्म सिद्ध हुवा ऐसेही रजोहरण जो हे उससे रज अर्थात् धूलि दूरि करके साधु उस जमीनपर बैठे क्योंकि उस धूलिमे नाना प्रकारके सूक्ष्म अनेक जीव रहते

---

१ जो ननु शब्द ऊपर लिख आये हैं सो आशंकाका है सो प्रश्न समझो (पू०) (स०)

है उसपर बैठनेसे जीवहिंसा होगी इसलिये रजोहरण अवश्यमेव रखना चाहिये इसी रीतिसे चद्दरभी साधुको रखनी चाहिये क्योंकि जब अत्यन्त शीत आदिक पडेगा तब उसको आर्तध्यानकी प्राप्ति होगी इसलिये जीर्ण वस्त्रकी चद्दर रखनी चाहिये और आहार आदिक हाथमें लेगा तो अजैना होगी क्योंकि जो हाथमेंसे आहार आदिकका बिंदु जो गिरेगा तो उससे जीव हिंसा होगी इसवास्ते पात्रभी रखना चाहिये ॥ अब पूर्व पक्ष और समाधान इन चिह्नोंसे सब जगह जान लेना। (पूर्वपक्ष) पर द्रव्य मात्र निवृत्ति अर्थात् परद्रव्य मात्रको जो त्याग और आत्माद्रव्य काही जो प्रतिबन्ध होय उसीका नाम संयम है इसलिये वस्त्र आदि रखना ठीक नहीं। (समाधान) जैसे शरीर पर द्रव्य शुद्ध उपयोगका सहायकारी होता है तो उसको परिग्रह नहीं कह सकते तैसेही उपकरणभी शुद्धउपयोगका सहायकारी होनेसे परिग्रह नहीं। (पूर्व पक्ष) जो तुम कहो हो कि शीतादिके आर्त ध्यान मिटानेके वास्ते जीर्ण वस्त्रका जो भार अर्थात् बोझा उठाते हो तो मैथुन निमित्त जो आर्तध्यान तिसके वास्ते एक लूली, लगडी, काणी, कुरूप स्त्री क्यों नहीं रखते हो तो उसकोभी रखना चाहिये। (समाधान) अरे भोले भाई ! इस वचनके बोलनेसे तुम्हारेको शरम नहीं आती है क्योंकि ये वचन मिथ्यातरूपी नशेके जोरमे बोलना ठीक नहीं है हमारे तो इस वचनकी बाधा नहीं है किन्तु तुम्हारेको माया कुमतीमें दूषण आता, देखो ! जैसे तुम्हारेको भूखकी पीडा डालनेके निमित्त आहार लेतो हो नहीं लेते तो आर्तध्यान होता है तिसके दूर करनेके वास्ते अथवा शरीर राखनेके वास्ते आहार लेना अङ्गीकार करो हो तो तुम भी स्त्री का रखना क्यों नहीमानते हो येतो समान कहना हुवा अब देखो कि जैसे तुम आहार मे गुण मानो हो और दोष नहींमानो हो तैसेही धर्म उपकरण म पिण गुण है दोषनही इसलिये धर्म के साधन में धर्म उपकरण रखने से किञ्चित् दोषनहीं। (पूर्वपक्ष) अजी वस्त्रआदिपर द्रव्यरक्खोगे तो मूर्छा आदिक क्यों नहीं होगी क्योंकि जब चौरादिक वस्त्रआदिक लेगा तो बिना मूर्छा के उससे क्योंकर बचा सकोगे जो नहीं बचासकोगे तो फिर गृहस्थीसे मागते फिरोगे तो मागनेहीं मे रात दिन जायगा तो आत्मध्यान कब करोग। (समाधान) अरे आत्मध्यानियो ! कुछ बुद्धि का विचार तो करो कि जब तुम्हारे को सिंह, सर्प, आदिक मिले तो अपने शरीर आदिक को क्यों बचाते हो क्योंकि शरीरभी तो आत्मद्रव्य से परद्रव्य है और जो बचाओगे तो मूर्छा ठहरेगी और जो नहीं बचावोगे तो जन्म मरण करतेही फिरोगे तो फिर आत्मध्यान किसजगह होगा और मर्घट अर्थात् मैसानी या वैरागी मतधनो कुछ नेत्र मीचकर विचारकरो कि मिश्रितभाव संसार बन्ध हेतुका जो कारण ऐसी जो मूर्छा उसका त्यागकरना जिस म सका रहस्य है मतु धर्म साधन निमित्त उपकरण आदि आत्मगुण प्रगट करने के लिये जो प्रशस्त राग सो मूर्छा नहीं। (पूर्वपक्ष) अजी भला विचार तो करो देखो तो सही कि जैसे चावलके ऊपर तुस होनेसे उस तुस चावल को चल्हेपर चढाय कर कितनीही अग्नि जलावो परंतु वह चावल नहीं सीजता है इसीरीति से मुनिको वस्त्र रखने से केवल ज्ञान नहींहोता है (समाधान) वाहरे बुद्धिमान् ! बहुत अच्छा चावल के तुससमेत का दृष्टान्त दिया विवेक शून्य बुद्धिका विचार किञ्चित्भी नहीं किया क्योंकि देखो कि उरद, मुग,

चनाआदिक तुससमेत चूल्हेपर चढ़ाने से सीजते दीखेंहे इसीरीति से जिन आज्ञा आराधक अर्थात् आज्ञाके चलनेवाले मुनिराज वस्त्ररखने से केवल ज्ञानको प्राप्तहोते है नतु तुम सरीखे चावलके तुससमान मिथ्यातु अवनियेगी निराधकों को अर्थात् जिन आज्ञारहितो को केवल ज्ञान नग्नहोनेका कदापि न होगा। (पूर्वपक्ष) अजी भका देखो कि वस्त्रआदिक रक्खोगे तो लज्जा परीसा तुम्हारे से नहीं जीतागया जब लज्जा परीसाही नहीं जीता गया तो और परीसा क्योंकर जीतोगे इसीलिये भगवान् ने लज्जापरीसे को जितना मुश्किल कहा है तबतो लज्जापरीसा नहींजीत नेसे२२परीसा न रहे २१ ही रहगये। (समाधान) इस तुम्हारी विलक्षण बुद्धिको देखकर हमको बडी करुणा आती है क्योंकि देखो कि इन विचारोंको कुमदचन्द्र आचार्य्यने कैसा जाल फैलाय कर इनको फँसादिया कि जिससे शुद्ध जिन धर्म की प्राप्तिनही होनेदी केवल मिथ्यात्में गिरा दिया हम तुम्हारे हितकी कहते है कि देखो जो तुम नग्नहोने सेही लज्जापरीसा का जीतना मानो तो साड, भैसा, ऊट, हाथी, कुत्ता, बिलाव, गधाआदि पशुओं में वस्त्र न होने से अर्थात् नग्नरहने से सबने लज्जापरीसा जीतलिया तबतो तुम इनकोभी मुनि मानते होगे इसीहेतु से हम अनुमान करतेहे कि तुम्हारे आचार्य्यो का कहाहुवा जो पञ्चम कालके छेडे तक जो धर्म रहेगा तो इन्ही पशुवो आदि मुनियो से धर्म रहता दीखेहे नतुः मनुष्यआदि मुनियों से और कोई तुम्हारा मनुष्य मुनि दीखताभी नही है सिवाय इन पशुओं मुनियो के अच्छा लज्जापरीसा तुम्हारे आचार्य्योंने अङ्गीकार किया परन्तु लज्जाको समझे नही इसलिये हम तुमको लज्जा का अर्थ दिखलाते है सो तुमलोग पक्षपात को छोडकर इस अर्थ को अङ्गीकार करोगे तो तुम्हारा कल्याणहोगा देखो " लज्जा " अर्थात् जिस में शर्म न आवे उसको कहते है क्योंकि कोई जिन धर्मकी निन्दा न करे क्योंकि जब तुम नग्न पनेको अगीकार करोगे तो अन्यमती लोग भी देखकर कहेगे कि जैनका साधु कैसा निर्लज्ज है कैसा गधे की तरह फिरता है और उस साधुको नग्न देखकर स्त्री आदिक भी लज्जासे पास न आसकेंगी जब पास नही आवेंगी तो उपदेश आदिक भी नही बनेगा तब तो यह लज्जा परीसा क्या जीता उल्टी जगत्में निन्दा कराई सो ये लज्जा नही साधु मुनिराज कैसी लज्जाको जीते हे—सो देखो कि संसारको आसार जानकर तीर्थंकर चक्रवर्त्ती बलदेव सामान्य राजा, सेठ, साहूकार आदिक राजपाट वैभवको छोडकर अपनी आत्माके गुण प्रगट करने वास्ते निकलते है वे लोग नंगेपेर, नंगेशिर, फिरते है और जीर्ण वस्त्र धारण करते हे। सेठ साहूकार सामान्य पुरुष रङ्क अर्थात् गरीब गुरवा आदिसे आहार लेना और तिरस्कार आदिकका सहन करना फिर पिछला जो वैभव राजादि भोग भोगे हुवे कृतोको याद न करना और सामान्य पुरुषोसे याचना और तिरस्कार पाना उसको सहन करना और पिछलेको याद न करना उसीको लज्जा परीसा कहते हे नतुः नग्न रहना। (पूर्व पक्ष) अजी अचेल परीसा जो तुम भी कहो हो तो चेल नाम तो वस्त्रका है तो अचेल कहनेसे वस्त्र नही ठहरा वस्त्र रखनेसे साधुको अचेल परीसा नही बनेगा (स०) जो तुमने कहा कि वस्त्र रखनेसे अचेल परीसा नही बनेगा यह तुम्हारा कहना विवेक शून्य है क्योंकि आकार शब्द जो है सो सर्व निषेध वाचक नही है जो कहो कि सर्व निषेध वाची आकार है तब तो जीवका अजीव भी हो जायगा क्योंकि जीव चेतना लक्षण है अर्थात् ज्ञानी है तो देखो—

अज्ञान परीसा भी तो कहा है तो अज्ञान कहनेसे तो जब अकारको सर्व निषेधवाची मानोगे तो जीवका अजीव होगया जब अजीव होगया तो अज्ञान परीसा कौन सहेगा इसीलिये इस जैन मतका रहस्य आत्मार्थीको प्राप्त होता है नतुः अवग्राही मित्यार्थीको इसलिये इस जगह अकार जो है सो एक देशवाची है इसवास्ते जीर्ण वस्त्र मानोपेत् अर्थात् मर्याद मूजिब रखना उसीका नाम अचेल है देखो कि कोई मनुष्य पुराना छोटा सा पोतिया पहनकर स्नान कर रहाथा उसको लोग देख कर कहने लगे कि यह पुरुष नग्न है ऐसेही साधु भी जीर्ण वस्त्र रखनेसे नग्न ही है (पू०) अजी मुनिराजको तो ऐसा चाहिये कि जैसे माके पेटमेसे आया है देखो वहासे कोई वस्त्र सायमें नहीं लेकर आया तो इस संसार रूपी गर्भमेंसे निकल फिर वस्त्र क्योंकर रक्खेगा इसलिये साधुको वस्त्र नहीं रखना (स०) अरे भोले भाइयो ! ऐसा प्रश्न करनेसे विचारशून्य मालूम होते हो जब माके पेटमसे नग्न होकर आया कोई वस्त्र तो उस समय नहीं था यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं क्योंकि जो वस्त्र करके रहित अर्थात् नग्न होगा सो तो माके पेटमें कदापि न आवेगा और जो माके पेटमें नग्न मानोगे तो सिद्धम आवागवन हो जायगा कारण कि सिद्ध भगवान् ही वस्त्र करके रहित अर्थात् नग्न है इनके सिवाय तेरमें चौदमे गुणस्थानके अन्त पर्य्यन्त तक कोई नग्न नहीं है जो कहो कि हमने आज तक ऐसी बात नहीं सुनी तो अब देखो हम तुमको बतलाते है सो विवेक सहित आस मीचकर बुद्धिमे विचार करो और देखो 'वस' अच्छादने धातुसे वस्त्र शब्द बनता है अर्थात् जिस चीजसे अच्छादन नाम आवर्ते अर्थात् ढक जाना उसीका नाम वस्त्र है तो देखो आत्मरूपी जो प्रदेश था उसका कर्म रूपी वस्त्र से ढके हुवे माके पेटमे वह जीवलेकर आयाथा तब तुम्हारा कहना नग्न क्योंकर सिद्ध होगा इसलिये श्वेताम्बर अर्थात् वस्त्र सहित मुनिराजको केवल ज्ञान सिद्ध हो गया (पू०) अजी तुमने युक्ति तो बहुत कही लेकिन वस्त्र रखनेमे परिग्रह जरूर सिद्ध होगा—तो साधु तो परिग्रह रक्खे नहीं इसलिये वस्त्र रखना ठीक नहीं है। (स०) अरे भोले भाई ! हमको तुम पर बड़ी करुणा आती है कि किसी रीतिसे तुम्हारा कल्याण हो तो ठीक है इसलिये इस परिग्रहका किञ्चित् अर्थ दिखाते है कि देखो परिग्रह शब्दका अर्थ क्या है तो वहा (तत्त्वार्थ) सूत्रमें ऐसा कहा है कि—"मूर्छा ही परिग्रह" अब देखो इस शब्दसे क्या अर्थ हुवा कि जिसको मूर्छा है उसीको परिग्रह कहेंगे जिसको मूर्छा नहीं है और जो उसके पासमें कुछ वस्तु है ता विना रागके अर्थात विना मूर्छाके वह वस्तु अवस्तुके ही मजिब है कदाचित् बाह्य दृष्टि अर्थात् चर्म दृष्टिसे देखकर जो परिग्रह मानोगे तो तुम्हारे तीर्थंकर आदिक व आचार्य्य मुनियाम भी परिग्रह ठहरेगा क्योंकि देखो जब तीर्थंकर विहारादि करते है तब सुवर्णके कमलो पर पग रखना और देसनाके समय सुवर्णमयीका जडा हुवा समोसरण अर्थात सिहासनके ऊपर बैठना शिरपर तीन छत्रादिकका होना ये सब चर्म दृष्टिके देखनेसे परिग्रह हो जायगा वा अथवा शिष्यादिकका करना ये भी पर वस्तु है इत्यादिक सर्व वस्तु परिग्रह ही ठहरेगी इसलिये चर्म दृष्टिको छोडकर सूत्रके अर्थमे दृष्टि देकर कि जो मूर्छा करके रहित जो तीर्थंकरोंके समोसरण आदि परिग्रह अपरिग्रह ही जानना क्योंकि उसके ऊपर मूर्छा नहीं होनेसे जो तुम कहोकि नग्न होनेहीमे केवल ज्ञान होता है तो मोर

पैची और कमंडलु इतनी वार लिया कि मेरु की बराबर ढिगला किया परन्तु केवल ज्ञान अर्थात् मोक्ष न हुवा तो इसका कारण यह ही है कि उस जीवने मोर पैची कमडलु लिया परन्तु मूर्छा अर्थात् तृपाना न छूटी इतने कहनेका साराश यह हुवा कि मूर्छाका छोडना तो बहुत कठिन है जिस जीवने मूर्छा छोडी है उसके धर्म साधनके निमित्त धर्म उपकरण रखनेमे कोई तरहका दूषण नही इसलिये वस्त्र रखनेमे केवल ज्ञान नही अटके कदाचित् और भी हठ करो तो तुमको (नव) कर्म मानने होंगे क्योंकि आठ कर्म तो सर्वज्ञ देवने वर्णन किये हे परन्तु नवमा कर्म तुम्हारे आचार्य्योंने अगीकार किया है तो पाच कर्मके क्षय होनेसे केवल ज्ञान उत्पन्न होगा यह पाच कर्म कौनसे १ ज्ञानावर्णी २ दर्शनावर्णी ३ मोहनी ४ अन्तराय और पाचवा तुम्हारा माना हुवा वस्त्र वर्णीय कर्म है इन कर्मोके क्षय होनेसे केवल ज्ञान मानना चाहिये सो तुम्हारे शास्त्रोमे तो कहीं नही परन्तु पाच कर्मके क्षय होना किन्तु चार कर्मका क्षय होना ये तो तुम्हारे कुल शास्त्रोमें देखनेमे आता है इसलिये इस पक्षपातको छोडकर अपनी आत्माके अर्थकी इच्छा हो तो शुद्ध परम्परा अनादि श्वेताम्बर गुरुकी चरणकमलकी सेवा करो और जो युक्ति दीनी है उसको बुद्धिमे विचार कर इस हठको छोडो कि वस्त्रमें केवल ज्ञान नही है किन्तु मूर्छा करके रहित अर्थात् जिसको मूर्छा नही है वह मुनिराज धर्मके साधनके लिये धर्म उपकरण रक्खे तो कुछ दोष नही उसको केवल ज्ञान अवश्यमेव प्राप्त होगा इन युक्तियोंसे वस्त्रमे केवल ज्ञान सिद्ध हुवा ॥ २ ॥ अब तीसरा स्त्रीको मोक्ष सिद्ध करते है (वा०) स्त्रीको मोक्ष नही है ? (सि०) स्त्रीको मोक्ष क्यों नही है ? (वा०) स्त्रीके चारित्रका उदय नहीं आवे ? (सि०) स्त्रीके चारित्र उदय क्यो नही आवे ? (वा०) स्त्रीका अङ्गोपाङ्ग सर्वथा पुरुषको विकारी है ? (सि०) ऐसा कहोगे तो पुरुषके अङ्गभी स्त्रीको विकारी है ? (वा०) स्त्री जो वस्त्र आदिक रक्खे तो परिग्रह होय और परिग्रह होनेसे मूर्छा होय और मूर्छा होनेसे चारित्र आवे नही और चारित्र विना मोक्षकी प्राप्ति नही ? (सि०) जो स्त्रीको वस्त्र परिग्रह मानो तो उससे जो मूर्छा मानते हो ये तुम्हारा मानना ठीक नही है क्योंकि वस्त्रके मध्ये तो मूर्छाका होना पहिलही निषेध करचुके हे इसलिये वस्त्रके विना चारित्रकी प्राप्ति होती है ये तुम्हारा मानना बॉझके पुत्रके समान है हम वस्त्रमें केवल ज्ञान पहिले सिद्धकर चुके है (वा०) ससारमें सर्व उत्कृष्ट पदवी प्राप्ति होनेका अवसाय कारणका सर्व होना है इस बातको तो तुमभी अङ्गीकार करो हो तो सर्व उत्कृष्टपद दो प्रकारका है एक तो सर्व उत्कृष्ट पद दु:खका स्थानक है दूसरा सर्व उत्कृष्ट सुखका स्थानक है तिसमें सर्व उत्कृष्ट दुखनो कारण सातमीं नरक है और सर्व उत्कृष्ट सुखनो पद मोक्षकी प्राप्ति है तो स्त्री सातमीनरक नही जाय ऐसा सिद्धान्तोमें कहा है क्योंकि स्त्रीमे ऐसा पाप उपार्जन करनेका कारण नही है तो मोक्ष पद प्राप्ति होनेका वीर्य स्त्रीमें कहासे होगा इसलिये स्त्री मोक्ष नही जाय ? (सि०) अरे भोले भाइयो ! बुद्धिके विचार विना क्या जिन धर्मका रहस्य प्राप्ति होता है क्योंकि इस जिन धर्ममें स्याद्वाद सैलीके जाननेवाले गुरु श्वेताम्

---

१ (वा०) कहनेसे वादीकी कोटि समझ (सि०) कहनेसे सिद्धान्तीका [illegible]

आमनाके सिवाय और किसीको न मिलेगा क्योंकि देखो कोई पुरुष बुद्धिमान् विचक्षण राजका काम अर्थात् सर्व प्रबन्ध बुद्धिसे करता है और उससे तीन मन बोझा उसके शिर पर धरे तो कदापि नहीं उठा सकता है तो क्या उसको कोई बुद्धिमान् न कहेगा कि इससे बोझ न उठा तो राजका कामभी न होगा, इस हेतुसे स्त्रीको नरक नहीं जानेमें मोक्ष का न होना मानना व्यर्थ हुवा। (वा०) स्त्री माया बहुत करती है अर्थात् कुटिल बहुत होती है इसलिये स्त्रीको मोक्ष नहीं ? (सि०) यह कहनाभी तुम्हारा ठीक नहीं क्योंकि पुरुषभी मायाचारी अर्थात् कुटिल कृतघ्नी ऐसा होता है कि जिसको वर्णन नहीं कर सकें और स्त्री तो हृदयमें अर्थात् अन्तःकरणमें करुणाभी होनेसे धर्मको प्राप्त होती है और पुरुषकी कठोरतासे उनको धर्मकी प्राप्ति होना कठिन होता है देखो प्रत्यक्षमें मालूम होता है कि जैसा स्त्रियोंमें व्रत (उपवास) नियम, धर्म आदिमें प्रवृत्त होना और दृढ रहना और पुरुषोंमें नहीं दीखता है। (वा०)साधु तो वनवासी होता है जहा बहुत मनुष्य आदि हों तहा साधु रहे नही क्योंकि ध्यान एकान्तमें होता है बहुत मनुष्योंके होनेसे ध्यान बने नहीं और स्त्री तो अकेली रह सके नहीं वस्तीमेंही रहना पडे अकेली विचरनेसे शील खण्डन होय इसलिये स्त्रीको चारित्र नही तो मोक्ष कहासे प्राप्त होगी (सि०) अहो ! विचक्षण बुद्धि भास्य कुछ नेत्र मींचकर विचार करो कि वनके रहनेसेही जो ध्यानीका अध्यवसाय अर्थात् परिणाम ठीक मानोगे तो वनके रहने वाले भील आदिक अथवा सिंह व्याघ्र शृगाल (गीदड) आदिक उनकोभी ध्यानी मानना पडगा इसलिये एकान्त वादी हो जावोगे जब तुमको स्याद्वाद मत अनुसारी होना किसी जन्ममें प्राप्त न होगा और जो तुम कहो कि अकेले विचरनेसे शील खडन हो जायगा तो अकेला पुरुषभी अपना शील खण्डन करे तो कौन वर्ज सक्ता है, इसलिये शीलका दूषण तो दोनोंमें बराबरही है इसलिये स्त्रीको मोक्ष होनेमे कोई तरहकी शका मत करो और जो तुमने कहा कि स्त्रीको चारित्र नहीं यह कहनाभी तुम्हारे लिये तुम्हारे मतको दूषण देता है क्योंकि देखो कि चतुरविधसघ तो तुमभी अङ्गीकार करते हो तब तुम्हारे स्त्रीको चरित्र नहीं तो साध्वीपनेका विच्छेद हुवा जब साध्वीपनेका विच्छेद हुवा तो त्रिविध सघ हो गया तो चतुर विध सघ कहना आकाशके पुष्पके समान हुवा और फिर त्रिविध सघभी तुम्हारे नहीं बनेगा देखो कि जब तक समगतकी प्राप्ति नही तब तक श्राविकाभी नही बनेगी और जो श्राविका मानोगे तो समगत होनेसे एक देश चारित्र उसकोभी आया तो जहा एक देश चारित्रकी प्राप्ति है तहा सर्व देश चारित्रभी हो सकता है और जो ऐसा न मानोगे तो त्रिविध सघभी न रहा द्विविध सघ रह जायगा जब द्विविध सघ रहा तो फिर भगवान के वचनसे विरोधभी होगये अर्थात् दूर हो गये अब तुम्हारेको जैनी नामसे प्रसिद्ध होना मनुष्यकी दुमके समान होगया । (वा०) अजी तुम युक्ति तो देते हो परन्तु स्त्रीका उगलन धर्म है और स्त्री अशुचि रहती है कदापि शुद्ध नहीं होय है, इसलिये स्त्रीको मोक्ष नहीं ? (सि०) अहो विचारशून्य बुद्धि विचक्षण ! जो तुम कहते हो कि स्त्रीका उगलन धर्म है यह कहना तो तुम्हारा ठीक नहीं क्योंकि देखो कि जिस पुरुषके बीमारी आदिक होती है तो उस पुरुषके डाक्टर पिचकारी लगाता है

तो उस पिचकारीके बलसे दवा ऊपरको चढ़ जाती है फिर थोड़ीसी देरके बाद बाहिर निकल आती है इसीरीतिसे उसका उगलन धर्म नही किन्तु पिचकारीका बल निवृत्त होनेसे बाहिरको आता है जो तुम अशुचि कहा सो भी नहीं बनता है क्योंकि देखो कि मोक्ष उस स्त्रीके जीवको होती है अथवा उसके शरीरको ? जो कहो कि जीवको होती है तब तो शरीरके अशुचि माननेसे जीवकी मोक्षको नही मानना तो विवेक शून्य हठग्राही पनेके सिवाय आत्मा क्यों न ठहरे ? (वा०) अजी स्त्री वेदको ही मोक्ष नही अर्थात् स्त्रीलिङ्ग कोही मोक्ष नही ? (सि०) इस कहनेसे तो हमको बिलकुल मालूम होता है कि तुमको तुम्हारे सिद्धान्तकी अर्थात् तुम्हारे आचार्योंके रचे हुवे शास्त्रोंकी खबर नही है खाली तोतेकी तरह " टेंटें " करना याद कर लिया कि स्त्रीको मोक्ष नही ! नही !! नही !!! (वा०) अजी हमारे किस सिद्धान्तमे अर्थात् शास्त्रमे कहा है कि स्त्रीको मोक्ष है सो हमको बतावो ? (सि०) छी ! छी !! छी !!! तुम्हारी पण्डिताई और विचक्षणपणे को कि तुमको अपने शास्त्रही की खबर नहीं सो देखो गो- मटसारजीमे ऐसा लिखा है कि " अडियाला पुवेया, इत्थी वेवायहुति चालीसा वीसनपु- सगवेया, समए गेण सिम्झंति " अब देखो कि इस गाथा मे स्त्री को मोक्ष कहा है देखो कि ४८ पुरुष और (इत्थि) कहता ४० स्त्री और (वेया) कहता २० नपुंसक ये सर्व मिल कर १०८ एकसमय में सिद्धहोते है तो अब तुम्हारा यह कहना कि स्त्री को मोक्ष नहीं है असत्य है जैसे मेरे मुख मे जिह्वानही है तो विना जिह्वाके बोलना नहीं बनता (वा०) अजी तुमने गाथाकही सो ठीक है परन्तु इसका अर्थ हमारे आचार्य्य भाववेदमानकर स्त्रीको मोक्षमानते है किन्तु स्त्री वेदहोने से मोक्षनही ? (सि०) अरे भोले तुम्हारे आचा- र्यों ने भङ्गपीकर इस गाथा का अर्थ विचारा दीखे इसलिये नशे में विवेकशून्य होकर भाववेद अर्थ किया दीखे है सो अब तुम्हारे को अपनी कल्याण की इच्छा हो तो इस जालियों के जालको छोड़ के शुद्धगुरु के अर्थ को देखो भाववेद जोहै सोतो नवे गुणस्थान में निवृत्त अर्थात् दूर होजाता है और तुम तो १२ वें के अन्त मे उत्पन्न होता है सो इसलिये हे ! देवानु प्रिय ! तुम्हारे तो स्त्री को मोक्ष सिद्ध होगया। हम तो हितकारी जानकर तुम्हारे लिये कहते है ॥ चौथी बातमें दिगम्बर मुनिके सिवाय जोकि मोर पंखी [illegible] अर्थात् दिगम्ब मतके सिवाय और दूसरे किसीको मोक्ष नही है ([illegible]) [illegible] पूछें कि तुम्हारे सिवाय दूसरेको मोक्ष नहीं सो क्या तुम्हारे आचार्यों [illegible] लिया है या किसी से ठेका कर लिया है, (उ०) अजी तुमने जो [illegible] जिसको सुनकर हम को बड़ी हँसी आती है कि क्या वह ग्राम, दूकान [illegible] ठेका लेलिया है मोललीहो ? मोक्ष तो धर्म के करनेसे प्राप्त होती है [illegible] धर्म करने से [illegible] आ प्राप्ति होती है क्या धर्म तुम्हारेही है और [illegible] वह धर्म [illegible] द्रव्य [illegible]

१ इस जगह सिद्धान्ती अर्थात् ग्रन्थकर्ताकी ओर [illegible] दिगम्बरकी ओरसे उत्तर जान लेना।

है सो तुमही कहो ? (उ०) हाँ वह धर्म हमही जानते हे क्योंकि वीतरागकी आज्ञा मूजिब हमही चलते है और कोई वीतरागकी आज्ञामे नहीं चलता इसलिये औरको मोक्ष नहीं (प्र०) अब तुम हमको अपने वीतरागकी आज्ञा बतावो और वह क्या कथन है जिससे मोक्ष होता है ? (उ०) वीतरागकी आज्ञा यह है कि पञ्चमहाव्रत और आठ प्रवचन माता पाले और इन्हीमें मोक्ष हे । (प्र०) वह पञ्चमहाव्रत कौनसे हे और उनकी रीति क्या है (उ०) १ प्रणतीपात छः कायके जीवोंको मन, वचन, काय, करना, करावना, अनुमोदना इन तीन कारण और तीन योगसे करे नहीं, करावे नहीं, कर्त्ताको भला जाने नहीं, इस रीतिसे २ मृसावाद, इस रीतिसे ३ अदत्तादान, ४ मेथुन, ५ परिग्रहमें तुस मात्र परिग्रह नहीं रक्खे, ऐसेही आठ प्रवचन माता जान लेना विस्तार हमारे ग्रन्थोंसे जान लेना (प्र०) हे भोले भाइयो यह तो तुम्हारी बालकों केसी बातें है क्योंकि परिग्रहमें तुस मात्र रखना नहीं सो तो हम दूसरेही सवैके खण्डनमें लिख चुके हे कि परिग्रह नाम मूर्छाका है और जो तुमने पञ्चमहाव्रतके मध्ये कहा सो तो क्रियावादी अक्रियावादी इत्यादि बहुत कष्ट क्रिया करते हे जब तो केवल तुम्हारेही मतमे मोक्ष होना नहीं बनेगी इसलिये जो मोक्षके कारण हे उनको कहो कि मुख्य कारण कौन है ? (उ०) भगवान्की आज्ञा सहित ज्ञान दर्शन, चारित्रसे मोक्ष होती है यह मुख्य कारण है । (प्र०) जब ज्ञान दर्शन, चारित्र मोक्षका कारण है तब तो एक तुम्हारेहीको मोक्ष होनी यह कहना असम्भव है सो अब तुम ज्ञान, दर्शन चारित्रका स्वरूप कहो ? (उ०) ज्ञान हम उसको कहते हे कि जो सर्वज्ञने पदार्थ कहे हे उसका यथावत् द्रव्य गुण पदार्थका जानना उसको हम ज्ञान कहते हैं और दर्शन नाम जो सर्वज्ञके वचन ऊपर विश्वास होना अर्थात् श्रद्धा होना 'चारित्र' नाम पर वस्तुको है अर्थात् छोडना और स्ववस्तुको उपादेय अर्थात् ग्रहण करना इन तीनो चीजों से मोक्ष होती है (प्रश्न) अरे पक्षपाती विचार शून्य ! अपने अर्थ किये हुये को तुम अपने हृदयकमल मे नेत्रमींचकर विचार नही करते हो क्योंकि जब ज्ञान, दर्शन, चारित्र मोक्षका कारण है तो तुमकोही मोक्षहोना और को न होना ये तुम्हारा कहना पक्षपात हठग्राही मालूम होता है क्योंकि देखो विचारकरो कि जिस में ज्ञानदर्शन चारित्रहो अर्थात् जो कोई इन तीन बातको सेवन करेगा उसी को मोक्षहोगी न कि दिगम्बरी को ही (उत्तर) अजी इस ज्ञानदर्शन चारित्रको जैनियो के सिवाय और कोई दूसरा ग्रहणनहीं करता है इसीलिये हमारे सिवाय दूसरेको मोक्ष नहीं (प्रश्न) वाहरे ! पक्षपाती जेनी नाम मात्रसेही अपने को जैनी समझ लिया इसवास्तेही तुमलोगोंके द्वेषबुद्धि से परमती जैनियोंको नास्तिक करनेलगे क्योंकि देखो एक मछली तमाम पानीको गन्दा करदेती है अर्थात् दुर्गन्ध करदेती है इस रीतिसे शुद्ध जिनमत जो अनादि से राग, द्वेष रहित निर्पक्षपात चला आताथा उससे अनुमान् १८०० वर्ष के लगभग दिगम्बर मतने जैन नाम रख कर सर्व मतवालों से द्वेष बुद्धि करके द्वेष फैलादिया , अब जिन शब्दका अर्थ क्याहोता है सो सुनो (१) जिन नाम वीतराग का है कि जिसने राग द्वेषआदि शत्रुओं को जीता है-अथवा जिसने पदार्थको जाना है अर्थात् जिसने द्रव्यों का स्वरूप जानकर मोक्षकी व्यवस्था बाधी है ऐसे सर्वज्ञ देवके वचन को माने और उसके ऊपरचले अर्थात् हेयको

छोडे और उपादेय को अंगीकार करे उसी का नाम जैनी है न कि ओसवाल, सराव-गी कोई जातही जैनी है अथवा कोई जैनी नाम धराने सेही जैनी नही कदाचित् कहोगे कि नहीसाहब हमही जिन धर्मको पालते हे इसलिये हमही जैनी हे यह कहनाभी तुम्हारा व्यर्थ है क्योंकि जनी नाम धराने से होगा तवतो दिगम्बर होकर मोर पेची कमण्डलु लेकर मेरुकी बरावर ढिगला किया ओर मोक्ष न भई इसलिये पक्षपात छोडकरके बुद्धिसे वि-चार करो कि जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र जिसमे हे उसीको मोक्षहोगी नतु दिगम्बर क्योंकि देखो पक्षपात को छोडकर तुम्हारे समयसार नाटक में लिखा है (मत व्यवस्थाकथन) सवैया इकतीसा "एक जीव वस्तुके अनेक रूप गुण, नाम, नियोग, शुद्ध परयोगसो अशुद्ध है। वेदपाठी ब्रह्मकहे, मीमांसक कर्म कहे, शिवमती शिवकहे, बोधकहे बुद्ध है ॥ जैनीकहे जिन है, न्यायवादी कर्त्ताकहे, छओदर्शन मे वचनको विरुद्ध है। वस्तु को स्वरूप पहचाने सोही परवीन वचन के भेद भेद माने सोई शुद्ध है" ॥ देखो अव तुमही बुद्धिसे विचारकरो कि जब तुम्हारे सिवाय किसीको मोक्षनही जवतो वह सर्वज्ञ पक्षपाती ठहर गया और जब वह पक्षपाती है तो वह सर्वज्ञ भी नही और वीतराग भी नही सर्वज्ञ वीतरागके वचन मे किसी से विरोधनही किन्तु उसका वचन अविरुद्ध है। इस गाथाको विचारकरो :—" सेयवरोय आम वरोय बुद्धोय अहव अन्नो वा सम भावभावियप्पा लहइ मुक्खो न संदेहो" १॥ अब देखो इस गाथाका अर्थतो हम पेश्तर लिखआये हे परन्तु ऐसे २ सर्वज्ञोके वचन देखने से एकान्त पक्षको खेचकर हठग्राहियो के अज्ञानपनेसे जो अपने मे मोक्ष और दूसरे में नही यह वचन प्रमाण क-रनेके योग्यनही इसलिये जो शास्त्रोंमे १५ भेद सिद्ध कहे हे ऐसे २ वचनो को देखकर हठको छोडकर अपनी आत्मा का कल्याण करना होय तो एकान्त पक्षको छोडकर अनेकान्त पक्षको अङ्गीकार करो जिससे शुद्ध जैनी बनो अब द्वेषको दूरकरो समार मे न फिरो मोक्षपदका क्यों न वरो ॥ अब पाचवा जो कालद्रव्य को मुख्य मानते हो सो ठीकनही है (प्रश्न[1]) काल द्रव्य मुख्य है, जो काल द्रव्यको मुख्यनही मानोगे तो उत्पाद व्यय ध्रुव कैसे सधे-गा? (उ०) देखो कालद्रव्य जैसे और पाच द्रव्य हे तैसे नही किन्तु जिज्ञासुके समझाने के वास्ते है जो तुमने कहा कि उत्पाद व्ययनही सधेगा तो देखो भाई सूक्ष्म बुद्धिका वि-चार करो कि जो उत्पाद व्यय है सोही काल है क्योंकि उत्पाद व्ययही काल है देखो तत्वार्थ सूत्र मे " अर्पित अनार्पित सिद्धेरिति " ऐसा कहा है (प्रश्न) समय किसके आधार मानोंगे (उत्तर) जीव और अजीव द्रव्यके आधार है क्योंकि देखो काल है सो जीव अजीव द्रव्य का वर्तनारूप पर्याय है द्रव्य नही वर्तना पर्याय का भाजन द्रव्य है वह द्रव्य कौन है कि जीव अजीव है, भगवती सूत्र तथा उत्तरा ध्ययन सूत्रोंमें जगह २ कालको जीव अजीवका वर्तना पर्याय कहा है । (प्र०) अजी देखो अवगाहनादि हेतु होनेसे आकाश आदि पृथक् द्रव्य मानो हो तैसेही वर्तना हेतु करके काल द्रव्य पृथक्ही होय है? (उ०) अहो विचारशून्य बुद्धि विचक्षण! आग्र भीचक्र बुद्धिमे विचार करो कि जैसे अवगाहना हेतु करके अवगाहना आश्रीय द्रव्य कल्पिये तैसे

[1] इस जगह (प्र०) वादी की ओरसे और (उ०) सिद्धान्ती की ओरसे जानना ।

तो तुम्हारा वर्तना हेतु करके वर्तमान आश्रीय द्रव्य कल्पिये सो तो नही किन्तु वन्ध्या पुत्र समान है क्योंकि धर्म कल्पना तो धर्मीसे होती हे इति न्यायात इस न्याय करके काल द्रव्य है सो जीव अजीवकी पर्याय हे नतु काल द्रव्य भिन्न। (प्र०) जैसे मन्द गति परमाणुने जो आकाश प्रदेशकी जो व्याप्ति क्रम करके तद् अवच्छिन्न पर्याय तिसका जो समय तद् अनुरूप द्रव्य समयका जो अनु लोकाकाश प्रदेश प्रमाण समय है? (उ०) अहो विचक्षण बुद्धि शून्य! जैसे तुमने समयके अनुरूप लोकाकाश प्रदेश प्रमाण माने तैसे दिग द्रव्य क्यों नही मानते हो। (प्र०) ऐसी द्रव्यकी कल्पना करना आगममें तो कहीं नहीं? (उ०) तो आगम देख करके आगम प्रमाण करो क्योंकि पहले हमने आगमका प्रमाण दिया तब क्यों नही माना देखो आगममें तो जीव अजीवकी परियायकाल प्रतिपादन किया है। (प्र०) काल तो परत्व अपरत्व निमित्त दीखे है? (उ०) तैसेही दिशाकाभी परत्व अपरत्व दीखे है। (प्र०) द्रव्यकी शक्तिमे कार्य हेतु होनेसे विचित्रता दीखे है परन्तु अवगाहना हेतु करके तो आकाश द्रव्यही है? (उ०) तो हे भोले भाइयो! जब तुम्हारेको स्व स्व गुणकारी जीव अजीव उत्पाद व्यय वर्तना हेतुकी कल्पना करनेमें, क्या लज्जा आती है? इसलिये आगमकोही मानो अब देखो दूसरी युक्तिसे तुम्हारा काल अनुसिद्धि नही होता है जैसे तुम मन्दगति अनुधरे काल अनुकल्पो हो तैसेही परम अवगाहना अनुसरे आकाशादि अनुपण कल्पना चाहिये क्योंकि साधारण अवगाहनाकी हेतु करके आकाशादि स्कद कल्पना है। ऐसेही जो अनु कल्पना करोगे तो स्कदकी विती प्रदेश कल्पना होगी तो जैसेही काल द्रव्यमे समान साधारण वर्तना अनुसारे एक काल स्कद होगा पीछे तत्प्रदेश आवेगा जो ऐसा होय तो सिद्धान्तसे विरोध हो जायगा ऐसी कल्पना करनेसे जिन आज्ञा विरोधक होवोगे इसलिये हे भोले भाइयो! सिद्धान्तकोही मानना ठीक है कदाचित् मतान्तरकी अपेक्षा करके मनुष्य क्षेत्रमें काल मान द्रव्य कहे ह सो तो ज्योतिष चक्र चार व्यापक वर्तना पर्याय समूहके विषय द्रव्यको उपचार करके कहा है—उक्तच नय चक्रे, "पर्यायो द्रव्योपचार' इति" ये दो मत श्री हरिभद्र सूरिजी कृत धर्मसंग्रहनीमा है उसमें देख लेना इसलिये काल द्रव्य पर्यायक द्रव्य नही किन्तु कहने मात्र है और तत्त्वार्थ सूत्रमें दो मत दिखाये हैं तिसमे एक मतको अन अपेक्षत कहकर छोड दिया क्योंकि द्रव्यार्थिक ने बनाया है और मुख्य करके तो जीव अजीवकी पर्यायकोही काल द्रव्य उपचारसे कहा है। (प्र०) जो तुम जीव अजीवको यथार्थ कहते हो तो छः द्रव्य तुम्हारा कहना मे क्योंकर बनेगा? (उ०) अरे भोले भाइयो ये काल द्रव्य अनादि उपचारसे जिज्ञासुको समझानेके वास्ते या मन्दमतीके वास्ते कि जिसको उत्पाद व्ययकी समझ न पडे। (प्र०) अजी देखो! सूर्य्य उदय होनेसे दिन और रात पहर, घडी, पल, आवली समयकी सख्या बाधी है इसलिये प्रत्यक्ष काल द्रव्यको क्यों उपचारिक मानते हो? (उ०) अरे भोले भाइयो! विवेक सहित बुद्धिसे नेत्र मीचकर विचार करो कि सूर्य्यके उदय अस्तसे तो तुम कालको मानो हो यह तुम्हारा मानना ठीक नही है क्योंकि सूर्यका प्रचार अर्थात् चलन गति ढाई द्वीपके सिवाय और तो कहीं है नही तो फिर तुम ढाई द्वीपके अनन्तर जो द्वीप है उनमें सूर्य जहा उदयहै तहा उदयही है और जहा अस्त है अस्तही है

अथवा देवलोक पर्यन्त तो सूर्यकी बिल्कुल गति नहीं है अथवा मोक्षमेभी सूर्यादिक कोई नही है फिर उस जगह घडी, पल, दिन, रात क्योकर मानी जायगी इसलिये इस हठको छोड़ कर स्याद्वाद सेलीको विचारो और आत्माका अर्थ करो औरभी देखो कि सूर्य क्या चीज है तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि सूर्य मण्डल जीव और अजीवके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नही है तो अब देखो और बुद्धिसे विचार करो कि जब दूसरी कुछ वस्तु नही है तो जीव और अजीवका जो कर्म अनुसार फिरना अर्थात् उदय अस्त होना ये जीव और अजीवकीही पर्याय ठहरी इसीका नाम तुम काल मानते हो तो तुम्हारे कहनेसे ही जीव अजीवका उत्पाद व्यय रूप पर्याय काल द्रव्य उपचारिक सिद्ध होगया नतु काल द्रव्य मुख्य, अब देखो कि जो कोई आत्मार्थी होय सो इन पाच बातोके विरोधको समझकर इनकी हठ अज्ञानता की परीक्षा करलेवे, और भी देखो वर्तमान कालमें जो इनके बीस पन्थी, तेरह पन्थी, गुमान पन्थी आदिक जो भेद है सो आपसमें एक दूसरेको बुरा कहता है और मिथ्यात्वी बताता है सो किंचित् इनका भेद दिखाते हे सो बुद्धिमान् हो सो समझ लेना देखो कि बीसपन्थी तो नग्न मूर्ति आदिकको मानते हे और मूर्तिको जलादिकसे स्नान भी कराते हे और केशर पगोंपर चढाते है और अष्टद्रव्यसे पूजा अगीकार करते हे और मुनिके स्थानमे भट्टारक ऋषि लाल कपडेवालोंको मानते हे इनके बाद बरस ३०० तथा ३५० के अनुमानसे तेरह पथी निकले और वर्तमान कालमे इनका प्रचार कुछ जियादः है सो मूर्ति तो ये भी नग्न मानते हैं परन्तु जलादिसे स्नान नही कराते है सिर्फ कपडा भिगोकर पूछलेते है और केशर भी नही चढाते है किन्तु केशर जो तिलमात्र भी लगी होय तो उस मूर्तिको नमस्कार नही करते क्योंकि केसरसे पूजीहुई मूर्त्ति दर्शन का लोगो को त्यागकराते है कि उसको नहीपुजाना अर्थात् नमस्कार भी नही करना अब देखो इनकी कैसी अज्ञानता है कि इन तेरह पथियोंमें मुख्य दयानत राय हुवेथे उन्हीसे इस तेरह पन्थका जियादः प्रचार फैला उस दयानत रावन अष्ट प्रकारी पूजा बनाई है उसमें लिखते हैं कि अष्ट द्रव्यसे भगवतकी पूजन करना ॥ अब थोडासा प्रश्नोत्तर करके सम्बन्ध करते हे (प्रश्न) केसरादि अरची हुई प्रतिमाको नमस्कार नही करना (उत्तर) भला केशर आदिसे पूजी हुई प्रतिमाओको क्यो नहीं नमस्कार करना उसमे क्या दूषण है (प्र०) वह तो वीतराग निरजन निरग्रन्थ है इसलिये उसको केशरादिसे अर्चना शृगार हो जायगा ? (उ०) तो भला तुम्हारे दयानतरायने अष्ट प्रकारी पूजन परमेश्वर की करना क्यो कहा (प्र०) उन्होंने जो अष्ट प्रकारकी पूजन कही सो तो हम करते हे परन्तु मूर्तिके आगे पूजन करते? (उ०) मूर्तिके आगे पूजन करना ऐसा तो पूजामे नही किन्तु मूर्तिको छोडकर और अगाडी करना यह तो तुम्हारा मनो कल्पना दीखे है और तुम भगवतको भी बालक की तरह फुसलाते दीखो हो क्योकि पूरे द्रव्य भी नही चढाते हो कि जैसे बालकको देना तो अफीम और बता देना मिश्रीकी डली तैसे तुम भी खोपरे की गिरी अर्थात् टुकडेको केसरमे रगकर दीपक बता देते हो तो वह तुम्हारा भगवत मानना बालकों कासा हुवा तुम्हारेसे तो बीस पन्थी ही चोखे है ऐसे ही गुमान पथीको समझ लेना निष्प्रयोजन जानकर यहा [illegible]नका खण्डन मडन नही लिखा

है (प्र०) भो स्वामिन्, हमने ऐसा सुना है कि दिगम्बर लोग कहते हे कि श्वेताम्बर १२ वर्ष अकाल पडाथा जब आहार आदिक न मिलनेमें और रङ्क (दीनों) का जियाद. जोर होंसे श्रावकोंने इनको पीछेमे झोरी पात्रा वस्त्र आदिक अङ्गीकार करादिये और अकालकी निर्वृत्ति हुई तब फिर आचार्य्य लोग आये उन्होंने कहा कि तुम वस्त्रादिक छोडकर फिर दीक्षा ग्रहण करो और शुद्ध मार्गमें आजावो सो इन्होंने न मानी जबसे इनकी श्वेताम्बर आमना चली ऐसा हमने सुना है। (उ०) श्रीवीर भगवानके ६०९ वर्ष पीछे रथवीर पुर नाम नगरके उद्यानमे कृष्ण आचार्यके पासमे सहस्र मल रात्रिको उपासरेमें आया और आचार्य्यसे कहा कि मेरेको दीक्षा दो अर्थात् शिष्य बनावो परन्तु आचार्य्य की इच्छा न हुई तब उसने अपने आप ही लोच आदिक कर लिया तब आचार्य्य उसे लिङ्ग देकरके और जगह विहार कर गये और उसको साथ लेगये कुछ दिनके पश्चात् फिर उसी नगरमें आये तब राजा आदिक वन्दना करनेको आचार्यके पास आये और राजाने गुरुकी आज्ञासे उस सहस्रमल साधुको घरमे लेगया और राजा रत्न कम्मल उसको दिया सो वह रत्न कम्मल लेकर के गुरु के पास आया और गुरु को वह रत्न कम्मल दिखाया जब गुरु कहने लगे कि ऐसे भारी मोल का वस्त्र रखना साधु को कल्पै नहीं इसलिये यह तू राजा को देआ परन्तु वह साधु देने को नही गया और उपासरे मे रखदिया और बाहिर चला गया उस वक्त गुरु ने उस रत्न कम्मल के खण्ड २ करके सर्व साधुवों को पैर पूछने के लिये दे दिया जिस वक्त में वह साधु उपासरे में आया और उसके टुकडे २ करके साधुओंको देदिया इस बातको सुन कर मन मे द्वेष बुद्धि रख कर के कुछ न बोला तथा दो चार दिन के बाद गुरु जन कल्पी साधुवों के वर्णन करने लगे उन बातों को सुन कर गुरु से कहने लगा कि आप क्यों नहीं उस मार्ग में चलते हो जब गुरु कहने लगे कि रे भाई इस पचम काल मे ये मार्ग नहीं चलता इसलिये हम नहीं कर सकते इसके ऊपर उस सहस्रमल ने गुरु से बहुत वाद विवाद किया परन्तु गुरु के समझावन से भी न माना परन्तु वह जो रत्न कम्मल की द्वेष बुद्धिथी इस कारण से क्रोध के वश होकर सब वस्त्र छोड दिगम्बर हो बनको चला गया फिर विश्वभूत कोट वीर इन दो जनों को उस सहस्रमल ने प्रतिबोध देकर अपना शिष्य बनाया जब से इन का बोटक मत प्रसिद्ध हुवा अर्थात् दिगम्बर मत चला इस तरह की कथा शास्त्रों में लिखी है अब देखो हम युक्ति कहते हे कि देखो बुद्धिमान् सज्जन पुरुष इस युक्ति से आप ही विचार लगे वह युक्ति यह है कि—जो ससार में मत या पन्थ निकलता है सो पहलेसे उत्कृष्ट अर्थात् तीखापन कर चलता है उसी को लोग मानते ह क्योंकि ससार मे बाल-जीव ना बाह्यक्रिया अर्थात् बाहिर देखने में जो क्रिया आवे उसी को वे बाल जीव अङ्गीकार कर लेते ह क्योंकि जो धूर्त अर्थात दम्भ कपट के करनेवाले त्यागी वैरागी बुगले पने की पक्ष दिखा कर बालजीवों को अपने जाल में फँसाते हे क्योंकि उन बाल जीवों को इतना तो बोध है नहीं कि वे अच्छी तरह से परीक्षा करसकें इसलिये वे खेच तान दृष्टिराग मे पडकर अपने मत की पुष्टता करनेके वास्ते अपने परपञ्च रचते हे अब देखो बुद्धि वाला को विचारना चाहिये जो उत्कृष्ट क्रिया के करने वाले और बाल जीवों

की बाहेर के त्याग पच्चखाण दिखानेवाले उन मे कोई निकलकर जो त्याग पच्चखाण में ढीला होकर उन नग्न मे सू जो वस्त्र धारण करके जो अपना पन्थ चलाया चाहे तो वह कदापि नही चल सकता क्योंकि त्यागी को सब कोई मानता है और भोगीको कोई नही मानता हे और दूसरा इनके कहनेमे भी दूषण आवेगा कि ये लोग कहते है कि पचम आरेके छेडले तक चतुर विधि संघ रहेगा तो अब देखो इनके वचनको विचारना चाहिये कि श्री वर्धमान स्वामीजीको निर्वाण हुये २५०० तथा २६०० अनुमानसे वर्ष हुये तो ११०० वर्ष तक जैन मत चलेगा परन्तु दिगम्बर मुनि किसी मुल्कमे देखनेमे नही आता है तो फिर जब इनको मुनि अभी देखनेमे नही आवे है तो फिर ३१००० वर्षतक इस दिगम्बर मतसे जैन मत चलेगा सो तो कदापि नही हो सके क्योंकि अवार ही इनके मतमें साधु और साध्वी नही तो २१००० वर्ष तक चलना तो शृगालके सींग समान होगा इसलिये हे सज्जन पुरुषो ! जो मत बीचमें निकला है सो बीचमें ही रह जाता है ठेठ तक नही पहुँचता इसवास्ते अनादि सिद्ध किया हुवा जो श्री जिन धर्म उसमे जो चलनेवाले सर्वज्ञ आज्ञा आराधक अर्थात् आज्ञाके चलने वाले उन्हीसे अन्त तक अर्थात् २१००० वर्षके छेडले तक साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चतुर विधि संघ जैवंत रहेगा

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्य मुनि चिदानद स्वामि विरचितेस्याद्वादानुभव रत्नाकर तृतीय प्रश्नोत्तरान्तर्गत दिगम्बर मत निर्णय समाप्तम् ॥

अब श्वेताम्बर आमनाय में जो बाईस ढोला तेरह पन्थी जोकि मूर्ति को नही मानने वाले शास्त्रों से विपरीति जो इनकी बाते हे सो हम दिखाते हे इसलिये इस जगह ग्रन्थ मंगल के वास्ते प्रथम मगल यहा लिखते है ॥

दोहा—जिन वर पूजन मोक्ष हित, जिन प्रतिमा जिन सार ।
भगवत भाषी सूत्र मे, शुद्ध विधी सम्भार ॥ १ ॥

बाईस ढोला और तेरह पन्थी कहते है कि प्रतिमा पूजना सूत्र मे नही है इसलिये हम पूजन नही मानते है। (उ०) तुम कहो हो कि सूत्रोंमें प्रतिमा पूजन नही है तो हम तुम्हारेसे पूछे है कि तुम सूत्र कितने मानो हो [1] (पू०) हम सूत्र ३२ मानें हे । (उ०) ३२ सूत्र तुम कौन२ से मानो हो । (पू०) ११ अङ्ग और १२ उपाङ्ग ४ छेद, ३ मूल १ सूत्र इन ३२ सूत्रोंको माने हे । (उ०) भला इन सूत्रोंमे जो बात लिखी है उसको तो सबको मानो हो अर्थात् ३२ सूत्रोंमें जो बात लिखी हे उन सबको तो मानों हो (पू०) हा ३२ सूत्रोंमें जो बात लिखी हे सो तो हम सब माने हे । (उ०) जो तुम ३२ सूत्रोंकी सब बात मानो हो तो उन ३२ तुम्हारे माने हुयेमें श्रीनन्दी जी और श्री भगवती जी भी हे तो नन्दीके

---

1 (उ०) से उत्तर पक्ष और (पू०) से पर पक्ष जानो ।

कहे हुये वाक्यको नही मानो तब नन्दी जी तुमने नही मानी जब नन्दी जी नही मानी तब फिर तुम्हारे ३२ क्योंकर रहे ६१ ही रहगये फिर तुम्हारा ३२ का मानना ठीक नही। (पू०) अजी तुमभी तो ४५ मानते हो तो हमारा ३२ मानना क्यों नही ठीक है (उ०) अरे भोले भाइयो! हम तो ४५ भी मानते ह ७२ भी मानते हे और ८४ भी मानते है क्योंकि देखो हमारा ४५ का मानना तो इसीलिये है कि शास्त्रोंम कहा है कि विना योग वह सूत्र बाँचना नही कल्पे इसवास्ते योग वहनेकी विधि ४५ ही आगमकी है इस वास्ते हम ४५ मानें है और ७२ चौरासी भी हम प्रमाण करते है जो उनमें लिखा है सो हमारेको मानना चाहिये और दूसरी यहभी बात है कि ४५ सूत्रकीही निर्युक्ति भाष्य चूर्णी टीका प्रायः करके मिलती है इसलिये हम ४५ को कहते है मगर प्रमाण उन सूत्रोंका है जो उन सूत्रोंमें लिखा उन सबको प्रमाण करते है और तुम जो ३२ मानते हो उनम तुम्हारे पूरे ३२ नहीं ठहरते हे क्योंकि नन्दी जीके वाक्यको तुम अंगीकार नही करते क्योंकि उसमें ७२ आगमोंके नाम लिखे है तो तुम्हारे भिन्न शास्त्र मुल मानने न हुए क्योंकि सब शास्त्र मानों तो निर्युक्ति भाष्य टीका सब माननी पडे नही माननेसे तुम जिन धर्मी नही ठहरते हो। (पू०) अजी हम मूल सूत्रको माने है उस सूत्रसे मिली हुई निर्युक्ती जो चूर्णी आदिमे लिखा है सो माने ह और शेष उसमें हिंसा धर्म है इसलिये हम अंगीकार नही करते। (उ०) अरे भोले भाइयो! विचारशून्य होकर जिन धर्मको क्यों लजाते हो देखो कि ठाणांग सूत्रमें कहा है "गणहर गुथइ अरिहा भासई" इति वचनात्, अब देखो इसमें श्रीगणधर जीतो सूत्रके गूथनेवाले अर्थात् मूल सूत्रका रचनेवाले हे सो तो छदमस्थ अर्थात् केवल ज्ञानी नहीं है और अरिहा भासई (कहता) अरिहंत भगवंत सर्वज्ञ केवल ज्ञानी सूत्रके अर्थको कहनेवाले उनके वचनमे तो तुमको हिंसा मालूम हुई और छदमस्थोंके किये सूत्र तुमने अंगीकार किये इसलिये तुम्हारेको पचांगी मानना ठीक है नहीं तो जिन आज्ञा विरोधक होंगे (पू०) अजी मूल सूत्रसेही काम हो जायगा तो टीका भाष्य चूर्णीसे क्या मतलब क्योंकि गुरु परम्परासे हम लोग सूत्रपरही अर्थ धारण करते है और सूत्रोंमे पचांगीका प्रमाण कहा है भी नही हां अलबत्ता जो सूत्रसे बात मिलती सो मानते है बाकी नहीं मानते हे। (उ०) अहो विचारज्ञ व बुद्धि विचक्षण! "अंधे चूहे थोथे धान जैसे गुरु तैसे जिजमान" अब देखो जैसेही तुम्हारे गुरु मूल सूत्रके पढानेवाले और वैसेही तुम पढनेवाले क्योंकि श्री भगवती जीमें पचांगी मूल सूत्रमें प्रमाणभी है गाथा पचीसमें शतकमें कही है यथा "सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओनिज्जुति मीसिओ भणी ओ तई ओय निरविसे सो एअ विहि होई अणु ओगो ॥ १ ॥ अर्थः-सुत्तत्थो खलु पढमो (कहता) पहलो सूत्रार्थ निश्चय देवो बीओ निज्जुति मीसिय (क०) दूसरी निर्युक्ति मिश्रित सहित देवो भणी ओ क० कहा है तई ओय निरवसे साक० तीसरा निरविशेष सपूर्ण कहना एस विहि होई अणुओगो क० यहविधि अनुयोगकी है अर्थात् अर्थ कहणेका है ॥ इति भगवती शतक ॥ अब देखो कि इस भगवती सूत्रके मूल पाठसे सूत्रमें कहा है कि ७२ आगम ह तो तुम्हारे ३२ माने कैसे बनेंगे और जो नन्दी जीके पचांगी सिद्ध हुई और नन्दी जी ठाणांगजी आदिक बहुत ग्रन्थोंमें पचांगी

माननेको जिस जगह जोग वहने आदिककी विधि है तहा अच्छीतरहसे खुलासा कहा है लेकिन् हम ग्रन्थके वढनेके भयसे यहा नही लिखते हे और जो तुम कहो कि सूत्रसे जो चीज मिले उसको माने हे तो अभी वर्त्तमान कालमें सूत्र तो बहुतसे हे तो तुम ३२ ही क्यो मानो हो ? (पू०) अजी ३२ सूत्र ही माहो माही मिले हे बाकीके सूत्र मिले नही इसलिये नही माने (उ०) अरे भोले भाइयो ! तुम आत्मा अर्थी तो दीखो हो नही किन्तु तुम्हारे परस्पर मिलावनेकी तो इच्छा है नही केवल जिन प्रतिमासे द्वेष बुद्धि करके और सूत्रोंको नही मानो हो भला खैर३२तो मान्तेहो तो इन३२सूत्रोंमें तुम्हारी मति अनुसार सर्व परस्पर मिले है परन्तु इन सूत्रोंमे जो परस्पर मूल पाठमे विरोध है सो हम तुम्हारेको पूछते हे सो तुम उन सूत्रोमें जो विरोध है उस विरोधको मिटाय कर हमारेको समझाय दो जो तुम समझाय दोगे तब तो ठीक हे नही तो अब आहिकमिथ्यातमे पडे हुये रुलेंगे (१) अब हम तुमको तुम्हारे मूल सूत्रोंका परस्पर विरोध दिखाते हैं देखो समायागमे श्री मल्लीनाथ प्रभुजीके पाच हजार सातसौ मन पर्यवज्ञानी कहे और श्री ज्ञाताजीमे ८०० कहे सो कैसे मिले (२) और श्री रायप्रसेनीमे श्रीकेसी कुमारजीके चार ज्ञान कहे और श्री उत्तराध्ययनके २३ मे अध्ययनमे अवधि ज्ञानी कहा सो किस तरह और श्रीभगवती शतक पहले उदेसे २ मे विराधक संयमी जघन्य करके भवन पतीमे जाय और उत्कृष्ट करके सौधर्म देवलोक जाय ऐसे कहा (३) और श्रीज्ञाताजीमे सोलमे अध्ययनमे सुकुमालिका विराधक संयमी ईशानदेव लोक गयी सो किस तरह ? (४) उव वाईश्रीजीमे तापस्य उत्कृष्टा ज्योतिषी लगे जाय ऐसा कहा और श्री भगवतीमे तामली तापस्य ईशान इन्द्र हुवा सो किस तरह ? (५) श्री भगवतीमा श्रावक कर्मादानका त्रिविध २ पच्चखानकरे ऐसा कहा और श्री उपासक दशा मध्ये आनन्द श्रावक हल मोकला राखा सो कैसे ? (६) श्री पन्नवना सूत्रजी माही वेदनी कर्मकी जघन्य स्थिति १२ बारह मुहूर्तकी कही और श्री उत्तराध्ययनमें अतर मुहूर्तकी कही सो कैसे मिले श्री पन्नवनामे चार भाषा बोलता आराधक होय और श्रीदशवै कालक अध्ययन ७ मे दो भाषा बोलेकी कही सो कैसे (७) श्रीदशवै कालक अध्ययन८ मे हाथ पग छेदा हो और कान नाक काटाहो और सौ वरसकी डोकरी हो तो ब्रह्मचारी छीवे नही ऐसा कहा है और श्री ठरणागमे ५ ठाणे दूसरे उदेसः साधु पाच प्रकारे साध्वीने ग्रहण करतो थको अज्ञान विरोध सो कैसे ८ श्री भगवतीमे शतक १४ उदेसे ७ मे भात पाणीका पचखाण करके फिर आहार करे ऐसा कहा और सिद्धांतोमे तो व्रत भग करे तो महादोष लागे सो कैसे ९ श्रीदशवै कालक तथा श्री आचारंगजी में त्रिविधि २ करके प्रणिति पातका पचखाणा करे और श्री समायागजीमे दिसा श्रुत स्कद नदी उतरनीभी कही तो राखेविना कैसे उतरे यह बात कैसे १० श्रीदशवै कालक ३ अध्ययनमे लूण प्रमुख अनाचरण कहा हे और श्री आचारगजीमे लूण वहर्‍यो होय तो आप खाय सम्भोगी साधुने खवावे ऐसा कह्या सो कैसे मिले ११ श्री ज्ञाताजीमें श्री मल्लीनाथ ३०० स्त्री और ३०० पुरुष तथा ८ ज्ञात कुमार के साथ दीक्षा लीनी और श्री ठाणागजीमें सातमे ठाणेमे छः पुरुषके साथ दीक्षा लीनी ऐसा कहा सो कैसे इत्यादि सैकडो वातें सूत्रोमे परस्पर आपसमे विरोध दीखे हे तो ये सर्व टीका निर्युक्ति चूर्णी भाष्य विना केवल सूत्र मेल कर

देखो तब तो हम तुम्हारेको जाने कि तुम सूत्रमे अर्थ बाचते हो नहीं तो हे भोले भाइयो हठ पक्षपातको छोडकर जो कि रत्नाकरके वासी गुरु परम्परा वाले जिन्होंने निर्युक्ति भाष्य टीका आदि पंचागीको धारण किया वेही इन सूत्रोंके परस्पर विरोधको समक्ष सकते हैं क्योंकि कोई वचन उत्सर्ग, कोई अपवाद, कोई भव कोई विधीवाद, कोई पाठांतर कोई अपेक्षा कोई चरतानुवाद प्रमुख सूत्रका गंभीर आशय समुद्र सरीखा बुद्धिमान टीकाकार प्रमुखही जाणे क्या तुम सरीखे एक पक्षपाती निर्विवेकी जान सकते हैं? किन्तु तुम्हारे तो प्रतिमा के द्वेष ही से टीका आदिक को नहीं मानते तो अब तुमही बुद्धिसे विचारकरके देखो कि तुम्हारे मूलसूत्रों मे भी सब सूत्रों का मानना सिद्धकिया और पंचागीभी तुम्हारे मूल सूत्र से मानना सिद्धकरचुके तो अब तुम्हारा ३२ का मानना ठीकनहीं इसलिये सबका मानो (पू०) हां तुमने सूत्र आदिकों की साखदी सो तो ठीक है और वह सूत्र हम सबही माने हैं परन्तु हम हिंसा में धर्म नहीं माने हैं दयामे धर्म मानते हैं और प्रतिमा पूजने में हिंसा होती है? (उ०) अरे भोले भाइयो ये तो हमारे को तुम्हारा प्रतिमा से द्वेष बुद्धिहोना निश्चय है कि तुम्हारा पन्थ इस द्वेष सेही चला है परन्तु अब हम तुमको हिंसा और दयाका स्वरूप तथा लक्षण पूछते हैं सो कहो? (पू०) हिंसा वह चीजहै कि जीवको मारना छः कायका घृटाकरना और दया किसी जीवको न मारना और और उसके बचाने से है (उ०) अरे भोले भाइयो विचारशून्य बुद्धिविचक्षण अभी तुम्हारे को यथावत् श्री जिनभगवान् का भाषा हुवा वचनका रहस्य मालूम न हुवा इसलिये तुमने दया और हिंसा ऐसा समझलिया हमको तुमपर करुणा आती है कि तुम अपना घर छोड कर इन जालिया के जाल में फँसकर संसार में रुलने का काम करतेहो इसलिये तुम्हारे हितके वास्ते हिंसा का और दया का स्वरूप दिखाते हे कि हिंसा कितने प्रकारकी और दया कितने प्रकारकी और हिंसा मे पाप होता है, वा नही होता है सो देखो कि १ हेतु हिंसा, २ स्वरूप हिंसा, ३ अनुबन्ध हिंसा, ये तीन भेद हिंसाके और यही तीन भेद अहिंसा के हे-अब देखो जबतक इन भेदों को नहीजान तब तक सिर्फ दया २ करनेसे कुछ दया नही होती है क्योंकि जब तक भोगों अर्थात् मन, वचन, कायकी स्थिरता नही है तब तक बोलना चालना जो क्रिया आदिक करना है सो आरंभसे तो कर्म बन्ध हेतु है क्योंकि जिस गुण ठाणेकी जो मर्यादा माफिक कर्म फल अर्थात् तेरमे गुण ठाण तक कर्म बंधते हे-इसलिये एकली अहिंसा कैसे ठहरसके क्यों कि जब तक इसका भेद आदिक न समझे तब तक जिन मार्गको अच्छी तरह नहीं जान सकते। (पू०) अजी मुनि जो है सो विहार आदिक क्रिया करते है सो हिंसा लगे है परन्तु मुनि जाण कर हिंसा करे नहीं। (उ०) अरे भोले भाइयो ये तुम्हारा कहना कप टसे है- कि मेरी मा बाँझ। क्योंकि देखो शुभ क्रिया जो विहार पडलेणा नदी उतरनी गोचरी जाना इत्यादि क्रिया जानकर करो फिर कहो कि हिंसा नहीतो तुम्हारा विहार करना, नदी उतरना, गोचरी जाना, क्या अनजानसे होता है? जाणकर काम करते हुवे हिंसा दोष लगाते हो। (पू०) अजी नदी उतरना, विहार करना, गोचरी करनेमें तो श्रीभगवान् की आज्ञा है, आज्ञामें जो शुभ क्रिया करनी उसमें कोई दूषण नहीं। (उ०) जब श्रीभगवान्

की आज्ञाकी अपेक्षा लेकर शुभ क्रिया करनेमें कोई दूषण नही तो ऐसेही जो पूजा आदि शुभ क्रिया जो भगवान् की आज्ञासे होय तो तुम पूजाको क्यों निषेध करो हो। (पृ०) अजी हम देखती हिंसाको मने करते है कि कोई जीवको देखते हुवे न मारना ऐसाही मुनिने कहता साधुने अहिंसाका भाव होय है! (उ०)जो तुम देखते जीवको न मारना ऐसा अहिंसाभाव मानोगे तो सूक्ष्म एकेन्द्रिय लोक व्यापी पंच स्थावर जीवोंमें पिण शुद्ध स्वभाव होना चाहिये क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव हिंसा नामही नही जाने है तो तुम्हारे कहने से वह सूक्ष्म एकेन्द्रिय अहिंसक ठहरे तो जो अहिंसिक भाव परणम्या होय तो वे शुद्ध भावी निर आवरण होने चाहिये सो सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव तो निरावरण होता है नहीं तो क्या खाली हिंसा करने से अहिंसा थोडी ही होता है किन्तु द्रव्य भाव अनेक प्रकार की जो अहिंसा तिसके भाव कहता परिणामें जो जाने वोही अहिंसा में प्रवर्तन होगा और वही प्राणी सन जगह जहा जहा जिन आगमका जो जो रहस्य है जिस २ ठिकानेका जो जो मर्म है उसी २ ठिकाणे जिन वाणी जोडेगा उस प्राणीसे आगमका एक वचन भी उल्टा न कहा जायगा क्योंकि उत्सर्ग वचन और अपवाद वचन ये दोनों बातें करके जिनेश्वरकी वाणी जाने क्योंकि उत्सर्ग मार्ग अहिंसा मुनिने ही कही है देखो श्री आचारगजीने प्रमुखमें कहा है कि सा-वीप्रमुख पाणीमें बहती जाती होतो साधु निकाले तथा एक महीनेमें दो नदी उतरना कहा यह अपवाद आज्ञा प्रभूने कही है तो यह सर्व उत्सर्ग अपवाद जाणे सो सर्व वचन ठिकाणे २ जोडे जो अजान होवे सो जिन वचन का रहस्य क्यों कर जाने। (पू०) उत्सर्ग मार्गहीमें चलनेकी भगवान्की आज्ञा है अपवाद मार्ग तो केवल बद है अर्थात् बहाना है। (उ०) यह तुम्हारा कहना जो है सो तुम्हारी मनकी कल्पनासे है जिन आज्ञा नही अर्थ जाने बिना ऐसी बातें करो हो देखो कि विधीवाद जो होता है सो साधारण कारण होता है क्योंकि उत्सर्ग और अपवाद ये दोनों विधि वाद है सर्व जीवोंको साधारण है एक जीव आश्रय नही कहा इसलिये अपवाद आज्ञाहीमें है इसलिये छोडा नही क्योंकि देखो अपवाद मार्ग तो कारण है और उत्सर्ग मार्ग सो कार्य है। (पू०) अजी दयामेंही धर्म है क्योंकि आरंभे नत्थी दया (उ०) अरे भोले भाइयो! हम तुम्हारेको इतना शास्त्रोंका वचन सुनाया सो बालकको भी प्रतिबोध हो जाय परन्तु तुम्हारे शून्य चित्तको कुछ न हुवा क्योंकि—"फले न फूले बेत, चिरतर बरखे आदि घन। मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिले विरंचि सन॥" इस कहनेका बहुत शोक न करना क्योंकि जिज्ञासुको जब बहुत खेद देता है तब परके समझानेके तईं अन्तरङ्ग करुणा सहित कटु वचन बोले कि इसको किसीतरह प्रतिबोध होजायह इसलिये हम तुमको एक दृष्टान्त देते है कि "दो मनुष्योंने किसीके पास दीक्षा लीनी और दोनों आपसमें विचार करने लगे, एक जना तो बोला कि भगवान्ने दयामें धर्म कहा है सो मै तो साढ़े तीन हाथ जमीन अपनी रखकर उसके भीतरही रहूंगा और कही नहीं जाऊंगा इसी जगह मरको अगर शुद्ध आहार पानीका योग मिलेगा तो लेलेऊंगा क्योंकि आहार पानी टल्ले मात्रा जानेमें ग्रामादिमें विहार करनेसे हिंसा होगी और भगवान्ने तो दयामें धर्म कहा है इसलिये मुझको कुछ नही करना दूसरा कहनेलगा कि अरे भाई!

भगवान्‌की आज्ञा तो ९ कल्पी विहार करना एक जगह नहीं रहना, गोचरी आदिक लाना दस्ले जाना उपदेशादि देना ही साधुका धर्म्म है एव उत्सर्ग अपवाद सहित भगवान्‌की आज्ञामें धर्म है" तो अब इस बातको तुमही विचार करो कि जब भगवान्‌की आज्ञामें धर्म ठहरा तो फिर मन्दिर व जिन प्रतिमा पूजनेको निषेध करना यह बात नहीं बनती और जो तुमने कहा कि आरभमे नत्थी दया सो हे भोले भाइयो! हमभी यही बात कहते है मगर विचारो तो सही कि एक पदको बोलना और तीन पदको छोडना देखो इस गाथाको सम्पूर्ण सुनो—यतः आरभे नत्थी दया विना आरभे न होई महापुनो पुन्नेन कम्म-निज्जरे रानकम्म निज्जरे नत्थी मुक्खो इस सपूर्ण गाथा को विचार करके बोलो। (पू०) अजी धर्मके वास्ते जो हिंसा कियेसे दुर्लभ बोधि हो वे अर्थात् जिन धर्मकी प्राप्ति न होय। (उ०) अहो विवेक शून्य बुद्धि विचक्षण' हम तुम्हारे हितके वास्ते कहते है कि तुम विचार करो कि जो धर्मके वास्ते हिंसा करें वह दुर्लभ बोधी वा सुलभ बोधी होता है यह तुम्हारा कहना तो बझाके पुत्र समान है क्योंकि जो कोई दिक्षा आदिक ग्रहण करता है उस समय श्रावक लोग महीना महीना भर मोच्छव बादि बाजे बाजे अनेक आरभादि खाना पीना आडवर लोगोंको इकट्ठा करना और दीक्षा दिलाना उस आरभमे हिंसा आदिक होती है तो वह धर्मके वास्ते करते है तथा साधुवोंको गडमान्तर पहुचाने वा वादने (नमस्कर) को जाना या सौ पचास कोस पर उनके दर्शनको जाना उसमे वह जो हिंसा आदिक होती है सो सब धर्मके वास्ते करते है एव धर्म्मके वास्ते अनेक आरभ करनेवाले जो दुर्लभ बोधी होवे जब तो जिन कल्याणकादिकोंका सकल व्यवहार अनर्थक हो जायगा जो कदाचित् ऐसाही होता तो पूर्वही किसी ने क्यो नहीं निषेधा वर्त्तमानमें तुम क्यों नहीं मना करते हो परतु यह कहना तुम्हारा अज्ञानतासे आकाशके पुष्पकेसमान है सो हे भोले भाइयो! जिन धर्मका रहस्य तो शुद्ध परपरा गुरुकुलवासकी कृपाहीसे प्राप्त होता है परतु खाली जैनी नाम धरालनेसे कुछ नही होता है क्योंकि देखो श्री ठाणागजी सूत्रके चौथे ठाणेमें चौभगी कही है सो चार भागे यह है (१) "सावद्य व्यापार सावद्य परिणाम। (२) सावद्य व्यापार निरवद्य परिणाम। (३) निरवद्य व्यापार सावद्य परिणाम। (४) निरवद्य व्यापार निरवद्य परिणाम" ॥ पहला भागा सो मिथ्याति आश्रीय है और दूसरा भागा समगती देश वृत्ति श्रावक आश्रय है और तीसरा भागा प्रश्न चन्द्र राज ऋषि आश्रीय है और चौथा भांगा श्री मुनिराज आश्रीय है अब देखो इस चौभगीके अर्थसे जो हिंसा सोही अहिंसा ठहरती है और अहिंसा सो हिंसा ठहरती है सो हे भोले भाइयो! पक्षपातको छोडकर आप...

मन्दिर पूजा हो वा वादना की हो सो बतलावो तो हम तुम्हारेको ये बात और पूछें हैं कि तुम श्रावक किसको मानो हो कि समगत जिसको प्राप्ती हुई हे उसको श्रावक मानो हो अथवा समगत सहित जो देश वृत्ति है उसको श्रावक मानो हो अथवा समगतका तो जिसको लेश नही खाली देखा देखी आडम्बरमें फँसकर गाडर चलमें चलते हुएको श्रावक मानते हो। (पू०) हम श्रावक उसको कहते हैं कि जिसको समगतकी प्राप्ति होवे और चोथे गुण ठाणे आवृत्ती हो उसकोभी श्रावक अर्थात् आवृत्ती दूसरा समगत सहित जो एकदेश वृत्त आदिकभी हे वह भी श्रावक ह इन श्रावकोमे अथवा श्री महावीर स्वामी के श्रावक अथवा कोई तीर्थ करके श्रावक हो जिन्होंने पूजनकी हो अथवा किसी साधुने वन्दना मन्दिरमें जाय कर कीहो तो हमको बतलाइये। (उ०) जब आवृत्ति चौथे गुण ठाणे वाले तब तो देवलोकमें जो देवतादिक हे वहभी चौथे गुण ठाणेवाले श्रावक है तो जिस समयमे वो देवलोकमे उपजते है उसवक्तमे वे अपने सामान्यक देवताओसे पूछते है कि हमारेको पहले क्या कृत करना चाहिये उस वक्तमे वे देवता कहते हे कि इस विमानमे जो श्री जिनेश्वरकी प्रतिमा अथवा श्री जिनेश्वरकी दाढों उनकी तुम पूजा करो पूर्व और पश्चाहित कहता पूर्व तथा पीछे जिन प्रतिमा तथा जिन दाढि ये दो वस्तुकी पूजा करनी तुम्हारे हितकारी है ऐसा सामान्यक देवता कहते हे प्रथम सूर्यांभ देवताने जो पूजन किया है सो नीचे लिखते हे, परन्तु सूर्य्याभ देवताके विमानमे दाढ सम्भवे नही इसलिये दाढोंका प्रमाण ती एक तो सुधर्म इन्द्र, दूसरा ईसान् इन्द्र, तीसरा चमर इन्द्र, चौथा बल इन्द्र ये चार इन्द्रोको दाढ लेनेका अधिकार है सो तो पाठ जबूद्वीपपन्नती अर्थात् टीकासे जान लेना परन्तु इस जगह तो हम सूर्याभ देवताने जो पूजन किया सो श्री रायपसेणी सूत्रका "पाठ लिखते हे तत् सूत्र—(तरुण तस्स सूरिगाभस्स देवस्स पच विहारा पज्ञतिए पज्ञत्तिभावगयस्स समाणस्स इमे यारूवे अझथ्थिरा पथ्थिये मरणोए सकप्पे समुप्पज्जिथ्था किमे पुवे कराणिझ्झ ? कि यथ्याकराणेथ्थझ किमे पुविसेय किमे यथासेय किमे पुव्वि पथ्था विहियाए सहाए खमाए णिसेसाए आणुगामि यत्तारा भविस्सइ। तएणं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणिय परिसो व वणगा देवा सूरियाभस्स इमेरूव अप्रथ्थिय समुप्पन्न समभिज्जाणिता जेणेव सूरियाभदेवेतेणेव उवागथ्थति सूरियाभ देवं करयल वेत्ता एव वयासी एव खलु देवाणुप्पि याण सूरियाभे विमाणे सिद्धायतणे जिण पडमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमेत्ताण सठसय सन्निरिखत्ताण चिठइ सभाइण सुहमाराणं माणवए चेइय खभ वइ एम एसु गोल वट्ट समुगाएसु बहुइओ जिणस्स कहाओ सन्नि खित्ताओ चिठतिव ताओणं देवाणुप्पिएयाण अन्नेसय बहुण वेमाणियाण देवाणयं देवीणय अच्चणिझ्झाओ जाव पज्जुवासणेझाओ तंरुयण देवाणुप्पियाण पुव्विकरणिझ एयसा देवाणुप्पियाणं पथ्थाकरणिझ एयण देवाणुप्पियाण पुव्वि पथ्थाविहियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामि यत्ताए भविस्सइ॥ क्योंकि सरीसा पाठ होने एक जगहके पाठका सम्पूर्ण अर्थ करते हे अर्थः—"तएण तस्य सूरियाभस्स देवस्सके जबसे सूरियाभ देवताने—"पच विहारा पज्ञत्तीरा पज्ञत्ती भाव गयस्स समाणस्सके पाच प्रकार की मर्यातिरा पर्याप्ति भाव पाये हुये को अर्थात् देवताको भाषा और मन ये दो प्राप्ति साथे नीपजे है—इसलिये पाच कही इमेया रूवेके एवा प्रकारनो अझथ्थि-

एके० मनमा मान्यों मणोगए सकप्पे सुमुपज्जित्थाके० मनोगत सकरप उपन्यो सो कहत है किमे पुव्विसेयके० हमारे पूर्व श्रेयकारी कैसे? किमे पच्छा सयके० शु हमारे पछी श्रेयकारी कैसे? किमे पुव्वि पच्छाविके० हमारे पूर्व और पछी कैसे हियाएक० हितकारी पथ्य आहारीके मानिन्द सुहाएक० सुखके अर्थ, खेमाएक० सगतके अर्थ, खेमके अर्थ, तिस्सेसा एके० निश्रेयसे जो मोक्षति अर्थ, आणु गामिअत्ताएके० अनुगमन करे अर्थात् परम पराय शुभानुबधी भविस्सइके० होसी' अब देखो इस जगह यहा समगती देवताकी पूजन सिद्ध हुई (पू०) यह तो देवताकी स्थिती है जो देवलोकमें उपजता है सो करता है । (उ०) अरे भोले भाइयो' यह तुम्हारा कहना जो है सो अज्ञान सूचक है क्योंकि देखो सूत्रमें ऐसा पाठ है"अन्नेसि बहुमाणवेमाणियाण" कि वह पद देनसे ही मालूम होता है कि सब देवता नही करे जो सर्व देवता करते होते तो ऐसा पाठ बोलते है " सव्वसि वेमाणियाण' ऐसा पाठ नहीं होनेसे मालूम होता है कि सर्व देवताओं की नहीं किन्तु सम्यक् दृष्टिकी करणी है (पू०) जो तुमने कही सो तो ठीक है परन्तु सूरियाभि देवता जिस वक्तमे उत्पन्न हुवाथा उस वक्त पूजन किया पीछे तो पूजन करी नही इसलिये यह पूजन लौकिक आचारकी तरह है परन्तु धर्म अर्थ नही । (उ०) यह तुम्हारा कहना जो है सो पक्षपातका और विचार शून्य है क्योंकि देखो कि सूत्रमें" पूर्व पच्छा" इस शब्दसे पूर्व नाम पहिला और पच्छा नाम पिछाडी हितकारी है इसलिये नित्य पूजन करना ठहरता है क्योंकि सूर्याभि देवता ऐसा जानता है कि मेरे हितके वास्ते मेरेको नित्य पूजन करना श्रेयकारी है अर्थात् कल्याणकारी है । (पू०) भला हम पूजन करना तो ठीक कहते है परन्तु द्रव्य पूजा अर्थात् बाह्य करनीसू करी होगी परन्तु भाव नही । (उ०) अरे भोले भाइयो कुछ' तो विचार करो कि जो समकित दृष्टि होगा सो तो भाव सहित ही धर्म कृत करेगा क्योंकि समकित दृष्टिकी रुचि पूर्वक हरेक काममें प्रवृत्ति होती है देखो कि जैसे भरत राजाके जिस वक्तमे चक्र उत्पन्न हुवा उसी वक्त श्रीऋषभदेव स्वामीका केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा वो दोनों खबर एक साथ आयकर लगी तो उसवक्त भरतने इस लोक और परलोकमे हितकारी उपकार जानकर पहिले श्रीऋषभदेव स्वामीके पासमे जायकर भाव पूजन अर्थात् धर्म की महिमा करी पीछे चक्र की द्रव्य पूजन लौकिक आचार साधनेके वास्ते किया तो देखो कि समकित दृष्टि जीवकी तो भाव पूजा प्रसिद्ध है इसवास्ते सूरियाभि देवताका समकित दृष्टि होनेसे लौकिक आचरणसे नहीं किंतु भावसे त्रिकाल पूजन करता हुवा इस रीतिसे "श्रीरायपसेणी" सूत्रमें अच्छी तरहसे अधिकार है सो आत्मार्थी सत्रके ऊपर विचार करके अपनी आत्माका कल्याण करे । (पू०) आपने कहा सो तो ठीक है परन्तु देवता तो आवृत्ती अपच्च खाणी है सो देवताकी करनी गिनतीमें नहीं है इसलिये हम ... मानते नहीं। (उ०) अरे भोले भाइयो' यह तुम्हारा कहना ... करणी तो ... क्ति दृष्टि देवताकी असातना करनसे अर्थात् आवर्णवाद ... ेकि सम- ... बाधे दुर्लभ बोधी होय अर्थात् जिन धर्मकी ... कर्म ... जीवे पाच ठिकाणेमे कहा है सो पाठ लि... कम्म पकरति तजहा अरिहताण

अवर्ण वयमाणे ॥ २ ॥ आरिय उवज्ञायाण अवम्म वयमाणे ॥ ३ ॥ चावुव्वण्स्स सघस्स अवण वयमाणे ॥४॥ विवक्कतव वभ चेराण देवाण अव्वण वयमाणे ॥५॥व्याख्या पंचहिठाणेहिके० पचस्थानके जीवाके, जीवने दुलहबोहिय तायके० दुर्लभ बोधि परगो एटले परभवे जिनधर्म प्राप्ति दोहिली होय कम्म पकरेतिके० कर्म बांधे तजहाके० तेपाच आकार देखावे है और हताण अवण वय माणेके०अरिहतना अवर्णवाद बोलतो ॥ १ ॥ अरिहत पणतस्स धम्मस्स अवणवयमाणके० अरिहतना परूप्या धर्मना अवर्णवाद बोलतो ॥ ॥ २ ॥ आयरिय उवज्ञापाण अवण वय माणके० आचार्य्य उपाध्यायना आवर्णवाद बोले ॥ ३ ॥ चाउवणस्स सघस्स अवणवय माणेके०चतुविधसघाना आवर्णवाद बोलतो ॥४॥ हे भाइयो जब अवर्ण वादमे ऐसा भय होता है तो तुम देवताकी शुभ करणीको व्यर्थ कहके कैसा फल पावोगे पाचवा समगती देवताना अवर्णवाद बोलता दुर्लभ बोधी होय अर्थात् दुःख करके जिन धर्मकी प्राप्ति होय तो देवताकी करणी न मानना यह इसवर अज्ञान पूशापरूप निद्रासे जागो क्योंकि देखो मनुष्यसे देवताको अधिक विवेक अर्थात् बुद्धि विशेष मालूम होती है क्योंकि "श्री दश वैकालक" की प्रथम गाथाके अर्थसे मालूम होता है कि मनुष्यसे देवताकी बुद्धि विशेष है तत सूत्र "धम्मो मगल मुक्कठ अहिंसा सज मोतवो देवा वितेनमसति जस्स धम्मे सयामणो ॥ "इस गाथामे ऐसा अर्थ माल्म होता है कि जिसका धर्मके विषय सदा मन वर्ते है अर्थात् रहता है तिसको देवता नमस्कार करे मनुष्य करे जिसका तो कहनाही क्या इस अर्थसे साफ मालूम होता है कि मनुष्य सू देवतामे अधिक बुद्धि होती है इस लिये समगत दृष्टि देवताओ विजय दादुरप्रमुख देवता ओकी पूजन करना श्री जिवाभिगम आदिक अनेक सूत्रोम पाठ है सो हम कहा तक लिखे जो आत्मार्थी होगा सो पक्षपातकी छोडकर इतनेहीमे जान लेगा। (पू०) अजी देवताओकी करणी तो तुमने बताई परन्तु किस मनुष्यने पूजन किया है सो कहो। (उ०) देखो जैसे हमने तुमको समगत दृष्टि देवतोंकी करणी बताई तैसे मनुष्योंकीभी कहते है अबड परिव्राजिका और उसके शिष्य उनका उववाईसूत्र प्रथमही आचारग सूत्रका उपाग है उसमे अबड परिव्राजिक का अधिकार है सो सूत्र यह है"अबडस्सण नोकप्पइ अतन्न उथ्यिएवा अन्नउथ्थियदे वया इवा अन्नउथ्यि अपरिग्ग हियाई अरिहत चेइयाइवा वदित ऐवानमसित्त एवानन्नथ्थ अरिहतेवा अरिहतचेई आणिवा ॥ यह अबड का अधिकार कहा अर्थ—अबड परिव्राजक यो तेज बोले छः अबडस्सण क० अंबडनेणो कप्पई क० नकल्पे अन्न तुथिएवा क० अन्य तीर्थी प्रत्ये तथा अन्नउथ्यिदे वयाणिवा क० वा अथवा तीर्थी नादेव प्रत्ये तथा अण उथियय परिणाहिवा इ अरिहत चे इयाइवा क० वा अथवा अन्यातीर्थी परिग्रहीत क० अन्यतीर्थीए ग्राह्या एवा अरिहतना चैत्यजे जिन प्रतिमाते प्रत्ये एटले ऐभावजे अरिहतनी प्रतिमाहोय ते अन्यतीर्थीये पोतापणे ग्रहीहोय त प्रत्ये सू न कल्पे १ ते कहे छे' वदित एवा के० वन्दना स्तवनाकरवी तथा नमसितएव क० नमस्कार करवो नन्नथक० एहवित अरिहतनो क० अरिहत चेइयणि क० अरिहतनी प्रतिमा, एटले इन दोनों की वदन नमस्कारकरू, पण पूर्वेकह्यो ते मने न करू और मुवाफिक आनन्दके जो शिष्य ७०० उनकाभी इसी रीतिसे भापार्थ समझलेना सो इसीसूत्र मे पाठ है और अन्न देखो कि उदकृष्टा १२ वृत्तिधारी श्रा-

धकके पाठ से सिद्धहोना है और देखो कि आनन्द श्रावक का आलावे श्री उपासक दिसा सूत्र मे है सो लिखतेहै-" ठोखलुभ भंते कप्पई अऊपभि इवण अन्न उत्थियत्ता अन्न उ थियय देवयाणि वा अन्न उत्थिए परिगाहियाइ वाचेइ पाइ वदित एवा नमंसित ऐवा पुछ अणालित्तणे अलावित्त एवा सलवित ऐवा तेसिं असण वा पाण खाइाइ भवा साइम वा दाउवा अगु पदा उचा नन्नथ एथाभि ओगेण गणाभिओगेण वलाभिओगेणादेवाभि ओगेणगुरुनेगोहण विनिऊ तारेण कयईमे समणे निगाथेकाप्पुरुसारीझेणं असण पाण खाइम साइमेण वथ्थ पडिगाह कवल पाइ पुछणेण पाडि हारिय पीट फलग सेझा संथार रुण वसह भेस झेण पडिलाभे माणस्स विहरित्त एइतिकएवण्याउर अभिग्गाइ अभिगा एइइ" ॥ अब देखो इस पाठमें आणद श्रावकने इस आलावासे जिन प्रतिमा पूजनी सिद्ध होती है एसहीं द्रौपदी आदिक अनेक श्रावका श्रावकने प्रतिमा पूजी है फिर देखो सिद्धार्थ राजा श्री पार्श्वनाथ भगवान्का उपासक अर्थात श्रावक तथा त्रसला राणी ये दोनों श्री पा र्श्वनाथके श्रावक होते हुवे प्रथम अग जो आचारग तिसमें कहा है सो जिसकी इच्छा हो सो उस पाठको देख अब देखो विचार करो कि श्री महावीर स्वामीके माता पिता और श्री पार्श्वनाथ स्वामीके समकित धारी श्रावक होकर जिन प्रतिमाकी पूजनके सिवाय क्या राम कृष्ण महादेव भैरो भापाकी पूजन करे यह तो उन श्रावकोंको असभव है क्योंकि समगत धारी श्रावक सिवाय श्री जिनेश्वर देवकी प्रतिमा के और का पूजन न करेगा क्योंकि अन्य मिथ्यात्वी देवका पूजन करना तो मिथ्यात्व का कारण है इसीरीतिसे श्रेणक महावल राजाआदिक अनेक राजाअने जिन प्रतिमाओं का पूजनादिक किया है सो अब हम कहातक लिखे सिद्धान्तों मे अनेक श्रावकों के बारे में लिखा है क्योंकि जियादहपाठ ग्रन्थज्याद' होजाने के भयसे नहीं लिखा। (पू०) अजी साधुको तो यही आडम्बर कराना मंदिर मे जाना ऐसा पाठ नहीं है (उ०) अरे भोलेभाइयो तुम को जिन शास्त्रकी खबर नही है खाली पोथा इकट्ठा करके उस भार को उठाये फिरते हो क्योंकि नन्दीजी में कहा सो ठीक है कि " खरस्य चन्दन भारवाई " इससे तो मालूम होता है कि पुस्तकों का भार है मगर मतलब नही समझते हो-देखो श्री भगवती जीके वीसमें शतक नव मे उद्देशे में मुनिवर प्रतिमा वादे ऐसा लिखा हैऔर हम किंचित् पाठभी लिखते है – एवतुबइ जया चारणे जघाचारण स्सण भन्ते कह सीहागई कहसीहेगई विसए पन्नतागो० अपण जवुद्दीपे दीवेजहेव विझाचारणस्स णवरति सत्तरकतो अणुपरियदित्ताण हव्वमागच्छिज्झा जया चारणस्सगो० तहा सीहागइ तहा सीहेगइविसरो पन्नता, सेस सर्चव जया चारण सणभंततिरिय केवइएगइ विसए पन्नता गो० सेदगइ तो एगण उप्पाएणरुम ग वरे दीवे समासरण करइ करेइता तहिचेइ आइ वदइ इत्तातओ पाडिनियतमाणे वीइ पण उप्पाएण णदीसरदवे समोसरण करे करित्तातहिचेइ आइवदेइ वदइत्ता इहमागछई इहचइ आइवदइ जया चारणस्सणगो० तिरिय एवइ एगइ विसए पन्नता० जया चारणस्सण भंते उड्ढकवइ एगइ विसए पन्नता गो० सेणं इत्तोएगएण उप्पाएण पडगवणे समोसरण करेइ करेइत्तातहिं चेइ याइ पदइ वदइत्ता तओपडिणियतमाणो बितिएण उप्पाएण नदणवणे स- मोसरण करेइ करइत्ता तही चेइयाई वदइवदइत्ता इहमागछई मागछइत्ता इहचेई याइवदई

जंघाचारणस्सण गो० ॥ इत्यादि ॥ देखो इस पाठ में जंघाचारी विद्याचारी साधुके वास्ते नंदीश्वर द्वीपमें यात्रा अर्थात् देववन्दन कहा है (प०) अजी यह तुम कहा सो तो ठीक है परन्तु येतो जंघाचारी विद्याचारी साधुकी लब्धी का वर्णन किया है परन्तु कोई गया नहीं (उ०) अरे भोले भाइयो! अभी तुम्हारा मिथ्यात अज्ञान दूर न हुवा जो अज्ञान दूर होता तो अगाडी जो हमने सूत्रों की साख से जो कहा है उसी को अंगीकार करते परन्तु ऐसी अपने मतकी खेच न करते तुम्हारेको तुम्हारी आत्माके अर्थ की इच्छानहीं किन्तु अपने मतकी पुष्टता करनेके वास्ते मिथ्यामोह में अपूजेहुये ऐसा विकल्प करते हो क्योंकि देखो इस सूत्र में ऐसा पाठ है कि जो साधु नन्दीश्वर द्वीपजाय और लौटकर यहा भरतक्षेत्र में आवे आलोयणा अर्थात् इर्यावही पडकमे विना जो काल करजाय तो भगवान्की आज्ञाका विराधक होय और जो आलोयणा अर्थात् इरयावही पडकने के पीछे जो वो काल करे तो भगवान् की आज्ञाका आराधक अर्थात् आज्ञाकारी होय इस पाठ के देखनेसे जाना साबित होता है जो नहीं जाता तो आलोयणा का पाठ कदापि सूत्र में न होता क्योंकि लब्धी के वर्णन मे आलोयणा का कुछकाम नहींथा इस आलोयणा के पाठ होनेही से जाना साबितहोता है (पू०) अजी देखो जब नन्दीश्वर द्वीपकी यात्रा को जाने मे उसको आलोयणा आई तो आलोयणा होने से चैत्यका बाधना ठीकनही क्योंकि आलोयणा विना करे जो काल करजाय तो विराधक ठहरता है (उ०) अरे! संशय मिथ्यात्व रूप समुद्र में पडे हुये दुःखितआत्मा होकर भी तुम्हारे को सूत्र रूपी जहाज जिस के शुद्ध उपदेशक अर्थ के बतलाने वाले गुरू तुमको हाथ पकड निकालते है तो भी तुमसे निकला नही जाता है तो हा! इति खेदे महा मोहस्य विटंबना, अर्थात् मोह रूपी मिथ्यात्व की कैसी विचित्रता है? अरे भोले भाइयो! यह मनुष्य जन्म चिन्तामणिरत्न पायकर चेतो अर्थात् बुद्धिमें विचार करो कि आलोयणा जो है सो प्रमादि गतकी तिसका आलोयणा है क्योंकि लब्धी उपजनेके कारणसे एक तो इसकी आलोयणा अर्थात् लब्धी फोडकर गया दूसरा परमाद तीरके वेगकी तरह उतावला अर्थात् जल्दीसे चला गया जाता थका बीचकी जो यात्रा प्रमुख सास्वता देहरा रह गया तिसका चित्तमें अति खेद उपजे इससे क्या आया कि गमनागमनकी आलोयणा नतु चैत्यादिक की आलोयणा देखो इसी रीतिसे दशवें काल कम ऐसा कहा है कि जो साधु गोचारी करके अर्थात् लेकर आवे तब गुरुके पास आ लावे सम्यक् प्रकारे अब इस जगह जो दोष लगा है उसीकी आलोयणा है, कुछ गोचरीकी आलोयणा नही क्योंकि देखो इस गाथाके अर्थसे मालूम होता है:—"अहो जिणेहिं असा विज्जा वित्ती साहुणोदेसियाधम्म साहणा हे उस्स साहुदेहस्स धारणा" ॥ इस गाथामें ऐसा मतलब मालूम होता है कि साधू की जो वृत्ति सो जिन भगवान्ने असा विज्जाके० सावध्यन नसही क्योंकि धर्मके सहायदेने वाली जो गोचरी आदि वृत्ति सो साधूको शरीरके धारण करने के वास्ते है नतु परमार्थः जैसे गोचरी की आलोयणा नहीं सिर्फ गमनागमन अर्थात् जाने आने का जो परमाद उपयोग विना जो दूषण लगाहो उसकी आलोयणा है इसीरीति से सो चैत्यकी आलोयणा नहीं किन्तु जो जाते आते में परमाद हुवा उसकी आलोयणा है

इसलिये बुद्धि मे विचार के अपनी आत्माका अर्थ करो और भी देखो कि सूत्रों का ऐसा पाठ हे कि जो साधु वा श्रावक रोजीना मन्दिर में दर्शन नहीं करे तो बेला अर्थात् दो उपवास अथवा पाच उपवासका दंड आवे श्री महाकल्प सूत्रमें ऐसा लिखा है सो पाठ लिखते हैं—" से भयव तहा रुवे समण वा माहण वा चेइ हरे गछि आहता गोयमा दिणे दिणे गच्छिझासेभयव दिणेदिणेण गच्छि आत उ पायच्छित्त हव इझा गोयमा पमाय पडुचतहा रुव समण वा महाण वाजजोदिणे दिणे जिणहरेनगच्छि आत उछह तवदखिझा अहवा दुवाल सपयच्छित्त ववद सिझा अहसे भयव समणो वासगस्स यो सह सालाए पोहस दिणठिए पोसहव भयारिक जिण हेर गच्छि झाटुता गोयमा गच्छिझा सेभयवकेण ट्ठे गच्छिझा गोयमानाण दसण चरण अट्ठे गच्छि झाजे केइ पोसहसालाए पोस. ब- भयारि जउ जिण जिणहरेन गच्छिझा तउपायच्छित्त हवइझा गोयमा जहा साहुत हा भरिण यव्व छड अहवा दुवाल सग पायच्छित्त ववद सिझा " ॥ अब देखो इस पाठका देखने से जो रोजीना दर्शन नकरे वो साधु हो या श्रावकहो उसे प्रायश्चित् आवेगा- क्योंकि जो भगवानकी आज्ञा का आराधकहोय सोही इस पाठका अंगीकार करेगा और जो भगवानकी आज्ञाका आराधक होनेकी इच्छाही नहीं करता है वो स्व- कपोल कल्पित मनमानी इच्छा करनेवालेसे हमारा कुछ जोर नही क्योंकि हम तो उपदेश देनेवाले है ग्रहण करना तो उस जीवके अख्तियार है । (पू०) अजी आपने इस सूत्रका नाम लिखा सो तो ठीक लेकिन हमारे सूत्रमे तो नहीं इसलिये हमारे मान्य नही । (उ०) अजी तुम मानो न मानो सो तो तुम्हारे अख्तियार है क्यों- कि देखो जैसे रात्रिको चौकीदार हल्ला मचाता है कि "जागते रहो जागते रहो" परन्तु जागना सोना तो उन घरवालोंके हाथ है कुछ चौकीदारकी जबरदस्ती नहीं है जागेगा उसका माल चोर नहीं लेने पावेंगे और जो सोवेगा उसका माल चोर ले जावेंगे इसी रीतिसे जो वीतरागका स्याद्वाद मार्ग उसके जो उपदेश देनेवाले सद्गुरु चौकीदारके समान है सो उपदेश मानना न मानना तो तुम्हारेही हाथ है क्योंकि जो तुम्हारेको आत्माका ज्ञानदर्शन चारित्ररूपी धनकी चाहना होगी तो उपदेश मानोगे और जो इस धनकी तुमको इच्छाही नहीं है तो मिथ्यात् मोह की नींदमें सोते हुवे संसारमे रुलते फिरो अहो! इति आश्चर्य तुम्हारे विवेकरूप कमल पर केसी मिथ्यात्वरूप काई जमी हुई है कि हम इतना स्याद्वाद उपदेशरूप युक्ति करिके सिद्धान्तरूप जलसे धोते है तोभी तो मिथ्यात्वरूप काई अलग नही होती है अरे भोले भाइयो! कुछ तो विचार करो कि पेस्तर तो हमने तुमको सर्व सूत्र पचंगी समेत प्रमाण कराय दीनी है और फिर भी तुम्हारी हठ न गई क्योंकि ॥ दोहा ॥ काग पढायो पींजरा, पढ गया चारों वेद । जब सुध आई पाछली, रहो ढेढको ढेढ ॥ क्योंकि देखो ३२ सूत्रमे तुम नन्दीजीको अंगीकार करते हो और नन्दीजीमे इस सूत्र (महाकल्प) का नाम लिखा हुवा है अब नन्दीजी यदि तुमको ३२ सूत्रमें प्रमाण है तो यह भी सूत्र प्रमाण हो चुका अब जिन पूजन सिद्ध करनेके अनन्तर जो तुम्हारा लिंग, जिन धर्मसे विरुद्ध है उसके लिये हम तुमको शिक्षारूपी हितकारक उपदेश देते है जो तुमको आत्माका अर्थ करनेकी इच्छा होय तो विरुद्ध लिंग छोड़ करके शुद्ध लिंग अङ्गीकार करो । (पू०) अजी हमारा क्या लिंग वि-

रुद्र है जो हमको जैन धर्मके लिंगसे विरुद्ध कहते हो । (उ०) अजी अष्टपहर मुँहपर मुहपत्ती बांधे रहना और इतना लम्बा ओघा रखना जिन आज्ञासे विरुद्ध है । (पू०) अजी मुँहपत्ती इसका अर्थ क्या है कि मुखपत्ती अर्थात् मुखपर रखनी क्या हाथपत्ती थोडी है जो हाथमें रखना । (उ०) अरे भोले भाइयो! इस तुम्हारी विचक्षण बुद्धिकी क्या शोभा क्योंकि विचारशून्य मनःकल्पनाका अर्थ करने लगे (मुखपत्ती) इस शब्दसे तुमने मुँहका बाधना सिद्ध किया तो (चद्दर) इस शब्दका अर्थ चादर रखना जैसे गँवार छानाकी पोट बाध शिरपर रखलाते हैं तैसे शिरके ऊपर रखना चाहिये शरीरपर ओढनेका कुछ काम नही ऐसेही दूसरा जो (पात्रा) उसको पैरमें रखना चाहिये आहार लाना नहीं कल्पे ऐसेही तीसरा (चोलपट्टा) नाम चुलेपर रखना चाहिये तुम जो ठूगाके ऊपर बाधते हो सो ठूगा पट्टा थोडाही है इसीलिये मनोकल्पित अर्थ नही बनता ॥ (पृ०) अजी उघाडे मुख बोलनाभी तो शास्त्रोंमें नही कहा है क्योंकि उघाडे मुख बोलनेसे तो जीव हिंसा होती है । (उ०) अरे भोले भाइयो! उघाडे मुख बोलना तो हमभी अङ्गीकार नही करते हैं क्योंकि जिन धर्ममें उघाडे मुख बोलनाभी मने किया है परन्तु मुख बाँधनेसे लोग हँसते हैं और कुत्ता भूसते हैं और लोग निन्दा करते हैं क्योंकि जैन धर्मका साधु तो वही है कि जिसकी अन्यमती प्रशंसा करे और जो तुम कहते हो कि जीव हिंसा होती है तो बताओ किस जीवकी हिंसा होती है । (पृ०) अजी उघाडे मुख बोलनेसे वायु कायके जीवोंकी हिंसा होती है इसलिये मुँहपत्ती बाधते हैं । (उ०) अरे भोले भाइयो! हम तुमसे यह बात पूछते हैं कि वायुकायका जो जीव कितने फर्सवाला है जो तुम कहोगे कि आठ फर्सवाला है तो भाषाके दलिये कितने फर्शवाले है तुम कहोगेकि चार फर्शवाले है तो कुछ बुद्धिका विचार करके तो जरा देखोकि ४ सुफर्सवाली वर्गणा ८ सुफर्सवाले वायु कायके जीवोंको कैसे हणे इस तुम्हारी बुद्धिसे तो भील जो जङ्गलके रहनेवाले हैं सो भी ऐसा न कहेंगे कि ४ चार वर्षका बालक ८ वर्षके बालकको मारडाले इसलिये ये तुम्हारा कहना जो है सो निर्विवेकपणका है । (पृ०) अजी भला तुम विचार तो करो कि होठसे बाहिर निकलनेसे जो भाषा वर्गणा है सो ८ सुफर्सवाली हो जाती है इसलिये वायु कायका जीव हणा जाता है । (उ०) अरे हम तुमको कहा तक बार २ कहें अब तुम हमारे वचनको सुनकर आंख मीचकर हृदय कमलमें विचार करो कि होठसे बाहिर निकलनेसे ८ सुफर्स होगये तो मुँहपत्ती बाधे हुयेभी जो शब्द निकलेगा उस शब्दकी भाषा वर्गणाके पुद्गल चौदहराजमें बिखरकर पीछे अपने कानमें शब्द होता है ऐसा "श्रीपन्नवणाजी" सूत्रमें कहा है तो ८ सुफर्स होनेसे वायु कायके जीवोंकी हिंसा ना हुई फेर मुँहपत्ती बाधनेसे क्या प्रयोजन निकला इसलिये हे भोले भाइयो! उघाडे मुख बोलनेसे वायु कायके जीवोंकी हिंसा होती है ये मानना तो तुम्हारा ठीक नहीं किन्तु उघाडे मुख बोलनेसे मक्खी मच्छर आदिक जो मुखमें चला जाय उसकी रक्षाके वास्ते उघाडे मुख नहीं बोलना औरभी देखो कि तुम मानते तो हो कि वायु कायके जीवोंकी हिंसा होती है सो तो नहीं किन्तु मुँहपत्ती अष्ट पहर बाधनेसे छः सूक्ष्म पञ्च इन्द्रिय मनुष्योंकी हिंसा तुम्हारको लगती है इसलिये मुँहपत्ती बाधना ठीक नही क्योंकि "पन्नवणा" जी सूत्रमें ऐसा लिखा है कि सेहं जूल

ऐसाभी कहते हें कि हमतो श्री महावीर स्वामी जीकी शुद्ध परम्परा में हे और हमारे से परे सब अशुद्ध परम्परा से हे इसीलिये आनन्दघनजी महाराज कहते हें जो कि श्री अभिनन्द स्वामी के स्तवन में गाथा है उस का अर्थ नारायणजीने ऐसा लिखा है -जिन धर्मकी तलाश करतेहुये भव्यजीवको कोई केवली प्रणीतका वचक एकातनयका पक्षी ऐसी बात सुनाय देवे कि जिससे जिन धर्मकीप्राप्ति तो दूररही परतु उलटा भ्रष्टहोके जिनधर्म्मका द्वेषी होजाय और भी देखो कि श्री अनन्तनाथजी भगवान्के स्तवन में श्री आनन्दघनजी महाराज कहते हे:- (तीसरी गाथा)"गच्छिना भेद बहुनैन निहालता, तत्वनी बात कहता न लाजे उदर भरणादि निजकार करता थका मोहनडिया कलिकाल राजे ॥ ३ ॥ और ऐसाही देव चन्द्रजी महाराज बीस विहरमान की स्तवन में से १२ श्री चन्द्रानन जिनके स्तवन की गाथा छठी में लिखतेहैः-गच्छ कदा ग्रह साच वेरेमाने धर्म प्रसिद्ध आरमा गुणअकषाय तारे धर्म न जाने सुधो ॥ ऐसा कई जगह जो आत्मार्थी पुरुष कदाग्रह को निषेध किया है और शुद्ध मार्गको जाते हैं अब इन बातों की जो आपसमें कदाग्रह और क्लेशचलता है इसीसे शुद्ध जिनधर्मकी प्राप्तिहोना मुश्किल होगई क्योंकि कोई गच्छवाला अपनी परम्परा कहे हैं कि देवी देवताकी थुई नही कहना, कोई चौथकी, कोई पचमी की छम च्छरी मानते ह कोई कहता है कि सामायक करते वक्त श्रावक चवला रक्खो कोई कह ता है नही रक्खे कोई कहता है त्योहारमे कच्चा पानी पीवे, कोई कहता है उनापानी पीवे, कोई 'करेमिभते' पहलेकरता है, कोई पीछे करता है, कोई तीन थूई माने, कोई चार माने, कोई कहता ह १ करेमिभते करो कोई कहता हे तीनकरो, कोई कहता है कि जब दो श्रावण या दो भाद्र हों तब तो पिछले श्रावण और पहिलेभाद्रव में पजूसन करो, और कोई कहता है कि दो श्रवणहो तो भाद्र मे करना, और जो दो भाद्रहों तो पिछले भाद्र में करना, कोई कहता ह आपस मे दो द्रव्यखाने चाहिये, कोई कहता है कि अनेक द्रव्य खाने चाहिये कुछहर्ज नही है, कोई कहता हे कि श्री महावीर स्वामी जीके छकल्याणक कोई कहता है कि पाच। कोई सामके प्रति क्रमण में शाति वा शातिपाठ रोज कहते ह कोई खाली शाति रोजीना कहते हैं और कोई दोनो मे से एकभी नही कहते ह कोई क हतेहै कान में मुँहपत्ती गेरकर व्याख्यान देना कोई कहतेहै बिना गेरेदेना, कोई पीला कोई सफेद और कोई कहे साधवी व्याख्यान दे और कोई कहे नहीं दे इत्यादि आपसमें अनेक बातो के विषमवाद हे सा जो हम इनका जुदा २ वर्णन करके लिखे तो ये ग्रन्थ इतना भारी होजाय कि एक आदमीसे उठना [illegible] इस भय से मे नही लिखताहू किंतु श्री तपगच्छ खरतर गच्छ में

(त० प्र०) दशवे कालक मे कहा हे इरियापथ की के विना कोई क्रिया नही करनी ? (ख० उ०) दशवे कालक जो सूत्र हे सो किसके वास्ते बना था। (त० प्र०) दशवे कालक मणक साधुके वास्ते बना था। (ख० उ०) तो देखो कि साधुके वास्ते बना था तो साधु की कोई क्रिया इरियापथ की के विना नही होय सो ठीक परंतु ग्रहस्थी की क्रिया उस दशवे कालक पर क्योकर बने देखो कि गृहस्थी देश वृति है और साधु सर्व वृति है इसलिये उस दशवे कालक मे सर्व साधु के ही आचार कहे हे और गृहस्थी के वास्ते नही किन्तु साधु के ही उपदेश हे सो पक्षपात को छोड कर बुद्धि से विचार करके आत्मा का अर्थ करो। (त० प्र०) अजी देखो कि मन्दिर मे पूजनादिक करते है सो पहले स्नान और पीछे पूजन करते हे तो इरियापथ की बतौर स्नान के और करेमीभंते बतौर पूजन के है इति न्यायात्। (ख० उ०) अब देखो कि मन्दिर वा प्रतिमा की थापना होगी तो स्नान करके पूजन करेगा विना थापना के वा मन्दिर के स्नान करके किसका पूजन करेगा इसवास्ते करेमीभते बतौर थापना के और इरियापथ की बतौर स्नान के और समता भाव बतौर पूजन के हे सो मध्यस्थ होकर विचारणा चाहिये। (त० प्र०) अजी पहले खेत को हलादि से जोत साफ करके पीछे बीज बोते हे ऐसे ही इरियापथ की पहिले पीछे करेमीभते रूप बीज बोया जायगा इस न्याय से इरियापथ की पहिले और करेमीभते पीछे करणी चाहिये। (ख० उ०) इस जगह भी कुछ बुद्धिका विचार करो कि करेमीभते बतौर खेत के हे और इरियापथ की बतौर जो हल जोतने के हे और समता प्रणाम रूप बीज बोया जाता है कदाचित अपना खेत मुकर्रर न हो तो उस हलादिक की क्रिया और बीज सर्वथा वृथा जाता है इसलिये करेमीभते पहले करना सो बतौर अपने खेत को मुकर्रर करना है फिर जो हलादिक क्रिया और बीज बोना सर्वथा सफल होगा इसलिये पहले करेमीभंते पीछे इरियापथ की करनी चाहिये (त० प्र०) अजी जो कोई मकान मे जाय सो पेश्तर काजा निकाल कर पीछे सोना बैठना करता है इस लिये इरियापथ की बतौर काजा निकालनेके ओर करेमीभते बतौर सोनेके इसलिये इरियापथ की पहले करणी चाहिये (ख० उ०) अजी देखो भाष्यकार ऐसा कहते हे कि मकान के दरवाजे बन्द करके एक दरवाजा खुला रक्खे तब तो उस मकान का काजा निकल जायगा परन्तु जिस मकानके सर्व दरवाजे खुले हुए हे उस मकानका काजा कदापि न निकलेगा कारण कि हवा के जोर से उलटा काजा उस मकान में भेरगा इस हेतु करके इस जीव रूपी मकानके मन, वचन, काय करना, अनुमोदना ये दरवाजे हे इनके खुले रहने से मिथ्यात् रूपी पवन के जोर से आश्रव रूपी काजा कदापि न निकलेगा किन्तु भीतर को आवेगा इस वास्ते मन, वचन, काय, करना इन दरवाजोको बन्द करके जो कोई काजा निकालेगातो सर्वथा काजा निकल जावेगा इस हेतु से भी करेमीभते पहले इरियावही की पीछे करनी

---

१ (त० प्र०) इस चिह्न से तपगच्छ का प्रश्न और (त० उ०) से तपगच्छ का उत्तर और (ख० उ०) से खरतरगच्छ का उत्तर और (ख० प्र०) से खरतरगच्छ का प्रश्न जानो।

चाहिये ॥ (स० प्र०) अजी कुछका विचार तो करोकि पहले करेमीभंते२ तोते की तरह टायर् करते हो देखो जब मैले वस्त्रको कोई रगना विचारे तो पहले उसको पानी से धाय कर रग चढायगा तो सम्दारग आयेगा नहीं तो रग समुदानहीं चढेगा इस न्यायसे इरियावही रूपी जल से जीव रूपी वस्त्रको धोयकर करेमीभते रूपी रग चढायेगा तो अच्छा रंग चढेगा इसीलिये पहिले इरिया वही करनी चाहिये (स० उ०) अहो विचारशून्य बुद्धि विकल दे ३ करना यही स्वप्नेका याद आगया दीखैहै जरा बुद्धिका विचार तो करो कि जब कोई मैले वस्त्रको खार अथवा साबुन लगाकर धोवेगा तो उसका मैल कटेगा खाली जलमें धोनेसे मैल नहीं जाता इसवास्ते इस जगह भी बुद्धि का विचार करो तो जिनआगम का रहस्य मालीहुई होय तो देखो इस जगह भी करेमीभते रूपी साबुनको जीव रूपी मैले वस्त्रके लगायकर इरियावही रूपी जलसे धोयेगा तो समता रूपरग अच्छी तरहसे चढेगा इसवास्ते इस जगह भी पहले करेमीभते पीछे इरिया वही करनी चाहिये (स० प्र०) अजी देखो इन युक्ति करके तो अपने करेमीभते पहले ठहराई परन्तु शास्त्रोंमें कहा है उसको आप क्या करोगे देखो कि—" नशीय सूत्रमें ऐसा पाठा है कि नोकप्पइ इरियाए अपडिक्कताए किंपावचेइयवदणाइ किंचित् इति वचनात्" किंचित् भी धर्म कार्य नहीं करणा तो करेमिभते पहिले इरियावही पीछे क्योंकर बने (स० उ०) जो धर्म कार्य इरिया वहीके बिना न करना तो देखो कि मन्दिरमें जानेकी इच्छा करनेसे धर्म होता है वा प्रभुकी मूर्ति देखनेसे भी वही लाभ धर्म होता है प्रदक्षिणादेनेसे भी धर्म है वा साधु आदि-कोंको वदनादिक करना वो भी धर्म है साधुको लेनेको आना पहुँचानेको जाना ये भी धर्म क्रिया है अथवा साधु आदिकोंको अपने घरपर आहारादिक देना यह भी परम धर्म निर्जराका हेतु है तो इत्यादिक धर्मकामोंसे पेस्तर इरियावही करके पीछे इन बातोंमें प्रवृत्त होना चाहिये तो इन बातोंमें तुम लोग क्यों नहीं करते हो क्या ये धर्म कार्य नहीं है और जो यह धर्म कार्य्य भगवान्ने गिनाये है तो इरियावहीके विना धर्म कार्य नहीं होता ये कहना तुम्हारा व्यर्थ हुवा इसलिये शास्त्रोंमें कहा है कि जिन्होंने गुरुकुल वास सेवा है और जो गीतार्थ है और आत्मारा जिनको उपयोग है और जिनको अध्यात्मसैलीसे जो अनुभव उत्पन्न हुवा वे लोग इस स्याद्वाद जैन धर्मका रहस्य जानते है प्रथम तो इस छद ग्रंथोंमें साधुओंके तई प्रायश्चित्तादिक अनेक प्रकारकी प्रेरणाकी जाती है तो देखो जिन ग्रंथोंमे साधुओंको प्रेरणा (नसीहत) करी है उन ग्रन्थोंसे तो गृहस्थीकी कृपा कदापि न बनेगी कदाचित् कोई हठकरे तो जो सिज्झाय ध्यान चैत्य वदनादि जो वचन 'नसीथ' सूत्रका है सो यह वचन सामान्य है यदि शास्त्रोंमें कहा भी है "सामान्य शास्त्र तो नुन विशेषो बलवान् भवेत्" ॥ इति वचनात् ॥ अस्यार्थ —बहु व्यापको सामान्य अल्प व्यापको विशेष जिसमें बहुत चीजोंकी विधि कही हो वो सामान्य शास्त्र होता है और जिसमें एक चीजका ही वर्णन करे सो विशेष शास्त्र होता है तो देखो कि 'नसीथ" सूत्रमें कहाहै कि इरियावहीके विना चैत्य वन्दन नही करना और चैत्य वन्दन भाष्यमें जगन, मध्यम्, उत्कृष्ट तीन प्रकारका चैत वन्दन कहा है सो उत्कृष्ट चैत्य वन्दन इरिया वहीके बिना न करना और जगन्न मध्यममे इरियावहीका कुछ नियम नही है

सो इसी कारणसे वर्तमान् कालमें सर्व जगह जो लोग चैत्य वन्दनादिक करते हैं वह इरियावहीके विना देखनेमे आते हे ये एक प्रत्यक्ष प्रमाण प्रवृत्ति मार्गकाहै इसवास्ते देखो कि " नसीथ " सूत्र सामान्य है क्योंकि "नसीथ" सूत्रमें चैत्य वन्दन ऐसा नाम लेकर कहा तो भी चैत्य वन्दन भाष्यकी विशेषतः अङ्गीकार की गई क्योंकि चैत्य वन्दन भाष्यमे खाली चैत्य वंदन की विधि है और नसीथ सूत्रमें अनेक क्रिया करने की विधि है सो हे भोले भाइयो! जो तुम्हारेको जिन आज्ञा अङ्गीकार है तो हठको छोड़ दो क्योंकि नसीथ सूत्रमे करेमीभंतेका नाम भी नही एक आदि शब्दके कहनेसे खैच करना ठीक नहीं है अब देखो श्रीआवश्यक सूत्रकी जो चुर्णी जिसके कर्त्ता श्रीदेवगणिक्षमाश्रवणजी महाराज खुलासा लिखते है कि श्रावकको नाम उद्देश लेकरके करेमीभंते पहिले और पीछे इरियावही करने की आज्ञा है इस पाठको देखना होय तो रिद्धिपतो अनरिद्धीपतो श्रावकके अधिकारमे देखलेना और सूत्रकी टीकामें आश्रय २१००० के ऊपर श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजने २२००० टीकामे रिद्धिपतो श्रावकके वास्ते लिखा है कि श्रावक साधुके पास जायकर करे सो पाठ लिखते हैं " करोमीभंते समाइयं सावज्ज जोग पच्छवात्रि दुविधंति विध जाव साह पुज्जवा स्वामी इत्यादि इरियावहीय पडिक्कमामि " ऐसा पाठ खुलासे है जिसकी इच्छा होय सो देखलेना इसग्रन्थ में तो नाम लेकर कहा है इसलिये यह सूत्र विशेष है जो अवश्य करके करना उसी का नाम आवश्यक है और भी देखो कि श्री तपगच्छ नायक पूज्यपाद श्री देवइन्द्रसूरिजी श्राद्ध दिनकृत में कहते हे कि पहले करेमीभंते पश्चात् इरियावहीय पडक्क मामि और ऐसादी पाठ श्राद्ध विधिमे भी कहा है तो अब बुद्धिमे विचार करो ये ग्रन्थ तो श्रावक अर्थात् गृहस्थके धर्म कार्य्य परलोकके वास्ते ही रचेगयेहै इनको छोडकर अपनी मत करपना करना जिन आज्ञा बाहिर है, और देखो कि श्री पार्श्वनाथजी के सन्तान में कमले गच्छ म श्री देवगुप्तसूरिजी भवतत्व प्रकरण की टीका में लिखते हैं कि करेमिभंते सामाइय पश्चात् इरियावहीय पडक्क मामि और ऐसा ही पाठ श्री हेमाचार्य्यकृत योगशास्त्रकी स्वपगीटीका में कुमारपाल भूपाल को उपदेश दिया है उसग्रन्थ मे भी करेमिभते सामाइय पश्चात् इरियावही पड़क्कमामि ऐसेही पचासक की वृत्ति आदि अनेकग्रन्थो मे करेमिभंते समाइय पहले और इरिया वही पीछे नाम उद्देश लेकर कहा है इरियावही पहले और करेमिभंते पीछे ऐसा कोई ग्रन्थमे नही है अब देखो बुद्धिमें विचार करो कि हमने जिन जिन आचार्योका नाम तुमको लिखकर दिखाया है क्या उन लोगोको जिन आज्ञाका भय नहीथा वा इन्होंने नसीथ सूत्र और दसवै कालक देखे सुने नहीथे? कि इनको समझमे इनकी अर्थ नही आया सो तो कदापि नही होना इसलिये भोले भाइयो! जिन आज्ञा आराधन करो पक्षपात छोड़ दो। (त० प्र०) अजी तुम अपनाही कहते हो परन्तु जिन मत तो नय निक्षेपा उत्सर्ग अपवाद मार्गसे है सो इरियावही पहले और करेमिभते पीछे करते होंगे तो क्या मालूम है क्योंकि आचार्योंके अनेक आशय है। (स० उ०) अजी यह कहनाभी तुम्हारा विचार शून्य मालूम होता है इसाहा जो तुम कहते हो उसीपर उतारते हैं सो देखो कि १ नैगमनयसे तो मनमें

विचारे कि समायक करू । २ संग्रहनयसे समायकके वास्ते आसन, मुंहपत्ति चरवलादि संग्रह करना ३ व्यवहार नयसे करेमिभतेका पाठ उच्चारना ४ रजू सूत्र नयसे जब समता परणाम आवे तबही समायक है । ५ शब्दनय कहेकि नाम स्थापना द्रव्यभाव नाम स्थापना सुगम है और द्रव्यके दो भेद हैं १ आगमसे २ नो आगमसे १ आगम करके द्रव्य समायक उच्चारण रूप उपयोग नहीं और नो आगम के तीन भेद हैं— १ ज्ञेय शरीर २ भव्य शरीर ३ तदव्यति रिक्त, ज्ञेय शरीर मृतुक का कलेवर रूप उस का रहनेवाला जो जीव द्रव्य समायक करता था परन्तु उपयोग नहीं था भव्य शरीर किसी बालक को देखकर आचार्य कहनेलगे कि यह बालक कुछ दिन के पश्चात् सामायक करेगा उपयोग नहीं रक्खेगा तदव्यतिरिक्त के अनेक भेद हैं सो करनेवाला बुद्धि से समझ लेना और भाव निक्षेपा भी इसी रीति से जानलेना परन्तु उपयोग है इतना विशेष है ६ सम भिरुढ नय कहता है कि संसारी कार से बच कर दो घड़ी तक स्विझाय ध्यान समता परिणाम से करना । ७ एव भूतनय कहता है कि दो घड़ी ताईं सर्व जीव ऊपर समभाव रक्खेगा और अपनी आत्म गुण विचारणा तब सामायक होगी—तो देखो इसनय और निक्षेपामें तो इरियावहीका नामही नहीं तो आगे पीछेका तो कामही क्या है और तुमने उत्सर्ग अपवाद कहा सोभी नहीं बनेगा क्योंकि उत्सर्ग अपवाद एक विषयमें अर्थात् एक जगहमें होता है करेमिभते और इरिया वहीका विषय जुदा २ है क्योंकि करेमिभते तो दो घड़ी ताईं संसारी वा इन्द्रियोंका निषेध रागद्वेष त्यागरूप है और इरियावहीका विषय आलोपणा अर्थात् प्रायश्चित्त जो कि गमनागमनम जीवकी विराधना हुई हो उसका मिच्छामि दुक्कड देना है सो अब देखो तुमही विचार करो कि जो तुमने कहा कि इरियावही पहले और करेमिभते पीछे सो सिद्ध न हुवा हमने तो शास्त्रों की साक्षी वा युक्ति करके पहले करेमिभते और पीछे इरियावही सिद्ध करचुके मानना नमानना तुम्हारा इख्तियार है । अब देखो एक तीनके ऊपरभी कुछ कहते हैं—(त० प्र०) क्या एक बार उच्चारण करनेसे नहीं होगी तो तीन बार उच्चारण करना ? इसलिये एक बार उच्चारण करना ठीक है क्योंकि लाघव होगा और ३ बारसे गौरव होगा । (स० उ०) अरे भोले भाइयो ! निस्सही वा वोसरामि वा वन्दना आदि तीन तीन बार क्यों करते हो क्या कि इस जगह भी गौरव और लाघव देखना चाहिये क्या एकबार करनेसे नहीं होती है (त० प्र०) अजी वोसरामी इत्यादिक बक गिनाये हैं इसलिये गौरव लाघव देखें तो श्रीभगवान् की आज्ञा नहीं बने और समायक तीन बार किस जगह लिखी है सो कहो । (स० उ०) अजी तीनका उत्तर तो हम देंगे परन्तु एकबार उच्चारण करना ऐसा पाठ तो नहीं है त० प्र०) अजी देखो एक तो अर्थसे ही आती है क्योंकि आपने जो प्रमाण दीने हैं उसमें समायक उच्चारण करनेमें तीनका तो नाम नहीं है (स० उ०) अजी जब ऐसा मानोंगे तो उत्तराध्यनादि सूत्रमें सामायक, चौवीसत्थो वन्दना पडक्कमणा का उसगटा इस कहने से तो का उस्सग करना एक बार हुवा फिर तीन बार का उस्सगा क्यों करते हो अर्थ से तो एक बार का उस्सगा करना चाहिये, इसीलिये कहते हैं जिन आगम रहस्य विरले को प्राप्त होता है, जो सर्व को प्राप्त हो जाता तो ओघा मुँह पत्ती लेकर मेरु की बराबर ढिगला किया और मोक्ष की प्राप्ति न हुई ऐसा क्यों कहा

इसका कारण यही है कि जिन आगमके रहस्य की प्राप्ती नही और विना रहस्य के श्रद्धा ठीक नही और श्रद्धा विना मोक्षकी प्राप्ती नही इसलिये आगम में कहा है यदि उक्तं "दस भट्टो भट्टा दस भट्टस्य नत्थी निव्वाणं" इति वचनात्, और जो तुमने पूछा कि तीन वा प्रमाण किस शास्त्र का है सो देखो कि श्रीओघ, निर्युक्ति सूत्र मे तीन ही करना कहा है और उस मे तुम ही लोगों का प्रमाण भी देते है कि जब आप लोग राई सथारा करते हो उस वक्त तीन करेमिभते उच्चारते हो तो अब हम आप लोगों को मध्यस्थ करके पूछते है कि राई सथारा में तीन वार उच्चारण करना और सामायक में एक वार उच्चारण करना तो यह तुम्हारे ही वचन से एक वार नहीं किन्तु तीन वार उच्चारण करना सिद्ध होगया दूसरा श्रीहरीभद्रसूरिजी कृत पचवस्तु ग्रन्थ मे श्रावक का सामायक में करेमिभते तीन वार उच्चारण करना और साधु को ही तीन वार करे मिभते उच्चारण कहा है सो गाथा यह है:—चिईवदनार हरन अट्टसम्मा असतु सम्रो सामा इति अट्टण पयाहिनचेवतीखुतो ध० गुरुवो वामगणसे सेः सह ठावीम अहवणदितिः इकि कती खसाःइमेण ताणे मुव ठन तीध ॥ १ ॥ इस गाथा में श्रावक को तीन वार कर- ना खुलास अर्थ है और भी देखो कि व्यवहार भाष्यके चौथे उद्देसे मे " सामाइय तिगुण मिति पदका व्याख्यान करता श्रीमलीयगीरीजीने भी तीन वेर सामायक उच्चारण ऐसा कहा है और इसी व्यवहारभाष्य की टीका मे इसी तरह लिखा है और भी देखोकि इसी तरह नसीथ सूत्र की चरिणी मे लिखा है यथाः— "शमियय खुत्तो कड्डई" इत्यादि पाठ स्पष्ट लिखे हुए है सो जिस किसी को सदेह हो सो निगाह करके देखले। अब देखो कि तीन वार भी सामायक उच्चारण करना सिद्ध हो चुका, और देखो इनके आपस में पच- खाण भी कराने मे फरक है सो भी दिखाते है कि रात के तिविहार पचक्खान करने मे तपे गच्छ वाले तो कच्चा पानी पीते है और खरतर गच्छ वाले ऊन पानी पीते है सो तप गच्छ वाले ऐसा कहते है। (त० प्र०) अजी तिविहार का पचक्खान करने से तीन आहार का त्याग है एग कच्चा पानी पीने से क्या हर्ज है क्योंकि असण, खायम, सायम। इन तीनों का त्याग हुवा एक पाठ कहता 'पानी' बाकीरहा इस में कुछ गर्म पानी का नियम नहीं कि गर्म ही पीना तुम खाली अपनी खेच करते हो। (ख० उ०) अजी हमारे तो कुछ खेंच है नहीं परन्तु आप लोग अपने गच्छ की खेच तान करके ऐसा अर्थ करते हो कि पाठ कहता एक पानी रहा सो ये कहना विचार शून्य है क्योंकि देखो जब तुम ति- विहार उपास करते हो तो उस जगह भी एक पानी बाकी रहता है तो उस जगह आप लोग गर्म पानी क्यो पीते हो क्योंकि उस जगह भी तो ऐसा पाठ है कि—'अशन साइम सायम एक पानी बाकी रह गया तो उस जगह भी तुमको कच्चा ही पीना चाहिये इसवास्ते पक्षपात को छोडकर जिनधर्म की इच्छा हो तो जिन आज्ञा अगीकार करो। अब किञ्चित् पर्यूषण जो आगे पीछे होता है सो लिखते है। (त० प्र०) अधिक मास होने से जो दूजे श्रावण और पहले भाद्रव मे करते है सो ठीक नहीं क्योंकि जिनमत में मास २ बढते है, आषाढ १ और पोह २ और बाकी मास नहीं बधे इसलिये नहीं करना। (ख० उ०) अजी जिनमत में दोरमास के सिवाय वृद्धि नहीं होती है सो ठीक है

परन्तु एकान्तता नहीं है जो एकान्तता मानोगे तो देखो कि श्री विशेष कल्पभाष्य की चूर्णी के विषय अधिक मासका होना प्रमाण किया है और भी देखो तपगच्छ नामक श्री सोम प्रभु सूरिजीने भीमपल्ली मे चतुर्मासा कियाथा वहां और कई मतके आचार्य थे सो श्री सोमप्रभु सूरिजी प्रथम कार्तिक मे चतुर्मासी प्रतिक्रमण करके विहार करते हुये और मतवाले ११ आचार्य्य दूसरे कार्तिक मे चौमासी कृत्य करके गये तो देखो कि दो २ मासके सिवाय और कोई दूसरा मास नहीं बढता है यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है क्योंकि जब आषाढ और पूष दोही महीना बढते हैं तो तुम्हारेही गच्छके आचार्य दो कार्तिक होने से पहले कार्तिक मे विहार कैसे करगये। इस से सिद्धहुवा कि और भी मास अधिक होते हैं इसलिये दूसरे श्रावण और पहले भाद्रवे मे करना ठीक है। (त० प्र०) अजी देखो कि जो दूसरे श्रावण और पहले भाद्रवा मे करोगे तो पर्यूषनके बाद ७० दिन नहीं रहेंगे और सौ दिन होजायेंगे तो पिछले ७० दिन नहीं लेने से सिद्धान्तसे विरुद्ध होगा इसलिये पिछले ७० दिन लेने चाहिये (स्या० उ०) अहो अनुभवशून्य होकर बुद्धिकी चातुरता दिखातेहो कि देखो जो तुम पिछले ७० दिनकी कहते हो सो तुम्हारे न तो पिछले ७० दिन बनते हैं और न पचासदिन बनते हैं क्योंकि जब दो श्रावण होतेहैं जब भाद्रव मे करतेहो इस में ८० दिन आषाढ चौमासी से होते हैं और जो दो भाद्रव होते हैं तो पिछले भाद्रव में करने से आषाढ चौमासीसे ८० दिन होते हैं तो इधर मे तुम्हारे कातक चौमासी के ७० दिन बनगये परन्तु जब दो आसोज अर्थात् कुँवार होगे तब ७० दिन कार्तिक चौमासी के क्योंकर बनेंगे क्योंकि दो आसोज होने से छमछरी से कार्तिक चोमासीतक सौ (१००) दिन होजायँगे तो तुमको दो आसोज होने से प्रथम आसोज म पर्यूषण करना चाहिये कि जिससे कार्तिक चौमासी तक ७० दिनहों अब देखो इस तुम्हारी बुद्धि विचक्षण मे न तो आषाढ चौमासी से पर्यूषण तक ५० दिन रहे और न छमछरी से कार्तिक चोमासी तक ७० दिन रहे तो इस में तो यह मसल मिलगई "दोनों खोइरे जोगडा मुद्रा और आदेश" अब देखो बुद्धि से विचारकरो कि शास्त्रों मे आषाढ चौमासी से ५० वें दिन छमछरी प्रतिक्रमण कहा है देखो श्रीमान् १४ पूर्वधारी श्री भद्रबाहु स्वामी जी श्री कल्पसूत्रजीके विषय कहतेहैं, "वीसाई राई मासे वइकंते" आषाढ चौमासी सेती बीस दिन और एकमास जाने से श्री महावीर स्वामी जी पर्यूषण पर्व करे इसीतरह विशेष कल्पभाष्यचूर्णी के विषय दसपचक हो में पर्यूषण करना कहा है यथा "आषाढ चौमासे पडिकते पचाहि २ ।दवसे हिंग एहिं तत्थ २ वास जोगखित्त पडिपुन्न । तत्थ २ पूज्जो सवेयव्व । जाव सवी सई राइमासा" इत्यादि ॥ भावार्थ (आषाढ चौमासे का प्रतिक्रमण कियेके बाद पचास दिन व्यतीत होने से जहा २ वर्षा वासयोग्य स्थानकिया हो तहा २ पर्यूषण करे यावत् दश पचक तक अर्थात् एक मास वीस दिनतक पर्यूषण करे दशमा पचक अर्थात् पचासवें दिन तो अच्छे क्षेत्र नहीं मिले तो वृक्षमूल नीचे भी रहकर पर्यूषण करे ऐसाही श्री सामायाग सूत्रकी वृत्ति मे सत्तरमें स्थानमे कहा है। "समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसई राइए मासे। वइकंते वासावास पज्जो सवेति" इसलिये आषाढ चौमासीसे एक मास वीसदिन जाने से पर्यूषण करना शास्त्रो से सिद्धहोता है और भी देखो कि कलिकाल गोतम अवतार जगम युग

प्रधान श्री कालकाचार्य्य महाराजने जो पंचमी से चौथकी छमछरी चलाई सो आजतक जारी है सो उन्होंनेभी सूत्रका पाठ देखकरके पंचमी से चौथकी, और छठनकी देखो वह पाठ यह है :– अंतरावियसे कप्पई नो से कप्पई " इस पाठ में भी असड में भी आषाढ चौमासी से पचास दिनके भीतर पर्यूषण होता है और पचास दिन से एक भी ऊपर जाने से पर्यूषण नहीं होता इसलिये दूजे श्रावण और पहले भाद्रवे में करना श्री भगवत् आज्ञा आराधन होगा हमने तो किञ्चित् मात्र इन दोनो गच्छों के जो विषम्वाद है सो शास्त्र और युक्ति समत बतलाये जो हम इनके सर्व विषम्वादों को लिखे तो ग्रन्थ बढजाय और हमको किसी गच्छ से निमित्त भाव भी नहीं इसवास्ते दिग् मात्र दिखाय दिया है। (मध्य प्रश्न) महाराज साहब आपने इस जगह खतरगच्छकी अधिकता जताई और तपे गच्छकी कोटी मंद मालूम होती है परन्तु श्री आत्माराम जी महाराज श्री जैन तत्त्वादर्श के १२ वे परिच्छेद ५७५ के पृष्ठ में १२०४ के सालमें खरतरकी उत्पत्ति लिखते हे और इसी परिच्छेदके ५८४ के पृष्ठमें ऐसा लिखा है कि जैसलमेर आदिकोंमें खरतरोंको और मेवात देशमें बीजा मतियोंको और मोरवी आदिकोंमें लोंका मतियोंको प्रतिबोधके श्रावक बनाया सो आज तक प्रसिद्ध है तो इस जैन तत्त्वादर्शके लिखनेसे तो खरतरवालोंको फिर करके श्रावक बनाया इस लिखनेसे तो खरतर गच्छ कोई मतपक्षी होवे ॥ भोदेवानोप्रिय ! अब जो तुमने यह प्रश्न किया है सो मैं तपगच्छ की कोटी मन्दके वास्ते तो आगे लिखूंगा जबसे समाचारीका फर्क पडा है तबसे कोटी मन्द मालूम होती है किन्तु तपगच्छ, कमलेगच्छ, खरतर गच्छादि सब प्रमाणिक है इनमें न्यूनाधिक कोई नहीं है सो तपगच्छकी तो हम प्रमाणीकही मानते हैं परन्तु जो जैन तत्त्वादर्श में कई विपरीत बातें है सो दिखाताहूँ–और जो आत्माराम जीने गच्छ मिमतरूप भगके नशमें जो कुछ लिखा है सो आकाशके फूल समान मालूम होता है क्योंकि देखो अब हम दिखाते है कि जैन तत्त्वादर्श में तो खरतर गच्छ १२०४ के सालमें उत्पन्न हुवा लिखते है और जोकि पार्वती ढूंढनीका खंडन बनाया है उस गप्प दीपिकामें लिखते है कि श्री नव अंगजीकी टीका श्री अभय देव सूरिजीने सम्वत् ११२० के लग भग रची है तो देखो श्री जिनेश्वर सूरिजी जिन्होंने खरतर बिरुद्द पाया है उनके तीसरे पाटमें श्री अभय देव सूरिजी हुयेथे अर्थात् उनके पोते चेलेथे तो अब इनका १२०४ का लिखना वंध्याके पुत्र समान हुवा फिर आत्मारामजी जो कि प्रश्नोत्तर बनाये है (सम्वत् १९४५ के सालके छपे हुवे) उसमें लिखते है कि श्री जिनदत्त सूरिजी महाराजको सम्वत् १२०४ में सिद्धसैन दिवाकरजीने चित्रकूटके खंभामेंसे निकाली हुई पुस्तक जो उज्जैन नगरी श्री अवंती पार्श्वनाथजीके मन्दिरमें गुप्त रक्खीथी सो उनके हाथ लगी तो अब देखो उन्होंने विचार करो कि श्री जिनेश्वर सूरिजी खरतर बिरुद्द जिन्होंने पायाथा उनके पांचवें पाटमें श्री जिनदत्त सूरिजी हुवे तो। १२०४ के सालमें जो खरतर उत्पत्ति लिखी है वह और इस ऊपरके लिखे हुवेका प्रमाण उन्होंकी बनाई हुई पुस्तकमेंसे लिखा है। सो अब देखो के इनकी तीन पुस्तकोंमें तीन वचन हुये प्रथम तो १२०४ के सालमें खरतर उत्पत्ति और दूसरी पुस्तकमें ११२० के सालमें नव अंगवृत्ति कर्त्ता और तीसरी पुस्तकमें १२०४ के

सालम पाचवी पीढीवालेको श्री एवती पार्श्वनाथमे पुस्तक हाथ लगी इन तीन लेखोंसे इनका लेख तीन तरहका होनेसे और सबंध नही मिलनमे तुरग अर्थात् घोडेके सींगके समान हुवा और जो ये लिखते है कि खरतर गच्छ आदिको प्रतिबोध दिया सो भी इनका लिखना कदाग्रहरूप मालूम होता है क्योंकि देखो इनकी बनाई हुई जो प्रश्न उत्तरकी पुस्तक उसमे पृष्ठ १०१ मे (८० व उत्तरमे) पृष्ठ १०३ तक लिखते है कि चार शाखासे चार कुल उत्पन्न हुये तिसमे दूसरा जो चन्द्रकुल तिसमें वडगच्छ, तपगच्छ, खतरगच्छ, और पुरण पल्लिया गच्छ हुयेथे ॥ तो अब देखो कि एकचन्द्र कुलमेंसे ये चार शाखा हुई अब उनमेसे एक शाखा वालेको जैसलमेर आदिमे शुद्ध श्रावक बनाया यह इनका जो लिखना है सो कदागृह रूप है और गच्छके निमित्त भाव होनेसे है । अब देखो हम श्री आत्माराम जीसे बडे गीतार्थ सुनतेथे सो उनकी पुस्तकोंकी लिखावट देखनेसे मालूम होता है कि गुरुकुलवास विना अनुभव शून्य बुद्धिका विचक्षण है क्योंकि देखो जैन तत्त्वादर्श १२ वे परिच्छेद पृष्ठ ५७५ में लिखा है कि वडगच्छका नाम तपा विरुद्ध दिया और निर्ग्रन्थ १ कोटिक २ चन्द्र ३ वनवासी ४ वडगच्छ ५ और तपागच्छ छट्ठी अर्थात् छ है ऐसा लिखा है और प्रश्नोत्तरकी पुस्तक ८० वे प्रश्नके उत्तरमें १०३ के पृष्ठमे लिखा है कि श्री वज्रसेनजीने सौपारक पट्टणमे दिक्षा दीनीथी तिनके नामसे चार शाखा अर्थात् कुल स्थापन किये वे ये है–१ नागिन्द २ चन्द्र ३ निवृत्त ४ विद्याधर ये चारो कुल जैन मतमें प्रसिद्ध है तिनमेंसे नागिन्द कुलमें उदय प्रभु और मल्लपेण सूरि प्रमुख और चन्द्रकुलमें वडगच्छ और तपागच्छ, खरतरगच्छ, पूरनपल्लिया गच्छ ऐसा लिखा है–और चार थुईकी चर्चामे जो कि गजेंद्र सूरिके लिये बनाई है उसकी प्रशस्तिके नवे पृष्ठमे ऐसा लिखा है कि श्री वज्रस्वामी शाखाया चन्द्रकुले कोटिक गणे वृहत्त गच्छे तपगच्छ अलकार भट्टारक श्री जगतचन्द्र सूरिजी महाराज अपनेको स्थिलाचारी जानकर चैत्रवाल गच्छिया श्री देवभद्र गणि सयमीके समीप चारित्रो समपाद अर्थात् फेरके दिक्षा लीनी इस हेतुसे तो श्री जगत्चन्द्र सूरि महाराजके परम सवेगी श्री देवेन्द्र सूरिजी शिष्य श्री धर्म रत्न ग्रन्थकी टीकाकी प्रशस्तिमे अपने वृहत् गच्छका नाम छोडकर अपने गुरु श्री जगत्चन्द्र सूरिजीको चैत्रवाल गच्छिया लिखा और जैन पृश जो श्री आत्मारामजीने बनाया है उसमे लिखते है कि हमारा तपगच्छ अनादि है अर्थात् हमारा तपगच्छ श्री ऋषभदेव स्वामीसे चला आता है । अब मध्यस्थ होकर सज्जन पुरुषोंको अपनी बुद्धिमे विचार करना चाहिये क्योंकि देखो चन्द्र गच्छसे वनवास गच्छ हुवा और वनवास गच्छसे वडगच्छ हुवा और वडगच्छकाही नाम तपगच्छ हुवा तो देखो वडगच्छका श्री पूज्य अभीतक मौजूद है इससे साबित होता है कि वडगच्छका नाम तप नहीं पडा क्योंकि उस गच्छका श्री पूज्य परम्परायसे मौजूद है जो न होता तो इनका लिखना ठीक हो जाता सो प्रत्यक्षमे अनुमानका कुछ काम नही ये जैन तत्त्व दर्शमें लिखा हुवा कि वडगच्छका तपगच्छ नाम हुवा सो तपगच्छ आकाशके पुष्पके समान होगया क्योंकि देखो इनहीका फिर दूसरा लेख दिखाते है कि जो प्रश्नोत्तरकी पुस्तकमें

लिखतेहै कि चन्द्रकुलमे बडगच्छ, तपगच्छ, खरतर गच्छ, पूरण पल्लिया गच्छ है सो तीनगच्छ तो इसमें सिद्ध होते है परन्तु तपगच्छ तो जैन तत्वादर्शके लिखनेसे बड गच्छसे निकला मालूम होता है क्योंकि देखो श्री आत्मारामजीकी बनाई हुई "चतुर्थ स्तुति निर्णय" उसमें लिखा है कि जगत्चन्द्र सूरिजीने वज्रस्वामी साखाया चन्द्र कुलेको दिक्गणे वृहत गच्छे इसको छोडकर चैत्रवाल गच्छिया श्री देवभद्र गणिके पास फिर कर दिक्षालीनी ऐसा हम पेश्तर इनके ग्रन्थसे लिख चुके सो अब यहा इस लेखके देखनेसे ऐसा अनुमानसे सिद्ध होता है कि श्री जगत्चन्द्र सूरिजी महाराज किसी अशुभ कर्मके सयोगसे स्थिलाचारी होगयेथे वह स्थिलाचार होनेसे इनके गुरु आदिक ने अलग कर दिये होंगे फिर शुभ कर्मके उदय होनेसे श्री जगत्चद्र सूरिजी महाराज चैत्रवाल गच्छिया श्री देवभद्रगणिके पास दिक्षा लेकरके चारित्र परिपूरण वैराग रसमे भरे हुवे देशोमें विचरते हुवे चित्तौरगढमे राणाको प्रतिबोध देने वाले और ३२ दिगम्बर आचार्य्योंके साथ विवाद करते हुवे हीरा की तरह अभेद रहे तब राजाने "हीरालाजगत्चन्द्रसूरि" ऐसी विरुद्ध (पदवी) दिया और जिन धर्मकी बडी उन्नति करी सो देखो उन श्री जगत्चन्द्रसूरिके शिष्य समवेग रग परिपूर्ण पूज्यपाद श्री देवेन्द्र सूरिजी महाराजने तो श्री धर्मरत्न ग्रन्थकी प्रशस्तिमें जैसी बात थी तैसीही लिखदी इससे क्या प्रयोजन निकला कि चैत्रवाल गच्छके आचार्य्यके पासमे दिक्षा लेने वाले ऐसे श्री जगत्चन्द्र सूरिजी महाराजसे तपगच्छ प्रगट हुवा नतु वज्र शाखाया चन्द्रकुले कोटिक गणे वृहत गच्छसे निकसना साबित हुवा, और इस जगह दृष्टान्त देते है—कि जो लडका जिसके गोद आवे उसका नाम चलेगा नतु प्रथम बाप का तो इस जगहभी श्री जगत्चन्द्रसूरिजीने अपने वृहत्गच्छ कुल परम्पराको छोडकर चैत्रवाल गच्छमे फिर करके दिक्षा लीनी इसवास्ते इनको चैत्रवाल गच्छकी पाठावलीसे मिलाकर श्री महावीर स्वामीजीकी पाठावलीसे मिलाना ठीक था न कि वृहत् गच्छकी पाठावलीसे? और जैन वृक्षमे लिखते है कि हमारा श्री ऋषभदेव स्वामीजीसे तप गच्छ चला आता है यह लिखनाभी इनका आकाशके पुष्पके समान है क्योंकि देखो श्री महावीर स्वामीकी परम्परा जो इन्होंने लिखी है कि सोमप्रभु तथा श्री माणि रत्नसूरिके पाठ ऊपर श्री जगत्चन्द्र सूरिजी बैठे सो तो तुम्हारे "चतुर्थ स्तुति निर्णय" मे श्री देवेन्द्र सूरिजी महाराजकी शाखसे चैत्रवाल गच्छके शिष्य श्री जगत्चन्द्र सूरिजी सिद्ध हुवे तो अब देखो श्री महावीर स्वामीसेही जिस पाठ परम्परामे तुमने लिखे उस पाठ परम्परामे नही मिले तो तुम्हारे लिखनेहीसे चैत्रवाल गच्छकी पाठ परम्परामे चले गये सो अब तुम चैत्रवाल गच्छकी पाठ परम्परासे श्री ऋषभदेव स्वामीको मिलावो तो ठीक हो नही तो अपास्त। और दूसरा देखो कि श्री सुविधि नाथजी तीर्थंकरसे लेकर कई तीर्थ करोंके वीचमें धर्म विच्छेद हो गया था अर्थात् साधु साध्वी विच्छेद हो गयेथे तो जब उस समयमें तपगच्छ कहा रहाथा और तीसरा देखो कि जब तपगच्छही सबसे पहलेका है तो श्री पार्श्वनाथ स्वामीके सन्तानियोकी पाठ परम्परा वर्तमान कालतक मौजूद है तैसे तुम्हारेको भी श्रीमहावीर स्वामीकी पाठ परम्पराम मिलाना ठीक नही किन्तु ऋषभदेव स्वामीकी पाठ परम्परासे मिलाना ठीक था सो अब देखो

अनर्थ उत्पन्न होतेहै इसलिये योग्यको दिखाना अयोग्यको नहीं दिखाना क्योंकि देख उपाध्यायजी श्री जसविजयजी महाराज अध्यात्मसारके पहले अधिकारमें जिसका श्री विजयजी महाराजने अर्थ कियाहै उसमें ऐसा लिखतेहैं कि जो पुरुष योग्यहो,उसकाही लिखा और पुस्तक देना और अयोग्यको नदेना और जो योग्य अयोग्य किसीको न देना काम जैनियोंका अच्छा नहीं उत्तर तो इतनाही था और जो कि आत्मारामजी उत्तरमें लिखते कि जैसलमेरम जो भंडारके आगे पत्थरकी भीत चुनके भंडार बन्धकर छोडाहै इस आत्मा रामजीके लिखनेके ऊपर दोलेख दिखातेहैं सो सज्जन पुरुषोंको विचारना चाहिये कि इस तो जैसलमेरका भंडार बन्ध हैनहीं कदाचित् बन्धभी होता तोभी आत्मारामजीको इस लके जैन मतियोंको बहुत नालायक कहना नहीं था और दूसरे जो जैसलमेरके श्रावकोंके व्रत भंग होगया सो अब पहले युक्ति बन्धहोनेकी रीति दिखातेहैं कि भंडारका इस री बन्धहोना तो ठीकही मालूम होता है क्योंकि किसी बुद्धिमान् विचक्षण आचार्य सलाहसे जैसलमेरके श्रावकोंन जो पत्थरकी भीत चुनवाई है सो कुछ समझकर चुन होगी क्योंकि जैसलमेरके श्रावक कुछ सहजके न थे और जिन्होंने श्रीजसविजय उपाध्यायजी महाराजको प्रश्न कियेथे उन्होंने उनके प्रश्नोंके उत्तर दियेथे सो एसे विचक्षण श्रावक थे सो वेलोग बेसमझ का कामकरें सोतो नहीं बनता और इसीरीति जो तुम कहोगे तो देखो चित्तौरगढके खम्भे में धरीहुई पुस्तक अगाडीके आचा र्योंने उस खम्भे का ऐसा ढक्कन लगाया था कि किसी को मालूम न पडे परन्तु श्री सिद्ध सैन दिवाकर जीने उस ढक्कन को अपनी योग्यतासे देखकर और अलग करके एकपुस्तक निकाली उसम से एकपत्र बाचके पीछे एमती पार्श्वनाथजी मे गुप्तकरके रखदिये फिर भंडार को किसी बुद्धिमान् विचक्षण आचार्य की सलाह से विचक्षण श्रावकने बन्धकिया होगा सो भी न मालूम कि कितने वर्ष हुएहैं उस भंडारके आगे पत्थर होने से श्री आ त्मारामजी लिखते हैं कि हम इस कालके जैन मतियों को बहुत नालायक समझते हैं इस लेख के देखने से बडाखेद होता है कि देखो आत्माराम जी ऐसे गीतार्थ हो ऐसे बचन लिखते हैं जिससे कि आत्मारामजी इस कालके जैन मतियोंसे भिन्न मालूम होते हैं और वे इस कालके जैन मती अर्थात् श्री संघ पानेसाधु साध्वी, श्रावक श्राविका चतुर विधि संघसेभी अलग मालूम होते है—और मालूम होता है कि इसीलिये इन्होने सोरठ देशको अनार्य्य देश बताया कि जिसमें सत्रुंजाजी सिद्धाचलजी अनादि तीर्थ हैं इसकी चर्चाम पुन्यास श्री रत्न विजयजीने "आर्य्य अनार्य्य विज्ञापन पत्र" छपवाया सो पुस्तक प्रसिद्ध है कदाचित् ये बाहिर न होते तो इस कालके जैन मतियोंको हम बहुत नालायक समझते हैं" ऐसा कभी नहीं लिखते कदाचित् वे ऐसा कहें कि जैसलमेरके भंडारके पुस्तक मट्टी होगये हैं कि शेष कुछ रह गये हैं इस हेतुसे हमने नालायक शब्द लिखा है तो ये अब, इनका कहना छलरूप है और अपने निर्भाव करनेके लिये अर्थको फेरना है क्योंकि खाली

जेसलमेरके श्रावकोंको नालायक लिखते तो ठीकथा परन्तु इन्होने तो इस कालके जैन मतीयोंको बहुत नालायक समझा इसलिये आत्माराम जीका गीतार्थपना गुरु परम्परा अर्थात् गुरुकुल वास बिना अनुभवशून्य पंडिताईके अभिमानरूप नशेमे चकचूर होकर इसकालके चतुर्विध संघको बहुत नालायक कहनेसे बुद्धिमान् सज्जन पुरुषोंको जाहिर होगया और इस पंचम कालमें चतुर्विध संघको बहुत नालायक बनानेवालेभी गीतार्थ है–औरभी देखो कि ऊपरकी युक्तिसे इनका कहना 'इस कालके जैनमतीयोंकी नालायक बनाना ठीक नही ठहरा। अब जो जेसलमेरके भंडारकी बाबत जो वहाके श्रावकोंसे वृत्तान्त सुना है सो उन श्रावकों की जबानीका हाल लिखाते है–कि आत्मारामजी तो कहते है कि भंडारके आगे भीत चुनदीनी और उसकी कोई खबर नहीं लेता है–और जेसलमेरके श्रावको का ऐसा कहना है कि भंडार सालके साल ज्ञानपञ्चमीको खुलता है और धूप पूजन आदि सालके साल होता है और जब कोई अच्छे पढे लिखे साधु वहाँ आते है तो उनकोभी दिखलाया जाता है बल्कि सम्वत् १९४४ मे श्री मोहनलालजी जैसलमेरमें पधारेथे उस वक्त उन्होंनेभी उस भंडारको खुलवायकर देखाया और दूसरा ऐसाभी हमने सुना है कि 'एक दिन राज मलमपैयाका मुनीम रतनलाल वासीत जेसलमेर वाला कि जिसके पास भंडारकी कुंजी रहती है उसन ऐसा ज़िकर किया कि एक अंगरेज जिसका नाम मै नही जानताहू जैसलमेर में आया और उसने उस भंडारको देखा और कई पुस्तकेंभी उस भंडारकी पुस्तकोंमेंसे लिखाय कर ले गया और उस भंडार या पुस्तकोंकी प्रशंसा (तारीफ) की कि ऐसे पुस्तकोंका भंडार हरएक जगह नही है और आपलोग इस भंडारकी हिफाजत अर्थात् सार संभार अच्छी तरहसे करते हो बल्कि वह अंगरेज "सार्टीफिकेट" भी दे गया है सो उसकी मुहर लगे हुये सार्टीफिकेट हम लोग जो ताली रखनेवालेहे सो हमारे पास मौजूद है अभीतक तो ऐसा किसी सालमें नहीं हुवा कि भंडारका ताला ज्ञान पंचमीको न खुला हो और धूपादिक ज्ञान पूजन न किया गयाहो किन्तु सालके साल ऐसा होता ही है ऐसा हमने उनकी जबानी सुना और वह श्रावक मौजूद है अब न मालूम आत्मारामजीने जैसलमेरके भंडारकी बाबत पत्थरकी भीत चुनाकर बन्ध कर दिया और उसकी कोई खबर नही लेताहे–ऐसा जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरमें किस ज्ञानसे लिख दियाहै और जैन मतियोंको नालायक बनाया, मालुम होता है कि इस कालके जैन मतियोंसे भिन्नहै तो फिर इनको पीले कपडे करना और ओघा आदि जैनियोंका लिङ्ग रखनाभी ठीक नही था क्योंकि इस कालके जैन मतीतो बहुत नालायक सो इन्होंने नालायकभी बताया और चिह्नभी जैनियो जैसा रक्खा अपने कृतको न देखा–पर्यूषण पर्वमे जन्मके दिन स्वप्नोंको (जो कि श्री महावीर स्वामीकी माताने देखेथे) उनके आकार मूजिब ऊपर छतपरसे नीचेको उतरवाना और उसके ऊपर श्रावकोंसे रुपया बुलवाना उन रुपयेको इकट्ठा करके अपनी पुस्तक लिखाना यह काम वह और उनकी समुदायवाले करतेहे अब इसमें बुद्धिजनोंको विचारकरना चाहिये कि यह देवद्रव्य हुवा या ज्ञानद्रव्यहुआ क्योंकि देवके नाम और देवके स्वप्नोंसे जो धन इकट्ठा हो सो देवकृत अर्थात् मंदिर आदिकमें लगाना चाहिये नकिज्ञानादिक पुस्तकोंमे क्योंकि श्री संघका घर मोटा है दूसरा उनका कृत यह है कि श्री महावीर स्वामीके जन्मके पीछे पालनेमे झुलाना और

परन्तु गुजरात मारवाड पूर्वमे जो यती संवगी लोग कुल व्याख्यान देनेके समय मुँहपत्ती कानमें घालते है वह व्याख्यानके वक्त मुँहपत्ती कानमें घालना अगीकार न किया और उलटा निषेध करके शास्त्रका प्रमाण माँगने लगे बल्कि मुँहपत्ती बिल्कुल हाथमे रखना ही उठा दिया जब उनकी समुदायवाले साधुजन ठल्ले या गोचरी जाते है केवल रूमाल हाथमे रखते है तो देखो ऊपर लिखी हुई गुजरातकी बाते कि जिनमे इनके स्वार्थ सिद्ध हा सो अगीकार करली और जो परम्परा गत व्याख्यानके वक्त मुँहपत्ती कानमें घालना अथवा जहा तहा मुँहपत्ती हाथमें रखना जब बोले तब मुँहपत्ती मुखक आड़ी रखना तो उडा दिया और रूमाल हाथमें रखना अगीकार किया तो मालूम होता है कि यह भी कुछ दिनके बाद एक नवीन रूमाल पथ प्रवृत्त हो जायगा क्योंकि इनके समुदायवाले साधु इसी रीतिसे प्रवृत्त होते है मुँहपत्ती विषय जिसजगह व्याख्यानके वक्त मुँहपत्ती कानमे घालना सिद्ध करेंगे वहा विशेष युक्ति दिखायेंगे परन्तु इसजगह श्री सिद्धसेन दिवाकर का आख्यान जो कि आत्माराम जीने जैन तत्त्वदर्श के बारहवे परिच्छेद ५६४ के पृष्ठ मे लिखा है कि एकदा श्री सिद्धसेनजीने सर्व सघ इकट्ठा करके कहा कि जेकर तुम कहो तो सर्व आगमों को मे संस्कृत भाषा में करदू तब श्री सघने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नही जानते थे जो तिन्होंने अर्द्धमागधी भाषा में आगम करे ऐसी बात कहने से तुमको पाराचिकनाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसे क्या कहे । तब सिद्धसेनने विचारकर कहा कि मे मौन करके बारह वर्षका पाराचिक नाम प्रायश्चित्त लेके गुप्त मुख वस्त्रका रजोहरणादि लिङ्ग करके और अवधूत रूप धरके फिरूगा ऐसा आख्यान आत्माराम जी लिखते है तो अब देखो कि श्री सिद्धसेन जीने तो अर्द्धमागधी भाषाकी संस्कृत भाषा बनाने को कहाया उस बारतो उनको ऐसा भारी प्रायश्चित्त आया और उन्होंने उसको अगीकार करके उसको पूराकिया क्योंकि उनको श्री वीतरागके वचन ऊपर पूरी २ आस्ता थी और आत्मार्थ की इच्छायी जिन धर्म का रहस्य जानते थे तो अब आत्मारामजी इस काल के जैनमतियो को बहुत नालायक समझते है ऐसा इन्होंने प्रश्नोत्तर की पुस्तक में लिखा है तो "जैनमती" इस शब्दसे तो इस काल मे चतुर्विध सघ अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, और प्रवचन आदि जिनम तो इस शब्दके अन्तर्गत ठहरा तो श्री सिद्धसेनजीने तो प्रवचन अर्थात् सिद्धान्तों की जो अर्द्धमागधी भाषा जिसकी संस्कृत भाषा बनाने में पाराचिक नाम प्रायश्चित्त आया तो आत्माराम जीने तो प्रवचन और चतुर्विध संघ जो कि जिन मतके अन्तर्गत है उस सर्व कोही नालायक बताया तो इस नालायक बताने का कितना बड़ा प्रायश्चित्त आवेगा और ये क्या लेवेंगे क्योंकि आत्मार्थियो को तो अपनी आत्माके अर्थ करनाही अवश्यमेव है नतु जिनमतका प्रायश्चित्त दम्भी, मोहगर्वित, दुःखगर्वित, आडम्बरी धूर्त्तों के वास्ते । दूसरा जैसलमेरके श्रावको के कहने से तो भंडार बन्ध है नही और उसकी पूरी २ सालकी साल सभाभी होती है तो इससे आत्माराम जी भंडार को बन्ध करके पत्थरकी भीति चुनदी तो मृषा वाद आया तिस मृषावाद के आनेसे उनका द्वितीय व्रत व्यवहार नयसे भग होगया अर्थात् न रहा तो पञ्चमहाव्रतधारीपना क्योंकर बनेगा और निश्चय करके तो इस काल के [illegible] को अर्थात् चतुर्विधसघ जो कि जिन

आज्ञा का पालने वाला उसे इन्होंने नालायक कहा उसका प्रायश्चित्त तो ज्ञानी जाने क्योंकि ऐसे रहस्यों को वही जन जानेंगे कि जिन्हों को जिन धर्म की रुचि और अपनी आत्मा का कल्याण करने की इच्छा श्री वीतराग के वचन के ऊपर सच्ची आस्ता होगी नतु ! उपजीर का जिन धर्मियों के वास्ते रैर अब और भी चौथी बात दिखाते हे कि तुमने किसी गीतार्थ की सगत नहीं करी होगी क्योंकि जेकर जैन मतके चरण करणानुयोगके शास्त्रपढे होवे अथवा किसी गीतार्थ गुरुके मुखार्विदसे वचन रूप अमृत पान करा होता तो पूर्वोक्त सशयरूप रोगकी कसमसी कदापि न उत्पन्न होती? क्योंकि जैन मतमें छः प्रकारके निर्ग्रन्थ कहे हे इस कालमें जो जैनके साधू हैं वे सर्व पूर्वोक्त छ, प्रकारमेंसे दो प्रकारके है क्योंकि श्री भगवती सूत्रके पच्चीसवे शतकके छठे उद्देसेमे लिखा है कि पचम कालमें दो तरहके निर्ग्रन्थ होंगे उनोसे तीर्थ चलेगा, कषाय कुशील निर्ग्रन्थ तो किसीके परिणाम वेसा होगा, मुख्य तो दोही रहेंगे । यह ऊपरके लिखे ३ परिच्छेद पृष्ठ १०९ में जैन तत्त्वादर्शमें है और इसी विषयमें इसी परिच्छेदके १११ के पृष्ठमे ऐसा लिखा है तथा नशीथमें भी लिखा है । भाष्य गाथा ॥ जा सजमया जीवे सुताव मले गुणुत्तरगुणाय । इति रिपथ्थेयसयम, नियठवओ सापडिसेवी ॥ १ ॥ इस गाथाकी चूर्णीकी भाषा लिखते हे छ' कायोंके जीवों विषय जब ताईं दयाके परिणाम है, तबताईं बकुश निर्ग्रन्थ और प्रति सेवना निर्ग्रन्थ रहेंगे, इसवास्ते प्रवचन शून्य और चारित्र रहित पचमकाल कदापि न होवेगा तथा मूलोत्तर गुणोंमें दूषण लगनेसे तत्काल चारित्र भ्रष्ट भी नहीं होता, मूलगुण भङ्गमें दो दृष्टान्त है उत्तर गुण भगमें मडपका दृष्टान्त है–निश्चनयमें एक व्रतभग हुवा सर्व व्रतभग हो जाते है परन्तु व्यवहार नयके मतसे जो व्रतभंग होवे सोही भग होवे दूसरे नहीं इसवास्ते बहुत अतिचारके लगनेसे सयम नहीं जाता, परन्तु जो कुशील सेवे अरु धन रक्खे और कच्चा सचित्त पानी पीवे प्रवचन अव अपेक्षा वह साधू नहीं जहा ताईं छेद प्रायश्चित्त लगे जब ताईं सयम सर्वथा नहीं जाता तथा जो इस कालमें साधू न मानें सो मिथ्या दृष्टि है जैन तत्त्वदर्शके १०९ पृष्ठमें जो लिखा है कि तुमने किसी गीतार्थ की सगत नहीं करी होगी अथवा किसी गीतार्थ गुरुके मुखार्विदमें वचन रूप अमृत पान करा होता तो ऐसी रासराधी अर्थात् बीमारी न होती ऐसा उनके लिखनेमें हमको बडा भारी सदेह होता है कि देखो श्री आत्मारामजी के गुरु श्री बुद्धि विजयजी अथवा प्रसिद्ध नाम बुटेरायजीको ऐसा भारी रोग उत्पन्न हो गया कि जैनधर्मी किस देशमें विचरे है और कितनी दूर है सो गुरुका तो ऐसा कहना कि जैन धर्मी इस कालमें नहीं और चेलाजी कहते है कि इस कालमे जो साधु नहीं माने सो मिथ्या दृष्टि है सो श्रीबूटेरायजी की कि मुँहपत्तीकी चर्चाकी पुस्तक छपाई है उसके ८२वें पृष्ठमें लिखते हे–कसमसी तो क्या उनको तो ऐसा भारीरोग उत्पन्न हुवाथा सो किंचित उनके रोगको दिखाते हैं "तथा मती तो अपने २ मतमें सता छे वसके तो सच्च झूठकी कुछ खबर नथी पहती सो मती तो इन देशोके सब देखे थपे तो अपने २ मतकी स्थापना करते दीखते हे कोई विरला जीव शुद्ध परूपक पिण होवेगा इणक्षेत्रे तथा भरतक्षेत्रमें और क्षेत्र होवें परन्तु किते सुननेमे तो नथी आवता तथा कोई इना मताके धि

होवेंगे तो ज्ञानी महाराज जाणे जिम कवलप्रभाजी महाराज श्री महानसीथके पाच वे अध्ययन मध्ये तिसको भावाचार्य्य कहा ॥ मुँहपत्ती विषयचर्चा जो श्री बूटेरायजीकी बनाई हुई है उसके ४४ में पृष्ठ में लिखा है, " आत्मार्थी पुरुष मोनकरीने रहाहोवेगा तो ज्ञानी जाणे परन्तु प्रत्यक्ष मेरे देखने मे कोई आयानही कोई होवेगा तो ज्ञानी जाणे देखने मे तो घणे मती आवे हे तत्त्व केवली जाणे जिम ज्ञानी कहे ते प्रमाण फिर मेने विचार करी मत तो मेने घणे देखे पिण कोई मती मेरे विचार मे आमदा न थी तथा और क्षेत्र में सुरण्या भी न थी जो फलाणे देश में जैन धर्मी विचरेहे कितेदूर"॥ अब देखो कि बूटेरायजी ऐसा लिखतेहें; और इनके चेला आत्माराम जी ऐसा लिखते हैं कि इस काल में शुद्धनमान तो मिथ्या इष्ट है अब किसके वचन का एत्काद (भरोसा) करे अर्थात् गुरूका वचन मानाजाय कि चेले का दोनोंमें गीतार्थ किसको जाने और फिर देखो श्री आत्मारामजी आपही जैनतत्त्वदर्शके सप्तम परिच्छेद के ३०२ के पृष्ठ मे ऐसा लिखतेहे कि " जिन वचन बहुत गम्भीर है और तिनका यथार्थ अर्थ कहनेवाला इस काल में कोई गुरु नहीं और फिर ३०४ के पृष्ठ मे लिखतेहे कि शास्त्र का आशय अतिगम्भीर है और ऐसा गीतार्थ कोई गुरु नहीं है जो यथार्त्थ बतला देवे" अब देखो कि ऐसा लिखने से गीतार्थ है इस बात को अंगीकार करें या इसको अंगीकार करे कि इस काल में कोई यथार्थ अर्थ कहनेवाला (गीतार्थ) नहीं है तो अब इन दो वचन के होने से एक बातपर भी प्रतीति किसी को न होगी परन्तु शास्त्रो मे तो गीतार्थों की विविक्षा की प्रतीत द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा लिये हुये मालूम होती है क्योंकि जैन मतके गीतार्थ तो अपेक्षा लिये हुये ऐसा वचन बोलते हे कि जिससे जिज्ञासूका सशय दूरहोकर वह अपनी आत्माका अर्थ करे और उस वचन मे किसी वादी का कुविकल्प न पहुँचसके और पासत्यादिक भी पुष्ट न हों और उन पासत्था आदिको का उलटा निराकरण होजाय जिससे सुधा मार्गकी प्रवृत्ति होने लगे सोतो नही हुई किन्तु श्री आत्माराम जी के वचन से पासत्था आदिकों की पुष्टि का कारण मालूम होता है देखो कि जो इन्होने नसीथ के गाथाकी चूर्णीकी भाषा लिखी है सो हमने उसको ऊपर लिखादी है और उसका अर्थ भी इनका लिखा हुवा वही लिख दिया है सो उस गाथा में मूल गुण उत्तर गुण मे दूषण का तो अर्थ मालूम होता है परन्तु जो कुशील सेवे और धन रक्खे और कच्चा सचित पानी पीवे प्रवचन अन अपेक्षा वो साधुनही तो कुशील सेवना धन रखना कच्चा सचित पानीपीना प्रवचन अनपेक्षा सो तो साधु का काम नही परन्तु प्रवचन की अपेक्षा से जो कुशील सेवे धनराखे कच्चा पानी पीवे इनके लिखने से साधु होचुका तो अब देखो इस लिखने से वर्त्तमानकालमे जो यतीलोग सब काम करतेहे अथवा (सम्वेगी) लोग जो धनादिक रक्खे उनकी सबकी पुष्टी होचुकी ऐसा इस जैन तत्वादर्श ग्रन्थके सिवाय पासत्थों की पुष्टिका लेख किसी दूसरी पुस्तक में देखा नहीं और यती लोगभी वर्त्तमान काल मे कई पढित मेरे देखने मे आये और उनकी प्रसिद्धी भी है परन्तु उनकी जबानी भी मेने आज तकरूभी ऐसा न सुना क्योंकि देखो वे यती लोग धन भी रखते हे कच्चा पानी भी पीते हे और लेन देनादिक अनेक व्यवहार भी करतेहे और जिस ग्रन्थ की इन्होंने साक्षी दी है उसको उन्होंने अच्छी तरहसे देखाहै और

अर्थ समझते ह लगाते हे परन्तु एसा नहीं कहते कि जैसा आत्मारामजीने खुलासा लिखा है किन्तु वे यती लोग ऐसा तो कहते है कि हमारे कर्मोंका दोष ह बीतरागकी आज्ञा हमसे नहीं पले हम लोहेकेटरे है यह हमारा दोष है कि हम नहीं पालते है-जो श्री बीतरागका मार्ग पालने वाला उसकी बलिहारी है तो अब देखो विचार करो जो लोग धन रखते है और कच्चा पानी पीते है और ये लोग इन सूत्रादिकोंको बाचते है श्रावकोंको सुनाते है परन्तु अपना ऐब दोष दबानेके वास्ते सूत्रको अगाडी नहीं करते फिर आत्मारामजी जो आत्मार्थी होकर ढूंन्ढियोंमेंसे निकलकर शुद्ध मतको अंगीकार करने वाले और वर्तमानमे उत्कृष्ट चलने वाले धर्मकी उन्नति करने वाले है उनको न मालूम ऐसा क्या दबाव आकर पडा कि जिससे गाथामे तो कुशील सेवना धन रखना सचित कच्चा पानी पीनेका अर्थ नहींथा । परन्तु आत्मारामजीने अर्थसे तो बुद्धिमान् विचार अर्थात् अनुमान सिद्ध करते है कि आत्मारामजी बहुत जनोंकी समुदाय लेकर जो २२ टोलाको छोडकर आये और उत्कृष्टे आत्मार्थी और बहुश्रुत अर्थात् पंडितपनेमे प्रसिद्ध होगये परन्तु गाथाका जो अर्थ किया उस अर्थसे अपनी समुदायका निर्भाव किया क्योंकि (मूलगुण) इस शब्दसे जो उन्होने कुशील सेवना और धन रखना और कच्चा सचित् पानी पीना इसी अर्थको उन्होने मूलगुण समझ लिया क्योंकि आत्मारामजी २२ टोलाको छोडनेके बाद किसी संवेगी साधू वो यती लोगसे तो जिन आगम देखे नहीं अर्थात् पढे नहीं केवल अन्यमतके जो पंडित है उनसे न्याय व्याकरण पढे और २२ टोलामें ढुंढियोंसे पढे हुयेथे परन्तु गुरुकुल वास बिना जिन आगमका रहस्य समझना मुश्किल है इसलिये श्री आनन्दघनजी महाराज श्री नेमनाथजीके स्तवनमे कह गये है कि " तत्वविचार सुधारस धारण । गुरु गम विण किम पीजेरे" । इसलिये आत्मारामजी गाथामें जो वस्तोंका अभिप्राय था उसको न पूगे खाली पासत्थोका मार्ग पुष्ट किया और इस अर्थसे इनकी आत्माका अर्थ वा अनर्थ हुवा सो तो ज्ञानी महाराज जाने किंतु गाथामें तो केवल मूलगुण उत्तर गुणका दूषण लगनेका अर्थथा सो मूलगुण उत्तर गुणका अर्थ यह है याने अवारके कालमें प्रायः शुद्ध आहार पानीके अभाव होनेसे आधाकर्मी आहार पानी लेना यह मूलगुणमें दूषण है और श्रावक दृष्टि रागसे बजारसे मोल लाकर वस्तु साधुओंको देते है ये उत्तर गुणका दूषण है । औरभी मूलगुण उत्तर गुणका अर्थ दिखलाते हैं कि साधूके लिये चार वस्तु निर्दोष अर्थात् ४ दूषण करके रहित अर्थात् एकतो आहार दूसरा उपासरा अर्थात् मकान, तीसरा कपडा अर्थात् वस्त्र चौथा पात्र अर्थात् काष्टादि पात्र आहार करनेके लिये इन चारोंको लेना चाहिये सो प्रथम आहार चार प्रकारका है १ अशन अर्थात् अन्नादिक रँधा हुवा, २ पान अर्थात्, पानी उष्ण अथवा २१ तरहके धोवनमसे कोई तरहका धोवन, ३ खायम अर्थात् अचित् वस्तु जिससे पेट न भरे, ४ स्वाद अर्थात् कारण पडे तो इलाइची, सुपारी, लोग चूरण गोली औषधि आदि इस चार प्रकारके आहारमें पानी तो प्रायः सब जगह आधा कर्मी अर्थात् साधुओंके निमित्तही होता है और उसी पानीको साधू लोग लाकर भोग उपभोगमें लाते है सो यह मूलगुणकाही दृष्टान्त है और आहार आदिकमे जब साधू विहार आदिक करते है तब रस्ते अर्थात् मार्गमे जो गाव आदि पडे है उनमे

जिस जगह मंदिर आमनावाले श्रावक नहीं उस जगह तो अलवत्त दूषण करके रहित आहार मिलता है और जहा मन्दिर आमनावाले जो श्रावक जिस गावमे एक दो घर हो उस जगह तो सिवाय आधा कर्मीके निर्दूषण मिलना कठिन है और जिन नगरोंमे मान्दर आमनायके बहुत घर है उस जगहभी प्रायः करके दृष्टि रागसे आहारमे दूषण लगताही है सो यह आहारकाभी दूषण मूलगुणमेंही लगेगा ऐसेही ओषधि आदिकमेंभी प्राय' करके साधुओंको निमित्त वैद्य हकीम आदि को लाते है और ओषधि (दवा) कराते है यह भी मूलगुण में ही दूषण आदि आहार मे प्रायः करके लग रहे है सो बुद्धिमान् निष्पक्षपाती आत्मार्थियोंके लिये तो ऊपर लिखे दूषण मूल गुण मे ही गिने गये नतु दम्भी मत ममती आजीविका वाले आडम्बर से दुःख गर्वित मोह गर्वित वैराग वालों को। अब पुनः मकान या उपासरा के लिये देखो कि पहले तो साधू लोग वस्तीके बाहिर रहते थे अब काल दूषण होने से जगलको छोड कर वस्तीमें रहने लगे तब गृहस्थ लोगो ने साधुवोंके निमित्त धर्मशाला उपासरा बनाये और बनाते है तो उन्ही मकानो में प्रायः साधु ठहरते है हा कोई २ उत्कृष्टे उन मकानों को निषेध करके गृहस्थ के मकान मे भी ठहरते है परन्तु जो निमित्त साधुवो के मकान बनाया उसमे ठहरने से साधुवों को मूल गुण में ही दूषण लगेगा क्योंकि साधु के तीन करण, तीन योग अर्थात् नौकोटी पच्चखान है फिर तीसरा जो कि वस्त्र साधुवो के वास्ते शास्त्रों में जीर्ण अभिप्राय धौला कहा है सो तो अब लेते है नही किन्तु नवीन वस्त्र लेते है तो प्रायः करके गृहस्थी लोग खरीद करके ही साधुवों को देते है यह भी मूलगुण मे ही दूषण है। ४ जोकि पात्र सोभी गृहस्थ लोग नवीन बनवा नया रगवाना खाली साधुवों के ही निमित्त बनवाते या रगवाते है और साधुवोंको देतेहै और दंड आदि खराद पर उतरा हुवा इत्यादि सब वस्तु साधुवो के लिये ही बनवाकर देते है यह भी सब मूल गुण में ही दूषण है नतु कुशील सेवना धन रखना कच्चा पानी पीना और उत्तर गुण का दूषण देखो कि यथावत् शास्त्र युक्त पड लेना वस्त्र आदि की न करना वस्त्र आदि धोना हाथ पैर आदि धोना अथवा शरीर आदि पोछना शरीर की विभूषा करना इत्यादि अनेक उत्तर गुण मे दूषण लगते है ग्रन्थ विस्तार भय से किंचित् उपरोक्त लिखे दूषण वर्तमान् काल में बराबर लगते है॥ और इसी आशय से श्री भगवती जी में कषाय और कुशील वाले पचम काल में साधू पावेंगे ऐसा लिखा है और निर्ग्रंथ पणा तो परणाम की अपेक्षा से कोई होगा तो ज्ञानी जाने और फेर देखो कि पदच्छेद ग्रंथो की जो बाते है सो साधुवो को छेद देना अर्थात् प्रायश्चित्त देने के ग्रंथ है नसीथ नाम नसीहत देना अर्थात् देखो गृहस्थी लोग भी जो अपने पुत्रादिक को नसीहत नाम शिक्षा करते है सो एकान्त में बैठकर करते है सर्वज्ञ वीतराग की भी यही आज्ञा है कि जो नवीन दिक्षा लिया हुवा साधु हो उसको पेश्तर फलाना ग्रंथ पढाना और पाच वर्ष के बाद फलाना और सात वर्ष के बाद फलाना पढाना इसी रीति से जब गुरु आदिच्छेद ग्रंथ के लायक समझे तब उसको च्छेद ग्रथादिक बाँचने दें। सर्व ग्रन्थ के बाचने के लायक उस समय होता है जब साधू की २० वर्ष की सम्पूर्ण पर्याय हो जाती है तब ही सर्व ग्रन्थ का अधिकारी होता है तो देखो कि साधू को ही जैसा २ योग जाने तैसा गुरु

उपदेश करे ऐसा श्री पूज्यपाद उपाध्याय जी श्री यशविजय जीका ढूंढिया लोगों पर बनाया हुआ जो डेढसौ गाथा का स्तवन जिसका बालावोध किया हुआ श्री पद्मविजय जी गणी का है उसके छटी ढालके बालाबोध में लिखते हैं सो स्तवन प्रकरण रत्नाकर के तीसरे भाग मे है जिस की इच्छा हो सो देख लो परन्तु इस पचम काल में इस जिन मत में कोई सिरधरा न होने से धर्म की कैसी व्यवस्था हो गई हा ! इति खेदः पूज्यपाद श्री यशविजय जी उपाध्यायजी महाराज जो २ बातें कह गये हैं सो प्रत्यक्ष मिलती हैं उनका साढेतीनसे गाथाके स्तवन पहली ढाल की १४ मी गाथा यह है–" जिम जिम बहु श्रुत बहु जन समत बहु शिष्ये पर वरियो । तिम तिम जिन शासन नो बयरी जो नवी निश्चय दरी ओरे ॥ जिन० ॥ थी० ॥ १४ ॥ अब देखो श्री उपाध्याय जी महाराज जिन मत के गीतार्थ और जिन्होंने परमत मे काशीमें पंडितों को जीत कर न्याय विशारद पद पाया ऐसे महापुरुषों ने जो ये गाथा बनाय कर लिखी है सो निज आगम के वे भी जानीकार थे क्योंकि जिन शास्त्रों में गीतार्थोंको कल्पवृक्ष और समुद्र मेरु आदिक की सोलह उपमा दीं और गीतार्थों को मुख्य आचार्य कहा और श्री यश विजय जी महाराज ने गीतार्थों को पुष्ट किया और जिन शास्त्रों मे यह भी लिखा है कि आचार्य्य लोग पाच २ सौ हजार २ साधुवों के साथ विचरते थे और जिन आचार्यों को पहिले राजा आदिक मानते थे तो अब देखो कि इन बातों को जान कर फिरसे गाथा जो उन्होंने कही है सो कुछ अपेक्षा देख कर कही है सो इस गाथा का अर्थ मेरी तुच्छ बुद्ध्यनुसार कहता हूं परन्तु ऐसे गीतार्थों का आशय समझना कठिन है किन्तु ऐसे पुरुषों के किये हुवे ग्रन्थों पर मुझ को श्रद्धा वा विश्वास पूरा २ है इस आशयको लेकर कहताहू कि बहुश्रुत कहता जो कि ब्राह्मण लोगोसे न्याय व्याकरण आदि काव्य कोश पढे हुए हैं अथवा ब्राह्मण पंडितोंको अपने पास रखते हैं और स्वमतके गुरुकुल वास विना अपनी बुद्धिसे अथवा उन पंडितोंकी बुद्धिसे स्वआत्म अनुभव शून्य होकर ग्रन्थोंको बाँचते हैं उसम कर्त्ताके अभिप्रायको बिना जाने स्वमति कल्पनासे शब्दका अर्थ न्याय व्याकरण अथवा कुयुक्तिसे लगायकर दुरुस्त कर लेते हैं और उत्सर्ग अपवाद कारण कार्य अपेक्षा द्रव्य क्षेत्रकाल भाव गुरु परम्परासे तो जानते नहीं क्योंकि अपेक्षा शब्द उत्सर्ग अपवाद कारण कार्य साकेत शब्दगुरु आदिकोंहीसे मालूम हो सक्ता है न कि स्वमति कल्पना वा अन्यमतके पंडितोंकी सहायतासे और अपने ताईं अपवाद मार्गको सेवते हैं और जिससे विरोध हो उसके ताईं उत्सर्ग मार्ग लेकर खंडन करते हैं ऐसे तो बहु श्रुत ॥ अब बहुजन समत कहता जो कि अपनी दृष्टि राग बांधकर उनको काव्य अलंकारादि चरित्र अथवा राग रागिनी सुनायकर अथवा गच्छका परम्परा बँधायकर वा मंत्र यंत्रादि बतायकर अपना दृष्टि राग बांध कर बहुमानादि अनेकरीतिसे लुभायकर उनको अपने दृष्टि रागमें बांध लेते हैं अथवा उन लोगोंको जिन धर्मकी अर्थात् आत्माके अर्थकी अपेक्षा तो है नहीं केवल दृष्टिरागकी अपेक्षा है सो दशवीस बड़े आदमियोंको रागमें फँसाय लेते हैं याने वे भी उनके रागमें फँस जाते हैं और जो लोग हैं सो गाडर प्रभावके तुल्य हैं वा बहुत आडंबरादि होनेसेभी बहुत लोग उसको मानने लगते हैं ऐसे जो कि गच्छके रागसे वा आडम्बरसे वा स्तवन सिझायके गानेसे अथवा बड़े आदमियोंके

मान्य करनेसे बहुत जनोंके समत है वह बहुजन संमत है और बहुशिष्य पनरियो कहतां जो कि माल लेकर शिष्य करना अथवा भुखन मरते हुये बाळकोको खानेके लालचसे अथवा जो गृहस्थी अपने पास आते हे उनके लडकोंको अनेक तरहका लालच देकर उस गावसे दूसरे गाव भेजकर दिक्षा देना वा महीना, दो महीना, चार महीना तक छिपाये रखना फिर उसको दिक्षा देना अथवा किसी भेषधारीके चेला आदिकको पुस्तक पन्ना अथवा खाने पीनेका लालच दिखायकर उसको अपना चेला बनाय लेना ऐसे शिष्योंकी जो समुदायका गुरु अथवा इन शिष्योंको लेकर विचरनेवाला ऐसा बहु शिष्यवाला॥ तिन२ जिन शासनके वैरी कहता दुश्मन अर्थात् जैनकी हीलना करानेवाला है क्योंकि देखो जो मोल लेकर शिष्यका करना उसमें तो कोई तरहका वैराग्य नहीं और इसलिये अपनी उमर (अवस्था) पर आयकर जिन धर्मकी हीलना करायेगा जो भूखे मरता वा खानेके वास्ते शिष्य हुवा है प्रायः करके जब उसकी भूखकी निवृत्ति होगी और अच्छा माल खायगा और श्रावक श्राविकोंका संग करेगा तब हीलना धर्मकी करावेगा और इसी राग बन्धेगा। और तीसरा जो गृहस्थके बालकको बहकाय कर परदेश भेजकर दिक्षा देते है तो अब देखो कि उसके माँ, बाप, लुगाई, बहन, भाई आदि विलपात अर्थात् रोते पीटते झीकते जगह २ भटकते खोजते हुये फिरते है और उनको नाना प्रकारके आर्त रुद्र ध्यान संयुक्त दुःख होते है और जब उनको यह खबर होती है कि हमारे बेटाको फलानी जगह फलाने साधुने दिक्षा दीनी तो उस जगह वे गृहस्थी लोग भागकर पहुँचते है और साधु-वोंसे लडते है यहा तक कि राजतकमें पहुचते है। अब देखो विचार करो इससे जियादः धर्मकी हीलना क्या होगी क्योंकि देखो भगवत्की आज्ञा नही गुरुकी तथा माता, पिताकी आज्ञा नहीं तो तीन प्रकारके अदत्ता या चोरीभी उनको आई और अब जो दिक्षा लेने-वाले है सोभी उरटी जिन धर्मकी हीलना कराते हे परन्तु धन्य हैं इस वर्तमान कालके श्रावकोंको जो उनके विपरीत आचरण देखकर दवाते है कि जिन धर्मकी हीलना नही हो परन्तु अन्य मतवाले ठेरा २ कर हँसते है और कहते है कि देखो जैनके साधु ऐसा२ कर्म करते है और गृहस्थियोंके बेटोको बहकाकर दूर भेजकर दिक्षा देते है इसलिये कहते है जैनके साधुवोंका संग नहीं करना हाय इति खेद! कि शास्त्रोमें कहा है कि जिन मतके साधुवोंकी अन्यमत वालेभी शोभा करते है क्योंकि शांत दान्त देखकर हरेकका चित्त चलता है और महात्मावोंके पास आनेसे हरेक जीवको जिन धर्ममे धर्मकी प्राप्ति होती है सो अब हरेक जीव जिन धर्मसे धर्म की प्राप्ति होना ऊपर लिखे हुये लक्षणोसे मिट गया क्योंकि हम जैनियोंमेंही प्रत्यक्ष प्रमाण देते है कि अबके चौमासेमें अजमेरमेंही दो चार गुजराती लोग रहतेथे उनके दो एक लडके याळे कभी२ हमारे पास आतेथे सोभी आत्मारामजीके सिगाडे में जो कि गुजरातमें फिराया उस विवेक मुनिके परिचयसे आतेथ सो उनके बाप महतारी मना करतेथे परन्तु वे दुबका चोरी आतेथे जब मुझको इस बातकी खबर हुई कि उनके घरके लोग मना करते है तब मैंने उनसे कहदिया कि भाई तुम मेरे यहा मत आवो क्योंकि तुम्हारे घरके लोग तुम्हारे माँ, बाप मना करते हे तो तुम मेरे यहा क्यों आते हो? जब उन्होंने कहा कि आप तो ऐसा काम नहीं करते हो लेकिन हमारे देशमें कई लडकोको बहकायकर परदेश भेज-

कर दिखा दे दीनी इस डरसे हमारे माँ बाप हमको मना करते है अब देखो जब श्रावकों कोही ऐसा डर है तब तो और अन्य मतोंयोंका तो कहनाही क्या । इस जिन धर्मकी हीलना करानेसे जैन मतके वैरी हे जो नवी निश्चयने दरीयो कहता निश्चय आत्म अनुभव गुरु कुल वास ममगतके विना जिन्होंने ऊपरकी वातोका आचरण किया है उनको सम गतादिक निश्चय ज्ञानकी प्राप्ती न भई इस रीतिसे इस गाथाका अर्थ मेरी तुच्छ बुद्धिमें आया जेसा मैंने वर्णन किया । अगाडी यातो उनका आशय वह जाने वा बहुश्रुत कहे सो ठीक अब देखो कि खरतर गच्छकी आचार्य्य गद्दीके हीराचन्दजी यती जिनके शिष्य श्री सुखलालजी उपाध्याय बडोदा शहरमे गयेथे उस जगह श्रावकोंने उनको कहा कि ऊन पानी मगाते हो और ठंडा पानी पीते हो और लोग ठगाई करते हो जब उन्होंने उन श्रावकोंको जवाब दिया कि भाई हमारे तो लोग ठगाईका कुछ काम नही ऊना पानी मगाते है और ऊनाही पीते है जेसा हमारी गुरु परम्परामें है वैसाही शुद्ध उपदेश देते है परन्तु हमारे भाई बन्धु अर्थात् जो जातिके यती लोग हैं वो कच्चा पानीभी पीते है और धनभी रखते है सो वे लोग शास्त्रकी अपेक्षा लेकर धन रखते है और कच्चा पानी पीते है किन्तु उनका साधूपन नही जाता है इस बातको सुन श्रावक कहने लगे कि भला महाराज ! यह शास्त्र युक्त बात है तो किस शास्त्रमें है जब उपाध्यायजीने आत्मारामजीका बनाया हुआ जैन तत्वादर्श ३ परिच्छेदमेंके १११ के पृष्ठमें लिखा है कि जो कुशील सेवे और धन रक्खे और कच्चा सचित पानी पीवे प्रवचन का अपक्ष वह साधु नही । ऐसा दिखाय करके कहने लगे कि जो प्रवचनकी अपेक्षासे यह काम करे तो साधु पनाही है इसवास्ते यती लोगभी शास्त्रकी अपेक्षा लेकरके कच्चा पानी पीते है और धन आदिक रखते है इसलिये उनका साधूपन नहीं जाता इस वचनको सुनकर वे श्रावक लोग इस जैन तत्वा दर्शके प्रमाणासे चुप होगये और कुछ जवाब न दे सके तो अब इस जेन तत्व दर्शकेप्रमाणसे सर्व यती लोगोंके पुष्ट किये अर्थात् धन रखने कच्चा पानी पीने और कुशील सेवनेसे भी साधूपन नही जाता यह प्रमाण सबको सिद्ध हो चुका और भी देखो कि चतुर्थ परिच्छेदमें १९९ के पृष्ठमे मंदिरकी पूजनमे अल्प पाप और बहुत निर्ज्जरा है ऐसा उनका लिखना जिन शास्त्रसे विरुद्ध मालूम होता है क्योंकि देखो कि आवश्यक आदि सूत्रोंमें ऐसा लिखा है कि "सुभानु बधी बहुतनिर्ज्जरा भवति" और श्री जवर सागरजी जो इनके गुरु भाई बूंटेरायजीके शिष्य है उन्होंने रतलाममे राजेन्द्रसूरिसे झगडा कियाथा और एकान्त निर्ज्जरा ठहराईथी इसवास्ते आत्मारामजी जो अल्प पाप श्री जिन राजकी पूजनमें कहते है उससे उनकी श्रद्धा विपरीत मालूम होती है क्योंकि शास्त्रोंमे एकान्त निर्ज्जरा मालूम होती है। और यह एकान्त निर्ज्जरा तुम्हारे चौथे प्रश्नके उत्तरमें जहा श्रावककी दिनकृतमें मन्दिरजीकी पूजनकी विधि कहेंगे उस जगह युक्ति सहित और शास्त्राके उन दृष्टान्तोंसे ठहराई जायगी उस जगह वर्णनकी जायगी सो उस जगह देख लेना इत्यादि अनेक बातें है परन्तु मैंने प्रसग गत थोडीसी बातें दिखलाई है अब देखो जो जन कहते है कि कानमे मुँहपत्ती गेरके व्याख्यान नही देना उनका कहनाभी ठीक नही क्योंकि जो गुरु आचार्योंने परम्परासे कानमें गेर कर व्याख्यान करना कुछ समझकरही चलाया

जो कहो कि जब ढूंढियोंकी मुंहपत्ती बाधना क्यों निषेध करते हो तो हम कहते है कि ढूंढिया लोगतो अष्ट प्रहर मुंहपत्ती बाधते है इसलिये हम निषेध करते है तो भला तुम्हारा कानमे गेरना किसी सूत्रमें है या कोरी परम्पराको मानते हो तो हम कहे है कि सूत्रतो शुचिमात्र होताहै और अर्थ शुद्ध आचार्यो की प्रवृत्ति मार्गसे मालूम होता सो प्रवृत्ति मार्गमे परम्परासे मुंहपत्ती कानमें डालकर व्याख्यान देतेहे और जो तुम कहो कि हमको सूत्रमे बतावो तो हम कहते हे कि सूत्रोंमें ऐसा लिखाहै कि जिस समयमें साधू ठल्लेजाय उस समय कानमे घाले अथवा कानमें छिद्र न हो तो नाशिकाको ढकके गुद्दीपर बाधे और जिस जगह बस्ती अर्थात् उपासरा या धर्मशालामें पर मार्जन करे अर्थात् दण्डेसे काज्यानिकाले उस समय यातो कानमे मुंहपत्ती घाले या गुद्दी पर बाधे इन दो बातोके वास्ते तो शास्त्रोंमें लिखाहुवा हे तो इस जगहभी गीतार्थ आचार्योंने कारण कार्य लाभको जान करके व्याख्यानके समय मुंहपत्ती कानमे घालना चलाया होगा सो चलता हे जो कहो कि बूटेरायजीने जो मुंहपत्तीकी चर्चा बनाई है उसमें श्रीकेशी कुमार देशना देतेथे उस समयमे जो परदेशी राजा गयाथा उस समयमें परदेशी राजाने अनेक तरहके निन्दा रूप विकल्प अपने चित्तमे उठाये परन्तु ऐसा विकल्प न उठा कि यह देखो मुह बाधे देशना देता है इसलिये श्रीकेशीकुमारजी श्री गौतम स्वामीजी श्री सुदर्मा स्वामीजी आदिक १४ पूर्वधारी चार ज्ञानके धणियोंको कारण कार्य लाभ मालूम न हुवा और यह पचम कालके तुच्छ बुद्धिवाले आचार्योने लाभ कारण जान करके कानमें मुंहपत्ती घालके व्याख्यान बाँचना चलाया सो ठीक नही है तो हम कहे हे कि बूटेरायजी ने जैन मतके रहस्यके अभिप्राय विना जाने श्रीकेशीकुमारजी आदि आचार्योंके नाम लेकर कानमें मुंहपत्ती घालना निषेध कियाहै जो तुम कहो कि अभिप्राय क्याहै तो हम कहे है कि अभिप्राय यहहै कि श्रीकेशीकुमार आदि आचार्य महाराजतो १४ पूर्व और चार ज्ञानके धणीथे सोभी वह १४ पूर्व कठस्थथे कुछ पुस्तक पत्रालेकर व्याख्यान थोडाही देतेथे इसलिये जब वह देशना देतेथे उस वक्त डाये हाथसे तो मुख वस्त्रसे मुखकी जैणा और जीवणे हाथसे देशना देतेथे अवारके कालमे जो कोई विना पुस्तकके देशना दे और ऐसा करे तो कानमें घालनेकी कुछ जरूरत नही परन्तु पुस्तक हाथमे लेकरके जो देशना देने वालेहै उनको अवश्यमेव कानमे डालना होगा क्योंकि जब एकहाथमे पुस्तक और दूसरे हाथसे मुखकी जैणा रक्खेगा तो देशना शून्य हो जायगी और जो देशना शून्य नही होगी तो उघाडे मुख बोलना होगा जो तुम कहो कि देशनाभी शून्य नही होनेदेगे और उघाडे मुखभी नही बोलेगे तो हम कहे हे कि सिद्धान्तसे विरुद्ध होजायगा "यदि युक्त" एक समय नत्थीदो उपयोग " एक समयमें दोकाम नही होता इसवास्ते कानमें मुंहपत्ती घालकर व्याख्यान देना चाहिये अब देखो सफेद कपडे वाले तो इतने सूत्रका प्रमाण देतेहे । श्रीआचारंगजी श्रीसुगडागजी श्रीनसीथ ओघ निर्युक्ति श्री आवश्यक निर्यु की श्रीपचासक श्रीठाणाग सूत्र, श्रीगच्छाचार पइन्नासूत्र, श्रीपिंडनिर्युक्ति श्रीभगव सूत्र, श्रीकल्पसूत्र इन सूत्रोंके मूलपाठ और वृत्ति चूरणी आदिकमें श्रीवीरभगवानके वोंके वास्ते श्वेत मानो पेद जीर्ण [illegible] रूप रखना कहा और वर्णादिक

पड़े तो धोनेकी विधि कहीहै पिण रंगनेकी आज्ञानहीं परन्तु पीले कपडेवाले ऐसा कहते हैं कि श्रीनशीथ सूत्र अथवा चूर्णी अथवा आद्य नियुंक्ती चर्णीमें कारण पड़े रंगनेकी आज्ञा दीहै तिसवास्ते हमभी कारण पाय कर रंगते हैं क्योंकि वर्तमान् कालमें ढूंढियोंका जोर होनेस पूर्व आचार्योंने यती लोगोंका स्थिलाचार देखकर पीले कपड़े चलाये इसमें कुछ हर्जनहीं । (प्र०) अजी महाराज साहब सफद कपड़ोंकी तो आपने बहुत ग्रन्थकी साखी दीनी और पीलेकी तो आप दो ग्रन्थकी साखी देकर कारण बतलायकर अलग होगये परन्तु आप तो कहते हो हम निर्पक्षपाती हैं तो इतने ग्रन्थोंकी साखी छोड़कर दो ग्रन्था की साखीसे पीले कपड़े आपने भी कर लिये यह तो आपको मुनासिब था कि जिसमें बहुत ग्रंथका प्रमाण हो वह काम करते तब तो आप निर्पक्षपाती होते परन्तु आपको पीलेकाभी पक्षपात है इसलिये आपनेभी पीले करलिये । (उत्तर) भोदे० जो तुमने कहा कि तुम्हारे पक्षपात पीलेका है इसलिये पीले करलिये सो मेरे तो कुछ पक्षपात पीलेका है नहीं कदाचित् जो मेरे पक्षपात होता तो ऊपर लिखे हुये ग्रथोंका श्वेत कपड़ोंके वास्ते प्रमाण नहीं देता किंतु मैंने जो कारणसे पीले किये सो कारण यह है कि कोटि गच्छ वज्र शाखा चन्द्र कुल खरतर विरुद्धमें श्रीक्षमा कल्याणजी उपाध्याय जीने किया उद्धार करके पीले कपड़े कियेथे उसी कुलमें आयकर मैंने जन्म लिया इसवास्ते मुझको पीले करने पड़े दूसरा कारण यह कि श्री शिवजी रामजी महाराज अनुमान् ०२ के सालमें यती पन छोड़कर क्रिया उद्धार करके २४–२५ के सालसे इस मारवाड़में विचरतेथे सो ३४ के सालतक तो कुछ रगड़ा न उठा और ३४ के सालसे अभी (५० के साल) तक भेखधारी ऐसा रगड़ा उठाया अर्थात् झगड़ा करते हैं कि कुछ लिख नहीं सकता जो सिर्फ उनके सफेद कपड़े होनेसे ही औरभी कई तरहका जाल उनके सगमें फँसाते हैं परन्तु श्री शिवजी रामजी तो अभी तक किसीसे दबे नहीं और अपने सफेद कपड़े रखे हुये ही विचरते हैं सो मैंने भी ४३ के साल तक सफेद कपड़े रक्खेथे फिर मैंने इस झगड़ेको देखकर अपने चित्त मे विचार किया कि इस वर्तमान कालमें भेष धारियोंके झगड़ेमें अपनी उमर खोना और भेष धारियोंसे झगड़ा करना नाहक है क्योंकि तैने जो अपना घर छोड़ा है सो अपनी आत्माके अर्थके वास्ते छोड़ा है सो आत्माका कार्य्य तो श्री वीतरागकी आज्ञारूप धर्म्म पालनेमें है और अपने परिणाम शुद्धसे जो वीतरागकी आज्ञाका विश्वास करेगा तो अपनी आत्माका कल्याण होगा क्योंकि वीतरागके कहे हुये धर्म्म पर विश्वास करके अपनी आत्माके स्वरूपको विचार कर परिणामको दृढ़ रक्खेगा तो आत्माका कल्याण होगा किंतु पीले वा श्वेत वस्त्र नहीं तारगे दूसरा मैंने यहभी अपने चित्तमें विचार किया कि श्वेत वस्त्र जीर्ण अभिप्राय अर्थात् पुराना वस्त्र लेना ऐसी परमेश्वरकी आज्ञा है सो वर्तमान कालमें जीर्ण वस्त्र तो कोई लेता है नहीं खाली श्वेत वस्त्र लेतेहैं सो भी शास्त्रोंमें चान्दी वरणा महकदार भी साधुको लेना नहीं कहा इसवास्ते हे देवानुप्रिय ! जो आपने ऊपर लिखे हुवे कारणोंको कह आयाहूं इन हेतुसे मैंने पीले कपड़े कियेहैं और मुझको पीले कपड़ेकी कुछ पक्षपात नहीं है जो शास्त्रमें लिखा है सो मैं तुम्हारेको कहताहूं । (प्र०) अब कोई तीन मुई कहते हैं कोई चार कहते हैं तिसका कारण क्या ? (उ०) भो० दे० शास्त्रमें

याद कर लिये-क्योंकर याद किये ? कि वह जो साध्वी गुरुसे वाचना अर्थात् सता लाय कर उपासरेमें घोकतीथी उनकी घोकना सुनते २ ही श्री वज्रस्वामीने ११ अग कठ कर लिये यह बात कल्पसूत्रमें लिखी हुई है और लोगोंमेभी प्रसिद्ध है अब इसपर कोई ऐसा कहे कि वह तो अगाड़ीका कालथा परन्तु अबारका काल ऐसा नही क्योंकि देखो जब साध्वी व्याख्यान देती है तो व्याख्यानमें अनेक तरहकी चेष्टा करनी पडती है तो पुरुषोंके सामने स्त्रीको अनेक तरहकी चेष्टा करनी ठीक नही है औरभी देखो कि जो पुरुष अच्छे कपडा पहन अलकार आदि शोभित तेल फुलेल आदि लगायकर जो व्याख्यानमें आते है उनको देखकर इतर आदिककी खुशबूही उडनेसे साध्वीका उस पुरुषपर चित्त चल जानेसे चारित्र भ्रष्ट हो जायगा, औरभी देखो साधू रहते साध्वी व्याख्यान देगी तो साधूका जो ज्येष्ठ धर्म अर्थात् बडापन है सो न रहेगा क्योंकि साध्वी सौ वर्षकी दीक्षित साधू एक दिनके दीक्षितको वन्दना करे इसलिये साध्वीका व्याख्यान न होना किन्तु साध्वीके पासमें पच्चखान करनाभी ठीक नहीं तो हम कहते है कि यह तो पचम कालहीकी बाते है कुछ चौथे कालकी बातें नही है श्री वज्रस्वामी तो पचम आरेमेही हुये है और फिर किसी गीतार्थ शुद्ध आचार्य्यने कि साध्वीके ताईं अग आदिक पढाना या व्याख्यान देना निषेधभी तो नहीं किया जो तुमने चेष्टाकी कही तो हम कहते है कि देखो कि जो वैराग्य रसमें परिपूर्ण अध्यात्म मार्गके बतानेवाले वा द्रव्याण योगके कथन करनेवाले शास्त्रोंका साध्वी व्याख्यान देतो कोई तरहका हर्ज नही है हा अलबत्त जैसे चन्द्रकी चौपाई चरित्र अथवा मानवतिका चरित्र आदिक जो कि शृगार रस अथवा स्त्रियोंक चरित्र वा अलकार आदि है ऐसे ग्रन्थोंको वाचना तो साध्वीको युक्तही नही है परन्तु जिसमे ससारसे उदासीन भाव होकर वैराग्यकी प्राप्ती होय और जो आत्माका कल्याण हेतु हो ऐसे शास्त्रोंका व्याख्यान साध्वी पुरुषोंकी सभामें अवश्यमेव दे। और जो ऐसा कहो कि अलकार आदिसे साध्वीका चित्त चल जायगा ऐसा जो कहना है सो उनका विवेकशून्य जिन मतके अजान मूढपनेका है देखो कि कर्म ग्रन्थमें तीन वेदोंके उदयपर कहा है कि पुरुष वेदतो तिनका या घासकी अग्निके समान है और स्त्रीका वेद छाणाकी अग्नि समान है और नपुसक वेद नगर दाहके समान है अब देखो विचार करो कि जब साधू व्याख्यान दे रहा है उस समयमें जो स्त्री आदिक अच्छे गहने कपडे पहनकर इतर फुलेल लगायकर छम २ करती व्याख्यानमे आती ह उनके आभूषण (जेवर) के बाजेकी आवाज और चेष्टाको देखकर तो पुरुष वेद जो तिनकाकी अग्निके समान है सो तो उन स्त्रियोंकी चेष्टा देखकर तुरन्तही चारित्रसे भ्रष्ट होजायगा जब तो साधुवोंको स्त्रीके सामने व्याख्यान देना न बनेगा और साधूको गृहस्थोंके घरमें आहार आदि लेनेकाभी जाना न बनेगा इसलिये ऊपर लिखी हुई बातको जो कोई कहता है वह महामूर्ख अज्ञानी विवेकरहित जिन धर्म का अजान कदाग्रह करनेवाला चारित्रसे भ्रष्ट मालूम होता है जो ऐसा कहते है कि साधूका ज्येष्ठ धर्म है तो हम कहते है कि ये कहना तो उनका ठीक है क्योंकि जो साधु अच्छे महात्मा द्रव्य क्षेत्र काल भाव उत्सर्ग अपवाद कारण कार्यके जाननेवाले जिस जगह उतरे हों और व्याख्यान देते हों उस जगह साध्वी उनके यहा जाकर व्याख्यान सुने

उनकी परम्परा सिद्धान्त रीतिसे चलीआई उन आचार्यों की परम्परा में जो कोई आचार्य्य विद्वानहो उनकी परम्परा वा गच्छको अंगीकार करके जो यह तीन थुई करे तो ठीक है जब उन्हीं से अपनी पटावली मिलावे न कि श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजी सू क्योंकि श्री विजय देवेन्द्र सूरिजी से तो अपनी पाट परम्परा मिलाना और उनकी आचरण की हुई चार थुई का निषेध करना और उनको मिथ्यात्वी कहना और आप तीनकरना ऐसा होना तो वन्ध्या के पुत्रके समान है क्योंकि देखो कोई पुरुष कहनेलगा कि मेरी यह माँ है परन्तु है बाझ तो देखो मा कहना और बाझ बताना जैसे ही राजेन्द्र सूरिजी का कहना हुवा कि चार थुई वाले को अपना गुरू भी बनालेना और उनकी जो कृत चार थुई आदिक उसको निषेध भी करना मैं तो जैसा मेरी तुच्छबुद्धि में तैसा उनको कहूंक अख्तियार उनको है जो चाहे सो अंगीकार करें अब जो कोई कहतेहैं कि चौथकी करने वाला मिथ्यात्वी पचमीकी छमछरी करनेवाला मिथ्यात्वी सो इन दोनों का कहना कदाग्रह रूप है क्योंकि देखो ५ वी के करने वाले अनन्ती चौवीसी पंचमी की करनेवाले तीर्थंकरो की वा वर्त्तमान काल म महाविदे क्षेत्र आदिकों मे करने वाले उनकी असातना का सूचक ५ मीको मिथ्यात्व का कहना है और जोकि चौथके करनेवालों को मिथ्यात्वी कहते हैं वह लोगभी अज्ञान विवेक शून्यहोकर बोलते हैं क्योंकि जगम युग प्रधान श्री कालक आचार्य्य जी महाराजजीने ५मी से चौथकी छमछरीको अंगीकार की सो भी शास्त्रों में लेख है कि सर्वज्ञदेव वीतराग श्री महावीर स्वामी अपने मुखारविन्द से वर्णन करगये हैं कि पचम काल में श्री कालका आचार्य्य होगा सो पंचमीकी चौथकरैगा सो मेरी आज्ञा आराधक होगा तो देखो श्री महावीर स्वामी ने ऐसा फरमाया तो जो श्री कालकाचार्य की परम्परा वाले शुद्धाचरणाविधि मार्गके चलने वाले जो चौथकी छमछरी करते हैं सो वे लोग तो भगवान् की आज्ञा के आराधक हैं परन्तु जो लोग इस परम्परा में से कदाग्रह वा गुरुआदिक पै द्वेष बुद्धिकर धूर्त्तपने से कपट क्रियाकरके भोले जीवोंको बहकाय कर चौथकी निषेधकर पचमी को चलाते हैं तो महामूढ अज्ञानी विवेकशून्य गुरु परम्परा आचार्यों के विराधक होने से भगवत् आज्ञा के भी विराधक हैं अब जो कोई साध्वी के व्याख्यान अर्थात् कथा करने को वा अंगोपाग आदि बाचने वा साध्वी को अग आदिक पढाने को निषेध करते हैं सो यह उनका एकान्त कहना जो है सो जिन आगम के रहस्य को नहीं जाननेसे है अथवा कितने ही लोग अपनी महिमा घटजाने के लिये निषेध करते हैं क्योंकि उनको इतना बोध तो है नहीं कि जो सभा रजन करे और केवल यही ख्याल है कि साध्वीका अच्छा व्याख्यान लोग सुनेंगे तो हमारे पास कोई नहीं आवेगा इसलिये उनका एकान्त निषेध करना ठीक नहीं क्योंकि देखो वीतराग भगवान्का अनेकान्त स्याद्वाद मत है सोही दिखाते हैं देखो कि जो साध्वीको अगादि पढाना निषेध होता तो नीचे लिखी हुई बात क्योंकर बनेगी कि श्री वज्र स्वामीको गुरु वहर करके झोलीमें लायेथे उस वक्त गुरुने साध्वियोंको आज्ञा दीनी कि इस लडकेको तुम अपने उपासरेमें रक्खो श्राविका लोग इसका पालन करेंगी सो श्री वज्रस्वामी पालनेमें झूलते २ ग्यारे अग

धरये उनके ८४ गच्छथे आर श्री महावीर स्वामीके ग्यारह गणधर और नवगच्छथे सो गच्छ नाम किस चीज़का है क्या समाचारिका फर्क होनेसे गच्छ है व गच्छ क्या चीज है सो आप कृपा करिक इस व्यवस्थाको समझा दीजिये। (उ०) भो० दे० इस हुण्ड सर्पिणी पञ्चम कालके दोष होनेसे इस श्री वीतराग जिन धर्मके मार्गकी व्यवस्था छिन्न २ होगई क्योंकि देखो कल्पसूत्रमें कहा है यदि उक्त " बहुवो मुंड्डा अल्प सरमणा" मुंडा बहुत होंगे और साधु थोड़े होगे देखो उपाध्यायजी श्री समयसुन्दरजीने वेकर जोडी स्तवनमे ऐसा कहा है "जिन धर्म २सब कहेरे थापे अपनी वात समाचारि जूई २करेरे छासे परचो मिथ्यात" फिर भी देखो उपाध्यायजी श्रीजसविजयजी १२५ गाथाके स्तवनमे कहते है गाथा सत्तमी "विषय रसमां गृही माचिया। नाचिया कुगुरुमद पूररे ॥ धूमधाने धमा धम चली ज्ञान मार्ग रह्यो दूररे ॥ और देखो स्तवनकी गाथा-"परमपरादयी लोप अनादि करत विवाद अर्थ करे न्यारी सम्मेगी यती दूढ सव मिलकर गच्छ बाध टोलाकर राह बिगारी" फिर देखो श्री आनन्दघनजी महाराज कहते हे "गच्छना भेद बहु नैन निहालता तत्त्वनी बात करता न लाजे। उदर भर्णादि निज काज करता थका, मोह नडिया कलिकाल गाजे' फिर देखो उपाध्यायजी श्रीदेवचन्द्रजी कहते है श्रीचन्द्रानन प्रभुके स्तवनमे "गच्छ कदाग्रह साध वैरे माने धर्म प्रसिद्ध, आत्मगुण अकषायतारे धर्म न जाने शुद्ध ॥ " इत्यादि अनेक महत्पुरुष गीतार्थोके वचन देखता तो अवारके वक्तमे तो शुद्ध जिन धर्मकी परूपना करनेवाला गुरु कोई विरलाही होगा इसलिये भो देवानुप्रिय इस व्यवस्थाके प्रश्नोत्तरसे दिलको खेचकर अपने घरका काज़ा निकालो देशका काजा किसीसे निकला नही इसवास्ते जो तुमको अपनी आत्माका कल्याण करना हो तो जो हम कह आये है और जो अगाडी श्री वीतरागका मार्ग कहेंगे उन सभी बातोंको' अपनी बुद्धिमे विचार कर शास्त्र और युक्ति सहित जो श्री वीतरागका मार्ग सत्य है उसको तो ग्रहण करना और असत्यको छोड़ देना ऐसा जो तुम अपनी बुद्धि मे हेय और उपादेयको अंगीकार करोगे तो श्री वीतरागके मार्गकी प्राप्ती तुम्हारेको होकरके तुम्हारी आत्माका कल्याण हो जायगा जो तुमने गच्छके शब्दका अर्थ पूछा सो अब हम कहते है गच्छ नाम समुदायका है वा जो एक सुभियत शुद्ध गीतार्थकी आज्ञामे चलने वाले साधू साध्वी उनका जो समुदाय उसीका नाम गच्छ है और शास्त्रोंमे जो गच्छका लक्षण कहा है सो शास्त्रका प्रमाण देते हे " जत्य हिरणा सुवण्णं हत्थेण पराणग पिनी छिप्पे कारण समप्पिय पिहु गोप मगच्छ तप भणिमो ॥ ७० ॥ पुडविदग अगणि मारुअ वणस्सइ तहत साण निविहाण मरण ते विन पीडाकीरइ मणसा तप गच्छ ॥ ५१ ॥ " ऐसा जिसमे लक्षण है वोई गच्छ है और जो तुमने समाचारीके वास्ते पूछा सो अब हम कहते हे कि हमारे अनुभवमें और शास्त्रके देखनेसे तो सर्व गच्छोकी समाचारी एक मालूम होती है जो तुमने श्री ऋषभदेव स्वामीके चौरासी गणधर और चौरासी गच्छ कहे और श्री महावीर स्वामीके ग्यारह गणधर और नव गच्छ कहे इन सबोकी समाचारी एक मालूम होती है जो जुदी २ इनकी समाचारी होती तो जमालीको करे माने अकरे इतने वचन कहनेसे निन्नव और समुदायके बाहिर न निकालते दूसरा, जो गच्छोमे फर्क होता तो दिगम्बरीको बोटक

और अपने व्याख्यानको बंद करे और उस साधु मुनिराजसे अध्यात्म शास्त्रादिकभी पठन पाठनकरे और कदाचित् ऐसे महात्माके पास मान्नी न जाय, और अपना व्याख्यान बन्द न करे और भरोसे मानकोंसे अपनी दुकान जमानेके वास्ते भरमा करके साधुवोंके पास न जानेदे वह साध्वी भगवानकी आज्ञा न विराधक है परन्तु जिसने साधु नाम धरायकर पीले कपडे करलिये और जो इनक्रिममें साधु वाजते है किन्तु व्यभिचारी है धन आदिकको रखते है किसी साध्वीने जो उनका संग किया उनका चारित्रसे जो भ्रष्ट कर देने वाला है ऐसे साधुवोंके जो व्याख्यान आदिक भी होता है और उनको लोग भी मानते हो तो जो साध्वी वैराग्यवान शुद्ध क्रियाकी चलनेवाली धर्मको दीपाने वाली है वह उसके व्याख्यानमें कदापि न जाय अर्थात् उसका मुख भी न देखे किन्तु जो लोग उसके रागमें फँसे हुए है उनसे द्वेष बुद्धि मिटानेके वास्ते व्याख्यान न करे क्योंकि लोग तो गाडर प्रवाह है और दृष्टि रागमें गुण परीक्षा नहीं करते अब इस लिखनमें जो कोई पक्षपात समझे तो मेरे पक्षपात नहीं है क्योंकि देखो जो मेरे पक्षपात होवा तो मेरे व्याख्यानके दूसरद् वह साध्वीन व्याख्यान किया तो मैं उसको निषेध करता क्योंकि देखो ३८ के सालमें गुलाबश्री साध्वीने मेरे पराव व्याख्यान वाचाया और श्रावकोंने मना कियातो भी न मानी और ४३ के सालमें प्रताप श्री साध्वीने व्याख्यान वाचाया और मैंने भी व्याख्यान वाचता था और ४९ के सालमें लक्ष्मी श्रीने व्याख्यान वाचा छोगाले मना भी किया परन्तु न माना तो अब देखो विचार करो कि हम ऊपर लिख आये है उस बमूजिब साध्वीको व्याख्यान नहीं करना था और उन्होने किया भी तो भी मुझको शास्त्रसे विपरीति उनका निषेध करना न जचाये यह बात मैंने अपना पक्ष छोडकर लिखा जो मुझको पक्ष होता तो जैसा और लोगोंने साध्वियोंके पास पचखानादि करना निषेध किया है तैसे मैं भी निषेध करता और कान्त जिन मार्ग अंगीकार किया है उनको पक्षपात रहित होकर जिन वचनकी शुद्ध परूपना करनी चाहिये अब हम सूत्रोंका प्रमाण देते है कि साध्वी पुरुषोंके सामने व्याख्यान दे सो सूत्र तो मेरे पास है नहीं परन्तु सूत्रोंके नाम लिखता हूं जिसको इच्छा हो सो देखले नसीथ सूत्रकी चूरिणीमें १० वे उदेशमें कहा है कि सुधुना योग वाई नहाता साध्वी व्याख्यान दे ऐसा ही तपगच्छमें श्री सेनसूरिजी महाराजने १३२ किया हुवा ग्रन्थ प्रश्नोत्तरमें ०५७ के प्रश्नमें श्रावक श्राविका सहित साध्वी उपदेशदे तथा महावल मलिया सुद्रीना चारित्र तथा रासमें मल्लिया सुन्दरी साध्वीने राजाको घने दिवस उपदेश दिया है और उपदेश मालामें भी साध्वीको व्याख्यान देना कहा इसलिये साध्वीको व्याख्यान देना ठीक है (प्र०) महाराज साहब आपने जो यह अपक्षम ऐसी व्यवस्था कहकर लिखाई इसमें हमको कैसे प्रतीत हो कि कौन जैनी है क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि कोरे है अब आपके ऊपरके दिखाये हुवे आपसके फर्क जो है इनसे हम किसको तो जैनी कहे और किसको निन्हव कहे और यह भी सुनते है कि श्री ऋषभदेव स्वामीके ८४ गण मानेकरे इस वाक्यसे विपरीति कहन वाले जमालीको निन्हव और बहुत संसारी कहा

धरथे उनके ८४ गच्छथे और श्री महावीर स्वामीके ग्यारह गणधर और नवगच्छथे सो गच्छ नाम किस चीज़का है क्या समाचारिका फर्क होनेसे गच्छ है व गच्छ क्या चीज है सो आप कृपा करिके इस व्यवस्थाको समझा दीजिये। (उ०) भो० दे० इस हुड्ड सर्पिणी पञ्चम कालके दोष होनेसे इस श्री वीतराग जिन धर्मके मार्गकी व्यवस्था छिन्न २ होगई क्योंकि देखो कल्पसूत्रमे कहा है यदि उक्त "बहुवो मुड्डा अल्प सरमणा" मुंडा बहुत होंगे और साधू थोडे होगे देखो उपाध्यायजी श्री समयसुन्दरजीने बेकर जोडी स्तवनमें ऐसा कहा है "जिन धर्म २सब कहेरे थापे अपनी वात समाचारि जूई२करेरे सासे परचो मिथ्यात" फिर भी देखो उपाध्यायजी श्रीजसविजयजी १२५ गायाके स्तवनमे कहते है गाथा सतमी "विषय रसमा गृही माचिया। नाचिया कुगुरुमद पूररे ॥ धूमधाने धमा धम चली ज्ञान मार्ग रह्यो दूररे ॥ और देखो स्तवनकी गाथा—"परमपरादयी लोप अनादि करत विवाद अर्थ करे न्यारी सम्वेगी बती ढूढ सब मिलकर गच्छ बाध टोलाकर राह निगारी" फिर देखो श्री आनन्दघनजी महाराज कहते है "गच्छना भेद बहु नैन निहालता तत्त्वनी वात करता न लाजे। उदर भर्णादि निज काज करता थका, मोह नडिया कलिकाल गाजे' फिर देखो उपाध्यायजी श्रीदेवचन्द्रजी कहते है श्रीचन्द्रानन प्रभुके स्तवनमे "गच्छ कदाग्रह साथ वेरे माने धर्म प्रसिद्ध, आतमगुण अकषायतारे धर्म न जाने शुद्ध ॥ " इत्यादि अनक महत्पुरुष गीतार्थोके वचन देखता तो अबारके वक्तमे तो शुद्ध जिन धर्मकी परूपना करनेवाला गुरु कोई विरलाही होगा इसलिये भो देवानुप्रिय इस व्यवस्थाके प्रश्नोत्तरसे दिलको खेचकर अपने घरका काज़ा निकालो देशका काजा किसीसे निकला नही इसवास्ते जो तुमको अपनी आत्माका कल्याण करना हो तो जो हम कह आये है और जो अगाडी श्री वीतरागका मार्ग कहेंगे उन सभी बातोको' अपनी बुद्धिमे विचार कर शास्त्र और युक्ति सहित जो श्री वीतरागका मार्ग सत्य है उसको तो ग्रहण करना और असत्यको छोड देना ऐसा जो तुम अपनी बुद्धि में हेय और उपादेयको अंगीकार करोगे तो श्री वीतरागके मार्गकी प्राप्ती तुम्हारेको होकरके तुम्हारी आत्माका कल्याण हो जायगा जो तुमने गच्छके शब्दका अर्थ पूछा सो अब हम कहते है गच्छ नाम समुदायका है या जो एक सुभियत शुद्ध गीतार्थकी आज्ञामे चलने वाले साधू साध्वी उनका जो समुदाय उसीका नाम गच्छ है और शास्त्रोंमें जो गच्छका लक्षण कहा है सो शास्त्रका प्रमाण देते हे " जत्थ हिरण सुवण्ण हत्थेण पराणग पिनी छिप्पे कारण समप्पिय पिहु गोय मगच्छ तय भणिमो ॥ ७० ॥ पुडविदग अगणि मारुअ वणस्सइ तहत साण विविहाण मरण ते विन पीडाकीरइ मणसा तय गच्छ ॥ ५१ ॥ " ऐसा जिसमे लक्षण है वोई गच्छ है और जो तुमने समाचारीके वास्ते पूछा सो अब हम कहते हे कि हमारे अनुभवमे और शास्त्रके देखनेसे तो सर्व गच्छोंकी समाचारी एक मालम होती है जो तुमने श्री ऋषभदेव स्वामीके चौरासी गणधर और चौरासी गच्छ कहे और श्री महावीर स्वामीके ग्यारह गणधर और नव गच्छ कहे इन सबोंकी समाचारी एक मालूम होती है जो जुदी २ इनकी समाचारी होती तो जमालीको कर [illegible] ने अकरे इतने वचन कहनेसे निन्नव और समुदायके बाहिर न निकालते दूसरा [illegible] फर्क होता तो दिगम्बरीको बोटक

मती निन्हव न कहते और देखो जिस वक्त श्री केशीकुमारजी श्री पार्श्वनाथजीकी परम्परामें चले आतेथे सो श्री महावीर स्वामीजीकी परम्परामें कई तरहका आचरणाम फर्क था सो जब श्री गौतम स्वामीसे श्री केशीकुमार स्वामीका मुकाबिला हुवा उस वक्त श्री केशीकुमार गुरुने शिष्योंकी शङ्का दूर करनेके लिये श्री गौतम स्वामीसे प्रश्नोत्तर करके श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी आचरणाको छोडकर वर्तमानकाल श्री शासननायक श्री वीर भगवानूके शासनकी समाचारी अंगीकारकी, यह अधिकार श्री उत्तराध्ययनजीमें है सो उस जगह इसका विस्तार पूर्वक है ऊपर लिखी युक्ति और शास्त्रके प्रमाणसे समाचारी एकही मालूम होती है मतुः जिन धर्मे भिन्न समाचारी (प्र०) महाराज साहब आपने प्रश्नके वास्ते मनाकिया परन्तु हम लोगोंके चित्तमें किंचित् सन्देह है-कि देखो श्री वीतराग सर्वज्ञ देवका कहा हुवा स्याद्वाद मार्ग चिंतामणि रत्न समान जिन धर्मको पायकर फेर आपसमें विरोध क्यों करते हैं इसका कारण आप कृपाकरके बताइयेगा ? (उ०) भो० दे० इसका कारण यह है कि श्री यशविजयजी उपाध्यायजी महाराज अध्यात्मसार ग्रन्थमें छठे वैराग भेद अधिकारके विषयमें कहते हैं कि वैराग तीन प्रकारका है सो वहाके दो श्लोक ७ मा और ९ मा लिखते हैं- "गृहेनमात्रदौर्लभ्य लभ्यते मोदका व्रते । वैराग्यस्याय मर्थोहि दुःखगर्भस्य लक्षण ॥ ७ ॥ कुशास्त्राभ्यासंसभूतभवनैर्गुण्यदर्शनात् । मोह गर्भ तु वैराग्य मत बालतपस्विना ॥ ८ ॥ सिद्धान्तमुपजीव्यापि ये विरुद्धार्थभाषिणः । तेषा मप्येतदेवेष्ट कुर्वतामपि दुष्कर ॥ ९ ॥ ससारमोचिकादीनामिवैतेषा न तात्त्विका । शुभोपि परिणामो यज्जाता ज्ञानरुचिस्थितिः ॥ १० ॥ अमीषा प्रशमोप्युच्चैर्दोषपोषाय केवल । अतर्लीनविषमज्वरानुभवसन्निभः ॥ ११ ॥ कुशास्त्रार्थेषु दक्षत्व शास्त्रार्थेषु विपर्यय. । स्वच्छदता कुतर्कश्च गुणवत्सस्तवो ज्झन" ॥१२॥ अर्थ-अहो घरमें तो पूरो अन्न पण मिले नही अथवा माता पिता मरगये इधर उधर भटकता फिरे अथवा किसी का देना बहुत होगया अथवा किसी राजाका भय आदिसे विचारने लगा कि इससे तो मेरेको दीक्षा अर्थात् किसी जैनीसाधूका चेला होजाना ठीक है क्योंकि मुझको लाडू आदिक अनेक मालकी माली होगी तो दीक्षा लेनेमें कुछ दुःख नहीं ऐसा जान करके अथवा अपने दुःख निवृत्ति पेट भरनेके वास्ते जो कोई दीक्षा लेता है उसका नाम दुःख गर्भित वैराग्य है अब मोह गर्भित वैराग्य के श्लोका का अर्थ करते हे अर्थ-कुशास्त्र के अभ्यास होने से प्रगट हुवा जो ससारका निर्गुणपना उसीका नाम मोह गर्भित वैराग्य है जो बाल तपस्वी आदिक जानलेना ॥ ८ ॥ जो सिद्धान्तों से उपजीवन अर्थात् अपनी आजीविकाके वास्ते जो सूत्रको अर्थ विपरीत कहे हैं सो प्राणी दुष्कर करणी कहता कष्टक्रियाको है तो पिण उसको वैसाही जानलेना ॥९॥ ससारके दुःख छुडानेके अर्थ जो मुसलमान घोडे आदिक को दुःखी देखकर उसको दुःख से छुडानेके वास्ते दया भाव करके मारडाले हैं वह मुसल्मान पिण शुभ प्रणाम की बुद्धि रखते है तो भी परमार्थ पापही जानना तैसे ही मोह गर्भित वैराग्य वालेको प्रणाम शुभहोय तो भी परमार्थ में ज्ञानकी रुचि होवे नहीं ॥ १० ॥ जैसे अन्तरग में हाडज्वर शरीर मे लीन हो कर दुःखदायी होता है तैसे ही मोह गर्भित वैराग्यवालेको प्रसम आदि अर्थात् क्रिया अ

नुष्ठान आदिक जो करता है परन्तु वो क्रिया आदिक केवल दुःखदायी है लेकिन् गुणकारी नही है क्योंकि मिथ्यात्व गयेविना वैराग्य भी दुःखदायी है ॥ ११ कुशास्त्र के अर्थ करने में बड़े चतुर है और शास्त्रका अर्थ विपरीत अर्थात् अपनी ज़बान से निकले हुवे खोटे अर्थ को परभव से नही डरते हुये कुयुक्ति लगाय कर सर्वज्ञों के वचन को अन्यथा सिद्ध करते है और प्राचीन नवीन जो शुद्ध अर्थ कहने वाले है उनके अर्थ को नहीं मानते है और स्वइच्छा बमूंजिब चलते है और किसी के साथ में मेल नहीं रखते है कैसाही कोई गुणी होय उसकी कदापि प्रशंसा नही करै किन्तु अपनी प्रशसा और दूसरे गुणी जनकी निन्दा से काम रक्खें है ॥ १२ ॥ अब देखो श्री यशविजय जी महाराजके कहने से ऊपर लिखे तीन वैराग्य में से प्रायः करके दुःख और मोह वैराग्य की बाहुलता दीखे है इस कारण से जो वर्त्तमान कालमें साधू लोग जब तक उनके दुःखकी निवृत्ति वा अपनी दुकानदारी न जमे तब तक तो वे कृपा अनुष्ठान कपटसे करके लोगोंको अपने रागमें बाधकर दूसरे साधुओंसे द्वेष करायकर निश्चल हो बैठते है क्योंकि जो वे लोग अपना राग और दूसरेसे द्वेष न करावें तो जो लोग उनके पास आने वाले है जो वे दूसरेके पास जाय और उनकी सोहबत करै और उनसे जो होय गुणकी प्राप्ति उस गुणसे बुद्धिकी निर्मलता होनेसे पहले जो बँधा हुवा दृष्टी राग और उनकी कपट क्रिया और दम्भपना मालूम हो जाय तो फिर वो उनका सग न करे इसलिये वो पहलेसे ही अपनी दृष्टीरागमें फँसायकर कहते है कि देखो जो तुम उनका सग करोगे तो तुम्हारी समगत भ्रष्ट हो जायगी क्योंकि उनकी श्रद्धा ठीक नही है इतने वचनको वो सुनकर रागी श्रावक उन्हीके पशु बने रहते है औरोंके पासमें नहीं जाते है और उस दृष्टि रागसे उन श्रावकोको उन साधुवोंके अवगुण भी नही दिखता है क्योंकि जगत्की चालहै—(दोहा) रागी अवगुणना गिने, यही जगतकी चाल ॥ देखो काले कृष्णको कहत जगत सब लाल ॥ और भी देखो श्री देवचन्द्रजी महाराज कहते है कि दृष्टि रागनो पोष जहा समकितगीने स्याद्वादकी रीति न देखे निज पनै ॥ इसवास्ते इस हुन्डा सर्पिणीके दूषणसे पश्चम कालमें ज्ञान वैराग्यकी अधिक न्यूनता होनेसे और दो प्रकारके ऊपर लिखे हुये वैरागकी बाहुल्यता होनेसे जिन धर्मकी ऐसी व्यवस्था हो रही है सो इसके ऊपर एक दिवाली कल्पका दृष्टान्त देताहूं कि मैने एक वफे दिवाली कल्पमे ऐसा वाचाया कि जिसका भावार्थ थोडासा यहा लिखताहू सो वह भावार्थ यह है—"कि जगलमें एक सिंह रहताथा सो वो सर्व पशुओंका तिरस्कार करताथा सो उसकी दहशतसे कोई पशु उसका सामना करनेके योग्य नहीथा परन्तु कितनेही दिनके बाद उस सिंहका जीव तो निकल गया और खाली शरीर रहगया सो उस सिंहके शरीरको देखकर कोई पशु उसके पासमें आयकर तिरस्कार न करसका क्योंकि पहिलेके जो प्रबल तेज उसके डरे हुए तिरस्कार न करसके परन्तु उस सिंहके शरीरमें जो उत्पन्न हुई कृमि वो कृमिही उस सिंहका तिरस्कार करने लगी। इस दृष्टान्तको दार्ष्टान्त पर उतारते है देखो कि श्रीवीतराग सर्वज्ञ देवका चलाया हुवा जो स्याद्वाद जिन धर्मरूपी सिंह जिसमें प्रबल प्रतापवाला जाति स्मरण आदि ज्ञान प्रबल तेजरूप सिंहके जीवने अन्यमत सर्व पशुओंका क्रियाथा तिरस्कार सो तो हुडा सर्पिणी पंचम

पालके दूरणसे जिन धर्म सिंहका जातिस्मर्ण ज्ञानादिवाला जीव तो चला गया बाकी जिन धर्मरूपी शरीर रहगया सो इस शरीरसे इस शरीरका अन्यमत सर्व पशु देखतके डरे हुये तिरस्कार न करसके परन्तु इस जैनरूपी शरीरमे उत्पन्न हुई कृमि नाम वेष धारी सो आपसमे विरोध अर्थात् झगडा करते हुये जैनरूपी शरीरका तिरस्कार करते है इसलिये ऊपर लिखी वातोंसे ज्ञान वैराग्यके न होनेसे यह व्यवस्था हो रही है शास्त्रोंके देखनेसे तो ऐसा मालूम होता है कि राग द्वेष अनन्तान बंधी चौकडी आदिकोंको जिन मार्गकी रीतिसे जैनी लोगोंको मिटाना चाहिये परन्तु मिटना तो एक तरफ रहा और प्रबल होता चला जाता है कि देखो आत्मारामजी लिखते है कि गुजरातके लोग बडे हठीले और पक्ष पाती होते है और जितने मत मतान्तरकी खेंचतान गुजरातमे है जितनी किसी जगह न होगी और जितनी बाते नवीन जिन धर्ममे चली है सो सर्व गुजरातसेही चलती है परन्तु अब पंद्रह सोलह वर्षसे मारवाड लश्करादि पूर्व देशमे वा दिल्ली आदि देशोंमे भेष धारियोंने ऐसा राग द्वेष बढा दिया है कि देखो ३४ के सालसे पहले लश्कर वा आगरेमे ऐसा समता पुरणमथा कि क्षेत्रोंकी सब कोई शोभा करतेथे और धर्मका अच्छी तरहसे निर्वाह होता था परन्तु ३४ के सालसे ऐसा कदाग्रह हो गया है कि बिलकुल श्रावकोंमे सम्मत न रहा और राग द्वेष इतना बढगया कि सिवाय क्लेशके बिलकुल धर्मकी व्यवस्था न रही और देखो मारवाडमे पाली अजमेर आदि क्षेत्रोंमें जो कि अगाडी किंचित् राग द्वेष और खेच तान आपसमे करतेथे सो २७–२९के सालमे जो श्री शिवजी रामजी पाली आदिक से ग्राम विचरते थे सो ३१–३२ के साल तक सब जगहकी खेंचतान मिटाय करके सब समुदायको इकट्ठी करदी और आपसमे सब लोगोंमें सम्मत करादी और अच्छी तरह धर्म ध्यान होता था ऐसा मेरे श्रवण करनेमे श्रावक लोगोंकी जबानीसे आया है परन्तु उनदिनोंमें साधु लोगोंका श्रावक लोगोंके बहुत परच्यारथा और साधु लोगोंका विचरना इस मुल्कमें कमथा यह समुदायका रंग मैनेभी ३१–३९ के सालमें चौमासा करके देखा तो उन दिनों तो समुदायमें कोई तरहका विषमवाद न था परन्तु उसही ३९ के सालमें जयपुरमें श्रावक श्राविकोंमें इतना राग द्वेष हुवा सो अभीतक बढता हुवा चला जाता है और अजमेरभी श्रावकोंके आपसमें मन राग तो इतना है कि उनकी आत्मा जाने या ज्ञानी जाने सिवाय द्वेष बढानेके किंचितभी सम होनेका कोई उपाय नहीं दीखता अब न मालूम इन लोगोंकी क्या गति होगी कि यह नाम तो साधु धराते है आप लडते है और गृहस्थियोंको लडाते हे, अन्य मतीको हँसाते है, जिन धर्मकी हीलना कराते है, हा ! इति खेदे ! इस जैन धर्ममे कोई सिरधरा न होनेसे इस हुंडा सर्पिनी काल पंचम आरेमें दु:ख गर्भित मोह गर्भित वैराग्य वालोंकी कैसी बन पडी दु:खसे छुटाना और मालाका खाना और जगत्में पुजाना और ऐसा सोचना कि "यह भव तो परभव किसने दीठा" ऐसा इनका जो विचार होय तो इनकी बडी भारी अज्ञान दशा है कि देखो श्री यशोविजयजी उपाध्याय अध्यात्म मत परीक्षा ग्रंथम कहते है कि जो भेषधारी गृहस्थियोंके चोखे २ माल लायके खाते है परन्तु उनको परभवमे उन गृहस्थियोंके गाय, भैंस, ऊंट घोडा आदि बनकर उस माल खानेका बदला देना पडेगा और भी देखो वर्तमानमे कई साधु साध्वी ऐसा भी कहते है

कि जिस गच्छकी समुदाय बहुत है उसकी देखा देखी न करे और शुद्ध अशुद्धकी जो योजना करे तो वह जियास्ती समुदाय वाले हम लोगोंका सत्कार आदि न करे तो अब देखो कि जिन साधू साध्वियोंकी ऐसी इच्छा है और जो वे देखादेखी करने वाले है तो अब कहो इनमें ज्ञान वैराग्यका क्योंकर भेष मिले देखो श्री यशोविजयजी उपाध्यायजी अध्यात्मसारके दशवे अधिकारमें जो पाच प्रकारके अनुष्ठान कहे है सो यह है—१ विषय २ गरुल ३ अन्योन्या ४ तद्हेतु ५ अमृतक्रिया, सो देखो पहले तीनको तो बिल्कुल निषेध किया है "निषेधायानयोरेव विचित्तानर्थदायिनोः ॥ सर्वत्रैवानिदानत्वं जिनेंद्रैः प्रतिपादित ॥ ७ ॥ प्रणिधानाद्यभावेन कर्म्मानध्यवसायिनः ॥ सम्मूर्छिमप्रवृत्त्याभमनुष्ठानमुच्यते ॥८॥" अब इन पाच अनुष्ठानोंमेंसे पूर्व उक्त दो अनुष्ठान तो सर्व तीर्थकरोंने निषेध किये है क्योंकि ये महा अनर्थके उपजाने वाले है और ऐसेही तीसरा भी देखा देखी जो अनुष्ठान है जो क्रियाका अध्यव सहाय रहित पणा शून्य मनकी प्रवृत्तिये अथवा देखा देखी जो क्रिया करे सो अन्योन्या अनुष्ठान है इसका विस्तार अध्यात्मसारमें बहुत खण्डन मण्डनसे किया है जिसकी इच्छा हो सो देखो परन्तु भगवान्‌की आज्ञामें शास्त्र ध्ययन पेक्षत जो अशुद्ध क्रियाका करना सो कदापि शुद्ध फलका देनेवाला न होगा इसीलिये दीवाली कल्पमे लिखा भी है सो दीवाली कल्पमें भी अन्य शास्त्रकी साक्षी दी है कि श्री वीर भगवान्‌के शासनमें आचार्य्य साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, ये पाचनौकडा जैनी नाम धरायकर नरकमें जायगे सो इस लेखसे ऐसाही मालूम होता है कि जा हमने ऊपर लिखे जो वैराग्य और अनुष्ठान और कारण बतलाये है उन चीजोंके प्रवर्त होने वाले आचार्य और साधू साध्वी उनके रागमें फँसे हुवे जो श्रावक और श्राविका सो नरकमें जाते दीखें है क्योंकि सर्वज्ञका वचन है सो हे देवानु प्रिय ! ऊपर लिखी हुई व्यवस्थाको सुनकर चित्तसे कदाग्रहको दूर हटाकर राग द्वेष रहित निर्मल बुद्धिसे श्री वीतराग सर्वज्ञ देवका प्रकाशा हुवा जो शुद्ध जिनधर्म उसमें देव गुरु निमित्त कारण जानकर अपनी आत्माको उपादान कारण समझकर जो कि अब हम तुम्हारे चौथे प्रश्नके उत्तरमें कहेंगे उसमें कारण कार्य उत्सर्ग अपवाद समझकर शुद्ध सर्वज्ञ वीतराग अरिहतदेवके वचनों पर श्रद्धा रखकर अपनी आत्माका कल्याण करो कि जिससे अनादि ससार और जन्म मरण रूपी दुःखसे दूर होकर सादि अनन्त सुखको प्राप्तहो अर्थात् मोक्षको प्राप्तहो ॥

इति श्री मज्जैन धर्माचार्य मुनि चिदानदस्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकरे गच्छव्यवस्था निर्णय वर्णनोनाम तृतीय प्रश्नका उत्तर समाप्तम् ॥

अथ चतुर्थ प्रश्न का उत्तर प्रारंभः ॥

अब चतुर्थ प्रश्नमें जो तुमने श्री वीतरागकी आज्ञारूप उपदेश पूछा सो सुचित्त चित्त होकर सुनो कि जो वीतरागकी शुद्ध आज्ञा है सो गुरु परम्परा वा अनुभव अथवा शास्त्रों

है इस अपूर्व करणमें त्यागरूप, और ग्रहण रूप परणाम पेश्तर कभी नही आयाथा इसलिये इसको अपूर्व करण कहा अब यहा कोई ऐसी शका करे कि अपूर्व नाम तो थोडीसी देर ठहरनेका है क्योंकि थोडीसी देर ठहरकर फिर परणाम गिर जाय फिर आ जाय जैसे किसीके पुत्र होकर मरगया और फिर दूसरा पुत्र हुवा तब वो उसको अपूर्व मानकरही आनन्द मानेगा ऐसा अपूर्वका अर्थ होता है तो हम कहते है कि जिसको ऐसी शका होती है और जो ऐसी कोटी उठाता है वह जिन आगमके रहस्यको नही जानता है क्योंकि देखो जो कि पेश्तर अपूर्व करण करता है सो अपूर्व करण अनादि शात है इसलिये अपूर्व करण नही बनेगा और जो वह थोडी देर ठहरनेको अपूर्व मानते है सो सादि शात अपूर्व करण है और अपूर्व करण करनेके बाद अनिवृत्ति करण करके जो समगतकी प्राप्ती होवे उसके बाद फिर इन पिछले किये हुवे करणोंको कोई जीव न करेगा इसलिये यह अपूर्व करण अनादि शातही है देखो यहा दृष्टान्त देते है—कि कोई तीन पुरुष मन वाछित नगरकी इच्छा करके पुरसे चले सो महा विकट अटवी अर्थात् जगलमे गये सो रास्तेमें जाते हुवे दो चोरोंका सामनेसे आते हुवे देखे उन चोरोंको देखकर एक तो पीठा पर भग गया और दूसरेको पकड लिया और तीसरा उनसे लडकर और मार पीटके अपने प्रबल बलसे अगाडी चल दिया यह दृष्टान्त हुवा अब दार्ष्टान्त कहते है—कि अभव्य और दूरभव्य और निकट भव्य ये तीना समगत रूपी नगरके वास्ते जातेथे सो जन्म मरण रूपी अटवीमें राग द्वेष रूपी चोरोंको आते देखकर अभव्य तो भग गया और दूर भव्यको अपूर्व करणके पासही पकड लिया और निकट भव्य जो था सो उन राग द्वेष रूपी चो रोंसे मार पीटकर अपूर्व करणसे निकलकर अनवृत्ति करणमे प्रवेश कर गया। अब यहा प्रसग मन बात याद आगई है सो भी लिखते है कि कितनेही आमन्य अनुसार तथा विधि पाम्परा वाले कहते है कि भव्यको पूर्व सुत नही होय तथा कोई एक ग्रन्थमे ऐसा कहा है कि पूरा दश पूर्व नहीं होय तो पूर्वसे कुछ अधिक होय अब इस जगह यह श्रुत कहे सो ठीक परन्तु जिसने दश पूर्व सपूर्ण पढे होंय उससे अगाडी चौदह पूर्व तक नियम करके समगत है यदि युक्त श्री कल्प भाष्ये "चवदसदसय अभिन्ने नियमा सम्मत्त सेसयामयणा" पूर्वोक्त अपूर्व कारण उससे निकलकर जो ग्रन्थीको भेदनेके वास्ते वज्ररूपी परिणाम करके तथा भूतसे जीव विशुद्ध मन परणामकी निर्मलता बढनेसे मुहूर्त मात्र अनिवितीं करनेमे गयोयको भन्य भेद करता अन्तर मुहूर्त लगे तिहा बढते परिणामे ग्रन्थी भेदकरी अनिविती करण करे तिस करके अति विशुद्ध परिणाम धारासु मिथ्यात्व मोहनीके पुञ्जकी दो स्थिति होय तिसमें पहली स्थिति अन्तर मुहूर्त वेदे याने एक अन्तर मुहूर्त जो कि कोडा कोडी सागरोपममा पल्योपमका असख्यातवा भाग न्यून, प्रणाम जो स्थिति रहीथी उसमेंसे अन्तर मुहूर्त प्रमाण जुदी खेंचे बाकी शेष रही हुईको जुदो पुञ्जराखे इन दोनों स्थितिके बीचमें जो खाली जगह रही उस अनिवृत्ति करणके जोरसु अन्तर करण करे वो अन्तर मुहूर्तके दलियोंको खपावे और मोटी स्थितिमेंसे आवते दलियोंको उप समावे अर्थात् दबाय देवे, अन्तर मुहूर्त तक उदय न आवे ऐसा करे इसलिये अनवृत्ति करणमें दो कार्य करे एक तो मि थ्यात्व स्थितिके दो भाग करे और अन्तर करण करे और दूसरे अन्तर मुहूर्त वेदे

प्रथम लघु स्थितिको खपावे इतनेमें अनवृत्ति करण काल सम्पूर्ण होय तिस पीछे अगाड़ी अतरकरणमें प्रवेश करे उस वक्त हे नाथ ! आपकी कृपासे क्षायक आदनी पर उत्कृष्टो नहीं पिण सामान्य पणे अल्पकाल उप समनाम समकित पावे सो समकित पानेसे आनन्दकी प्राप्ति होती है सो उपमा करके दिखाते हे कि जेसे कोई पुरुष शूरवीर रण संग्राममें चढे और वैरीको जीते उस वक्त परमाअनन्दको प्राप्त होता है तेउही अनादिकाल का ये राग द्वेषरूप महान् शत्रु तज्जनत अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया लोभ ये चार वैरियोंको जीतकर परमाअनन्द सरीखी समकितको पायकर जो अन्तरकरण करता है और जो आनन्द होता है सो गाथासे दिखलाते हे गाथा–"ससार गिमत वियो ॥ तत्तो गोसी सचदण रसोव्व, अई परम निवु इकर, तस्स तेलइइसम्मत ॥" संसार गिम्म क० कोई बटोई उष्णकालके मध्याह्न समय मरुस्थल देश सरीखे जगलमें चलते हुये सूर्यकी किरणोंकी उष्णतासे तप्त होकर और लूओंकी झपटसे अतिव्याकुल और तृषा जिसको लगरही है इत्यादि अनेक व्याकुलता सयुक्त उस बटोईको उस जंगलमें शीतल मकान मिले फिर कोई उस मकानमें बामना चन्दन का रस उसके ऊपर छीटे और शीतल जल पिलावे उस वक्त उस बटोईको कैसा आनन्द प्राप्त होय इसीरीतिसे यहा भव्य जीवरूप बटोई अनादिकाल का ससाररूप अटवी में उग्र उष्णकाल जन्म मरणादिरूप निर्जल वन मे कषायरूप उग्र ताप करके पीडित और रोग शोक आदि लूहके झपट्टा उन करके जलाहुवा तृष्णारूप मोटी प्यास करके गला सूखता हुवा अत्यन्तपीड़ा पाता हुवा अनवृत्ति करणरूप शुद्धसरल मार्ग दूरसू अन्तरकरणरूप शीतल स्थान देखकर खुश होकर घुसताहुआ उस स्थानमें पमना चन्दनरूपी उपसम समकित को प्राप्त होता हुवा उस वक्त अनन्तानुबधी मिथ्यात्व कृत परिताप अथवा तृषाआदि सर्व व्याधि मिटगई इसरीति से तीन करण का स्वरूप कहा अब इसजगह प्रसङ्गगत सिद्धान्त से और कर्म ग्रन्थ का जो भिन्न २ मतान्तर है उसको किञ्चित् दिखाते हे कि सिद्धान्त मत से तो विराधक समगती समगतसे गिराहुवा अनवृत्ति करणमें जो कही हुई स्थिति उससे उत्कृष्टी कर्मोकी स्थिति न बाधे और दूसरा सिद्धान्तमें यहभी है कि समकितसे गिराहुवा फिर समकित पाय करके कोई जीव एक जीव छटी नारकी तकभी जाय और कर्मग्रन्थ वाला ऐसा कहता है कि जो समकित पाय करके समकितसे पीछा पडे तो कर्मोकी उत्कृष्टी स्थिति नहीं बाधे सो उत्कृष्टी स्थिति ३०,२० और ७० की न बाधे इससे कमती कितनी ही बाधो और दूसरा जो समकितसे पड़ाहुवा फिर समगत पावे तो वैमानिक बिना दूसरी आयू बाधे नहीं यदि युक्त "सम्मत्तमिउलद्ध विमाणवज्जं न बधए आउ । अहवन्न समत जहो, अहवनबधा उ जोपुव्विं ॥" अब ये जो सिद्धान्त और कर्मग्रन्थका जो आपसमें विरोध है इस में जीवोंको कईतरहके विकल्प उठते है सो सिद्धान्तके रचनेवाले तो सर्वज्ञ है जो कोई ऐसा कहे है कि सर्वज्ञकी कहीहुई द्वादशाङ्गी तो बारह वर्ष दु:ख काल आदि पडनेसे साधुओंको कठस्थ न रही इसवास्ते पीछेसे श्री देवर्धीक्षमाश्रमण आदि आचार्योंने साधुवोंको इकट्ठे करके जो कण्ठसूत्र रहे उनका सग्रह करके पुस्तकों लिखा है तो हम कहेहे कि श्री देवर्धीक्षमाश्रमण आदिक आचार्य्य पूर्व धारीये इसवास्ते किंचित् श्रुत केवली

के समानहीथे और कर्म ग्रन्थके कर्त्ताभी गीतार्थ बहुश्रुतये फिर सिद्धान्तसे मतान्तर कहना सो सम्भव नहीं होता इसवास्ते इन दोनो सिद्धान्तकार और कर्मग्रन्थके कर्त्ताका विरोध मिटानेके वास्ते जैसा मेरे अनुभवमें दोनोंका अभिप्राय आता है सो लिखताहू कि देखो सिद्धान्तकार जो कोडा कोडी सागरोपम किंचित् न्यून स्थिति मानते हें सो अभिप्राय यह है कि जो उत्कृष्टी स्थिति कर्मोंकी बांधनेवाली जो अनादिकालकी मिथ्यात्वरूप ग्रन्थीथी सो तो निविड मिथ्यात्वरूप ग्रन्थीको पेश्तर छेदकर समगतकी प्राप्तीकी तो जो अनादि कालसे मिथ्यात्वरूप ग्रथी कर्मोंकी उत्कृष्टी स्थिति बांधतीथी सो तो नष्ट होगई और सम गतसे गिरेहुवे जीवको निविड् मिथ्यात्वरूप अनादिकी ग्रथी तो फिर उत्पन्न होय नहीं इसवास्तेही वह फिर यथा प्रवृत्ति अनिवृत्ति आदिक करण न करे अनादि मिथ्यात्व न होनेसे जो स्थिति सिद्धान्तमे कही है उससे जियाद न बांधे और जो कदाचित् उत्कृष्टी स्थिति मानोंगे तो ग्रन्थी भेद करनेवाला और दूसरा नहीं करनेवाला दोनों बराबर हो जायगे और समगत पायके बाद जो उत्कृष्टा ससारमें रुले तो अर्ध पुद्गल परावर्त्त करे तो इस कहनेकोभी विरोध आजायगा क्यों कि जैसे ग्रन्थी अभेदीभी उत्कृष्टी स्थिति बांधे तैसे ही ग्रथी भेदीभी उत्कृष्टी स्थिति बांधे तो ग्रन्थी भेद करनेका फलही क्या हुवा इसवास्ते कर्मग्रथ करनेवालेका अभिप्राय ऐसा मालूम होता है कि जो सिद्धान्तमें कहा है उससे उत्कृष्टी स्थिति न बांधे क्योंकि उत्कृष्टीस्थिति नबांधे ऐसा कर्म ग्रन्थवाला कहता है इससे हम यह अभिप्राय लेते है कि जो शास्त्रमें कही उससे उत्कृष्टी न बांधे क्योंकि जो गीतार्थ बहुश्रुत होते है सो सिद्धान्तसे विरुद्ध कदापि न कहेगे जो ऐसेही बहुश्रुत सिद्धान्तोंसे विरुद्ध कहेंगे तो फिर सिद्धान्तोंका कहना कौन मानेगे इसवास्ते सिद्धान्तोंमे कही जो स्थिति उससे उत्कृष्टी स्थिति बाँधनेका अभिप्राय कर्मग्रथकर्त्ताका नहीं और इसी रीतिसे जो समकितका पड़ाहुवा फिर समगत पावे और कोई जीव (६) छठे नरकमें जाय तो सिद्धान्त कारका कहना मेरे अनुभवमें ऐसा बैठता है कि छठे नर्ककी आयु बांधेके पीछे समकित पावे वह जीव नरकमें जाय क्योंकि देखो कि कृष्ण श्रेणक आदिकों को आयु कर्म बांधेके बाद समकितकी प्राप्ती हुई इस अभिप्रायसे सिद्धान्तकार कहता है और कर्मग्रथके कर्त्ताका ऐसा अभिप्राय मालूम होता है कि जो आयु कर्म नहीं बांधा होय वह देवलोकके सिवाय दूसरी गतिमें नहीं जाय क्योंकि समकित पायाहुवा जीव ऐसा नरकादि गतिका आयु बांधनेका पापादिक ही न करे कदाचित् जो देवलोकके सिवाय दूसरी गति नहीं जाय तो कृष्ण श्रेणकादिक क्यों नरकमें गये इसवास्ते ऊपर कहे हुवे अभिप्रायसे मतान्तरका विरोध मिटता है आगे तो बहुश्रुत कहे सो ठीक अब जो कोई कहे कि पूर्व आचार्य ऐसे २ होगये उनको ऐसा अभिप्राय न मालूम हुवा कि जो सिद्धान्त और कर्म ग्रन्थकर्त्ताका विरोध मिटाते तो हम कहे है कि जैसा मेरे अनुभवमे अभिप्राय आया वैसा कहा मे कुछ बहुश्रुत नही हूं जो मेरे इस कहनेमें जो कुछ सिद्धान्त व बहुश्रुत से विपरीत होय तो मे मिथ्या दुष्कृत देता हू क्योंकि मुझको अपने वचन कहनेका पक्ष नहीं है क्योंकि मम तो शुद्ध "वीतराग" का मार्ग बहुश्रुत गीतार्थोंके कियेहुवे ग्रन्थोंके आधारसेही कहा है आगे तो जो ज्ञानी बहुश्रुत कहे सो मुझको प्रमाणहै । (प्र०) हम

लोगोंको इस कथनके सुनते ही बडा आश्चर्य पैदा हुवा कि ऐसे (अमृतरूपी) वाक्यको पूरा करते हो आपने मिच्छा दुकडत क्यो दिया कि जिससे हजार हा आदमी तिरजाय क्योकि आपने सिद्धान्त और कर्म ग्रन्थकर्ताके दीखते विरोधको यदिजो निश्चयमे नहीं है इस तरहसे मिलाया कि जो परस्पर फर्क नजर आताथा और जिससे श्रद्धा विपरीति होजातीथी वह बिलकुल मिट गया और यहभी तो है कि आपने ऐसे दीखते परस्पर विरोध मिटानेको जो कोटी लिखी सो सिद्धान्त और कर्मग्रन्थसे विपरीत नही है और आपने किसीको झूठाभी न कहा ? (३०) हे भोले भाइयो ! कुछ इधरतो दृष्टी करो कि 'वीतराग'का मार्ग बहुत नाजुक है अर्थात् इसका रहस्य समझना बहुत कठिन हे क्योंकि देखो जिस चौथे आरेके समयमें जो चौदह पूर्वधारी और छत्तीस गुणके धारण करनेवाले चार ज्ञान सहित आचार्य्य विचरतये उस समयमें कि जिन के सामन सामान्य केवली व्याख्यान न दे और वे आचार्य सभामें व्याख्यान देतेथे कि जिनकी सभामें सामान्य केवलीको आदि लेकर साधु साध्वी श्रावक श्राविका चतुर्विध सघ व्याख्यान सुनतेथे उस समय उन आचार्योंके केवल ज्ञान न होनेसे अर्थात् छद्मस्त होनेसे कोई वचन केवलियोंके ज्ञानसे विपरीति निकलता तो व्याख्यानके बाद केवली महाराज उन आचार्योंसे कहते कि केवली ऐसा देखता है कि तुमने जो वह कहा सो केवलीके देखनेसे भिन्न है तो उसी समय ऐसे आचार्य्य महाराज सभाके समीप कहते कि केवली ऐसा देखते है मैंने जो वचन कहा हे तिसका मिथ्या दुकडत देता हू तो देखो हे देवानुप्रिय ! मैंने अनादि कालसे इस ससार रूपी अटवीमें जन्म मरण करना हुवा इस हुडा सर्पिनी कालके पंचम आरेमें जन्म लिया परन्तु कोई शुभ कर्म उदयसे वीतरागका कहा हुवा स्याद्वाद जिनधर्म चिन्तामणी रत्न मेरे हाथ लगा फिर भगवत् आज्ञा सयुक्त जो चतुर्थ विध सघ तिनके चलाने वाले जो सिद्धान्ती और बहुश्रुत गीतार्थोंके वचन हे उनकी कोई तरहकी असातना होनेके डरसे मैंने मिथ्या दुकडत दिया क्योंकि मुझको इतना भी निश्चय नहीं किमे भव्य हूं वा अभव्य हू इस बातको ज्ञानी जाने तो फिर उस चिन्तमणी रत्नको कि जो शुभ कर्मके उदयसे मुझे प्राप्त हुवा अभिमान रूपी वचन कागलेके पीछे फेंककर अपना बहुल ससार क्यो करू ? इसलिये मेरेको देना उचित था सो दिया, बहुश्रुतके वचन प्रमाण है, प्रसंगसे इतनी बात कही अब ऊपर लिखे धर्माजिव जो समगत पाया हुवा भव्यजीव विवेक वैराग्य षट् सपत्ति मुमुक्षुता ये चार साधन सयुक्त है वो इस द्रव्यका अधिकारी है विवेक उसको कहते हे जिसको हेय उपादेय अर्थात् सत असत्का विचार है कि जैसे मेरी आत्मा सत्य अविनाशी है सो उपादेय है अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है तैसे ही परवस्तु अर्थात पुद्गलविनाशी असत् है सो हेय अर्थात् छोडने के योग्य है इसका नाम विवेक है जिसको विवेक नही उसको वैराग्य आदि कारण सर्व निष्फल है विवेक अर्थात् विचार ही सर्वका हेतु है वैराग्य नाम त्यागका है जो संयमादि क्रिया अनुष्ठान उसके फलकी इच्छा अर्थात् निहाना नहीं करना अर्थात् मोक्षकी इच्छाका भी त्याग उसीका नाम वैराग्य है षट् संपत्ति नाम शम, दम, श्रद्धा, उपराम, तितिक्षा और समाधि है समनाम मनको विषयसे रोककर एकाग्र करना है और इन्द्रिय गणों को अपने विषय से रोकना उसी का नाम दम है और सर्वज्ञ देवके कहे हुये सिद्धान्त उनके सत्य

उपदेश देने वाले गुरुके वचनों पर विश्वास करना उसी का नाम श्रद्धा है और जो संसार के स्त्री पुत्र कलत्र आदि अथवा इन्द्रिय आदिकों के विषय से ऐसा भागे कि जैसे सर्पको देख करके भागतेहैं उसीका नाम उपराम है और क्रिया अनुष्ठान करता हुवा शीत ताप, क्षुधा, तृषा अर्थात् परीसोंको सहता हुवा अपनी संयमरूपी कृतको न छोडे उसी का नाम तितिक्षा है और चित्तकी एकाग्रताका नाम समाधि है और अपने स्वरूपको प्राप्ति और यथारूप कर्मकी निवृत्ति होनेकी इच्छा उसीका नाम मुमुक्षुती है संबध आदि चतुष्टय करनेके अनन्तर वीतरागको उपदेश कहते है सो पहले देव गुरु और धर्मकी परीक्षा में तो इस जगह अब "पदार्थ ज्ञाने प्रति पक्षी नियामका" इससे क्या आया कि पदार्थके ज्ञानके लिये प्रतिपक्षी नियम करके होता है तो पहले देव और गुरु और धर्मके प्रतिपक्षी कुदेव कुगुरु और कुधर्म हुवा इसवास्ते पेश्तर कुदेव और कुगुरु और कुधर्मका स्वरूप दिखाते हैं क्योंकि पहले खोटेको देखकर खोटेको खोटा जानले तो सत्यको देखतेही उसपर विश्वास उसी दम हो जाता है इसवास्ते प्रथम कुदेवका लक्षण कहते हैं जो देव तो है नहीं परन्तु लोगोंने अपनी बुद्धिसे परमेश्वरका आरोप कर लिया है सो उस कुदेवका स्वरूप तो जो हम आगे देवका स्वरूप कहेंगे उसके स्वरूपसे विपरीत होने वालेको सर्व बुद्धिमान् आपही जानेंगे परन्तु किंचित् स्वरूप जो कि श्री हेमाचार्य कृत योगशास्त्रमें कहा है उसको श्लोकसेही दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ "ये स्त्री शस्त्राक्ष सूत्रादि, रागाद्यंक कलंकिता निग्रहानु ग्रहपरा, स्ते देवास्युर्न मुक्तये ११॥ १॥स्त्री जिसके पास होय और शस्त्र अर्थात् धनुष, चक्र, त्रिशूल आदि जिसके पासमें होय और अक्ष सूत्र जपमाला आदि शब्दसे कमंडलु होवे फिर राग द्वेष आदि दूषणोंका चिह्न जिनमें होवे वे कुदेवके लक्षण हैं, शापका देना और वरका देना ये भी कुदेवके लक्षण हैं, स्त्रीका जो संग है सो कामको कहता है शस्त्र जो है सो द्वेषको कहता है जपमाला है सो व्यामोहको कहनेवाली है और कमंडलु अशुचिको कहता है और निग्रह अर्थात् क्रोध करके शाप देकर रोग शोक आदि निर्धनादि नाना प्रकारके दुःखोंमें पटकना यहभी कुदेवके लक्षण है और जो अनुग्रह अर्थात् सुखी हो करके जो देवलोक इन्द्रादि पदवी देना अथवा राज्य आदि पदवी अथवा पुत्र कलत्र धन आदि नाना प्रकारके सुख देनेवालाभी कुदेव है अब देखो देव वा कुदेव प्रत्यक्ष तो है नहीं परन्तु जिसर ने जो २ देवमाने है उन्होंने अपने २ शास्त्रोंके अनुसार अपने २ देवोंकी मूर्ति या चित्र बनायकर जैसा उनके शास्त्रों में लिखा है उस चिह्न संयुक्त मकानों में अर्थात् मन्दिरों में स्थापन कररक्खे है और उनकी सेवा पूजन करते है सो उन मूर्तियों के चिह्नों को देखकर आत्मार्थी देव और कुदेव की परीक्षा आपही करलेगा परन्तु तो भी एक द्रष्टांत लिखते है — उज्जैन नगरीमें राजा भोजके समयमें राजाका जो पुरोहित था उस पुरोहित का कुछ अगाडी का धन उसके घर में था परन्तु उसको मिलता न था सो उस समय मे एक आचार्य उस उज्जैन नगरी में आये सो उन आचार्य्य से उस पुरोहितका आगे से कुछ गृहस्थीपने का परिचय था इसवास्ते वह पुरोहित उन गुरु महाराज के पास में गया और जायकर वन्दना नमस्कार करके उन के समीप बैठगया थोडी देरके बाद कहनेलगा कि गुरुमहाराज मेरे घर मे जो पहले का धनथा सो नही मिलता है सो

आप कुछ कृपाकरो तो वह धन मेरे हाथ लगे तो मेरा मनोर्थ सिद्धहोय तब गुरू महाराज बोले कि भाई ! हमारे को क्या लाभहोगा तो पुरोहित कहने लगा कि महाराज जो मेरे घरका धन मेरे हाथ लगेगा तो मे आपको आधा धन बाटदूगा तब गुरूमहाराज कहने लगे कि देवानुप्रिय ! तू पक्का रहना हम तेरे से आधा लेलेगे इतना कहकर लाभकारण जानकर उसको उपाय बतलाय दिया उस उपाय से उस पुरोहित के घरका धन हाथ लग गया तब वह पुरोहित उस धन में से आधाधन लेकर गुरू महाराज के पास पहुँचा और गुरू महाराज से कहने लगा कि मेराधन मिलगया सो आप ये आधाधन लीजिये उससमय गुरू महाराज कहने लगे कि हे भाई ! इस धनकी तो मुझे दरकार नही क्योंकि साधू तो द्रव्य नहीं रक्खे जब पुरोहित कहने लगा कि महाराज मैने तो आपसे आधे धनका करार किया सो आप लीजिये तब गुरूमहाराज कहने लगे कि हेभाई यह ! धन तो हमको नही चाहिये तेरे घर मे जो धन है उसमें से आधादे तब पुरोहित कहने लगा कि और क्या धन है जिसम से आधादू जब गुरू महाराज बोले कि हे देवानुप्रिय ! तेरे दो पुत्र रूप धनहै तिस में से एक पुत्ररूप आधा धनदे इस बात को सुनकर वह पुरोहित गुम्म होगया और चित्त मे विचारने लगा कि जो पुत्रों को कहू और पुत्र कोई अंगीकार न करे तो फिर मै गुरू महाराज को क्या जवाब देऊगा । उसने ऐसा चित मे विचारकर गुरू महाराज को कुछ उत्तर न दिया और उदास होकर अपने घरको चला आया फिर लज्जाके मारे महाराज के पास न जासका और गुरूमहाराज भी ७ तथा ८ दिवस के बाद वहा से अन्यत्र विहार करगये वह पुरोहित भी कुछ काल के बाद आयु कर्म पूर्ण होने के समय गुरूमहाराज को वचन दिया था उस वचन को विचारता हुवा दुःख पाता था और दोनों पुत्र पास में बैठेहुये थे अपने पिताका हाल देखकर कहने लगे कि हे पिता जी आप किसी चीज मे चित्त मतरक्खो और परलोक सुधारो जो आपकी इच्छा होय सो आप हमारे ऊपर आज्ञा करो हम उस को करेंगे आप कोई तरह की चित्त मे न रक्खो जो आपके दिल में होय सो आप फरमाइये उस वक्त पुरोहित ने सारी बात पिछली कह करके कहा कि मेरे को उस आचार्य गुरू महाराज का ऋण देना है सो तुम दोनो जनो मे से एकजना जायकर उनके पास दीक्षा लो तो मेरा ऋण अर्थात् कर्जा दूर होजाय जो मेरे दिलकी बातथी सो मैने कहदी अब तुम दोनों मेंसे जिसकी खुशी होय सो दीक्षा लो इस बातको सुनकर बडा बेटा तो उदास होकर नीचेको देखने लगा और कुछ न बोला उस समय छोटा पुत्र कहने लगा कि हे ! पिताजी जो आपने फरमाया है सो मै आपके परलोक हो जानेसे १२ दिनके बाद गुरु महाराजके पास जाकर दीक्षा ले लूगा आपकोई तरहकी चिन्ता मत करो अपना परलोक सुधरो मै आपके वचनको पूरा करूगा इतनी बात सुनकर पुरोहित परलोक अर्थात् देवलोकमे गया १२ दिनके बाद उस छोटे लडकेने उस आचार्यके पास जाकर दीक्षा लेली और बडे पुत्रको पुरोहित पदवी मिली सो वह पुरोहित जैन मत वालोंसे द्वेष करने लगा और अनेक तरहके उपद्रव करने लगा और जैनके साधूको जहा तक बनसका वहा तक नगरमें न घुसने देता ऐसा जब उपद्रव होने लगा तब वहाके श्रावकोंने उन

आचार्योंको समाचार भेजा कि महाराज आप इस पुरोहितके भाईको दीक्षा न देते तो क्या जिन धर्ममें साधुवोंकी कमी होजाती इस पुरोहितके भाईको दीक्षा देनेसे इस नगरमें साधु लोगोंका आना प्रायः करके बंद होगया क्योंकि पुरोहित साधुवोंको दुःख देता है साधुवोंके नहीं आनेसे धर्मकी हम लोगोंके बहुत अन्तराय पड़ती है इसवास्ते आप कृपा करके ऐसा उपाय कहिये कि जिससे हमारा सुखसे धर्म ध्यान होवे ऐसी खबर सुनकर आचार्य्य महाराजने उस पुरोहितके छोटे भाईको उपाध्याय पद देकर कहा कि तुम साधुवोंको सङ्ग ले जायकर जो उज्जैन नगरीमें तुम्हारा जो गृहस्थीपनेका भाई है उसका प्रतिबोध देवो कि जिससे वहांके श्रावकोंके धर्मकी अन्तराय दूरहोजाय ऐसा गुरु महाराजका हुक्म सुनकर उसने साधुवोंको साथले वहांसे विहार किया रस्तेमें भव्य जीवोंको प्रतिबोध देते हुवे उज्जैन नगरीके पास आये सायङ्काल देख करके दरवाजेके बाहिर ही ठहर गये रातभर वहीं जगह अपना धर्म ध्यानकरते रहे और प्रात काल अपनी क्रियासे निवृत्त होकर नगरमें प्राप्त होते हुवे दरवाजमें घुसते हुवे उनका गृहस्थीपनेका भाई सामनेसे आता हुआ मिला और उन साधुवोंको देख करके कहता हुवा कि "गर्दभ दन्त भदन्त नमस्ते" इतना शब्द सुनके उपाध्याय महाराज उस पुरोहितसे कहने लगे कि "मरकहास्य वयस्य सुख" जब पुरोहितने ऐसा शब्द सुना तब तो अपने मनमें विचारने लगा कि यह तो मेरा छोटा भाई दीखे ऐसा समझकर लज्जा खायकर कहने लगा कि आप कहां ठहरेंगे उस समय मुनिराज ऐसा कहने लगे कि जहां तुम आज्ञादोगे वहां ही ठहरेंगे इतना वचन सुनकर दरवाजेके बाहिर अपने कामको चला गया और मुनिराज जिस जगह जिन भगवान्‌का मन्दिर था उस जगह दर्शन करनेके वास्ते पहुँचे जब तक मुनिराज भगवान्‌के दर्शन करतेथे उतनेमें श्रावक लोगोंको खबर लगनेसे वे भी आपहुंचे और इधरसे वह पुरोहित भी आपहुँचा और मुनिराजसे विनती करके अपने घरले गया और अपनी आज्ञासे उन साधुवोंको उतार दिये और अपने घरमें उन साधुवोंके वास्ते नाना प्रकारके भोजन तय्यार कराय और आकर साधुवोंसे कहने लगा कि महाराज भोजनके लिये पधारिये तब मुनिराज कहनेलगे कि जो हमारे निमित्त कर उसके घरका आहार हमको न कल्पे इसवास्ते हम दूसरे गृहस्थियोंके घरमें जायगे जैसा शुद्ध आहार मिलेगा वैसा ले आवेंगे जब पुरोहित कहने लगा कि महाराज! वक्त होगया और साधुभी झोली पातरा ले करके गृहस्थियोंके घरमे जाने लगे वह पुरोहित भी उन साधुवोंके संग हो लिया और किसी गृहस्थीके घरमें पहुँच सो उसके और तो आहारका संयोग मिलानहीं परन्तु वह एक दहीकी हांडी लेकर सामने आया और कहा कि यह शुद्ध आहार है जब साधु पूछने लगे कि भाई यह कितने दिनका है उस वक्त गृहस्थी कहने लगा कि दिन चारेकके करीबका होगा साधू कहने लगे कि यह तो हमको नहीं कल्पे जब पुरोहित कहने लगा कि महाराज क्या इसमें जीव पड़ गये तब साधू कहने लगे कि गुरुजाने पुरोहितने उस हांडीको लेलिया और गुरुके पास आया और कहने लगा कि जो इनमें जीव पड गये सो मुझको दिखावो इसमें तो जीवका नाम ही नहीं क्यों तुम लोग वृथा क्रिया कलाप दुःख उठाते हो तब गुरु महाराज कहने लगे कि जो इसमें जीव हम तुम्हारेको दिखादें तो तुम क्या करोगे उस

वक्त इतना वचन सुनकर पुरोहित कहने लगा कि मै आपका धर्म अङ्गीकार करूगा जब गुरु महाराजने उसी समय अरता अर्थात् पोथी मगाय कर पानीसे भिजोयकर उसका मुंह बाधकर धूपमें रखदी उसके धूप लगनेसे उसमे जो सफेद कृमि पडी हुईथी सो ठढक जानकर उस लाल वस्तु पर रिंगने अर्थात चलने लगी जब तो पुरोहितने यह देखकर उनका धर्म अंगीकार किया और श्रावकके १२ वृत ले लिये और जिन धर्मको अच्छी तरहसे मन वचन काय करके पालने लगा और लोगोके जो धर्मकी अंतरायथी सो दूर होकर सुखसे धर्म ध्यान होने लगा फिर कुछ दिनके बाद राजा भोजको किसीने कहा महाराज! आपका पुरोहित जिन धर्मी हो गया सिवाय जैन देवके दूसरेको नही मानता तब राजाने पुरोहितकी परीक्षाके वास्ते नाना प्रकारके पूजनके द्रव्य केसर चदन आदि मँगाय कर थालमें रक्खे और पुरोहितको बुलायकर कहा कि देवकी पूजन कर आवो और आदमियोको साथ भेजे कि यह कहा कहा जाय और किस २ जगह पूजन करे और पुरोहित हाथम थाल लेकर वहासे चला और अपने मनमें विचारने लगा कि किसीने राजासे मेरी चुगली खाई है इसलिये राजा मेरी परीक्षा करता है सो खैर मेरे तो सिवाय वीतराग देवके दूसरा कोई देव नही मे तो वीतराग देवहीकी पूजन करूंगा जो कुछ होना है सो हो जायगा और उस सभासे निकलकर पहले देवीके मकान पर पहुंचा और उस देवीका स्वरूप देखा कि एक हाथमे तो खड्ग और दूसरे हाथमें मनुष्यका शिर कटा हुवा लिये हुये है ऐसा विकरालरूप देखकर वहासे लौट आया फिर शिवके मन्दिरमे गया उस जगह योनिमें लिङ्गका आकार देखकर वहासेभी लौट आया और फिर ब्रह्माके मन्दिरमे पहुँचा उस जगहभी हाथमें माला और कमडलु देखकर लौट गया और फिर रामचन्द्रके मन्दिरमें पहुचा उस जगहभी उनको धनुष बाण हाथमे लिये हुवे देखकर वहासेभी लौट आया फिर श्री कृष्णके मंदिरमें पहुँचा उस जगह स्त्रीको पास बैठी हुई देखकर अपना एक कपडा उनके सामने आडाकर वहासेभी चल दिया फिर श्रीऋषभदेव स्वामीके मंदिरमें पहुँचा और सामनेसे भगवतका शांतिरूप योग मुद्राको देखकर नमस्कार कर विधिसे पूजन करने लगा और जो आदमी उसके पीछे आयेथे वह दम दम राजाको खबर पहुँचाते रहे और आखिरकार खबरदी कि पुरोहितजी तो जिन मन्दिरमें पूजा करनेलगे इधरसे पुरोहितभी पूजनसे निश्चिन्त हो चैत्य वन्दन आदिक करके राजसभामे पहुँचा तो राजा पूछने लगा कि पुरोहित जी पूजन कर आये? जब उसने कहा कि हे राजन्! कर आया तब राजाने पूछा किसका पूजन किया जब पुरोहित कहने लगा कि आपने देवका नाम लियाथा सो मे देवकी पूजन कर आया जब राजाने पूछा कि आप इतने मन्दिरोंमे गये क्या वहा देवपना नही था सो आप सबको छोडकर जिन मन्दिरमेंही गये और उसी जगह आपको देवकी प्रतीति हुई तब पुरोहित कहने लगा कि हे राजन्! जो मैं कहता हू सो ध्यान देकर सुनो कि जब मै देवीके मकान पर गया तो विकरालरूप देखकर मुझको भय मालूम हुवा सो पूजन न करसका फिर मैं महादेवके मन्दिरमें गया सो मैंने योनिमे लिङ्ग देख कर विचारा कि इनके चरण तो है ही नही तो नमस्कार किसको करूं फिर मस्तकभी इनके नही है केशर चन्दनादि किसको इसलिये वहासेभी चल दिया और ब्रह्माके

मन्दिरमें पहुँचा वहाभी देखा कि वे माला लिये जप कर रहेथे तो मेंने विचारा कि यह तो किसीका जप कर रहे हैं सो देव औरही है जिसका यह जप करते हैं फिर मैं रामचन्द्रके मकान में पहुचा तो धनुष बाण हथियार सजे देखकर विचार करने लगा कि यह तो युद्ध के लिये तय्यार हुवे हैं तो इनका कोई शत्रु है जिसके शत्रु है उसमे देवपना कदापि न होगा देवके शत्रुका काम क्या फिर वहासे लौटकर मैं कृष्णके मकानपर पहुँचा तो उनके पास औरतको देखा और मुझे बडी शरम आई और दिलमें विचारने लगा कि नीतिशास्त्रमें कहा है कि जिस जगह दो मनुष्य बैठे हो उस जगह तीसरेको नहीं जाना चाहिये और जिस जगह स्त्री पुरुष हों उस जगह विशेष करके नहीं जाना चाहिये इस शर्मसे मेंने अपना कपडा ढक दिया कि और कोई इनको आयकर न देखे और वहासे चलकर श्री वीतराग अरिहतके मन्दिरमें पहुँचा और शातरूप निर्विकारी योग मुद्रा पद्मासन दृढ ध्यान देखकर चित्तमें विचारने लगा कि राजाने जो देवका पूजन कहा है सो देवपना इस में है इस के सिवाय दूसरा देव जगत् मे कोई नहीं क्योंकि जो देव आप तिरा होगा वोही दूसरे को तारगा इसवास्ते हे राजन्! मेंने उस देवाधि देव का पूजन किया जो आप कहते कि फलाने का पूजन कर आओ तो मै उसी का कर आता इसवास्ते मेंने देव की परीक्षा करके देवकी पूजन की। पुरोहित की इतनी बात सुन राजा चुप हो रहा और पुरोहित जी फिर सुख से अपने धर्म ध्यान में मग्न अपनी आत्मा का कल्याण करने लगा॥ अब बुद्धिमान् पुरुषों को अपनी बुद्धि से देव और कुदेव का स्वरूप जान लेना चाहिये और कुगुरु का वर्णन हम पीछे कर आये हैं क्योंकि जो अनात्मा का उपदेश करने वाले और शुद्ध देव का स्वरूप न बताने वाले और अपने भ्रमजाल मे फँसाने वाले और ससार मे जन्म मरण कराने वाले हैं वही कुगुरु हैं और जो हम गुरु का लक्षण कहेंगे उसस भी कुगुरु की प्रतीति हो जायगी जो कुदेव और कुगुरु का उपदेश है वही अधर्म है अब इस निष्प्रयोजन को बहुत बढाने से सरा अर्थात् लिखाना ठीक नहीं है अब शुद्ध देव का स्वरूप कहते हैं—'सर्वज्ञ वीतराग अरहत देव'। अब अरहत का लक्षण कहते हैं कि अरहत शब्द के तीन भेद हैं— १ अरुहत २ अरह ३ अरिहत। तो नाह रुहो अकुरा यस्य स अरुहत २ अर्थात् नहीं है जन्म मरण रूपी अकूरा जिसमे उसका नाम अरुहत ऐसा कौन २ कि सिद्ध भगवान् हैं और अरह शब्द जो है सो पूजावाची है अर्थात् पूजनेके जो योग्य उस का नाम अरहत इन्द्रादि देवता और चक्रवर्ती को आदि लेकर जो मनुष्य इस का पूजन अर्थात् सेवा करने के योग्य हो सो कौन है कि श्री तीर्थंकर महाराज चतुर्विध सघ के स्थापन करके तीर्थ को चलाने वाले उन का नाम अर्ह है, और अरिहत उस को कहते हैं कि अरि जो वैरी तिस को जो हने सो अरिहत सो अरिहत दो प्रकार का है एक तो लौकिक २ लोक उत्तराश्रय लौकिक अरिहत, राजा आदिक को कहते हैं क्योंकि राजा आदिक भी अपने शत्रु को हनते हैं और लोक उत्तर का लक्षण यह है कि 'चित्त वारि कर्मा निर्यति याने केवल मुत्तपादय इति अरिहत'' और लक्षण उस को कहते हैं कि जिस मे अति व्याप्ति और अव्याप्ति और असभव ये तीन दूषण न हों अब इन तीनों को दृष्टांत देकर बतलाते हैं जैसे कि गाय सींग वाली होती है तो अब

इस लक्षण से बकरी भैंस इत्यादि सींगवाले सब जानवर आगये यह अति व्याप्ति है क्यो-कि जो लक्षण बहुत जगह चला जाय उसी को अति व्याप्ति कहते हैं, अव्याप्ति उस को कहते हैं कि जो सिर्फ एक देश में रहकर सर्व सजाती का स्वरूप न कहे जैसे गऊ काली होती है तो देखो गऊ काली भी होती है पीली भी होती है इसलिये सर्व गौवों का लक्षण न हुवा इसलिये अव्याप्ति हुवा असम्भव उस को कहते हैं कि जिस चीजका लक्षण करे उस का तो एक अंशभी न आवे और दूसरी जगह चलाजाय जैसे एक खुरवाली गऊ होतीहै तो एकखुरतो गधे वा घोडे के होता है और गऊ तो दो खुर ही होती है तो गाय में एक अंश भी लक्षण का न गया इसलिये असंभव हो गया तो गाय का असल लक्षण क्या हुवा कि जैसे गऊ के सास्नन् अर्थात् गले का चमडा लटकता हुवा और सींग और पूंछ हो उस का नाम गाय है इस लक्षण से सर्व गायों की प्रतीति हो जायगी अर्थात् गऊ के सिवाय और में यह चिह्न न पावेंगे। इसी रीति से सब जगह लक्षण का स्वरूप जान लेना ऐसे ही श्री अरिहंतका लक्षण जान लेना कि चार कर्मघाती को हने और केवल ज्ञान केवल दर्शन प्रगट अर्थात् उत्पादन करे ऐसा जो अरिहंत सो देव है अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि कर्मों को जब हन नाम मारे तो फिर इन को अहिंसक कैसे कहना तो हम कहते हैं कि हे भोले भाइयो! जिन आगमके रहस्य को जान और हिंसा का स्वरूप देख क्या होता है कि "प्राण वियोग अनुकूल व्यापारः इति हिंसा" अर्थ—कि प्राण जुदे होने का व्यापार करना उस को हिंसा कहते हैं सो इस जगह कर्म जो है सो पुद्गल अर्थात् अजीव है इस अजीवरूपी कर्मो में कोई प्राण है नहीं इसलिये कर्म हनने में हिंसा न हुई अब इस जगह सजाती विजाती की चौभंगी दिखाते हैं, सजाती नाम किस का है कि जिस का लक्षण गुण एक मिले जैसे जीवका लक्षण उत्तराध्ययनजी में ऐसा कहा है (गाथा) "नाणंचदं सणंचेव चारित्रंच तवो तहा वीरियं उव ओगोय एवं जीवस्स लक्षणं॥" अर्थ—१ज्ञान २ दर्शन ३ चारित्र ४ तप ५ वीर्य और ६ उपयोग ये छः जीवके लक्षण हैं इस से वि-जाती वह है जिस में यह लक्षण न मिले, तो सजाती तो कौन ठहरा कि जीव और वि-जाती पुद्गल अर्थात् कर्म अजीव है इन दोनो की चौभंगी उत्पन्न होती है कि १ जीव को जीवहने, २ जीवको अजीव हने, ३ अजीव को जीवहने और ४ अजीव को अजीव हने (प्रथम भंगा) जैसे मोटामच्छ छोटेमच्छको खाजाय, अब देखो इनकी आपस में सजाती है परन्तु क्षुधारूप वेदनी के जोर से वह उसको खाता है वह क्षुधा जो वेदनी कर्म की होने से पुद्गलीक अर्थात् अजीव है परन्तु उस विजातीके लिये उस स्वजाती को खाता है अर्थात् हनता है तैसे ही कोई राजा आदि लोभ के वश हुवा थका दूसरे राजा का देश लेने के लिये उसपर चढाई करे और उसको मारे और उसका देश ले अब देखो प्रत्यक्ष राजापने से या मनुष्यपने से वा जीवपने से स्व-जाती है परन्तु लोभ दशा अर्थात् तृष्णाके लिये उस स्वजाती को हनता है किन्तु अ-ज्ञान वश अजीवके वास्ते हनता है सो उस स्वजाती जीव के भी दो भेद हैं १ द्रव्य २भाव उस राजा के प्राण जुदेकिये सो तो द्रव्य जीवको हना अर्थात् द्रव्य हिंसा हुई और भाव करके उस राजा के हनने से जो बाँधा कर्म उससे जो अपने आत्म प्रदेश के गुण

को हनन किया क्योंकि जन्म, मरण, घातन से जीवने जीव को हना यह पहला भागा हुवा (द्वितीय भागा) क्योंकि देखो ठाणाग जी मे कहा है। " एगेआया जीवा " इसलिये जीव सरीखा गुण लक्षण होने से स्वजाति हुवा अब इस जीव के लक्षण से भिन्न अ जीव अर्थात् अचेतन चेतना करके रहित वह विजाती अजीव हुवा उस अजीव के पाच भेदहै १धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ काल, ५ पुद्गलास्तिकाय इन पाच में से चार को तो हने नही पाचवा जो पुद्गल अजीव उसके भी तीन भेद है १ विश्रसा २ मिश्रसा ३ प्रयोगसा इन तीनों में से विश्रसा का तो कुछ जरूर है नही और मिश्रसा, प्रयोगसा के ही आठ भेद हैं—१ ज्ञानावर्णी, २ दर्शनावर्णी, ३ वेदनी ४ मोहनी ५ आयू ६ नाम ७ गोत्र ८ अन्तराय यह आठ हे इन्हीकी आठ वर्गणाभी होती ह १ उदारिक वर्गणा २ वैक्रिय वर्गणा ३ आहारिक वर्गणा ४ तजस वर्गणा ५ भाषा वर्गणा ६ उस्वास वर्गणा ७ मनोवर्गणा ८ कारमाण वर्गणा यह आठ वर्गणा कही दो परमाणु इकट्ठे होनेसे द्वयणुक खध होता है च्यार परमाणु मिलनेसे चतुर णुक खध होता है ऐसेही असख्यात् परमाण मिलनेसे असख्यातका खध होय और अनन्ता प्रमाण मिलनेसे अनन्ताका खध होय परन्तु इस पुद्गल परमाणुका खध सर्व जीवको ग्रहण करने योग्य नहीं है परन्तु अनानपनस लेता है देखो कि अभव्यसे अनन्त गुणे परमाणु इकट्ठे होय तब एक उदारिक वर्गणा लेने योग्य होती है इस उदारिकसे अनन्त गुणे पर माणु इकट्ठे होय तब वैक्रिय प्रमाण वर्गणा लेनके योग्य होती है अब एक २ वर्गणासे अनन्त गुणी बढती हुई मनोवर्गणासे अनन्त गुणे परमाणु इकट्ठे होय जब कारमाण वर्गणा लेनेके योग्य होती है पहिलेकी च्यार वर्गणा तो बादर है उसमे २० गुण पाते है ५ वर्ण ५ रस २ गध ८ स्पर्श पिछले चार सूक्ष्म है जिसमे वर्ण गन्ध रस तो उतनेही पावें परन्तु स्पर्श चारही पावे सब मिलकर १६ पावें और एक परमाणुमे ५ गुण होय १ वर्ण १ रस १ गध और दो स्पर्श इस रीतिसे पुद्गलके अनेक विचार है अब जो पुद्गल अजीव है सो जीवका गुण नहीं क्योंकि अचेतन है इसलिये विजाती है उस अजीव कर्म रूप पुद्गलको आत्मा अर्थात् जीव हने यह दूसरा भागा॥ हुवा अब अजीव जीवको हने जैसे कर्म रूप पुद्गल आत्माके गुणोंको दबावे अर्थात् घातकरे क्योंकि देखो ८ कर्म आत्माके ८ गु- णोंका घात करते है कि ज्ञानावर्णी १० अनन्त ज्ञानको दबाता है और दर्शनावर्णी अन- न्तदर्शनको दबाता है इसी अनुक्रमसे अनन्तो अव्याबाध अनन्तो चारित्र अनन्तो अवगा हना अरूपी अगुरु लघु अनन्त वीर्य यह गुण हने जाते है इसवास्ते कर्मरूपी अजीवने जीवको हना यह तीसरा भागा हुवा (चतुर्थ भागा) अब चौथा भागा कहते है कि अजी वको अजीव हने जैसे मट्टीका घडा अजीव रक्खा है उसके ऊपर दीवारसे कोई ईंट गि- रपडे और वह घडा फूट जाय इस तरहसे अजीवने अजीवको हना यह चौथा भागा हुवा॥ इन चार भागोंमे स जो दूसरे भागेसे कर्मरूप अजीवको हननेवाला है उसीका नाम अरिहत है अब इस अरिहन्त वीतरागको देवबुद्धि निमित्त कारण माननेवाले भव्य जीव ससारसे तिरेंगे सो भी अरिहतदेव का ५७ वाले दरके स्वरूप दिखाते है सो वे ५७ बोल यहहै—१ व्यवहार २ निश्चय ३ द्रव्य ४ भाव ५ सामान्य ६ विशेष ७ नामनिक्षेपा ८ स्थापना निक्षेपा

९द्रव्य निक्षेपा १० भाव निक्षेपा ११ प्रत्यक्ष प्रमाण १२ अनुमान प्रमाण १३ उपमान प्रमाण १४ आगम प्रमाण १५ द्रव्यथी १६ क्षेत्रथी १७ कालथी १८ भावथी १९ अनादिअनत २० अनादिसशात २१ सादि सशात २२ सादि अनन्त २३ नित्य पक्ष २४ अनित्यपक्ष २५ एक पक्ष २६ अनेक पक्ष २७ सत् पक्ष २८ असत् पक्ष २९ वक्तव्य पक्ष ३० अवक्तव्य पक्ष ३१ भेद स्वभाव ३२ अभेद स्वभाव ३३ भव्य स्वभाव ३४ अभव्य स्वभाव ३५ नित्य स्वभाव ३६ अनित्य स्वभाव ३७ परम स्वभाव ३८ कर्ता ३९ कर्म ४० करण ४१ सप्रदान ४२ अपादान ४३ अधार ४४ नैगमनय ४५ सग्रहनय ४६ व्यवहारनय ४७ ऋजु सूत्रनय ४८ शब्दनय ४९ समभिरूढ नय ५० एवम् भूत-नय ५१ स्यात अस्ती ५२ स्यातनास्ती ५३ स्यातअस्ति नास्ति ५४ स्यात अवक्तव्य ५५ स्यात अस्ति अवक्तव्य ५६ स्यात नास्ति अवक्तव्य ५७ स्यात अस्ति नास्ति युगपद अवक्तव्य ॥ अथ (१) व्यवहारसे देवका स्वरूप कहते है कि जो १८ दूषण करके रहित और १२ गुण करके सयुक्त और ३४ अतिशय ३५ वाणी करके जो सयुक्त हो उस-को व्यवहार करके देव कहते है। १२ गुणमें चार तो मूल अतिशय और ८ महा प्रतिहार है यह शास्त्रोंमे प्रसिद्धहै इसलिये नही लिखे और अन्तराय कर्मके नष्ट होनेसे पाच लब्धि पैदा होती है दान देनेमें अतराय सो प्रथम दोषहै और (२) लाभ अन्तराय (३) वीर्य अन्तराय (४) भोगअन्तराय और (५) उपभोग अतराय और (६) हास्य (७) रति अर्थात् प्रीति (८) अरति (९) भय सो सात प्रकारका है (१०) जुगुप्सा अर्थात् किसी मलीन वस्तुसे जुगुप्सा (घृणा) करना (११) शोक अर्थात् चिन्ताकरना (१२) काम नाम स्त्री पुरुष नपुसक इन तीनों वेदोका विकार (१३) मिथ्यात्व (१४) अज्ञान (१५) निद्रा (१६) अविर्त (१७) राग (१८) द्वेष। ये ऊपर लिखे १८ दूषण जिसम न हो जिसमें एकभी दूषण पावे वह व्यवहारसे देव नही। एसेही ३४ अतिशय ३५ वाणीका विस्तार शास्त्रोमें कहाहै इसलिये मैने नही कहा और प्रसिद्धभीहै ॥ अब (२) निश्चय देव का स्वरूप कहते है-निश्चय देव अपनी ही आत्मा है, सग्रह नय की सत्ता देखता हुवा जीव स्वरूप ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्यमयीशक्तिभाव, अर्थात् वो भाव मे सिद्ध के समान तरण तारण अपनी आत्मा ही है क्योंकि उपादान कारण है और पंच परमेष्ठी से अधिक है. श्री हेमाचार्य वीतराग स्तोत्र में कहते है.- "य. परात्मा पर ज्योति परम परमेष्ठिन। आ-दित्यवर्ण तमसः परस्तादामनतिय ॥ १ ॥ सर्व येनोदमूल्यत समूला. क्लेशपादपा " इत्यादि ॥ अब (३) द्रव्य देव का स्वरूप कहते है कि जिस वक्त तीसर भव मे पुन्यानबन्धी पुण्य के उदय से तीर्थंकर नाम गोत्र बाधा अथवा देवलोक वा नारकी में जो तीर्थंकर का जीव है वह नैगम नय के आगामी भेद की अपेक्षा लेकर द्रव्य देव है (४) भाव देवः-भाव देव जब कहेंगे कि जब देवलोक वा नारकी से आयकर माता के पेट मे उत्पन्न होवे और तीन ज्ञान सहित हो और माता १४ स्वप्न देखे उस वक्त म इन्द्र अवधि ज्ञान से देखकर नमो थुण आदि स्तुति करे इस जगह पूजा आतिशय अरह इस शब्द की अपेक्षा करके भाव देव है। (५) सामान्य देव का स्वरूप कहते है-अरहत ऐसा नाम लेन से सर्व देव समान्य पने से आती हुवे क्योंकि इस में जिसने चार कर्म क्षय किये और

केवल ज्ञान उत्पन्न किया अथवा जो तीर्थंकर आदि सर्व है वे सामान्य पनेसे इस अर्हत शब्दमें प्राप्त हुवे इसलिये सामान्य देव अरहत है अथवा सर्व तीर्थंकर या सामान्य केवलीने जो स्वरूप देखा उसमें किसीके कहनेमें फर्क न पडा अथवा अनत ज्ञान, अनत, दर्शन अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य ये सर्वका सामान्य होनेसे सामान्य देव कहते है । (६) विशेष देवका स्वरूप ऐसा है–कि जो तीर्थंकर होते हैं उनके श्रीगण धरादिक साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका जबतक शासन रहे तबतक उनही की विशेषता मानते ह क्योंकिवे श्रीतीर्थंकर महाराजजी निष्कारण उपकारी है जैसे कि वर्त्तमान कालमें श्रीमहावीर स्वामीका आश्रय लेकरके जो कथन करते है और तीर्थंकरोंका नाम नहीं लेते इसलिये विशेषता वर्तमान कालमें श्री महावीर स्वामीकी है यह विशेष देव हुवा अब ४ निक्षेपका स्वभाव कहतेहे–(७) नामदेवको कहतेहे–कि जैसे अरहत ऐसा नाम लेनेसे परमेश्वरका बोध होता है अथवा (नामदेव) जो किसीका नाम (देव) ऐसा हो यह नामदेवका स्वरूप है । अब (८) स्थापना निक्षेपासे देवका स्वरूप कहतेहै–स्थापनाके दो भेदहे एक तो अकृत्रिम दूसरे कृत्रिम अकृत्रिम तो उसे कहतेहे जो सास्वती जिन प्रतिमा है जैसे देवलोकमें और नन्दीश्वर द्वीप, मेरु आदिक पर्वतोंमें जो जिन प्रतिमाहे और कृत्रिमके भी दो भेदहे १ असद्भूत २ सद्भूत अद्भूत उसको कहतेहे कि जिसमें कोई आकार न हो और किसी चीजको स्थाप देना । जैसे चन्दन आर्य आदिककी स्थापन पच परमेष्टीकी करतेहे, और सद्भूत उसको कहतेहे कि जैसा भगवान्‌का आकार था उसी ममूजिब चित्र अथवा पाषाण आदिमें ज्योंका त्यों आकार बनाना उस आकारमें कोई तरहकी कसर न हो जैसे वर्तमान कालमे मंदिरोंम जो मूर्ति स्थापन की जाती है उस मूर्तिके देखनेसे साक्षात् देवकी प्रतीति होना इसका नाम स्थापना है इस स्थापनाकी पूजनकी विधि तो जिस जगह श्रावकको मंदिरमें जानेकी विधि कहेंगे वहा कहेंगे । अब (९) द्रव्य निक्षेपासे देवका स्वरूप कहतेहे द्रव्य निक्षेपाके दो भेदह १ आगम २ नो आगम आगमसे जो देवका स्वरूप जाने परन्तु उपयोग न हो "अन उपयोगो द्रव्य" इति वचनात् । अब नो आगम द्रव्य निक्षेपके तीन भेद होतेहै १ ज्ञेय शरीर २ भव्य शरीर ३ तदव्यतिरिक्त शरीर अब ज्ञेय शरीर उसको कहतेह कि जैसे तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी निर्वाण अर्थात् मोक्ष पधारेथे उस शरीरका जब तक अग्नि सस्कार न हुवा और वह जितनी देर तक रहा उस शरीरका ज्ञेय शरीर द्रव्य निक्षेपा कहतेहै अथवा जो कोई देवका स्वरूप भव्य जीव भाव करके जानता हो उसका जीव तो परलोक चला गया हो उसके शरीरको भी ऐसा कहेंगे कि देवका भाव स्वरूप जानने वालेका यह शरीरहे इसकोभी द्रव्य निक्षेपा ज्ञेय शरीर कहतेह और भव्य शरीर द्रव्य निक्षेपाका स्वरूप ऐसा है कि जब तीर्थंकर महाराज माताके पेटमेंसे जन्म लेकर बाल अवस्थामें रहतेहे उनका जो शरीर है उसको भव्य शरीर द्रव्य निक्षेपा कहतेहे अथवा किसी भव्यजीवको बाल अवस्थामें किसी आचार्य्यने ज्ञानसे देखा कि यह भव्य शरीर कुछ दिनके बाद भाव करके देवका स्वरूप जानेगा उसकोभी भव्य शरीर द्रव्य निक्षेपा कहतेहे । (१०) भाव निक्षेपाका स्वरूप कहतेहे कि जिस वक्तमें तीर्थंकर समोसरणमे विराजमान चतुर्विदसघ १२ परखदामें भव्य जीवोंको उपदेश देतेहे, उस वक्त देवका भाव निक्षेपा कहतेहैं अथवा कोई भव्यजीव देवका यथावत् स्वरूप जानकर अपने भावमें उसको

निमित्त कारण अङ्गीकार करे और जो अपने गुण प्रगट करनेके वास्ते भाव देव माने इस कोभी अपेक्षासे भाव निक्षेपा कहतेहै। (११) प्रत्यक्ष प्रमाणसे देवका स्वरूप कहतेहैं कि जैसे जिस कालमें इस भरत क्षेत्रमें केवल ज्ञान संयुक्त तीर्थंकर विचरतेथे उस वक्त जो लोग देखतेथे उन देखनेवालोंको वो प्रत्यक्ष देवथे या जैसे महाविदेह क्षेत्रमें केवली तीर्थंकर महाराज उपदेश देते हुवे विचरतेहै वेभी प्रत्यक्षदेवहै अथवा उन प्रत्यक्ष देवोंको देखकर जो उनके आकारसे चित्र अथवा मूर्ति बनाई है उससे वो प्रत्यक्ष देव है क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि जिन प्रतिमा जिनके समान है (१२ , अनुमान प्रमाणसे देवका स्वरूप कहतेहै–अनुमान किसरीतिसे है कि जैसे धूमको देखनेसे अग्निका अनुमान होता है कि अग्नि है इसीतरह वचनके सुननेसे पुरुषका अनुमान होताहै तो इस जगहभी पक्षपात रहित अमृतरूपी स्याद्वाद अनेकान्त करके संसारका स्वरूप मोक्षका मार्ग बतायाहै ऐसे वचनों करके मालूम होता है कि कोई सर्वज्ञ देव है अथवा उसका चित्र वा मूर्ति देखनेसे अनुमान करतेहै कि जैसे यह मूर्ति शांति ध्यानारूढ पद्मासन लगाये है और अविकारी है इसके देखनेसे भव्य जीव अनुमान करतेहै कि जिसकी यह मूर्ति है उसकाभी स्वरूप शान्त ध्यानारूढ पद्मासन अविकारी है कोई देवही होगा इस अनुमानसे देवका स्वरूप कहा। (१३) उपमा प्रमाणसे देवका स्वरूप कहतेहै–कि जैसे लोक व्यवहारमें कहतेहै कि यह पुरुष कैसा वीतराग है इस वीतराग शब्दकी उपमा देनेसे सिद्ध होताहै कि कोई वीतराग था कि जिसकी उपमा देतेहै अथवा जैसे श्रेणकका जीव आवती चौवीसी में तीर्थंकर होगा तो उनकी उपमा देते है कि जैसे इस काल में श्री महावीर स्वामी हुये उस मुवाफिक श्री पद्मनाथ स्वामी होंगे वर्त्तमान काल के चौवीसवे तीर्थंकर की भविष्यत् काल में होनेवाले प्रथम तीर्थंकर है उनको उपमा देकर वर्णन किया यह उपमा प्रमाण हुवा (१४) आगम प्रमाण से देवका स्वरूप कहते है कि जो आगमों में देव का स्वरूप लिखा है कि ३४ अतिशय ३५ वाणी इत्यादि अनेक प्रकार करके आगमों में बहुत वर्णन किया है सो यहा लिखने की कुछ जरूरत है नही क्योंकि आगम में प्रसिद्ध है इस करके देव का स्वरूप कहा (१५) द्रव्य थी देव का स्वरूप कहते है सो द्रव्यथीके दो भेद है १ लौकिक २ लोकउत्तर लौकिक देव तो उसको कहते है कि जो भवन पति, व्यतर, ज्योतिषी वैमानिक है जैसे अमरकोष मे कहा है कि " अमरा निर्जरा देवा " इन को लौकिक में द्रव्यथी देव कहते है लोक उत्तरदेव उसे कहते है कि जिस समय में तीर्थंकर महाराज दीक्षालेकर चार ज्ञान सहित विचरते थे अथवा केवल ज्ञानी केवल ज्ञानकरके सहित देशना न देवे उसवक्त में द्रव्यदेव होते है इस रीति से द्रव्यथी देवका स्वरूप कहा। (१६) क्षेत्र थी देवका स्वरूप कहते है–कि जिस क्षेत्र मे तीर्थंकर विचरे उसको क्षेत्रथी कहते है जैसे १५ कर्म भूमि इस में ५ भर्त और ५ अईर वृत और ५ महाविदेह इन १५ क्षेत्रों में विचरने वाले जो है उस में भी जैसे भरत क्षेत्र में २५ आर्य्य देश कहे तथा जिन क्षेत्रों में तीर्थंकरों का गर्भ उत्पत्ति जन्म दीक्षा केवल ज्ञान निर्वाण होय या केवल ज्ञानी विचरे उनको क्षेत्रथी देव कहिये (१७) कालथी देवका स्वरूप कहते है कि जिस काल में तीर्थंकरो का जन्म अथवा दीक्षा होय या केवल ज्ञान होय जैसे श्री ऋषभदेव स्वामी

तीजे आरे में उत्पन्न हुये जबसे लेकर २४ में श्री महावीरस्वामी चौथे आरे के अन्त मे मोक्ष गये तो इन दश क्षेत्रों की अपेक्षा से काल इसी रीतिसे लिया जायगा और पाच महाविदेह क्षेत्रकी अपेक्षा करके तो काल शास्वता है क्योंकि उन क्षेत्रा में कोई समय ऐसमा नही कि जिस समय मे तीर्थंकरवा केवली न पावे ये काल से देवका स्वरूप कहा । (१८) भावथी देवका स्वरूप कहते है कि जिस समय समोसरण मे बैठेहुये भव्य जीवो को प्रतिबोध देते है आत्मा का स्वरूप बताय कर भव्य जीवों को मोक्ष में पहुँचाते है उस समय में भावथी देव कहना चाहिये यह भावथी देवका स्वरूप हुवा । (१९) अब अनादि अनन्त भागे से देवका स्वरूप कहते है—कि अनादि अनन्त शब्द का अर्थ यह है कि–जिस की आदि नही और अन्त नही उसको अनादि अनन्त कहते है तो देखो कि ' अरिहत ' इस शब्द को अनादि अनन्त कहते है क्योकि यह शब्द कब उत्पन्न हुवा सो नहीं कह सके और यह शब्द कभी नष्ट होजायगा येभी नही कहसके इसलिये नाम से अनादि अनन्त देव हुवा स्थापना स जो कि शास्वती जिन प्रतिमा है क्योंकि न तो वे किसी की बनाई हुई ह और न कभी उन जिन बिम्बो का अभावहोगा इसलिये स्थापना करके अनादि अनन्त है महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा करके एकसा कभी न होगा कि उस जगह छद्मस्थ तीर्थंकर न पावे और इसी क्षेत्रकी अपेक्षा करके कभी भाव तीर्थंकर न पावे न पायेगे ऐसा कोई काल मे न होगा इसरीतिसे अनादि अनन्त देवका स्वरूप हुवा । (२०) अब अनादि शात भागे से देवका स्वरूप कहते है—जो कोई भव्य जीव व्यवहार नयसे देव को मानता हुवा और ऋजुसूत्र नयसे अपने मे ही देवपना उपयोग देकर मानने लगा अथवा आठवें गुण ठाणे वाले जीवने क्षेपक श्रेणी करके बार में गुण ठाणे में अपना देवपना प्रगट किया तो जो अन्य को अनादि से देव बुद्धिमान् तथा यह बुद्धि अन्यका देव मानने की अनादि की थी सो उसजगह शातहोगई यह अनादि शात भागे से देवका स्वरूप कहा । (२१) अब सादि शाति भागे से देवका स्वरूप कहते है—कि जो भव्यजीव व्यवहार नय से आवर भाव जो तीर्थंकरा का देवपना है उस को निमित्त कारण मानकर स्तुति करता है और ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से क्षोधान रूप अपनी आत्मा मे उपयोग देता हुवा अपने ही को देव मानता हुवा फिर ऋजुसूत्र नय का उपयोग दूर होवे तब व्यवहार नयसे अरिहत को देव मानने लगा तो अपनी आत्मा को देव माना उस की आदि है फिर जब अरिहत को देव माना तो अपनी आत्मा को देव माना था तिस का अन्त हुवा अथवा दूसरी रीति से कि जिस वक्त शुद्ध देवको देव बुद्धि करके मानता है उस वक्त तो शुद्ध देव मानेकी उत्पत्ति नाम आदि हुई और फिर मिथ्यात्वके प्रकृत उदय होनेसे शुद्धदेवको छोड़कर कुदेवको माननेलगा इस रीतिसे सादि शाति भागेसे देवका स्वरूप कहा ॥ (२२) अब सादि अनन्त भागसे देवका स्वरूप कहते है कि देखो जो तीर्थंकरोंके नाम गोत्र कर्म करके उदयसे जब देवपना प्रगट हुवा उस देवपनेके प्रगट हानेकी तो आदि है फिर देवपना उनका कभी मिटेगा नहीं इसलिये सादि अनन्त हुवा अथवा जिस किसी भव्य जीवने चार घन घाति कर्मोको क्षय करके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त

वीर्य प्रगट किये और जो प्रगट हुआ देवपना उनकी तो आदि है और उस देवपनेका कभी अन्त नहीं होगा इसलिये अनन्त है यह सादि अनन्त भागेसे देवका स्वरूप कहा। (२३) अब नित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हे-कि देव जो है सो नित्य है क्योंकि सिद्धकी अपेक्षा करके देव नित्य ह अब कोई ऐसी शङ्का करके चार घाति कर्म क्षय करे उसको देव माना है फिर सिद्धिमें क्यो घटाते हो तो हम कहते हे कि देखो अरिहत यह शब्द नित्य है अब यहा कोई ऐसी शङ्का करे कि जिस वक्त सर्पनी उत्सर्पनी कालके बीचमे जो धर्मका बिल्कुल उच्छेद हो जाता है फिर नवीन तीर्थकर नोकारादि बताते हे जैसे अब प्रथम श्री ऋषभदेव स्वामी उत्पन्न हुयेथे उनके पेश्तर तो नोकार कोई नही जानता था श्री ऋषभदेव स्वामीके पीछे "णमो अरिहंताण" इस पदको जानने लगे ऐसेही पञ्चमे आरेके अन्तमें जन धर्म विच्छेद होगा तो नोकारभी विच्छेद हो जायगा फिर जब श्री पद्मनाथ तीर्थंकर उत्पन्न होंगे तब फिर "णमो अरिहताण" इस पदको जानेंगे इसलिये यह अनित्य ठहरा तो इस शङ्काका समाधान यह है कि-"००णमो अरिहताण" यह पद तो नित्य है परन्तु धर्मके जानने वालेके अभावसे इस पदका ओधान होगया इसलिये यहपद नित्यही दूसरा ठहरा समाधान यह है कि महाविदेह क्षेत्रमें इस पदका किसी कालमें ओधान नही होता है और उस महाविदेह क्षेत्रमे द्रव्य और भाव करकेभी अरिहतका किसी कालमे अभाव नही इसवास्ते देव नित्य ठहरा यह नित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२४) अब अनित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते है कि जो भव्य जीवने १२ गुण ठाणेमे च्यार घाति कर्म क्षय करके जो केवल ज्ञान, केवल दर्शन, उत्पन्न किया सो अपना देवपना प्रगट होनेसे अन्यदेवका जो देव बुद्ध करके मानता था सो वह अन्यदेव बुद्धी अन्यतताको प्राप्त हो गई यह अनित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२५) अब (एक) पक्षसे देवका स्वरूप कहते हे कि जो चारघाति कर्म क्षय करे और केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न करे वह सर्व जीवोकी एक रीति ह क्योंकि कोई इस रीतिके सिवा दूसरी रीतिसे केवल ज्ञान उत्पन्न नही करसके इसीवास्ते जिन धर्ममे "णमो अरिहताण" इस पदके कहनेसे सर्व तीर्थंकर और सामान्य केवली सर्व इस पदके अन्तर्गत होनेसे एक पदसे सर्वको नमस्कार हो गया यह एक पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२६) अब अनेक पक्षसे देवका स्वरूप कहते हे-कि जेसे अबकी चौवीसीमे चौवीस तीर्थंकर हुये उनको जुदे२ तीर्थंकर मानते है और उनकी देहकी अवगाहना जुदी २ होनेसे जुदे २ देव कहे जाते है और जिस २० भव्य जीवको जिस तीर्थंकरके शासनमें समकित वा मोक्षकी प्राप्ति होय वह भव्य जीव उसी तीर्थंकरको विशेष अपेक्षासे देव मानता हुवा, इसवास्ते अनन्ती चौवीसीमें अनन्ते तीर्थंकर हुवे तो द्रव्य करके अनन्ते देव हुवे, यह अनेक पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२७) अब सत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते है-कि देवका द्रव्य, देवका क्षेत्र, देवका काल, देवका भाव, इन करके तो देवपना सत्य है-तो देवका द्रव्य क्या है कि गुण पर्यायका भाजन उसीको द्रव्य कहते हे क्षेत्र उसको कहते हे कि जिसमें ज्ञानादि गुण रहे काल उत्पाद व्यय अर्थात् जिस [illegible] ज्ञान है उस समयमें दर्शन नही और जिस समयमें दर्शन ह उस समयमे ज्ञा[illegible] तरह जो ज्ञान और दर्शनका उत्पाद

व्यय उसीका नाम काल है, भाव उसको कहते हैं-कि जो अपने स्वरूपमें इणमता करना इस करके देव सत्य है अथवा देव उसीका नाम है जो तारनेवाला है क्योंकि यह सत्य स्वरूपआदी उपदेशक है और सत्य स्वरूपही है जो उसके सत्य स्वरूपको देखकर उसके कहेहुये सत्य उपदेशको ग्रहण करके जो क्रिया करेगा सो सत्य स्वरूपको प्राप्त होगा यह सत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा । (२८) अब असत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं कि असत्य देव अर्थात् कुदेवका द्रव्य कुदेवका क्षेत्र, कुदेवका काल, कुदेवकाभाव व इन चारों करके कुदेवके स्वरूपसे देवका स्वरूप असत्य है जो कुदेवके स्वरूपसे देवका स्वरूप असत्य न माने तो कोई कार्यकी सिद्धि नहीं होय और सत्यदेवपनेमे भी असत्यपना आजाय और भव्य जीवोंका कोई कार्य सिद्धि न होय इसवास्ते कुदेवकी अपेक्षासे सत्यदेव भी असत्य है यह असत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा ॥ (२९) अब वक्तव्य । (३०) अवक्तव्य इन दोनों पक्षोंसे देवका स्वरूप कहते हैं वक्तव्य क० देवका स्वरूप अनेक रीतिसे जिज्ञासुको समझाते हैं और स्तुतिआदिक करते हैं परन्तु उसके गुण स्वरूपका पार नहीं आता है इसवास्ते अवक्तव्य स्वरूप है क्योंकि जैसा देवका स्वरूप है वैसा मनुष्य, देवता, की तो क्या चले परन्तु केवली भगवान् ज्ञानसे जाने किन्तु वचनसे कह नहीं सके यह वक्तव्य, अवक्तव्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा । (३१) अब भेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहते हैं-देखो कि जितने तीर्थंकर होते हैं उन सबमें आपसमें अवगाहना लक्षणोंसे भेद होता है अथवा सामान्य केवलीसे तीर्थंकरोंमें भेद होता है क्योंकि देखो तीर्थंकर महाराज त्रिगडामें बैठकर देशना देते हैं और सामान्य केवली विना त्रिगडेमें बैठे देशना देते हैं अशुल्य केवली आदिक देशनाही नहीं देते हैं एक तो इसरीतिसे भेद स्वभाव है दूसरी रीतिसे यह है कि जो भव्य जीव स्तुति आदिक करता है कि हे प्रभु ! मेरेको तारो भेद स्वभाव होनेही से यह कहना बनता है अथवा २४ तीर्थंकरोंको जुदा २ देव मानते हैं ये भेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहा । (३२) अब अभेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहते हैं-कि जितने तीर्थंकर हुये अथवा जितने सामान्य केवली हुये उनमे कोई तरहका भेद नहीं है क्योंकि अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्रमें रमणता करना यही सबका स्वभाव है इस रमणता रूप स्वभावमें किसीके में फर्क नहीं अथवा जिस वक्तमें जो कोई भव्य जीव व्यवहार नयसे स्तुति करता हुवा देवकी व्यक्त भाव स्वरूपको विचारता हुवा ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षासे अप शक्ति भावमें उस देवकी व्यक्ति भावका अध्यारोप अभेद करके अभेद स्वभाव मानता है, यह अभेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहा । (३३) अब भव्य स्वभाव और (३४) अभव्य स्वभावसे देवका स्वरूप कहते हैं, भव्य नाम उसका है कि जिसका पलटण स्वभाव हो तो देखो जो देवका भव्य स्वभाव न हो तो जो ज्ञेयका पलटण रूप उसको कदापि न देख सके अथवा जो भव्य जीव देवके स्वरूपको विचारे है उस वक्त जो २ देवके स्वरूपके गुणादिकोंको स्मरणरूप करता हुवा त्यों २ उस भव्य जीवका परणाम जो है सो उस प्रभुके गुण अनुयायी पलटता हुवा चला जाता है तो देवका भव्य स्वभाव होनेसे उस देवको माननेवाला भी भव्य स्वभाव हुवा अब इससे जो विपरीति स्वभाव है जो कदापि न पलटे उसको अभव्य स्वभाव कहते हैं तो जो देवमें देवपना प्रगट हुवा सो कदापि न पलटेगा अथवा

जो कोई भव्य जीवने शुद्ध निश्चनयसे जो देवका स्वरूप ओल खलिया (जानलिया) वो उस भव्य जीवसे देवका स्वरूप कदापि न जायगा इसरीतिसे भव्य अभव्यसे देवका स्वरूप कहा। (३५) नित्य स्वभाव (३६) अनित्य स्वभावसे देवका स्वरूप कहते है देवमें भव्य जीवको तारनेकाही नित्य स्वभाव है अथवा जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, उसमें जो रमणना वही उसका नित्य स्वभाव है इससे जो विपरीति सो अनित्य स्वभाव है अर्थात् परवस्तुमे न रमणता करना उस परवस्तुमें प्रवृत्त न होना इसकी अपेक्षा करके अनित्य स्वभाव है अथवा जो जीव उसको देव न माने उस जीवको वो न तार सके इस अपेक्षासे देवका अनित्य स्वभाव हुवा। (३७) परम स्वभाव देवका यही है कि जो भव्य जीव देवको देवबुद्धि मानकर उनके उपदेशको अगीकार करे उसीको वे तारतेहै उनमें जो तारनेका स्वभाव सोही परमस्वभाव है यह देवमें परम स्वभाव कहा। अब छः कारकसे देवका स्वरूप कहते है (३८) कर्ता (३९) कर्म (४०) कारण (४१) सम्प्रदान (४२) अपादान (४३) आधार–जिस वक्तमे जो जीव देवपना प्रगट करनेको प्रवृत्त होता है वह जीव कर्ता है और देवपना प्रगट होना यह उसका कार्य्य है और जो शुक्ल ध्यानादिकसे जो गुणठाणेका चढणा यह उसमें कारण है जिसके अर्थ कार्यको करे उसका नाम सम्प्रदान है तो इस जगह सम्प्रदान कौन है कि आत्मामे रमणके वास्ते–यह सम्प्रदान हुवा अपादान उसको कहते है कि पहली पर्यायका व्यय होना और नवीन चीजका उत्पाद होना उसका नाम अपादान हैतो इस जगह चार कर्म घातियोंका क्षय होना और अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र अनन्त वीर्य्य का प्रगट हाना यह इस जगह उपादान हुवा आधार उस को कहते है कि जो प्रगट हुई चीज को धार रक्खे तो इस जगह आधार कौन है कि जो गुण प्रगट हुए उन को आत्मा मे धारण किया इसलिये आत्मा मे आत्मा का आधार है अब ७ नय से देव का स्वरूप कहते है (४४) नैगम नय से जिस वक्तमें तीर्थकर महाराजका जन्म हुआ उस वक्त सुधर्मा इन्द्र ने अवधि ज्ञान से देख भगवत् का जन्म जान अपने देवलोक में घटा बजाया इसी रीतिसे ६४ इन्द्र भगवत् का जन्म महोत्सव के वास्ते भगवत् को मेरु पर ले जाय कर महोत्सव करके अपने जन्म को सफल करते है इस जगह भगवत् की पूजा आतिशय प्रगट हुई। (४५) अब संग्रह नय से देव का स्वरूप कहते है कि जब भगवान् को लोकान्तक देवता ने आय कर वरधायन अर्थात् विनती करने लगे कि हे प्रभो! तीर्थ की प्रवर्तावो और भव्य जीवों को तारो फिर भगवान् वर्षी दान देने लगे और फिर वर्षीदान देकर दीक्षा के उत्सवमें मनुष्य और देवता सब इकट्ठे होकरके वनमें जहा उन को दीक्षा लेनी थी वहा जाय पहुँचे यहा तक संग्रह नय का स्वरूप हुवा। (४६) अब व्यवहार नय से देवका स्वरूप कहते है–कि जब भगवत् ने आभरणादिक सब उतार कर सर्व वृत्त सामायक उच्चारण किया और पचमुष्टी लोच करके अनगार अर्थात् साधु बन गये और पाच समती तीन गुप्ती पालते हुये देशों मे विचरने लगे यहा तक व्यवहार नय हुई। (४७) अब ऋजुसूत्र नय से देव का स्वरूप कहते है कि जब भगवत् अपनी आत्मा का अन्तरग उपयोग देकर आठमे गुण ठाणे मे सविकल्प पृथकत्व सपरि विचार शुक्ल ध्यान का प्रथम पाय में आत्म स्वरूप विचारने लगे यहा तक ऋजुसूत्र नय हुई। (४८) अब शब्द

नय से देव का स्वरूप कहते है कि जब क्षीण मोही बारहमे (१२) गुण ठाणे को प्राप्त हुवे तब एकत्व वितर्क अप्र विचार नामा दूजे पाये में स्थित होकर चार घन घाती कर्म को क्षय करते हुये यहा तक शब्द नय हुवा । (४९) अब समभिरूढ नय से देव का स्वरूप कहते हैं कि जब चार घन घाती कर्म को क्षय किया उसी वक्त केवल, ज्ञान, दर्शन, उत्पन्न होकर लोक अलोक के भूत, भविष्यत, वर्तमान कालके स्वरूप को दर्शन से देखते है, ज्ञान से जानते है, यहा तक रूढ समभिनय से देव का स्वरूप हुवा । (५०) अब एव भूत नय से देव का स्वरूप कहते है-कि जब भगवत् को केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुवा उसी वक्त ६४ इन्द्र आय कर चार निकाय के देवताओंने मिलकर समोसरण की रचना करी और आठ महा प्रत्यहार संयुक्त सिंहासन के ऊपर भगवत् विराजमान् हुवे तीन छत्र शिर के ऊपर ढलते हुवे इन्द्र चमर करते हुवे तीनों तरफ तीन बिम्ब सहित भगवत् विराजमान् होते हुवे चौतीस अतिशय पैंतीस वाणी बारे परखदा के सामने देसना देते हैं उस वक्त एव भूत नय वाला देव माने ७ नय करके देव का स्वरूप कहा इन नयोंके अनेक भेद है क्योंकि नय चक्र में २८ भेद कहे है विशेष आवश्यक में ५२ भेद कहे है कहीं ५०८ भेदकहे है और कही सातसौ भेद भी कहें है, अब जो सब खुलासा करके नयों का स्वरूप कहें तो ग्रन्थ बहुत बढ जाय इसलिये दिगमात्र ही यहा कहा है—अब सप्त भागी से देवका स्वरूप कहते है । प्रथम (५१) स्यात अस्तिभगा है स्यात शब्द का अर्थ कहते है कि स्यात अव्यय है सो अव्यय के अनेक अर्थ होते है यदि उक्त " धातुना अव्याना अनेक अर्थानी को ध्यानी " इसवास्ते स्यात पद दियाजाता है स्यात देवअस्ति स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल स्वभाव करके अस्ति है यह प्रथम भागा हुवा । (५२) स्यात देवनास्ति देव जो है सो स्यात नही है किस करके कि कुदेव करके सो कुदेवका द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव करके नास्ति है जो कुदेव करके देव मे नास्तिपना नही मानें तो हमारा कार्य सिद्धही नहीं हो क्योंकि कुदेव में तो कुगति देने का स्वभाव है और देव मे देव गति अर्थात् मोक्षही देने का स्वभाव है जो देव में कुदेव का नास्तिस्वभाव न होता तो हमारा मोक्ष साधन निमित्त कारण कभी नही बनता इसवास्ते ' स्याद देवो नास्ति ' यह दूसरा भागा हुवा । (५३) अब स्यातअस्ति स्यातनास्ति भागा कहते है कि जिस समय म देवम देवत्वपनेका अस्तित्व है उसी समय देव मे कुदेवपने का नास्ति स्व पना है सो यह दोनों धर्म एकही समय में मौजूद है इसवास्ते तीसरा भागा कहा(५४) अब स्यात अवक्तव्य नाम भागा कहते है सो स्यात देव अवक्तव्य है अवक्तव्य नाम कहने में न आवे तो जिस समय देव में देवत्वपनेका अस्तिपना है उसीसमय देव में कुदेव पनेका नास्तिपना है तो दोनों धर्म एक समय होने से जो अस्ति कहें तबतो नास्तिपनेका मृषावाद आता है और जो नास्ति कहें तो अस्तिपनेका मृषावाद अर्थात् झूठ आता है क्योंकि दो अर्थ कहनेकी एक समयमें वचनकी शक्ति नही कि जो एक संग दो वस्तु उच्चारण करें इसवास्ते अवक्तव्य है । (५५) अब स्यात अस्ति अवक्तव्य तो स्यात अस्तिदेव अवक्तव्य यह हुवा कि देवके अनेक धर्म अस्ति पनेमें है परन्तु ज्ञानी जान सकता है और कहनहीं सकता क्योंकि जैसे कोई गानेका समझने वाला प्रवीण पुरुष गानेको श्रवण

करके उस श्रोत्र इन्द्रियसे प्राप्त हुवा जो गानेका रस उसको जानता है परतु वचनसे यह ही कहता है कि आहा ! क्या बात है अथवा शिर हिलानेके सिवाय कुछ नही कह सक्ता सो देखो कि उस राग रागिनीका मजा तो उस पुरुषके अस्तिपनेमें है परन्तु वचन करके न कहसके इसीरीतिसे देवमें देवत्वपनेमें जानने वालेको देवत्वपना उसके चित्तमें अस्ति है परन्तु वचनसे न कहसके इसवास्ते स्यात् अस्ति अवक्तव्य पाचमाँ भांगा हुवा (५६) अब स्यात् नास्ति अवक्तव्य भागा कहतेहे स्यातदेव नास्ति अव्यक्तव्यतो नास्तिपनाभी देवमें अस्तिपनेसे है परन्तु वचनसे कहनेमें नही आवे क्योंकि जिस समयमें देवका अस्तिपना है उसी समय कुदेवका नास्तिपना उस देवमे बने हुवेको विचारने वाला चित्तमे विचारताहै परन्तु जो चित्तमें ख्याल है सो नही कह सकता है इसलिये स्यात नास्ति अवक्तव्य छठा भागा हुवा (५७) अब स्यात अस्ति नास्ति युगपद अवक्तव्य भागा कहतेहे कि स्यात्देव अस्ति नास्ति युग पद अवक्तव्य तो जिस समय में देवमें अस्तिपना है उसी समय कुदेव का नास्तित पना युग पद कहता एक काल में अवक्तव्य कहता जो नही कहसके क्योंकि देखो मिश्री और कालीमिर्च घोटकर जो गुलाव जल मिलाकर बनाया है जो पुरुष उस प्याले को पीता है वो उस मिश्री का और मिर्च का एक समय मे पीता हुवा स्वाद को जानता है परन्तु उनके जुदे २ स्वभाव एक समय कहने के समर्थ नही क्योंकि वह जानता तो है कि मिर्च का तीखापन है और मिश्री का मीठापन है क्योंकि गलेमें मिर्च तो तेजी देती है और मिश्री मीठी शीतलताको देती है परतु दोनोंके स्वादको जानकर कह नही सके इसीरीतिसे देवका स्वरूप विचारने वाला देवमें देवत्वपनेका अस्ति और कुदेवत्वपनेका नास्ति युग पदको तो एक समयमे जानता है परन्तु कह नही सके इस करके स्यात अस्ति नास्ति युग पद अवक्तव्य सातमा भागा कहा, यह जो सप्तभगी है सो नित्य, अनित्य, एक, अनेक, सत्, असत्, वक्तव्य, अवक्तव्य, भिन्न, अभिन्न, भव्य, अभव्य ऐसे अनेक रीतिसे गुणमें, पर्यायमें, द्रव्यमें उत्पन्न होती है जो कि ५७ बोल देवके ऊपर उतारके देवका स्वरूप बतलाया है उन हर एक बोलके पाच २ भेद होते है सो पाच बोल उतारकर दिखाते हे—१ ज्ञेय २ हेय, ३ उपादेय, ४ उत्सर्ग, ५ अपवाद ५७ बोल करके जो व्यवहारसे देवका स्वरूप कहा है उसमें इन पाचोंको दिखलाते हैं—कि ज्ञेय कहता जो जाननेके योग्य है तो यहां देव और कुदेवका स्वरूप जाननेके योग्य है और कुदेव हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य है और देव उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है और देवके ज्ञान, दर्शन चारित्र अव्या बाधादिक निज गुणकी निमित्त कारण जानकर विचारना सो उत्सर्ग मार्ग है और जब इसमें चित्त न ठहरे अथवा देवके निज गुणके विचारनेकी समझ न होय तो बाह्य रूप ३४ अतिशय ३५ वाणी८महा प्रत्यहार्यादि विचार अथवा हे प्रभु ! तू तारने वाला है मुझको मोक्ष दे मे तेरे आधीन हूं मे तेरा सेवक हूं हे नाथ! तेरे सिवाय और कोई मुझे तारनेवाला नहीं इत्यादिक अनेक निमित्त कारण निज मुख्य कर्त्ता देवकोही मानकर स्तुति करे वह अपवाद मार्ग है अब दूसरी तरहसे जो भव्य जीव है और जिन्होने शुद्ध गुरुकी सगतसे आत्मस्वरूपको जाना है उनके वास्ते व्यवहारसे देवके स्वरूपमें इन्हीं पाच बातोंको दूसरी रीतिसे उतारते है कि ज्ञेयसे तो देवका स्वरूप जानना और देवमें हेय क्या चीज़ है उसको दिखलाते है जिस वक्तमें भव्य

जीव देवके अतरग गुणोंको सुमरने लगा उस वक्त बाह्य जो देवताकृत अतिशय वह महा प्रतिहारादि हेय अर्थात् छोडनेके योग्य है और भगवत्के निज गुण जो है सो उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है ॥ और उत्सर्ग मार्गसे भगवत्के गुणोंको अपने आत्मगुण में अभेद से विचारने लगा जब तक चित्तकी वृत्ति भगवत् के गुण और आत्मगुण म अभेदता रही तब तक उत्सर्ग मार्ग है और जब उस अभेद वृत्ति मे चित्त वृत्ति स्थिररूप नही रही तब प्रभुके गुणों को जुदा २ विचारने लगा सो अपवाद मार्ग है अब निश्चय से देवका स्वरूप जो ऊपर लिख आये है उस मे भी यह ही पाच बोल उतारते है ज्ञेय करके तो आत्म का स्वरूप जो जाने उस आत्मस्वरूप में ही देवबुद्धिको जाने और उस मे ही गुरुबुद्धिभी जाने क्योंकि " तत्त्व गृह्णाति इति गुरु. " जो तत्त्व को ग्रहण करे उसी का नाम गुरु है तो यह आत्माही ग्रहण करने वाली है धर्म क्या कि आत्मा का स्वरूप सोही धर्म है इस करके तो ज्ञेय हुवा जोकि निमित्त कारण आलम्बन पहले लिखा था उस को हेय अर्थात् छोडकर निरालम्ब होकर अपनी आत्मा को ग्रहण करता हुवा इस का नाम उपादेय हुवा अब उत्सर्ग मार्ग से जो स्वरूप ऊपर लिखा उस स्वरूप का निर्विकल्प एकत्वपने से जो विचार करे सो उत्सर्ग मार्ग है उस में निर्विकल्प मे चित्त की वृत्ति न ठहरने से अपवाद मार्ग अगीकार करे तब सविकल्प पृथक्त्व स परिविचार अर्थात् सविकल्प से आत्मध्यान करे उसका नाम अपवाद मार्ग है अब यहा सविकल्प और निर्विकल्प का दृष्टान्त कहकर दार्ष्टान्त को दिखाते है.--सविकल्प उसको कहते है कि जिस वस्तुका विचार करे उसी वस्तु के अवयवों का जुदा २ स्वरूप विचारे अन्य का नही जैसे गऊ का स्वरूप विचारने लगे तब गऊ के अवयवों को स्मरण करे, कि जैसे गऊ के सीग होते है, गऊ के पूछ होती है, गऊ के एक पग में दो खुर होते है, और गऊ के शासन अर्थात् गलेका चमडा लटका रहता है इन अवयवों को विचारना इस विचारका नाम गऊ का सविकल्प विचार है, निर्विकल्प उस को कहते है कि गऊ के अवयवों को जुदा २ न विचारे केवल ऐसा विचारे कि गऊ है, यह तो दृष्टान्त हुवा अब दार्ष्टान्त कहते है-कि अपनी आत्मा का अवयवों से विचार करे कि मेरे मे अनन्त ज्ञान है मै अनन्त दर्शनमयी हू, म अनन्त चारित्रमयी हू, मे अनन्त वीर्यमयी हू, म अव्याबाध हू, म अमूर्तिक हू, मैं निरजन हू ऐसा जो अपनी आत्मा के ही नि केवल अवयवों का विचार करना उसका नाम सविकल्प है जब इन अवयवों को छोडकर केवल सब अवयवों सयुक्त आत्माही का विचार एकत्व में लयलीन होजाना उसका नाम निर्विकल्प है। इसरीति से तो इन दो बोलों को इन पाच पाच बोल करके दिखाये और येही पाच बोल इसीरीति से (५७) बोलक भी ऊपर उतर जायेंगे परन्तु ग्रन्थ के विस्तार भयसे यहा सब बोलों को नही उतारा इसी का नाम वीतरागने स्याद्वाद कहा है इसीरीति से जो स्याद्वाद मतको अगीकार करनेवाले और गुरुकुल वास सेवन किया है जिन्होंने वही लोग षट्द्रव्य इस स्याद्वाद अनेक रीतिसे विचारनेवाले जिन धर्म को प्राप्त होंग नतु जैनी नाम धराने से या भेष ले लेने से इस रीतिसे ५७ बोल करके किञ्चित् देवका स्वरूप कहा अब भव्यजीव के लिये गुरु का स्वरूप कहते है --"महा व्रतधरा धीरा भिक्षा मात्रोप जीविनः। सामायिकस्था धर्मोप

और तिर्यंच सबधी जो विषय आदिकका जो सेवन करें करावे करतेको भला जाने मन, वचन, काय करके ऐसा जो मैथुन सेवनेका जो त्याग करे उसको ब्रह्मचर्य्य व्रत कहते हैं। पाचमा परिग्रहव्रत उसको कहतेहैं कि जो नौ विध परिग्रह है उनमेंसे कोई न रक्खे, धर्म साधन-के उपकरणके सिवाय कुछ न रक्खे उसके उपरात रक्खे सो साधु नहीं यह पच महाव्रत कहे। अब प्रथम महाव्रतकी पाच भावना कहते हे ॥ श्लोक ॥ मनो गुप्त्येषण दाने, र्याभिः समितिभि सदा दृष्टान्न पार ग्रहणो नाहिंसा भावयेत्सुधि. ॥ १ ॥ (व्याख्या) मनको पापके काममें न प्रवर्ते किन्तु पापके कामसे अपने मनको अलग कर लेवे इसको मनो गुप्ति कहते है यदि पके काममें मन प्रवर्तावे और वाह्य वृत्ति करके हिंसा नहीं भी करता हो तो भी प्रश्न श्रीचन्द्रराज ऋषिजीकी तरह सातवी नरकके जाने योग्य कर्म उत्पन्न कर लेता है इसवास्ते मुनिको मनोगुप्ति करनाही चाहिये यह प्रथम (१) भावना कही । दूसरी भावना एषणा सुमति है सो आहारादि चार वस्तु आधा कर्मादिक बयालीस दूषण रहित लेवे सो पिंड निर्युक्ति वा पिंड विशुद्धि श्री जिन वल्लभसूरिजी कृत वा प्रवचन सार उद्धार आदि ग्रन्थोसे जान लेना किञ्चित् यहा भी कहते है- पहले गृहस्थी १६ दूषण लगाता है सो गृहस्थीको न लगाने चाहिये आधा कर्मी साधुके वास्ते अधिक आहार राधके दे और कुछ अपने वास्ते भी करे । (२) उद्देशक दोष जो साधुके वास्तेही आहार बना कर देवे (३) प्रति कर्म यह शुद्ध आहारमें अशुद्ध आहार पानी पडते हुवे दे, कैसे दे? कि जैसे कच्चे पानीके वर्तनमें शुद्ध आहार देना (४ मिश्र जाति दोष-ये सब भेषधारी पाखडी साधु साधर्मी आदिक सबके ताईं करके दे (५) स्थापना दोष-साधुके वास्ते दूध दही आदिक थाप करके रक्खे कि साधु आवें तब दे (६) प्राभृत दोष जो सूखडी प्रमुख भोजन साधुको देवे (७) प्रादूपृत दोष-अन्धेरेमें किया हो और उजीतेमें प्रगट करे पीछे वहरा देवे (८) कृत दोष-साधुक वास्ते आहार मोल लेकर देवे । (९) प्रामित दोष-अपने घरमें वस्तु नहीं हो दूसरेके पाससे उधार लायकर साधुको देवे। (१०)प्रावर्त-साधुके वास्ते अपने घरका निरस आहारके बदलेमेंसे दूसरे घरसे सरस आहार लाकर दे।(११) अभिहतदोष-साधु वहरनेके वास्ते घर आया आहारथाली आदिक प्रमुखमें सामने लेकर आवे (१२) उद्भिन्नदोष कुवा वा हाडी मुद्रा लगी हुई हो उसको खोलकर घी आदिक वा ताला आदिक खोलकर आहारादिक दे । (१३) मालहृतदोष-जो ऊपर छीके पर रक्खी हुई चीज साधुको दे अथवा नीचे भूमिमेंसे निकालकर साधुको दे । (१४) अछ दोष-जो जोरावरी दूसरेसे छीनकर साधुको आहार दे । (१५) अनिसृष्टिदोष जो दो चार जनेके साझेका आहार होय और उनके छाने साधुको दे । (१६) अध्यव पूरक दोष-जो छाछ अथवा दाल थोडी हो उसमें पानी मिलाय करके जियादा बधायकर साधुको दे ये उद्गमनके सोलह दोष गृहस्थीको लगते है सो उसको न लगाने चाहिये । अब उत्पादके सोलह दोष साधु लगाते है सो कहते है (१) धात्री पिंड दोष-धायकी तरह गृहस्थीके बालकको रमावे व चुटकी आदिक बजायकर उनके माता पिताको राजी करके आहार ले । (२) दूति पिंडदोष-दूतकी तरह ग्राम, नगर आदि सम्बन्धियोंके समाचार कहकर आहार लेवे । (३) निमित्त पिंडदोष-टेवा, जन्मपत्री, ग्रह, गोचर, ज्योतिष

कहकर आहार लेवे। (४) आजीवका दोष—अपनी उत्तम जाति गृहस्थको जनायकर आहार ले। (५) वनीयक दोष—दातारकी खुशामद करके उसकी शोभा दिखायकर अपनी दीनताकर आहार ले। (६) चिकित्सा दोष—नाडी देखकर औषधि चूर्णादि देकर आहार ले (७) क्रोधपिंड दोष—शाप देवे रोष करे भय प्रमुख दिखायकर आहार लेवे (८) मान पिंडदोष- साधुवोंमें अहकार सहित प्रतिज्ञा करके गृहस्थीके घरसे आहार लावे (९ मायापिंड दोष—कपटाई करी रूप परावर्त वचन परावर्त करके अषाड भूत साधुकी तरह आहार लेवे। (१०) लोभपिंड दोष—रसका गृधी होकर जिस गृहस्थीके सरस आहार मिले उसीके यहासे मूर्छितपने व्याकुल होकर सरस आहार ले। (११) संस्तव दोष—दातारकी प्रशसा करे और कहे कि तुम्हारे माता पिता बडे दातार, उदारचित्तथे सो तुम्हारे घरकी क्या शोभा करें अथवा सासू श्वशुरेकी बडाई करे और उससे आहार ले। (१२) विद्यापिंड दोष—आहारके वास्ते उसको विद्या भणावे अथवा देवी आदिकका आराधन बतावे (१३) मत्रपिंड दोष—मत्र, तत्र, यत्र, आदिक उनको सिखावे अथवा आप करके दे और आहार लेवे। (१४) चूर्णपिंड दोष—औषधादि चूर्ण गोली दे अथवा स्नान करावे ज्वरादिकसे अथवा किसी करतबके वास्ते उसको वास क्षेपदे। (१५) योगपिंड दोष—वशीकरण अंजन इन्द्रजाल आदि चमत्कार दिखावे सौभाग्य आदिकका कारण बतायके आहार लेवे। (१६) मूलपिंड दोष—गर्भपात करायके आहार लेवे अथवा मूल जेष्ठा आदि नक्षत्रोंका पूजन कराय कर आहार ले यह १६ दूषण साधु लगाता है सो साधुको नहीं लगाने चाहिये कदाचित् वे कारण जो साधु लगाते हो वो भगवान्की आज्ञामें नही अब १० दोष जो साधु और श्रावक दोनोंसे उपजे है सो ग्रहण एषणा दोष कहलाते है सो लिखते है—(१) सकित दोष— आधा कर्मी दोषकी शका होते हुवे आहार लेवे देवे। (२) मृक्षित दोष—सचित् चीजसे शुद्ध आहार खरडा हुवा अथवा हाथादिकके सचित् चीज लगी हो फिर उससे आहार देना। (३) निक्ष प्रदोष—अकल्पनीय वस्तुमे आहार पडा हो उसे लेवे। (४) विहित दोष—जो सचित् वस्तुसे आहार ढका हुवा हो उसे ले। (५) साहरित दोष—भारी ठाममेंसे छोटी ठाममे करके आहार ठहरावे या पछा कर्म अर्थात् पीछेसे बर्तन धोवे। (६) दायक दोष—जो गर्भकी अथवा रोगी असमर्थ अथवा अधा, लूले, पागलेसे आहारादि वहरे। (७) उनामिश्र दोष—अकल्पनीय आहार मिलाय करके वहरावे। (८) अपरिणत दोष—जो पूरा आहार पका नही जो घूघरी तथा मक्कीया प्रमुख लेवे। (९) लिप्त दोष—जो दही, दूध, क्षीर, प्रमुख पतला द्रव्य हाथपर लगेहुए को पीछे पानीसे धोवे। (१०) छर्दित दोष—जो घृतसे झरता हुवा टपका पडता हुवा आहार लेवे यह सर्व मिलकर ४२ दूषण हुए इन सर्व दूषणोंको टालकर जो साधु आहार लेते है वो जिन मतमें शुद्ध साधु हैं अब साधुके आहार करते समयके पाच दूषण औरभी कहते है प्रथम सयोजन दोष जो क्षीरमें मीठा थोडा हो फिर दूसरी जगहसे लायकर उसमें मिलावे तथा खिचडीमें दूसरी जगहसे घृत लायकर खावे (२) अप्रमाण दोष—सिद्धान्तमे कहे प्रमाणसे अधिक आहार करे अर्थात् ३२ कवान्नसे विशेष आहार करे अथवा नित्य [illegible] ...ारसे

दूसरीवार बिन कारणके गोचरी करे । (३) इंगा दोष आहार करते समय आहारकी शोभा करता हुवा जो आहार करे तो चारित्रको मिलाके समान काला करे (४) धूमदोष-आहारकी निन्दा करता हुवा जो आहार करे तो चारित्रको धुवाके समान करे । (५) अकारण दोष-आहार करनके कारण दो ह एक तो वियावच्च करनेके वास्ते दूसरा इरिया सुमती सिवाय ध्यान प्रमुख करनेके वास्ते दो कारणके वास्ते साधु आहार करे इनके विना जो शरीरपुष्टी अथवा रूपादिक बल बढानेके वास्ते करे वो साधु नहीं ये माडलीके पाच दूषण हुये सर्व मिलके ४७ दूषणोंको आत्मार्थी शुद्ध साधु टाले क्योंकि अशुद्ध आहार लेता महापाप लगे इसवास्ते टालना चाहिये । अब तीसरी भावना आदान भडमत निक्षेवणा सुमती है जो कुछ पात्रखण्ड फलक इत्यादिक लेना पडे और भूमिपर रखना पडे तो पहले उसको देखकर पीछे रजोहरण करके पूज लेवे पीछे लेना होय तो ले और रखना होय तो रक्खे क्योंकि विच्छू सर्पादिक अनेक लेहरी जीव उस उपकरणके ऊपर बैठ जाते हैं जो रजोहरणसे उपकरणों वा जमीनको पूजे तो वह जीव अलग हो जाय जो ऐसा न करे तो वह जानवर अपनेको काट खाय तो अपनेको जहर आदिककी व्याधि होय उससे सिवाय ध्यानादिक न बने अथवा कोई कोमल जीव आके बैठा हो तो हाथके स्पर्शसे वह जीव मरजाय तो उसका पाप लगे इसवास्ते यत्न पूर्वक वह काम करना चाहिये अब चौथी इरिया सुमती कहते हैं कि जब साधु मार्गमें चले तब अपनी आखोंसे चार हाथ भूमि देखता हुवा चले क्योंकि देखकर चलनेमें कई गुण प्राप्त होते हैं एक तो पैरमें काटा न लगे दूसरे ठोकर न लगे तीसरे कोई जीव कीडी मकोडी आदिका भी बचाव होवे चौथे लौकिकमही लोग देखे सो शोभाकरे कि देखो यह मुनिराज कैसे हैं कि जिनकी दृष्टि ऐसी है कि मार्गमें ही देखते हुये जाते ह और इधर उधर कुछ नहीं देखते हैं । अब पाचवीं भावना कहते हैं कि साधु अन्न पानी गृहस्थीके घरसे प्रकाश वाली जगहमें लेवे अधकारकी जगहमें न लेवे क्योंकि अन्धकारकी जगहमें एक तो कीडी मकोडी जीवादिक न दीखे और उनकी हिंसा होय । (२) सर्प, विच्छू काटने का डर रहता है । (३) गृहस्थकी कुछ वस्तु जाती रहे तो गृहस्थीको अनेक तरहकी शका उत्पन्न हो जाती है क्योंकि क्या जाने अंधेरेमें साधु जी ले गये होय अथवा अधेरेमें साधुका अच्छा रूप देखकर विकार वाली स्त्री उसके लिपट जाय तो साधुका चारित्र जाय और दूसरा कोई देखता होय तो धर्मकी हीलना होवे अथवा स्वरूपवान् स्त्रीको देखकर साधु का चित्त चलजाय और उस स्त्रीको साधु पकडे और स्त्री हल्लामचावे तो धर्मकी बहुत हानि होवे और साधुकी प्रतीति उठजाय इसवास्ते साधु अंधेरी जगहसे आहारादिक न लेवे यह प्रथम महाव्रतकी पञ्च भावना कही ॥ अब दूसरे मृषावादकी भावना कहते हैं (१) भावनाका स्वरूप कहते हैं कि साधु किसीसे हँसी न करे क्योंकि "रोगकाघर खासी और लडाईका घर हासी" देखो श्री रामचन्द्रका दृष्टान्त देते है कि रावणकी बहन शूर्पणखा की हँसी श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मण जीने करीथी तब शूर्पणखा क्रोधमें होकर अपने भाई रावणके पास गई और सीताका रूप वर्णन किया तो रावण सीताको हरले गया तब रामचन्द्रने रावणसे बडा भारी संग्राम किया सो कथा आज तक लौकिकमें चली आती है इस सारी रामायणका साराश

शूर्पणखा की हँसी है। इसवास्ते साधु किसीसे हँसी न करे ॥ दूसरी भावना लोभ का त्याग करना है क्योंकि जो लोभी होगा सो अवश्य अपने लोभके वास्ते अवश्य झूठ बोलेगा क्योंकि यह बात सर्व लोकोंमें प्रसिद्ध है जो लोभी होगा वह अवश्य झूठ बोलेगा ये दूसरी भावना हुई ॥ तथा भय न करना क्योंकि भयवंत पुरुषभी झूठ बोल देता है, ये भय त्याग रूप तीसरी भावना हुई ॥ तथा क्रोध करनेका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष क्रोधके वश होगा वह दूसरोंके हुए अनहुए दूषण जरूर बोलेगा, इसवास्ते क्रोध त्याग रूप चौथी भावना हुई ॥ तथा प्रथम मनमें विचार करलेवे पीछेसे बोले क्योंकि जो विचार करे विना बोलेगा वह अवश्य झूठ बोलेगा इसवास्ते विचारपूर्वक बोलना, ये पाचवी भावना, ये दूसरे महाव्रतकी पाच भावनाहे ॥ अब तीसरे महाव्रतकी पाच भावना लिखते है जिस मकानमें साधुको रहनेकी इच्छा होवे तो उस मकानके स्वामीकी आज्ञालेकर रहे और आज्ञा न ले तो चोरी लगे, विना आज्ञाके जो ठहरे तो कदाचित् मकानका स्वामी रातको बाहर निकालदे तो रात्रिको साधु कहा जा सकताहै और नाना प्रकारके क्लेश उत्पन्न होंय इसलिये स्वामीकी आज्ञा लेकर रहे ॥ अब दूसरी भावना कहतेहैं कि मकानके स्वामीकी बारम्बार आज्ञालेनी चाहिये क्योंकि कदाचित् साधुको कोई रोग उत्पन्न होय तो उसके मल मूत्र करनेके लिये जगह जरूर होनी चाहिये, घरके स्वामीकी आज्ञाके विना जो उसके मकानमें मल मूत्र करे तो चोरी लगे इसलिये घरके स्वामीकी बारम्बार आज्ञा लेनी चाहिये दूसरी भावना हुई ॥ तीसरी भावना यह है कि मकानके भूमिकी मर्यादा करलेवे कि हमको इतनी जगह तक तुम्हारी आज्ञा रही जो मर्यादा न कर लेंवे तो अधिक भूमिको काममें लानेसे चोरी लगती है इसवास्ते मकानकी मर्यादा पहले ही करलेवे ये तीसरी भावना हुई ॥ अब चौथी भावना कहे हैं कि जो साधु समानधर्मी होवे और वह पहले ही किसी जगहमें उतरा हुवा होवे, पीछे दूसरा साधु जो उस मकानमें उतरना चाहे तो प्रथम साधुकी आज्ञा विना न रहे जो प्रथम साधुकी आज्ञा न लेवे तो स्वधर्मी अदत्त लगे ॥ पाचवी भावना यह है कि साधु जो कुछ अन्न पान वस्त्र पात्र शिष्यादिक लेवे सो सर्व गुरुकी आज्ञासेलेवे जो गुरुकी आज्ञाविना लेलेवे तो गुरु अदत्त लागे, यह पाचवी भावना हुई। ये तीसरे महाव्रतकी पश्च भावना हुई ॥ अब चौथे महाव्रतकी पाच भावना कहतेहे। जिस मकानमें स्त्री आदिकके चित्रामनहो और नपुंसक तिर्यंच स्त्री जिस मकानमें न हो वह मकान ऐसा हो कि जिसकी भीतके पास ऐसा मकान कोई न हो कि जहा कोई स्त्री आदिक अपने मकानमें क्रीडा करती हों उनका शब्द आव अर्थात् और भी कोई उस मकानमें ऐसा शब्द उसके कानमें न पडे कि जिसमें मोह रूपी विकार पैदा हो यह प्रथम भावना हुई ॥ दूसरी भावना यह है कि,सराग (प्रेम सहित) स्त्रीके साथ वार्ता न करे और स्त्रीके देश, जाति, कुल शृंगार प्रमुखकी कथा सर्वथा न करे क्योंकि सराग स्त्रीके साथ जो पुरुष स्नेह सहित काम शास्त्र इत्यादिककी कथा करेगा सो अवश्य विकार भावको प्राप्त होगा इसलिये कोई कथा या चारित्र समय शृंगार रस और प्रियारे चरित्र हों सो साधु न कहे ॥ अब तीसरी भावना कहतेहे। दीक्षा लियेके पहले जो ति गृहस्थीपनेमें स्त्रीके संगमें काम क्रीडा, विषय, सेवन, प्रमुख नाना प्रकारके संसारी भोग विलास करतेहे उनको साधु कदापि मनमें न चिंते क्योंकि पिछला भोग याद करनेसे काम

रूपी अग्नि जागती है, यह तीसरी भावना हुई॥ अब चौथी भावना कहतेहै कि स्त्रीके अगो पंग अर्थात् आख, नाक, मुख, स्तन, आदिक सहराग दृष्टिसे न देखे क्योकि सहराग दृष्टि देखनेसे विकार आदिककी उत्पत्ति होवे इसलिये साधुको देखना मना है कदाचित राग रहित दृष्टिसे देखनेमें आजावे तो कुछ दोष नही तथा अपने शरीरको सस्कार करना स्नानादिक हाथ, पग मल २ के धोना तेल आदिक लगाना नख, दात, केश आदिक अवयवोंको सम्हारना अच्छा वस्त्रादिक चमकता हुवा पहरना इत्यादिक अनेक विकार होनेकी चेष्टा न करे, यह चौथी भावना हुई। अब पाचवी भावना कहते है-स्निग्ध मधुर आदि रस ऐसी चीजोंका अधिक आहार करना और निरस आहारको न लेना ऐसा साधु न करे क्योकि साधुको ऐसा करना चाहिये कि जहा तक बने वहा तक रूखा सूखा आहार लायकर करे सो भी पूरा पेट न भरे क्योंकि रूखा सूखा भी खूब पेटभर खाने से इन्द्रियों की पुष्टि होती है इसवास्ते साधु पूरा पेट न भरे क्योकि शास्त्रों मे ऐसा कहा है कि साधु पेटके चार भाग करे सो दोभागतो अन्नसे भरे एकभाग जलसे भरे और एकभाग खाली रक्खे जिससे श्वासो श्वास सुगमता से आता जाता रहे यह पाचवीं भावना कही॥ अब पाचवें महाव्रतकी पाच भावना कहते है कि पाचो इन्द्रियो की जो पाच विषय रस, वर्ण, गध, स्पर्श आदिक मे जो अत्यन्त गृद्धिपणा है सो वर्जना और स्पर्श आदिक अमनोज्ञ पाच विषयो में द्वेष न करना यह पाचवें महाव्रतकी पाच भावना कही इन पाच महाव्रत की पचीस भावना जिसमे होवे वह जैनका साधु और गुरु है॥ और चरण सित्तरी और करण सित्तरी इन करके सयुक्तहो सो ही जिन मत में गुरु है। अब चरण सित्तरी के नाम लिखते है-५ महाव्रत, १० यतिधर्म १७ प्रकार का सयम १०प्रकार की वियावच्च और ९ प्रकार की ब्रह्मचर्य्यकी वाड १२ प्रकार का तप और क्रोधादि ४ कषाय निग्रह, १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र यह कुल चरण सित्तरी के ७० भेदहुवे इनकर के जो सयुक्तहो सो गुरु है और करण सित्तरी के भेद यह है-पिंडविशुद्धि ४ प्रकार की ५ सुमती १२ भावना १२ पडिमा ५ इन्द्रियों का निग्रह २५ पडलेहना ३ गुप्ती और ४ प्रकारका अवग्रह यह ७० भेद करण सित्तरी के हैं, इस करण सित्तरी, चरण सित्तरी के जो बोल है इनका जो अर्थ सो बहुत ग्रन्थों मे लिखा हुवा और जिन मत में प्रसिद्धहै इस वास्ते मैने इन बोलों का अर्थ नही किया दूसरा इन को निश्चय, व्यवहार, द्रव्य, क्षेत्र,काल, भाव, की अपेक्षा लेकर जो इसका अर्थकरू तो ग्रंथ बहुत बढजाय इस भयसे मैं नहीं लिख सका ऊपर लिखी हुई वृत्ति बमूजिब जो कोई होय वही जैनका गुरू है इसरीतिसे साधु का स्वरूप कहा इस से जो जो विपरीत हो सो साधु नही। (प्रश्न) तो वर्त्तमान काल में इस वृत्ति वाला कोई साधु देखने में नही आता है तो फिर इन को साधु वा गुरू मानना क्योंकर बनेगा? (उत्तर) भो देवानुप्रिय? यह तुम्हारा एकान्त करके निषेध करना ठीक नहीं क्योकि जैन मत में स्याद्वाद, उत्सर्ग, अपवाद, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे वर्तमान कालमें भी आत्मार्थी भगवत् आज्ञानुसार अल्प मुनि राज पावेंगे क्योंकि भगवत्ने ऐसा कहा है कि मेरा शासन पंचमे आरेके अन्त तक रहेगा इसवास्ते इस कालमें भी जो आत्मार्थी निष्कपट होकर जो भगवतने आज्ञाकी है उसी

बमूजिब उपदेश देने वाले भव्य जीवोंको मार्ग बतलाने वाले जो मुनिराज है उनको साधु वा गुरु नही माननेसे भगवत् आज्ञा विरोधक होते है क्योंकि देखो श्री भगवती जी सूत्रके पचीसवे शतकके छठे उद्देशामे लिखा है कि इस हुंडा सर्पिनी काल पंचम आरे में दो तरहके साधु होंगे उनसे मेरा शासन चलेगा और निर्ग्रन्थ तो प्रमाणकी अपेक्षा कोई विरलेमें पावेगा मुख्यतामें दोही रहेगे इसलिये उनको साधु मानना ठीक है उन दोका नाम बकुश और कुशील है। अब बकुश और कुशीलका स्वरूप लिखते है जो ब-कुश निर्ग्रंथ है तिसके दो भेद है सो कहते है तहां जो वस्त्र पात्रादिक उपकरणकी विभूषा करे सो "उपकरण बकुश" यह प्रथम भेद और जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अवयवोंकी विभूषा करे सो शरीर बकुश यह दूसरा भेद जानना इन दोनों भेदोंके पाच भेद है—प्रथम आभोग बकुश, जो साधु जानता है कि यह करनेके योग्य नही तो भी उस कामको जो करे सो आभोग बकुश; और जो अनजाने करे सो दूसरा अनाभोग ब-कुश; और जो मूल गुण, उत्तर गुणमें छुप कर दोष लगावे सो संवृत बकुश, और जो मूल गुण उत्तर गुणमें प्रगट दोष लगावे सो चौथा असंवृत बकुश; और जो नेत्र, नासिका, मुखादिकका मेल दूर करे सो पाचमा सूक्ष्म बकुश जानना; ॥ अब उपकरण बकुशका स्वरूप कहते है—जो उपकरण बकुश है सो पावसऋतु विनाभी जल क्षारसे वस्त्र धोता है। पावस ऋतुमें तो सब गच्छवासी साधुओंको आज्ञा है क्योंकि जो वर्षासे पहिले एक बार सर्व उपकरणको जल क्षारसे न धो लेवे तो वर्षाऋतुमे मैलके संसर्गसे निगोद आदिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावे और यह जो बकुश निर्ग्रंथ सो पावस ऋ-तुविना अन्यऋतुमेंभी जल क्षारसे उपकरण आदिक धो लेता है और बकुश निर्ग्रंथ सुन्दर सुकोमल वस्त्रभी चाहता है और कुछ उपकरण विभूषा शोभाके वास्ते पहिरता है और पात्र दंड आदिक घोटेसे घोटकर सुकुमार करे तथा घी, तेल, चौपड कर चमक-दारकरे और विभूषाके वास्ते बहुत उपकरण रक्खे ॥ अब शरीर बकुशका स्वरूप कहते हैं देह बकुश जो है सो विना कारण हाथ, पग, आदिककी विभूषा करे जलादिकसे धोवे ऐसे उपकरण और शरीर यह दोनो प्रकारका बकुश निर्ग्रंथ परिवार इत्यादिककी ऋद्धि चाहता है और ऋद्धि गारव, रसगारव, सातागारव, इन तीनोंके गर्भोमें आश्रित होवे और रात दिनकी क्रिया समाचारीमे बहुत उद्यम न करे और यहभी जानता है कि साधुके करणे योग्य यह काम नहीं है तोभी प्रमादसे उस कामको करे लेता है तिसकी विशेष विस्तार श्री भगवती जीमें देख लेना ॥ अब कुशीलका स्वरूप कहते है शील कहे चारित्र सो जिसका चारित्र खोटा है सो कुशील निर्ग्रन्थ इसके दो भेद हैं एक सो प्रति सेवना कुशील, दूसरा कषायो करि कुशील ॥ जो संज्वलकी कषाय करके कुशील सो कषाय कुशील यह दोनों पांच प्रकारके होते हैं। १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूक्ष्म ज्ञानादि कुशील, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप यह चारो आजीविकाके वास्ते करे अथवा पुजानेके वास्ते इन चारोंको सेवे सो प्रति सेवना कुशील और कोई देखकर कहे कि यह तपस्वी है ऐसा सुनकर बहुत खुशी होय सो पांचवा यथा सूक्ष्म प्रति सेवना कुशील है और जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संज्वलन कषाय करके [illegible] इत्यादि [illegible]

करे सो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, कुशील जानना और कषायके वश होके किसीको श्राप दे और जो मनमें क्रोध आदिकको सेवे सो यथा सूक्ष्म कुशील है अथवा कषायके उदयसे ज्ञानादिककी विराधना करे सोभी ज्ञान कुशील जानना ये दो प्रकारके साधु पँचमे आरेके छेडे तक रहेंगे इसलिये इनको साधु मानना अवश्य है । (प्र०) उत्तर गुण, मूल गुण किसको कहते है ? (उ०) मूलगुण उसको कहते है कि जो अहिंसादिक साधुके व्रत कहे है उनमें दूषण लगे उसको मूलगुण दूषण कहते ह कि जैसे वर्तमान कालमें प्राय करके गरम पानी गृहस्थी लोग साधुके निमित्त करते हे यह पानी साधु जो पीते है वह साधुवोकी मूलगुणमे दूषण लगता है अथवा जो साधु दृष्टि राग बाध करके श्रावकोंके घरसे आहारादिक लावे अपने दिलमे जानता है कि यह मेरे निमित्त बनाया है और फिर उस आहारको भोगता है वहभी मूलगुणमें दूषण है और उत्तर गुण उसको कहते है कि जो गृहस्थी साधुकी दृष्टि रागसे बाजारसे मोल लायकर आहार वस्त्र पात्र बना हुवा जो साधुको दे और उस आहारादिकको साधु भोगे तो वह उत्तर गुणमें दूषण है इसरीतिसे मूलगुण और उत्तर गुणके दूषण होतेह (प्र०) ऐसे दूषण लगानेका कारण क्या है ? (उ०) दूषण लगानेका कारण तो ऐसा अनुमानसे सिद्ध होता है कि अवारके कालम दु'ख गर्भित, मोह गर्भित वैराग्यवाले तो बहुत और ज्ञानगर्भित वैराग्यवाले आत्मार्थी प्रायः करके किंचित् मालूम होतेहै इसवास्ते दु'ख गर्भित, मोहगर्भित वैराग्य वालेको अपने आत्मार्थकी इच्छा तो है नहीं केवल अपने पुजाने की इच्छा और मान बडाईके वास्ते आपसमें एक दूसरेसे कलह करते है और गृहस्थियोंको अपने रागमे फँसानेके वास्ते जुदी २ परुपना करते है इसीवास्ते उपाध्यायजी महाराज श्री यशोविजयजी १२५ गाथाके स्तवनमे ऐसा लिखतेहे सो प्रकरण रत्नाकर भाग तीसरे के लेखानुसार दिखाते है गाथा –"विषय रसमें गृहीमाचया । नाचिया कुगुरुमद पूररे ॥ धूमधामे धमाधम चली । ज्ञान मार्ग रह्यो दूररे ॥ स्वामी० ॥ ७ ॥ व्याख्या गृही कहता गृहस्थ जो विषय रसमे ही राच्या अनादि अभ्यास छः और कुगुरुमाने न लाग्या तेवली अने कुगुरुने मद पूरे माच्या अन्न पान दातारना मान माटे निज उत्कर्ष हर्षी एम करता बहुने धर्मकी खटपट टलीते माटे धूम धामे धमा धमाम चली यानी उनमार्गज चाल्यो इत्यर्थ ॥ यहा धमाधम कहता धक्का धूम तेणेकरी धमा धमक० धींगा मस्ती चाली शुद्ध क्रिया वेगली रही अशुद्ध क्रिया ना घणी डाकड मारचा माडे मोटाई मे माची आद्या पछे केवल धींगाणु प्रवर्त्यु वली पोते गृहस्थने प्रेरणा करे कि ग्राममें आवता विशेष सामा आवनु, विशेष सामहु (सामेणो) करो विशेष प्रभावना करो जेम जिन शासननी उन्नति दिखायए धूम केमके कुमारगनु वचन छ जे कारण' पोतेज यशना अर्थी थया त्या धर्म गयो केमके साधुनो माण एवो छ' काईपण उन्नति थाठ नहीं सहेज भावे थाय तो थावो ते माटे यहा धूमते उनमार्गी पासत्थादिकनु आक्रम अने धामतो एनाणी मेला गृहस्थ लोकनु आक्रम तथा धमाधमते एवनेनी करनी जाणवी वली शरीरनी शुश्रूषा राखे शरीरनो मेल दूर करे शरीर लुछ सरस आहार करे नोकरपी व्यवहार न करे श्रावक श्रावकोने घणो परिचय करे, श्रावकने घरे भणावाजाय श्रावक साथे घणी मिठासी करे पोताना आत्मानो अर्थ साधेज नही भला चन्द्रुवा बधाय तहा रहे रेशमी नवा वस्त्र पहर

साधूग धोया वस्त्र पहिरे हृष्ट पुष्ट शरीर राखे वस्त्र पात्रना दूषण धरे गीतार्थनी आज्ञा न माने अणजाण्योमार्ग चलावे अणजण्यो कहे मार्ग हिडता वात करे गृहस्थ साथे घणी अलाप सलाप करे इत्यादिक एहवी करणी ॥ पोते साधु पणु पाता माहे सद्द अने गृहस्थने पण साधु पणो सर्द हरावे दर्शननी निंदा करे पोता पणु वखाणे पोतानो आडम्बर चलावे गृहस्थ पासे पण पोतानी भक्ति प्रमुख नो आडम्बर चलावरावनो इत्यादिक सर्व ठामे १ धम. २ धाम ३ धमाधम. ए तीन बोल जाणवा ज्ञानादिक मार्ग पुस्तकादिके हती ते करवा-जाणवा माटे वेगलो रह्यो झूठा बोला पणाठः ॥ ७ ॥ गाथा १० मी ॥ बहु मुखे बोल एम साभली नवीधरे लोक विशवासरे ॥ ढूढता धर्म ने ते थया ॥ भमर जेम कमल निवासरे ॥ १० ॥ व्याख्या ॥ एम बहुमुखे के० घणाने मोटे बोल जुदा २ साभलीने लोको विश्वासने धरे नहीं। अने जेम भ्रमरा कमलिनी वासनी इच्छाये भ्रमता फिरे पण करे ढोयते न पामे तेम ते लोको धर्मने ढूढता थया, जे कोण साधु पास धर्म होसे १ एवा सब भ्रमे फरे" ॥ १० ॥इत्यादिक अनेक रीति से इस जैन मतमे बखेडा होनेसे जो किञ्चित् कोई आत्मार्थी है उसको भी उपद्रव होने मे जैन मत पालना मुश्किल होगया अर्थात् अपनी आत्माका अर्थ करना मुश्किल होगया इसलिये जो कोई आत्मार्थी हो सो द्रव्यक्षेत्र काल भावसे देखकर अपनी आत्मा अर्थकरे किञ्चित् गुरूका स्वरूप कहा बुद्धिमान् इसको जियादः समझलेगा ॥ अब धर्मका स्वरूप कहना चाहिये सो. प्रथम धर्मका लक्षण कहतेहे कि:-"अधोगति पतन ज्ञानादि अनंत चतुष्टय सादि अनन्त सुखस्व सुभाव धारियेति धर्म" धर्मका यह लक्षणहै- जो कहो कि धर्म किसको करना है तो हम कहे हे कि जो संसारी जीव है उसको करना है ससार अर्थात जगत् सत्य है वा असत्यहे और इस जगत्का अनादि होनेसे क्यों कर याद होगा इस जगह प्रसगत ख्यातिका कहना जरूर हुवा क्योंकि इस जगत्के वादमे सर्व मतवाले अपनी २ ख्याति कहतेहे ॥ ख्या प्र कथन धातुकी ख्याति बनती है जो जिस रीतिसे कथन करे सो उसकी ख्याति है सो छः ख्यातिहे छः के अनेक भेदहे उन छः ख्यातियोंके नाम यहहे-(१) असत्य ख्याति (२) आत्मख्याति (३) अन्यथा ख्याति (४) आख्याति (५) अनिर्वचनीय ख्याति (६) सत्य ख्याति इनके अंतर्गत भेद भी कई है परन्तु मुख्य भेद ६ हे-सो अब कौन, कौनसी ख्याति मानते हे, सो ख्याति कहतेहे-दोहा । चिदानन्द जिन कोइ ना, कह्यो ख्याति परसग । स्याद्वाद जिन धर्ममें, ख्याती सत्य अभग ॥१॥ अनुभव गुरुकुलवास विन, मिले न पूरो मर्म । प्रथम अंग सत्य ख्यातिका, खोल दिया सब भर्म ॥ २ ॥ ख्यातिनाम कथनका है जगत्की निवृत्तिके वास्ते रज्जु और सुकतिमें जो सर्पका और चाँदीका भ्रम होता है तैसे ही इस जगत्कोभी भ्रमरूप माननहे जब रज्जु अर्थात् जेवडी जिसको कोई रस्सी और कोई सीधडा भी कहतेहे उसमें अज्ञानसे सर्पका भ्रम होताहै उस भ्रमको दूर करनेके वास्ते आचार्य जब उसको यथावत् जे वडी का ज्ञान कराय देते है तब सर्परूप जो भ्रम है सो दूर हो जाता है ऐसे ही शुक्ति अर्थात् सीपमें अज्ञानसे रजत अर्थात चादीका भ्रम होता है उसको भी जब गुरु उपदेश देकर यथावत् सीपका ज्ञान कराय देता है तब चादीका जो भ्रम होता है सो उसीदम भ्रम दूर हो जाता है इस रीतिसे जगत् जो अनादिका भ्रम रूप अज्ञानसे विभाव दशामें पड़के अपने

स्वरूपको यथावत् नही जाननेसे जन्म मरण रूपी ससारमें भ्रमण करता है जब कोई सद्गुरु उपदेशक यथावत् उसकी आत्माका स्वरूपको बतायकर ज्ञान कराय देता है तब जगत् रूप जो भ्रम सो दूर हो जाता है इस भ्रम स्थलमें जो कथन करना उसीका नाम ख्यातिहै सो नास्तिक मतवाला असत् ख्यातिको अगीकार करके जगत्को असत्य कहता है और विज्ञानवादी अर्थात् बौद्ध मतवाला आत्मख्याति अगीकार करता है और नैयायिक और वैशेषिक अन्यथा ख्यातिको अगीकार करते हैं और साङ्ख्य मतवाला आख्यातिको अ- गीकार करता है और वेदान्ती अनिर्वचनीय ख्यातिको अगीकार करता है और जि नमतमें सत्यख्याति अगीकार है सो इस जगह ख्यातियोंकी रीति कहकर उनका खण्डन दिखलाते है सो इस जगह चार ख्यातियोंको अनिर्वचनीय ख्यातिसे खण्डन करके फिर अनिर्वचनीय ख्यातिका खण्डन दिखायकर सत् ख्यातिका निरूपण करेंगे सो प्रथम असत्य ख्यातिके तीन भेद है तिसमें प्रथम शून्यवादीकी रीतिसे असत्यख्यातिका वाद और उसका खण्डन दिखाते है—असत्यख्याति वाला अनुभव और युक्तिसे शून्य है किसीकी बुद्धिमें आरूढ होवे नहीं इसलिये इसका निराकरण है तथापि थोडासा कहते है एक तो शून्यवादी नास्तिक असत्यख्याति माने है उसके मतमें तो सारे पदार्थ असत्यरूप है इसलिये सीपमें चादी भी असत्य है शून्य वादीके मतमें तो असत् अधिष्ठानमें रजत् असत् है इसलिये निराधिष्ठान भ्रम है इसलिये ज्ञाता ज्ञान भी असत् है यह कहना इसका अनुभव विरुद्ध है । क्योंकि शून्यवादमें सर्व स्थानोंमें शून्य है इसलिये किसीका व्यवहार प्रसिद्ध नही होना चाहिये और शून्यसे जो व्यवहार होवे तो जलका काम अग्निसे और अग्निका काम जलसे होना चाहिये अग्नि और जल सत् वा मिथ्या कही ह नही केवल शून्य तत्त्व है तो सर्व जगह एकरस है उसमें कोई विशेषता नहीं जो शून्यमें विशेष मानोगे तो शून्यवादकी हानि होगी क्योंकि वह विशेष भी शून्यसे भिन्न है जो ऐसा कहे कि शून्यमें विशेष है उसको विलक्षणता कहते हैं जिससे व्यवहार भेद होवे है वह विशेष और व्यवहार तथा व्यवहारका कर्त्ता भी परमार्थसे शून्य है इसलिये शून्यताकी हानि नहीं यह कहना उसका असम्भव है क्योंकि शून्यमें विशेष है यह कहना विरुद्ध है क्योंकि विशेष वाला कहे तो शून्यताकी हानि होवे और जो शून्य कहे तो विशेषता की हानिसे व्यवहार भेदका असभव है इसरीतिसे शून्यवादी का कहना सभव नही अब दूसरा तान्त्रिककी रीतिसे असत्यख्याति की रीति कहते है उसके मतमें शुक्ति आदि पदार्थ व्यवहारिकतो असत् नहीं किन्तु भ्रम ज्ञानके विषय जो चा दी आदिक माने है वह असत् है इसलिये व्यवहारिक चादी आदिक अपने देशमे है तिनका सीपमें सबन्ध नही और अन्यथा ख्याति वादीकी तरह शुक्तिमें रजतकी प्रतीति भी होवे नहीं और अनिर्वचनीयसे रजत् उपजे नहीं और आख्यातिवादीकी तरह दो ज्ञान भी नहीं, शून्यवादीकी तरह शुक्ति असत् नहीं और ज्ञाता ज्ञान भी असत् नहीं शुक्ति किन्तु सुकती ज्ञान ज्ञाता सत्य है दोष सहित नेत्रका शुक्तिसे सम्बन्ध होवे तब शुक्तिका ज्ञान होवे नहीं किन्तु शुक्ति देशमें असत् रजतकी प्रतीति होवे है यद्यपि अन्यथा ख्याति- वादमें रजत् असत है और स्त्रीके हाथमें तथा हृदयमें सत् रजत् दोनों मतमें है तथापि

अन्यथा ख्यातिवादमे देशांतर स्था सत रजत् वृत्ति रजत्वका शुक्तिमे भान होवे है और असत् ख्याति वादमे देशांतरमे रजत् तो है तिसके धर्म रज तत्वका शुक्तिमे भान होवे नही किन्तु असत् गोचर रजत ज्ञान है शुक्तिसे दोष सहित नेत्रके सबन्धसे रजत भ्रम होता है तिसका विषय शुक्ति नही जो रजत भ्रमका विषय शुक्ति होता तो " इयशुक्ति " ऐसा ज्ञान होना चाहिये जो शुक्तित्व रूप विशेष धर्मका दोष बलसे भान नही होता सामान अंशका (इय) इतनाही ज्ञान होना चाहिये इसलिये भ्रमका विषय शुक्ति नही ऐसेही भ्रम का विषय रजत भी नही क्योंकि सन्मुख देशमे तो रजत है नही ॥ और देशांतरमे रजत है जिससे नेत्रका संबन्ध नही । इसरीतिसे रजत भ्रमका विषय कोई नही और शुक्ति ज्ञान उत्तर कालमें " काल त्रियेपि रजत नास्ति " ऐसी प्रतीति होती है इसलिये रजत भ्रम निर्विषयक होनेसे असत् गोचर हीको असत् गोचर ज्ञानको असत् ख्याति कहते है ॥ तीसरा न्याय वाच स्यत्यकार की रीति से असत्त ख्यातीवाद–इस की रीति से कहते हैं कि यह ऐसा कहता है कि शुक्ति से नेत्र के सम्बन्ध से रजत् भ्रम होवे इसलिये रजत् भ्रम का विषय शुक्ति है परन्तु शुक्ति में शुक्तित्व और शुक्तित्व तत्व का समवाय दोनो दोष से भान होवे नही किंतु शुक्ति मे रजतत्व का समवाय भान होता है जो रज तत्व का समवाय शुक्ति में है नही इसलिये असत्यख्याति है रजतत्व प्रतियोगी का शुक्ति अनुयोगिक समवाय असत्य है । उस की ख्याति कहिये प्रतीति उसको असत्यख्याति कहते है रजतत्व प्रति योगिक समवाय रजत् मे रजतत्व का प्रगट है और शुक्ति अनुयोगिक समवाय शुक्ति में शुक्तित्व का प्रसिद्ध है ॥ और रजत् प्रतियोगिक समवाय रजतानुयोगिक प्रसिद्ध है ॥ शुक्ति अनुयोगिक नही और जो शुक्ति अनुयोगिक समवाय प्रगट है सो शुक्तित्व प्रति योगिक है रजतत्व प्रतियोगिक नही इसरीति से रजतत्व प्रतियोगिक शुक्ति अनुयोगिक समवाय अप्रगट होने से असत्य है उसकी प्रतीति को असत्यख्याति कहते है ॥ शुक्ति जिसका अनुयोगी कहिये धर्मी होवे उसको शुक्ति अनुयोगिक कहते है रजतत्व जिसका प्रतियोगी होवे उसको रजतत्व प्रतियोगिक कहते है; इसका भाव ऐसा है कि केवल समवाय प्रसिद्ध है और रजतत्व प्रतियोगिक समवाय भी रजत् से प्रसिद्ध है और शुक्ति अनुयोगिक समवाय भी शुक्ति धर्म का शुक्ति मे प्रसिद्ध है और प्रसिद्ध समवाय मे समवायत्व धर्म है रजतत्व प्रतियोगित्वभी समवाय से प्रसिद्ध है जैसे ही शुक्ति अनुयोगित्व भी समवाय मे प्रसिद्ध है परन्तु रज तत्व प्रतियोगित्व, दोनों धर्म एक स्थान में समवायमें अप्रसिद्ध होने से शुक्ति अनुयोगित्व विशिष्ट रजतत्व प्रतियोगित्व विशिष्ट समवाय अप्रसिद्ध होने से असत्य है उसे असत्यख्याति कहते है, यह न्याय वाचस्पत्याकारका मत है । इसरीतिसे अधिष्ठान को मानि करके असत्यख्याति दो प्रकार की मानि है ॥ एक तो शुक्ति अधिष्ठान मे असत् रजत् की प्रतीति है । और दूसरी शुक्ति में असत् रजतत्व समवाय की प्रतीति रूप है ॥ दोनों असत वाद ख्याति का खंडन–इन दोनों जनों का कहना असगत है क्योंकि जो असत्य ख्याति मानते है उनको ऐसा पूछना चाहिये कि असत्यख्याति इस वाक्य मे अवध्या विलक्षण असत् शब्द का अर्थ है वा असत् शब्दका अर्थ निःस्वरूप है, जो कहे कि असत् शब्द का अर्थ निःस्वरूप है तो (मम मुखे जिह्वा नास्ति) इस वाक्य की तरह

असत्ख्याति वाद का अङ्गीकार करने का काम निर्लज्जपना है क्योंकि सत्ता स्फूर्ति रहितको निःस्वरूप कहते हैं इसलिये सत्ता स्फूर्ति शून्य भी प्रतीति होवेहै यह असत्ख्यातिवाद है तैसे सिद्ध होवे है "सत्ता स्फूर्ति शून्य की प्रतीति कहना विरुद्ध है इसलिये अवध्या विलक्षण असत् शब्द का अर्थ कहे हैं तो अवध्या विलक्षण वध्या होवें है, वध्याके योग को वध्या कहै ह इसरीति से वध्या के योग की प्रतीति अर्थात् बाँझ के पुत्र के समान असत् ख्याति सिद्ध हुई, इसलिये असत् ख्याति का मानना असङ्गत है ॥ अब दूसरी आत्म ख्याति का अभिप्राय और खण्डन –आत्मख्याति वादी भी असङ्गत है क्यों कि विज्ञानवादीके मत में आत्मख्याति है क्षणक विज्ञान को विज्ञानवादी आत्मा कहते हैं जिसके मत में बाह्य रजत तो है नहीं किंतु अंतर विज्ञान रूप आत्मा है उस का धर्म रजत है दोष बल से बाह्य प्रतीति होती है शून्यवादीके मत बिना अंतर पदार्थ की सत्तामें किसी सुगत शिष्य का विवाद नहीं बाह्य पदार्थ तो कोई मानता है और कोई नहीं मानता है इसलिये बाह्य पदार्थ की सत्ता में तो उनका विवाद है और अन्तर विज्ञान का निषेध शून्यवादी बिन कोई नास्तिक करे नहीं इसलिये अंतर रजत का विज्ञान रूप आत्मा अधिष्ठान है जिसका धर्म रजत अंतर है दोष बल से बाह्य की तरह से प्रतीत होवे है ज्ञानसे रजतके स्वरूपसे बाद होवे नहीं किन्तु रजतकी बाह्यताका बाद होवे है इस लिये आत्मख्याति मतमें रजतका तो बाध मानते है नहीं क्योंकि शून्यवादीसे भिन्न सकल सौगतके मतमें पदार्थोंकी अंतर सत्तामें विवाद नहीं इसलिये स्वरूपसे रजतका बाध मानतेहै नहीं केवल बाह्यताका रूप इदन्ताका बाद मानतेहै क्योंकि आत्मख्यातिमें धर्मीके बाध विना इदंता रूप धर्म मात्रके बाधको ही मानेह यह आत्मख्याति वादीका अभिप्राय है इस मतमें रजत अन्तर सत्य है जिसकी बाह्य देशमे प्रतीति भ्रम है इसलिये रजत ज्ञानमें रजत गोचरत्व अंश भ्रम नहीं किंतु रजतका बाह्यदेश स्थित्व प्रतीत अंशमें भ्रमहै ॥ इसका खडन - यह कहना आत्मख्यातिवाले का समीचीन नहीं क्योंकि रजत अन्तर है ऐसा अनुभव किसी को होवे नहीं भ्रमस्थल म वा यथार्थ स्थल मे रजतादिकों की अन्तरता किसी प्रमाणसे सिद्धहोवे नहीं क्योंकि सुखादिक अन्तर है और रजतादिक बाह्य है यह अनुभव सर्व को सिद्ध है रजत को अन्तरमाने तो अनुभव से विरुद्ध है और अन्तरता का साधक प्रमाण वा युक्ति कोई है नहीं इसलिये अन्तर रजतकी बाह्य प्रतीति मानना असङ्गतहै और भी आत्म ख्याति माननेवालेके भी बाह्यपदार्थों म दो भेदहै सो इसजगह ग्रन्थके बढने के भयसे नहीं लिखे और दूसरा इन में कोटियों की क्लिष्टता भी है और इसकी जिनमत मे प्रवृत्तिभी कम है इसवास्ते दिग्मात्र असग स दिखाई है ॥ अब अन्यथा ख्यातिवादी का तात्पर्य कहते है–कि जिस पुरुषकी सत्यपदार्थ के अनुभव जन्य सस्कार होवे जिसके दोष सहित नेत्रका पूर्व दृष्ट सदृश्य पदार्थ से सम्बन्ध होवे वहा पूरोवर्ति सदृश्य पदार्थ के सामान्य ज्ञान से पूर्वदृष्टिकी स्मृति होवे है अथवा स्मृति नहीं होवे सदृश्य के ज्ञान से सस्कार उद्बुत होवे है जिस पदार्थ की स्मृति होवे अथवा जिस के उद्भूत सस्कार होवे उस पदार्थ का धर्म पुरोवर्त्ती पदार्थ मे प्रतीतिहोवे है जैसे सत्य रजतके अनुभवजन्य सस्कार सहित पुरुषका रजत सदृश्य शुक्तिसे दोष सहित नेत्रका सम्बन्ध हुये रजत की स्मृतिहोवे है जिस स्मरण-

होंरे रजतका रजतत्व धर्म शुक्ति में भापि है अथवा नेत्रका सम्बन्ध हुये रजत भ्रम मे विलम्ब होवे नहीं इसलिये नेत्र सम्बन्ध और रजत के प्रत्यक्ष भ्रमके अन्तराल में रजत की स्मृति नहीं होवे है किन्तु रजतानु भवके संस्कार उद्बुद्ध होय के स्मृति के व्यवधान विना शीघ्रही शुक्ति में रजत्व धर्मका प्रत्यक्ष होवे है। स्मृति स्थल मे जैसे पूर्व दृष्ट सदृश्य के ज्ञान से संस्कारका उद्बोध होवे है। तैसे भ्रमस्थल मे पूर्वदृष्टके सदृश्य पदार्थ से इंद्रियका सम्बन्ध होतेही संस्कारका उद्बोध होयके संस्कार गोचर धर्मका पुरोवर्ति में भानहोता है इसको अन्यथा ख्याति कहते हैं अन्य रूप से प्रतीति को " अन्यथा ख्याति " कहते हैं शुक्ति पदार्थ में शुक्तित्व धर्म है रजत्व नहीं है और शुक्तिकी रजत रूप से प्रतीतहोवे है इसलिये अन्य रूपसे प्रतीति है॥ (इदं रजतं) इत्यादिक भ्रमतो उक्त रीतिसे सम्भव नहीं, क्योंकि शुक्तिसे नेत्रका सम्बन्ध और रजत्व स्मृतिको (इदरजत) या ज्ञानकी कारणता माने जिसको यह पूछते है कि शुक्तिसे नेत्रका सम्बन्ध होनके शुक्ति रजत साधारण धर्म चाक चिक्य विशिष्ट शुक्तिका इद रूपसे सामान्य ज्ञान होयके रजतकी स्मृति होती है इससे उत्तर भ्रमहोता है अथवा शुक्तिके सामान्य ज्ञान से पूर्वही शुक्ति से नेत्रका सम्बन्ध होवे उसीकाल मे रजत्व विशिष्ट रजतकी स्मृतिहोय के (इदरजत) यह भ्रमहोता है कि जो प्रथम पक्ष कहे तो सम्भव नहीं क्योंकि प्रथम तो शुक्तिका सामान्य ज्ञान जिससे उत्तर रजतत्व विशिष्ट रजतकी स्मृतिसे उत्तर रजत भ्रम इसरीति से तीनो ज्ञानो की धारा अनुभवसे बाधित है (इदरजतं) यह एकही ज्ञान सर्वकी प्रतीति होता है॥ और जो ऐसा कहे कि प्रथम सामान्य ज्ञान शुक्तिके हुए विना शुक्ति से नेत्रके संयोग काल मे रजतकी स्मृति होयके (इदरजत) यह भ्रम होता है। सो भी सम्भव नहीं क्योंकि सकल ज्ञान चेतनरूप स्व प्रकाश है वृत्तिरूप ज्ञान साक्षी भास्य है, कोई ज्ञान किसीकाल मे अज्ञात होवे नहीं (यह वार्ता आगे प्रतिपादन करेंगे) इसलिये शुक्ति मे नेत्रके संयोगकाल मे रजतकी स्मृति होती तो स्मृतिका प्रकाश होना चाहिये स्मृति में चेतन भागतो स्वयप्रकाश है और वृत्ति भागका साक्षी आधीन सदा प्रकाश होना है, इसलिये स्मृतिका अनुभव होना चाहिये। और न्यायिक को शपथ पूर्वक यह पूछते हैं कि शुक्ति मे (इदरजत) इस भ्रमसे पूर्वकाल मे रजत स्मृति का अनुभव तेरेको होताहै। जब यथार्थवक्ता होवे तो स्मृति के अनुभव का अभावही कहे, इसलिये शुक्ति से नेत्र संयोग काल में भ्रम से पूर्व रजत की स्मृति सम्भव नहीं। और जो ऐसा कहे कि रजतानुभवजन्य रजत गोचर संस्कारसहित नेत्र संयोग मे रजतभ्रम होता है, संस्कार गुण प्रत्यक्ष योग्य नहीं, किन्तु अनुमेय है, इसलिये उक्त दोष नहीं॥ तथापि उसको यह पूछते है कि उद्बुद्ध संस्कार भ्रम के जनक है अथवा उद्बुद्ध और अनुद्बुद्ध दोनों संस्कार भ्रमके जनक है॥ जो दोनोकी जनकता कहे तो सम्भव नहीं क्योंकि अनुद्बुद्ध संस्कारसे स्मृत्यादिक ज्ञान कदापि नहीं होवे जो अनुद्बुद्धसेभी स्मृति होवे तो अनुद्बुद्ध संस्कारसे सर्वदा स्मृति होनी चाहिये। इसलिये उद्बुद्ध संस्कारसे स्मृति होती है उसके भ्रम ज्ञानभी उद्बुद्ध संस्कारसेही सम्भव है इसलिये उद्बुद्ध संस्कार भ्रमके जनक है यह कहना सो भी सम्भव है नहीं क्योंकि संस्कारके उद्बोधक सदृश्य दर्शनादिक है इसलिये शुक्तिसे नेत्रके

संयोगसे चाक चिक्य विशिष्ट शुक्तिका ज्ञान हुये पीछे रजत गोचर संस्कारका उद्बोध संभव है, नेत्र शुक्तिके संयोग कालमें रजत गोचर संस्कारका उद्बोध संभव नहीं इसलिये यह मानना होवेगा प्रथम क्षणमें नेत्र संयोग द्वितीय क्षणमें चाक चिक्य धर्म विशिष्ट शुक्तिका ज्ञान, जिससे उत्तर क्षणमें संस्कारका उद्बोध जिससे उत्तर क्षणमें रजत भ्रम संभव है। इसीरीतिसे नेत्र संयोगसे चतुर्थ क्षणमें भ्रम ज्ञानकी उत्पत्ति सिद्ध हुई, सो अनुभवसे बाधित है नेत्र संयोगसे अव्यवहित उत्तर क्षणमें चक्षु ज्ञान होता है वैसाही अनुभव होता है इसलिये उक्त रीतिसे असंगत है॥ अन्यथा ख्यातिका संक्षेप वर्णन किया॥ अब आख्यातिका वर्णन करते हैं-प्रभाकरका आख्याति वाद है सो उसका तात्पर्य यह है कि अन्य शास्त्रोंमें यथार्थ अयथार्थ भेदसे दो प्रकारका ज्ञान कहते हैं उन शास्त्रकारोंका यह अभिप्राय है कि यथार्थ ज्ञानसे प्रवृत्ति निवृत्ति सफल होवे है और अयथार्थ ज्ञानसे प्रवृत्ति निवृत्ति निष्फल होवे है यह लेख सकल शास्त्रोंका असद्भूत है क्योंकि अयथार्थ ज्ञान अप्रसिद्ध अर्थात् है ही नहीं सारे ज्ञान यथार्थही होते हैं जो अयथार्थ ज्ञानभी होता तो पुरुषको ज्ञान होते ही ज्ञानत्व सामान्य धर्म देखिके उत्पन्न हुवे ज्ञानमें अयथार्थका संदेह होनेसे प्रवृत्ति निवृत्तिका अभाव होवेगा क्योंकि ज्ञानमें यथार्थत्व निश्चय और अयथार्थता संदेहका अभाव पुरुषकी प्रवृत्ति निवृत्तिका हेतु है और अयथार्थताके संदेह होनेसे दोनों सम्भव नही और अयथार्थ ज्ञानको नहीं माने तब उत्पन्न हुवे ज्ञानमें उक्त संदेह होवे नही क्योंकि कोई ज्ञान अयथार्थ होवे तो तिसकी ज्ञानत्व धर्मसे सजातीयता अपने ज्ञानमें देखकर अयथार्थत्व संदेह होवे सो अयथार्थ ज्ञान है नही। सारे ज्ञान यथार्थही है इसलिये ज्ञानमें अयथार्थता संदेह होवे नही इस रीतिसे भ्रम ज्ञान अप्रसिद्ध है जहां शुक्तिमें रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवे है और भय हेतु रज्जुसे निवृत्ति होवे है तहांभी रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान और सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान नही है जो रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान और सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान उक्त स्थलमें होवे तो यथार्थ तो संभव नही इसलिये अयथार्थ होवे सो अयथार्थ ज्ञान अलीक है इसवास्ते उक्त स्थलमें रजतका और सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान नही किन्तु रजतका स्मृति ज्ञान है और शुक्तिका इदं रूपसे सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष, तैसे पूर्वानुभव सर्पका स्मृति ज्ञान है और सामान्य इदं रूपसे रज्जुका प्रत्यक्ष ज्ञान है शुक्तिसे तथा रज्जुसे दोष सहित नेत्रका सम्बन्ध होवे है इसलिये शुक्तिका तथा रज्जुका विशेषरूप भाषे नही किन्तु सामान्यरूप इदंता भाषे है और शुक्तिसे नेत्रके सम्बन्धजन्य ज्ञान हुवे रजतके संस्कार उद्बुद्ध होयके शुक्तिके सामान्य ज्ञानसे उत्तर क्षणमें रजतकी स्मृति होवे है तैसे रज्जुके सामान्य ज्ञानसे उत्तर क्षणमें सर्पकी स्मृति होवे है यद्यपि सकल स्मृति ज्ञानमें पदार्थकी तत्ताभी भाषे है तथापि दोष सहित नेत्रके संबन्धसे संस्कार उद्बुद्ध होवे जहां दोषके माहात्म्यसे तत्ता अंशका प्रमोष होवे है इसलिये प्रमुष्ट तत्ताकी स्मृति होती है प्रमुष्ट कहिये लुप्त हुई है तत्ता जिसकी सो प्रमुष्ट तत्ताक शब्दका अर्थ है इसरीतिसे (इदं रजत अयं सर्प.) इत्यादि स्थलमें दो ज्ञान है तहां शुक्तिका और रजतका सामान्य इदं रूपका प्रत्यक्ष ज्ञान यथार्थ है और रजतका तथा सर्पका स्मृति ज्ञानभी यथार्थ है। यद्यपि विशेष करके

शुक्ति और रज्जु भागको त्यागके प्रत्यक्ष ज्ञान हुवा है और तत्ता भाग रहित स्मृति ज्ञान हुवा है तथापि एक भाग त्यागनेसे अयथार्थ ज्ञान होवे नही किंतु अन्यरूपसे ज्ञानको अयथार्थ कहे है इसलिये उक्त ज्ञान यथार्थ है अयथार्थ नहीं इसरीतिसे भ्रम ज्ञान अप्रसिद्ध है यह इसका कहना समीचीन नही क्योंकि शुक्तिमें रजत भ्रमसे प्रवृत्ति हुवे पुरुषको रजतका लाभ नही होनेसें पुरुष ऐसा कहता है कि रजत शून्य देशमें रजत ज्ञानसे मेरी निष्फल प्रवृत्ति हुई इसरीतिसे भ्रम ज्ञान अनुभव सिद्ध है तिसका लोप संभव नही और मरुभूमिमे जलका बाध होवे तब पुरुष यह कहताहै कि मेरेको मरुभूमिमें मिथ्या जलकी प्रतीति हुई इस बाधसेभी मिथ्या जल और उसकी प्रतीति होवे है और आख्यातिवादीकी रीतिसे तो रजतकी स्मृति और शुक्तिज्ञानके भेदाग्रहमें मेरी शुक्तिमें प्रवृत्ति हुई ऐसा बाद होना चाहिये और मरुभूमिके प्रत्यक्षसे और जलकी स्मृतिसे मेरी प्रवृत्ति हुई ऐसा बाध होना चाहिये और विषय तथा भ्रम ज्ञान दोनो त्यागके अनेक प्रकारकी विरुद्ध कल्पना आख्यातिवादमें है तथाही नेत्र संयोग हुवे दोषके महात्म्यसे शुक्तिका विशेष रूपसे ज्ञान होवे नही यह कल्पना विरुद्ध है तैसेही तत्तांशके प्रमोषसे स्मृति कल्पना विरुद्ध है और विषयका भेद है सो भाषे नही ऐसे ज्ञानोंके भेदहै सो भी भाषे नहीं यह कल्पनाभी विरुद्ध है और रजतकी प्रतीति कालमें सन्मुख देशमें रजत प्रतीति होवे है इसलिये आख्याति वाद अनुभव विरुद्ध है और आख्यातिवादीके मत में रजतका भेद ग्रह प्रवृत्तिका प्रतिबोधक होनेसे रजतके भेदग्रहका अभाव जैसे रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु माना है तैसेही सत रजत स्थलमें रजतका अभेदग्राह निवृत्तिका प्रतिबोधक अनुभव सिद्ध है इसलिये रजतके अभेद ग्राहका अभाव निवृत्तिका हेतु होवेगा इसरीतिसे रजतके भेदज्ञानका अभाव रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है और रजतके अभेद ज्ञानका अभाव रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु है शुक्ति देशमें(इद रजत) ऐसे दो ज्ञान होवे तहा आख्याति वादीके मतमे दोनों है क्योकि शुक्तिमे रजतका भेद तो है परन्तु दोष बलसे रजतके भेद-का शुक्तिमें ज्ञान होवे नहीं इसलिये प्रवृत्तिका हेतु रजतके भेद ज्ञानका अभाव है और शुक्तिमें रजतका अभेद है नही और आख्याति वादमे भ्रमका अगीकार नही इसलिये शुक्तिमें रजत का अभेदका ज्ञान सभव नही इसरीति से शुक्ति से रजतार्थी की निवृत्ति का हेतु रजत के अभेद ज्ञानका अभाव है रजतार्थी की सामग्री दोनो है और प्रवृत्ति निवृत्ति दोनो परस्पर विरोधी है और एक काल में दोनो सभव नही और दोनों के असभव होनेसे दोनो का त्याग करे सोभी सभव नही क्योंकि प्रवृत्ति का अभावही इस स्थान मे निवृत्त पदार्थ है इसलिये प्रवृत्तिका त्यागकरे निवृत्तिका प्रायः होवे है और निवृत्तिका त्यागकरे प्रवृत्ति प्रायःहोवे है इसरीति से दोनो के त्याग में और दोनों के अनुष्ठान मे आसक्तहुवा आख्यातिवादी को व्य कुल होके उज्जाते बोलना न बनेगा इस अर्थ में अनेक कोटी है कठिन होने से इसजगह नहीलिखी ॥ अब अनिर्वचनीय ख्यातिका खण्डन मण्डन तो दूसरे प्रश्न मे जहा वेदान्तमत दिखाया है उसीजगह अच्छीतरह से लिखआये हे परन्तु प्रसगवश से किञ्चित् अनिर्वचनीय ख्याति का स्वरूप कहते　　की वृत्ति नेत्रद्वारा निकलके विषयो के समान आकार को प्राप्तहोती　　विषयों का आवरण भगहोके उसकी प्रतीति

तहां प्रकाश भी सहायक होता है, प्रकाश विना पदार्थ की प्रतीति होती नहीं जहां रज्जु में भ्रम होता है तहां अन्तःकरण की वृत्ति नेत्र द्वारा निकली भी और रज्जु से उसका सम्बन्ध भी होता है, परन्तु तिमिरादिक दोष प्रतिबन्धक है इसलिये रज्जु के समानाकार वृत्तिका स्वरूप होता नहीं, इसलिये रज्जु का आवरण नाशे नहीं, इसरीति से आवरण भंग का निमित्त वृत्तिका सम्बन्ध होने से भी, जब रज्जु का आवरण भंग होता नहीं तब रज्जु चेतन में स्थित अविद्या में क्षोभ होके सो अविद्या सर्पाकार परिणाम को प्राप्तहोती है सो अविद्या का कार्य्य सर्पसत होता तो रज्जु के ज्ञान से उसका बाध होतानहीं और बाध होता है इसलिये सत्यनहीं और असत् होता तो वंझा पुत्र की नांई प्रतीति नहीं होती और प्रतीति होती है इसलिये असत्य भी नहीं किन्तु सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय है, शुक्ति आदिक में रूपादिक भी इसी रीति से अनिर्वचनीय उत्पन्न होती है उस अनिर्वचनीय की जो ख्याति कहिये प्रतीति और कथना, सो अनिर्वचनीयख्याति है जैसे सर्प अविद्याका परिणाम है तैसे उस की ज्ञान रूप वृत्ति भी अविद्या काही परिणाम है अन्तःकरण का नहीं क्योंकि जैसे रज्जु ज्ञान से सर्प का बाध होता है वैसे उसके ज्ञान का भी बाध होता है अन्तःकरण का ज्ञान होता तो बाध नहीं होना चाहिये, इसलिये ज्ञानभी सर्पकी नांई अविद्याका कार्य सत असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय है परन्तु रज्जु उपहित चेतनमें स्थित तमोगुण प्रधान अविद्या उसका परिणाम सर्प है और साक्षी चेतनमें स्थित अविद्याके सतोगुणका परिणाम वृत्ति ज्ञान है रज्जु चेतनकी अविद्याका जिस समय सर्पाकार परिणाम होता है उसी समय साक्षी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकार परिणाम होता है क्योंकि रज्जु चेतन आश्रित अविद्यामें क्षोभका जो निमित्त है, उस निमित्तसेही साक्षी आश्रित अविद्या अंशमें क्षोभ होता है इसलिये भ्रम स्थलमें सर्पादिक विषय और उनका ज्ञान एकही समय उत्पन्न होता है और रज्जु आदिक अधिष्ठानके ज्ञानसे एकही समय लीन होता है इसरीतिसे सर्पादिक भ्रम विषय बाह्य अविद्या अंश सर्पादिक विषयका उपादान कारण है, और साक्षी चेतन आश्रित अंतर अविद्या अंश उनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादान कारण है और स्वप्नमें तो साक्षी आश्रित अविद्याकाही तमोगुण अंश विषयरूप परिणामको प्राप्त होता है उस अविद्यामें सतोगुण अंश ज्ञानरूप परणामको प्राप्त होता है इस स्वप्नमें अंतर अविद्याही विषय और ज्ञान दोनोंका उपादान कारणहै इसीसे बाह्य रज्जु सर्पादिक और अन्तर स्वप्न पदार्थ साक्षी भाष्य कहेहैं, अविद्याकी वृत्तिद्वारा जिसको साक्षी भासे कहिये प्रकाशे सो साक्षी भाष्य कहिये ॥ यह तुम्हारी अनिर्वचनीय ख्याति नहीं बनी ॥ शंका ॥ रज्जुके ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति बने नहीं क्योंकि मिथ्या वस्तुका जो अधिष्ठान होवे उस अधिष्ठानके ज्ञानसे मिथ्याकी निवृत्ति होती है, यह अद्वैत वादका सिद्धान्त है और मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जुचेतनहै, रज्जुनहीं इसलिये रज्जुके ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति बने नहीं ॥ इसका समाधान–रज्जु आदिक जडपदार्थका ज्ञान अन्तःकरणकी वृत्ति रूप होता है जहां आवरण भंग वृत्तिका प्रयोजन है सो आवरण अज्ञानकी शक्तिहै इसलिये आवरण जडके आश्रितहै नहीं, किन्तु जडका अधिष्ठान जो चेतन, उस के आश्रित है

इसलिये रज्जु समानाकार अंतःकरणकी वृत्तिसे रज्जु अवछिन्न चेतनका ही आवरण भंग होता है वृत्तिमें जो चिदाभास है उससे रज्जुका प्रकाश होता है चेतन स्वप्रकाश है, उसमें अभावासको उपयोग नहीं इसरीतिसे चिदाभास सहित अन्तःकरण की वृत्ति रूप ज्ञानमें जो वृत्ति भाग उसका आवरण भगरूप फल चेतनमें होता है, और चिदाभास भागका प्रकाशरूप फल रज्जुमें होता है, इसलिये वृत्तिज्ञानका केवल जड़ रज्जु विषयनहीं किन्तु अधिष्ठान चेतन सहित रज्जु साभास वृत्तिका विषय है इसी कारण से यह लिखा है—"अन्तःकरण जन्यवृत्ति ज्ञान सारिब्रह्म का विषय करे है" इस प्रकार से रज्जु ज्ञानसे निरावरण होके सर्पका अधिष्ठान रज्जु अवछिन्न चेतन का भी निज प्रकाशसे भान होता है इसलिये रज्जु का ज्ञानही सर्पके अधिष्ठान का ज्ञान है जिससे सर्प निवृत्ति सम्भव है ॥ अन्य शङ्का ॥ यद्यपि इसरीतिसे सर्पकी निवृत्ति रज्जुके ज्ञानसे सम्भव है तोभी सर्प के ज्ञानकी निवृत्ति संभव नहीं क्योंकि सर्पका अधिष्ठान रज्जु अवछिन्न चेतन है और सर्प के ज्ञानका अधिष्ठान साक्षी चेतन है पूर्वोक्तप्रकार से रज्जुज्ञान से रज्जु अवछिन्न चेतनकाही भान होता है साक्षी चेतनका नहीं इसलिये रज्जुका ज्ञान होने सेभी सर्पज्ञानका अधिष्ठान साक्षी चेतन अज्ञात है और अज्ञात अधिष्ठान में कल्पित की निवृत्ति होवै नहीं किन्तु ज्ञात अधिष्ठान मेंही कल्पितकी निवृत्ति होतीहै इसलिये रज्जु ज्ञानसे सर्प ज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं समाधानः—जिसके विषयके आधीन ज्ञान होता है उस विषयके अभाव से ज्ञानकी निवृत्ति होजाती है तो विषय जो सर्प जिसकी निवृत्ति होतेही सर्प के ज्ञानके विषयके अभावसे आपही निवृत्ति होती है परन्तु तुम्हारे यहां सर्पकी निवृत्ति से सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनेनहीं क्योंकि कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञानबिना होती नहीं और सर्पका ज्ञानभी कल्पित है जिसका अधिष्ठान साक्षी चेतन है जिसके ज्ञानबिना कल्पित सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनेनहीं। अब हम तुमसे यह पूछे है कि तुम कहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है तुम अनिर्वाच्य किसको कहते हो वैसा वस्तु कहनेवाला शब्द नहीं है वा शब्दका निमित्त नहीं है, प्रथम पक्ष तो तुम्हारा बनेहीगानहीं क्योंकि यह जगत् है, यह रसाल है, यह तमाल है ऐसे शब्द तो प्रत्यक्षसेही सिद्ध है जो दूसरा पक्ष अंगीकार करो तो क्या शब्दका निमित्त ज्ञान नहीं है वा पदार्थ नहीं है प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं, सरल रसाल ताल तमाल इत्यादिकका ज्ञान तो हर प्राणीको प्रतीत है सब जीव देखने बोले जानते है और इनका ज्ञान हमकोभी है जो दूसरा पक्ष अंगीकार करो तो हम पूछते है कि पदार्थ भावरूप नहीं है या अभावरूप नहीं है? जो कहो कि पदार्थ भावरूप नहीं है और प्रतीति होती है तो हम कहेहै कि तुमको असत् ख्याति माननी पडी और तुम्हारे मतमें असत् ख्याति माननी महा दूषण है जो कहो कि पदार्थ अभावरूप नहीं तो भावरूप सिद्ध हुवे जब पदार्थ भावरूप सिद्ध हुवे तो सत ख्याति माननी पडेगी औरभी देखो कि तुम्हारे मतका ऐसा सिद्धान्त है कि सम सत्ता साधक बाधक है विषम सत्ता साधक बाधक नहीं क्योंकि जगत जैसे मिथ्या है तैसेही वेद और गुरुभी मिथ्या है जो वेद और गुरु सत् होता तो इस मिथ्यारूप जगत्की निवृत्ति कदापि न होती कि देखो जल्दी प्यास लगी है तो मरु स्थल देखके प्रतिभासक जलसे कदापि तृषा दूर नहीं होती ऐसेही जाग्रितमें जिस पुरुषको

भूख लगी है उसको स्वप्नमें नाना प्रकारके भोजन मिले और उस पुरुषने स्वप्नमें अच्छी तरहसे खाया और तृप्त हुवा और जब वो जगा तब भूख उसको वनी रही उसने स्वप्नमें भोजन भी तृप्त होकर किया पर जाग्रतकी भूख न मिटी अब देखो कि जब सम सत्ता साधक बाधक है विषम सत्ता साधक बाधक नहीं है तो हे विचार शून्य बुद्धि विचक्षण नेत्र मीचकर हृदयमें विचार करो कि रज्जु सर्पकी सत्ता प्रतिभासक मानो हो तो रज्जु सर्प प्रतिभासिक हुवा और उसका साधक रज्जुका विशेषरूप करके जो अज्ञान तिसको मानो हो तो इस अज्ञानकी सत्ता व्यवहारिक है इसलिये यह अज्ञान व्यवहारिक ठहरा और रज्जुके ज्ञानसे प्रतिभासक सर्पकी निवृत्ति मानो हो तो इस रज्जुका ज्ञानभी व्यवहारिक है तो सर्प प्रतिभासक कैसे हो सके जो सर्प प्रतिभासक होय तो व्यवहारिक रज्जुका अज्ञान इस सर्पका साधक हो सके नहीं और रज्जुका व्यवहारिक ज्ञान सर्वका बाधक हो सके नहीं ऐसेही स्वप्नमें समझो कि व्यवहारिक जो निद्रा सो तो स्वप्नकी साधक है और व्यवहारिक जो जाग्रत वा सुषुप्ति यह स्वप्नके बाधक हे तो स्वप्न प्रतिभासिक कैसे हो सके और देखो कि ब्रह्मका तुम सर्वका साधक मानों हो तो ब्रह्मकी परमार्थ सत्ता है और सर्व जगत् व्यवहारिक सत्ता है तो अब देखो कि तुम्हारा सिद्धान्त तुमकोही बाधा देता हुवा तुमको समझाता है परन्तु शुद्ध गुरुके विदून तुमको तुम्हारा अभिप्राय नहीं प्रतीति होता क्योंकि देखो समान सत्ताकाही साधक बाधक है तो ब्रह्म किसीकाभी साधक बाधक नहीं होना चाहिये इसलिये सर्वकी साधकता बाधकताके निर्वाहके अर्थ सर्वकी एकही सत्ता मानो अब जो सर्वकी प्रतिभासिक सत्ता मानोगे तब तो ब्रह्मकोभी मिथ्या माननाही पडेगा सो तो तुमको अभिमत है नहीं और जो सर्वकी व्यवहार सत्तामानो तो ब्रह्म व्यवहारिक पदार्थ सिद्ध होगा तो तुम व्यवहारिक पदार्थको जन्य माना तो ब्रह्मकोभी जन्य मानना पडेगा ता यहभी तुमको अभिमत है नहीं इसलिये सर्वकी परमार्थ सत्ता अर्थात् सत्त सत्ता मानों इस सत्ताके माननेमें तुम्हारे सर्व काम सिद्ध हो जायग इस युक्तिको सुनकर वेदान्ती आशक्त होकर अनिर्वचनीय ख्याति माननेमें लज्जावन् होकर आपही अनिर्वाच्य होगये अर्थात् वचन कहनेके योग्य न रहे और इन ख्यातिके विषय समझाने वाले गुरु कोई विरलेही हैं अब इन चार युक्तियोंको सुनकर लज्जावान होकर इस अनिर्वचनीय ख्यातिको जलाञ्जली देनेसेही उनका उद्धार होगा, नतु अन्य रीतिसे सो वेचारी युक्तिया यह है — १लोक अनुभव विरुद्ध,२तुम्हारे बिना और सकल शास्त्रोसे विरुद्ध ३तुम्हारेसे विरुद्ध४तुम्हारेको तुम्हारे ही सिद्धान्तका त्याग होगा अब प्रथम लोकानुभव विरुद्ध युक्ति दिखलाते है जिस देशमें शुक्ति और रज्जु अर्थात् जेवरी जिसे सीधडा भी कहते है, अथवा अगार सहित ऊसर भूमिमें जलका और जो भ्रम स्थलके स्थान है वे सब इसी रीतिसे जानना सो देखो जिस २ स्थलमें जिस २ पुरुषको भ्रम ज्ञानसे जिस २ वस्तुके इष्ट साधन की इच्छासे उस भ्रम ज्ञानके होनेके सायही भ्रमस्थलमें पहुचतेही उस इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न होवे वह पुरुष कहता है कि मेरेको मेरी इष्ट वस्तुका भ्रम ज्ञान हुवा मेरी मेहनत वृथा गई इस कहनेका तात्पर्य्य यह है कि जिस पुरुषको शुक्तिमें रजतका भ्रम हुवा उस पुरुषको शुक्ति देशमें पहुचनेसे और रजतके न मिलनेसे वह पुरुष कहता हुवा कि मेरेको चा-

मिथ्या ज्ञान हुवा अर्थात् विरुद्ध ज्ञान हुवा इसलिये इसमें मेरी प्रवृत्ति वृथा हुई प-
वह पुरुष ऐसा नही कहता कि मेरेको अनिर्वचनीय रजतका भ्रम ज्ञान हुवा किन्तु यही
ा कि मेरेको सत् रजतका भ्रम ज्ञान हुवा, नतु अनिर्वचनीय रजतका,
ीतिसे रज्जुमें जहा दड, सर्प, माला इत्यादिक भिन्न पुरुषोंको भ्रम ज्ञान होता
उस जगह भी रज्जु देख जाने पर वे सर्व पुरुष अपने २ भ्रमको कहते हुवे
हमको रज्जुमें सत् सर्पका मिथ्याभास हुवा कोई कहता है कि मेरेको
ाका भ्रम रज्जुमें मिथ्या होगया इत्यादि जिस २ पुरुषको जिस २ सत्य वस्तुका भ्रम
है वह उसीका नाम लेकरही भ्रमज्ञान कहता है परन्तु अनिर्वचनीय दड अनिर्वचनीय
ा अनिर्वचनीय सर्प इत्यादि भिन्न २ अनिर्वचनीय नाम लेकर कोई नही कहता कि
ो अमुक अनिर्वचनीय वस्तुका भ्रम ज्ञान हुवा किन्तु जो कहता है सो सत्यवस्तुकाही
ज्ञान कहता है यह अनुभव लोकमें प्रसिद्ध है सो बुद्धिमान् पुरुष भ्रमस्थलमें सत्य
ुकाही भ्रम ज्ञान माने तो क्या अपूर्व है परन्तु जो पामरलोग विवेक रहित नाई, धोबी
ा, तम्बोली, जाट, गूजर, भील, आदिकोंसे पूछो तो वे भी भ्रमस्थलमें रजत अर्थात्
ी वा सर्प, माला दण्ड इत्यादिकोंका नाम लेकर कहेंगे कि हमको इन वस्तुवोंका भ्रम
हुवा परतु ऐसा कोई नही कहेगा कि हमारेको अनिर्वचनीय अमुक वस्तुका भ्रमज्ञान
इसरीतिसे लोक अनुभव विरुद्ध सिद्ध हुवा। दूसरा तुम्हारे विना सकलशास्त्रसे विरुद्धभी
ोकि तुम्हारे मुख्य वेद अर्थात् श्रुति जिसमें मत्र वा मंत्रोंकी व्याख्यामें कहीभी अनिर्वचनीय
ातिका कथन नही अथवा अनिर्वचनीय कोई पदार्थ नहीं माना ज्ञान वा अज्ञान इसके सिवाय
कोई तीसरा अनिर्वचनीय पदार्थ नही इस वेदके सिवाय न्याय, बौद्ध, सांख्य, मीमांसा,
ौद्ध, जैनी आदिक कोईभी इस अनिर्वचनीय पदार्थको नहीं मानते है । और किसी
त्रमें अनिर्वचनीय पदार्थका कथनभी नहीं है। हा अलबत्ता अनिर्वचनीय शब्दका तो प्रयोग
त्रोंमें दीखता है सो शास्त्रकार अनिर्वचनीय वाक्यका अर्थ करते है कि जो न कहनेमें
उसीका नाम अनिर्वचनीय है इसलिये तुम्हारा अनिर्वचनीय पदार्थ मानना तुम्हारे
ा सकल शास्त्रोंसे विरुद्ध सिद्ध हो गया । अब तीसरी युक्तिसेभी विरोध सिद्ध
लाते है.-कि देखो वेदान्तशास्त्रमें तीन सत्ताका अगीकार है सो एक तो परमार्थ,
े व्यवहारिक, तीसरे प्रतिभासिक इन तीनों सत्ताओंमे से कोई किसीका
क बाधक नही क्योंकि समसत्ता साधक बाधक है विषम सत्ता साधक बाधक नहीं इस बातको
अगीकार करो हो तो अब देखो कि जिस जगह शुक्तिमें रजतका भ्रम हुवा उस जगह
सत् रजतको मानों नही अनिर्वचनीय पदार्थ प्रतिभासिक रजत मानो हो और दूसरा
भी मानो हो कि शुक्तिका ज्ञान होनेसे रजत ज्ञानकी निवृत्ति होवे है तो अब देखो इस
ह नेत्र बन्दकर हृदय कमल ऊपर बुद्धिसे विचार करो कि स्वसत्ता साधक बाधक है
शुक्तिका ज्ञान होनेसे अनिर्वचनीय रजतकी निवृत्ति माननी असंभव है क्योंकि शुक्ति तो
वहारिक सत्तावाली है और अनिर्वचनीय रजत प्रतिभासिक सत्तावाली है तो व्यवहा-
सत्तावाली शुक्तिका ज्ञान होनेसे अनिर्वचनीय रजत प्रतिभासिक सत्तावालीका क्यों-
बाद हुवा कदाचित शुक्ति ज्ञानसे अनिर्वचनीय रजतका बाद मानोगे तो समसत्ता साधक

बाधक है । इस कहनेको जलाञ्जली देनी पडेगी और विषमसत्ता साधक बाधक हो जायगी तो ऊपर लिखी युक्तिसे विरोध होगा चौथे तुम्हारेको तुम्हारे ही सिद्धान्तका त्याग होगा सो देखो कि तुम्हारा ऐसा सिद्धान्त है कि समसत्ता साधक बाधक है विषमसत्ता नहीं इस समसत्ताको साधक बाधकही सिद्धकरनके वास्ते तुम्हारे ही शास्त्रोंमें लिखा है कि वेद और गुरु सत् नहीं किन्तु मिथ्या है क्योंकि जगत् प्रपंच मिथ्या है तो जो वेद और गुरु सत्य होय तो मिथ्यात्वकी निवृत्ति होय नहीं इसलिये वेद और गुरु मिथ्या है तिम मिथ्यात्व वेद गुरुसेही प्रपंचकी निवृत्ति होगी तो तुम्हारा मुख्य समसत्ता साधक बाधक का सिद्धान्त हुवा तो जहा शुक्तिमें रजतका भ्रम ज्ञान हुवा है उस जगह अनिर्वचनीय अ-अर्थात् प्रतिभासिक रजत उत्पन्न हुई है सो व्यवहारिक शुक्तिके ज्ञानसे प्रतिभासिक रजत की निवृत्ति बने नहीं जो तुम्हारे को तुम व्यवहारिक शुक्तिके ज्ञानसे प्रतिभासिक रजत अनिर्वचनीय की निवृत्ति मानोगे तो तुम्हारे सिद्धान्तका त्यागभी हो गया इस सिद्धान्तके त्याग होनेसे आशक्त होकर अनिर्वचनीय ख्यातिवादी व्याकुल होकर लज्जासे प्राणत्याग करनेके समान अनिर्वचनीय अर्थात् बोलनेके योग्य न रहा इस जगह अनेक कोटी है परन्तु क्लिष्ट अर्थात् कठिन बहुत है इसलिये नही लिखी क्योंकि कठिनतासे जिज्ञासुको मुश्किल पडेगा और जिज्ञासु न समझनेसे आलस्य करके ग्रन्थका बाचना छोड देगा ॥

अब पंच ख्याति निरूपणके अनन्तर किंचित् सत ख्यातिका वर्णन करते है–कि श्री वीत-राग सर्वज्ञ देवने इस जगत्का सास्वत अनादि अनन्तरीतिसे कथन किया इसलिये सत ख्याति माननेसे जगत्की निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होगी इसलिये जिस जगह जिस वस्तुका भ्रम होता है उस जगह जो भ्रमवाली वस्तु है जिसका जिसमें भ्रम हुवा है दोनों यह और तीसरा भ्रम चौथा भ्रम करनेवाला यह चारों पदार्थ सत् है, इनकी सतताका वर्णन तो हम इन चारों वस्तुओंको प्रति पादन करनेके बाद अच्छीतरह कहेंगे कि यह चारों वस्तु सत् है, प्रथम तो हम तुमको यह दिखलाते है कि जिस जगह भ्रम होता है तिस जगह किस २ कारणकी उस भ्रम स्थलमें आवश्यकता होती है सो उन कारणोंको दिखलाते है कि १ प्रथम तो प्रबल यह है कि प्रकाश अन्धकारका अभाव अर्थात् जिस जगह भ्रम होगा उस जगह न तो पूरा २ प्रकाश होगा क्योंकि जो पूरा २ प्रकाश होतो वस्तु भिन्न २ दृष्ट आवे इस लिये पूरे प्रका शका अभाव है तैसे ही पूरा अन्धकार भी नहीं क्योंकि जो पूरा अन्धकार होता तो वस्तु दृष्टि नहीं आती इसलिये पूरा अन्धकार भी नहीं । २ दूसरे नेत्रोंमे तिमिर आदि दोष । ३ तीसरे जिस वस्तुका यथावत ज्ञानका अनुभव होय । ४ चौथे इष्ट साधन प्रवृत्तिका कारण है और अनिष्ट साधन निवृत्तिका कारण है इतने कारण होनेसे भ्रमस्थलमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती है अब देखो कि जिस समय शुक्तिमें रजतका भान अर्थात् प्रतीति जिस पुरुषको होती है उस समय न तो बहुत प्रकाश है और न बहुत अन्धकार है उस समयमें दोष सहित नेत्रोंसे सादृश्य जो वस्तु इष्ट साधन थी उस पुरुषको जिस जगह पडी हुईथी उस जगह ऊपर लिखे दोषोंके बलसे उस पुरुषको ऐसा ज्ञान हुवा कि (इदंरजत) अर्थात् चांदी पडी हुई है इस विपरीत ज्ञानमें पंचख्यातिवादका मत दीखाकर अब सिद्धांती

की रीति दिखाते है कि रजत् अर्थात् चादीके अवयव स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावसे अभाव अर्थात् उस शुक्ति अर्थात् सीपमें नास्तिरूप होकर अस्तिरूप सदा शुक्तिके साथ रहते है तैसेही शुक्तिके अवयव अस्तिरूप करके सत्है तैसेही रजत्के अवयव नास्ति रूप है मिथ्या है नही। दोष सहित नेत्रोंका सम्बन्ध और उस समय न प्रकाश है और न अन्धकार है और इष्ट साधन वस्तुकी प्रबल इच्छा और सादृश्य आदि कारण सामग्रीसे नास्ति रूप रजत् अवयवमें सत रजत आविर्भावरूप प्रत्यक्ष दीखे है। अधिष्ठान ज्ञान अर्थात् शुक्ति ज्ञानसे सत् रजतके अवयवधुन्स अर्थात् त्रोभाव होती है अब यहां वेदान्तीकी ओरसे शङ्का अर्थात् तर्क करके दूषण देते है सो दूषण दिखाते है शुक्ति रजत दृष्टान्तसे प्रपचको मिथ्यात्व की अनुमति होवे है सत् ख्याति वादमे शुक्तिमें रजत सत् है तिसको दृष्टान्त दे कर प्रप-चम मिथ्यात्व सिद्ध होवे नहीं इसलिये सत् ख्याति मानना ठीक नहीहै क्योंकि देखो शुक्ति ज्ञानसे अनन्तर (कालत्रयेपिशुक्तौ रजत न स्ति) इस रीतिसे शुक्तिमें त्रैकालक रजताभाव प्रतीति होवे है वेदान्त मतमे तो अनिर्वचनीय रजत तो मध्य कालमें होवे है और व्यवहारिक रजताभाव त्रैकालक है और सत्त ख्याति माननेमे व्यवहारिक रजत होवे तिस कालमें व्यवहारप्रदिक रजताभाव सभव नहीं इसलिये त्रैकालक रजता भावकी प्रती-तिसे व्यवहारिक रजतका कहना विरुद्ध है और अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्तिमें तो प्रसिद्ध रजतकी सामग्री चाहिये नही दोष सहित अविद्यासे ताकी उत्पत्ति सभव है और व्यवहारिक रजतकी उत्पत्ति तो रजतकी प्रसिद्ध सामग्री विना सभव नहीं और शुक्ति देशमें रजतकी प्रसिद्ध सामग्री है नही। इसलिये सत् रजतकी उत्पत्ति शुक्ति देशमें है नहीं कदाचित् जो तुम ऐसा कहो कि शुक्ति देशमें अवयव है सोही सत् रजतकी सामग्री है तो हम ऐसा पूछेंगे कि रजतावयवका उद्भुतरूप है अथवा अनुद्भुत है जो उद्भुतरूप कहोगे तो रजता-वयवकाभी रजतकी उत्पत्तिसे प्रथम प्रत्यक्ष हुवा चाहिये जो कहो कि अनुद्भुत वाला है तो अनद्भुत रूपवाले अवयवसे रजतभी अनुद्भुतरूप वाली होवेगी इसलिये रजतका प्रत्यक्ष होवे नहीं जो कहो उद्भुत रूपवत् त्र्यणुका रभक द्व्यणुकमें तो अनुद्भुतरूप है नही किन्तु उद्भुतरूप है द्व्यणुकमें महत्व नहीं इसलिये उद्भुतरूप हों तो भी द्व्यणुकका प्रत्यक्ष होवे नहीं और द्व्यणुकमेंही उद्भुतरूप नहीं है किन्तु प्रमाणमेभी नैयायक उद्भुतरूप अंगीकार करे है जो तुम ऐसा मानोहो तो द्व्यणुक की नाई रजत अवयवी भी उद्भुत रूप वाले है परन्तु महत्शून्य है इस-लिये रजत अवयव का प्रत्यक्ष होवे नहीं ऐसा कहोगे तो हम फिर पूछते है कि नैयायक के मतमें तो महत् परिमाण के चार भेद है आकाशादिक में परम महत्परिमाण है परम महत्परि-माण वाले कोही नैयायक विभु कहे है विभु से भिन्न पटादिक में अपकृष्ट महत्परिमाण है और सर्पादिकन में अपकृष्ट तर महत्परिमाण है त्र्यणुक में अपकृष्टतम् महत्परिमाण है जो रजत के अवयव भी महत्परिमाण शून्य है तो द्व्यणुक से आरब्ध त्र्यणुक की नाई महत्व शून्य अवयव से आरब्ध रजतादिक भी अपकृष्ट तम महत्परिणाम वाले हुवे चाहिये इस लिये रजत अवयव महत्वशून्य है यह कहना तुम्हारा ठीक नहीं कदाचित् रजतावयव में तो महत्व का अभाव कहो तो किसी रीति से बन भी जाय परन्तु जहां वल्मीक मे घट का भ्रम होवे तहा भी घटावयव कपाल मानने होवेंगे और जहा स्थाणु (लक्कड)

में पुरुष भ्रम होवे तहां स्थानू में पुरुष के अवयव हस्त पादादिक मानने होवेंगे कपाल और हस्त पादादिक तो महत्वशून्य सभव नहीं और रजतत्त्व जाति तो अनुसाधारण है इसलिये सूक्ष्मावयव मे भी रजत व्यवहार समव है और घटत्व कपालत्व हस्त पादत्व पुरुषत्वादिक जाति तो महान् अवयवी मात्र वृत्ति है तिसके सूक्ष्मावयव में कपालत्वादिक जाति सभव नहीं इसलिये भ्रम के अधिष्ठानदेश में आरोपित के व्यवहार अवयव होवे तो तिन की प्रतीति होनी चाहिये इस लिये व्यवहारिक अवयव से रजतादिक की उत्पत्ति कहना असगत है ऐसी वेदान्ती शका करता है, तिस का समाधान इस रीति से है-सो दिखलाते हैं शुक्ति रजत दृष्टान्त से प्रपंच को मिथ्यात्व की अनुमति होवे है इस दृष्टान्त दार्ष्टान्त की विसमता अर्थात् दृष्टान्त दार्ष्टान्त बनता नहीं है सो हम पीछे दिखावेंगे परन्तु पहले जो इन वेदान्तियों की बालक की तरह शुष्क तर्क उठती है उन का समाधान इस रीति से है शुक्ति ज्ञान से अनन्तर (कालत्रयेपि शुक्तौ रजत नास्ति) इस रीति से शुक्ति मे त्रैकालक रजताभाव प्रतीति होवे है तो हम तुम्हारे को यह पूछे हैं कि जिस पुरुष को शुक्ति म त्रिकालक रजताभाव है उस समय में उस पुरुष की (इद रजत) इस रजत के ज्ञान से रजत के उठाने की प्रवृत्ति कदाचित् भी न होगी क्योंकि उस जगह रजत है ही नहीं सो प्रवृत्ति क्यो कर बनेगी जो तुम ऐसा कहो कि अनिर्वचनीय रजत तो मध्यकाल मे होवे है और व्यवहारिक रजताभाव त्रिकालक है और व्यवहारिक रजत होवे तिस काल में व्यवहार रजताभाव सभव नहीं इस लिये त्रिकालिक रजताभाव की प्रतीति से व्यवहारिक रजत कहना विरुद्ध है तो हम तुम्हारे को पूछें है कि अनिर्वचनीय रजत जो मध्यकाल म प्रतीति होवे है सो व्यवहारादिक रजत से भिन्न है वा अभिन्न है जो कहो कि भिन्न है तो उस अनिर्वचनीय रजत को किसी ने देखा सुनाया अनुभव भी किया है वा नहीं तो तुम को यही कहना पडेगा कि व्यवहारिक रजत से व्यवहारिक रजत का अभाव होय और व्यवहारीक रजत के सी प्रतीति होय वहीको हम अनिर्वचनीय अर्थात् प्रतीति मापक रजत माने है तो हम तुह्मारे को कहे है कि हे भोले भाइयो ! इतनी गहरी कल्पना करने से व्यवहारिक रजत के सादृशी ही मानने लगे तो पेश्तर ही सत् रजत को क्यों नहीं मानकर सत् ख्याति को अगीकार करो जो कहो कि अभिन्न है तो तुमको हमारा ही शरण लेना हुवा कि सत् रजत भ्रम काल म शुक्ति देश में भावरूप मानने से ही पुरुष की प्रवृत्ति होती है और जो तुम ऐसा कहोगे कि अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति में तो प्रसिद्ध रजत की सामग्री चाहिये नहीं दोष सहित अविद्या से ताकी उत्पत्ति होवे है और व्यवहारिक रजत की उत्पत्ति रजत की प्रसिद्ध सामग्री विना होवे नहीं सो शुक्ति देश में रजत की प्रसिद्ध सामग्री है नहीं इस लिये सत रजत की शुक्ति देश मे मानना ठीक नहीं है तो हे भोले भाइयो ! आख मीच कर बुद्धि से हृदय मे विचार करो कि अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति में तो प्रसिद्धि रजत की सामग्री चाहिये नहीं इस तुम्हारे वाक्य को सुन कर हम को बडा हास्य उत्पन्न होता है कि आत्म अनुभव शून्यबुद्धि की चातुरीय दिखलाते है अजी देखो जिस को सत रजत का ज्ञान नहीं होगा उस पुरुष की प्रवृत्ति कदापि न होगी क्योंकि जिस पुरुषका रजतका ऐसा ज्ञान है कि रजत अथात् चादीसे कडे, छडे,

साकड़ा कटकंगन, आदि अनेक पदार्थ अर्थात् जेवर बनते है अथवा वस्त्र रसवति अर्थात् भाजनादि नाना प्रकारके कार्य्य सिद्ध होते है जिस पुरुषको ऐसा रजतमें इष्ट साधन ज्ञान होगा उसी पुरुषकी शुक्ति देशमे सादृश्य सपेद चादी कैसी दमकनेसे यद्यपि चादी उ जगह नही है तोभी सत् चादीके ज्ञानसे इष्ट साधन लोभकी प्रबलतासे रजत लेनेकी प्रवृत्ति होती है जिस पुरुपको ऊपर लिखी हुई सत् रजतका ज्ञान यथावत् इष्ट साधनता नही है उसकी प्रवृत्ति कदापि न होगी इस लिये तुम्हारा कहना कि प्रसिद्ध रजतकी सामग्री चाहिये नही सो ऊपरोक्त लिखी सामग्री प्रसिद्ध रजतकीसेही प्रवृत्ति सिद्ध हो गई और जो तुमने कहा कि व्यवहारिक रजतकी उत्पत्ति तो रजतकी प्रसिद्धि सामग्री विना होवे नही और शुक्ति देशमें प्रसिद्ध रजतकी प्रसिद्ध सामग्री है नही इस लिये सत् रजतकी उत्पत्ति शुक्ति देशमें मानना ठीक नहीं तो इस जगहभी तुम कुछ बुद्धिका विचार करो और देखो कि जिस पुरुषको सत् रजतसे इष्ट साधनता अर्थात् ज्ञान है उसी पुरुषकी प्रवृत्ति होती है इस लिये सत रजतकीभी सामग्री बनगई जिस मनुष्यको सत रजतसे इष्ट साधन यथावत् ज्ञान नही है उसकी कदापि प्रवृत्ति नही होती क्योंकि प्रवृत्ति निवृत्तिमें इष्ट साधन और अनिष्ट साधन यह दोही निमित्त हेतु है जिसको इष्टसाधन अनिष्ट साधनका यथावत् ज्ञान न होवे तो वे प्रवृत्ति और निवृत्तिमेभी नही समझते है क्योंकि उनको प्रवृत्तिकी जगह निवृत्ति और निवृत्तिकी जगह प्रवृत्ति सामानही है क्योंकि देखो जैसे तीन चार महीनाका बालक उसको अपना इष्टसाधन अर्थात् सुखका हेतु अनिष्ट साधन अर्थात् दुःखका हेतु इन दोनो बातोंका ज्ञान यथावत नही होता है तब यह बालक एक जगह चादीका जेवर पड़ा हुवा है और उसी जगह पासमें सर्पभी बैठा हुवा है रंगबिरंगकी क्रीड़ामें वह सर्प मस्त है उस सर्पके पकड़नेको तो वह बालक धावता है अर्थात् अवकाश मिलनेसे उसको पकड़भी ले परंतु रजतकी तरफ उसकी चेष्टा नही होती यह प्रत्यक्ष अनुभव सबको हो रहा है तो देखो इस जगह उस बालकके वास्ते सर्प जो है सो तो उसके दुःखका हेतु है परतु उसको दुःखका हेतु मालूम नही होता और रजत सुखका हेतु है यहभी उसको मालूम नही है इसलिये जिसको इष्ट साधन सत् रजतसे अनेक कार्य्य सिद्ध होते है उसी पुरुषकी शुक्ति देश रजत ज्ञान होनेसे रजत लेनेकी इच्छा होती है तब वह पुरुष उस जगह प्रवृत्त होता है इस लिये सत् रजतकी सामग्री शुक्ति देशमे बन गई और तुमने उद्भुतरूप रजतके अवयव अथवा अनुद्भुतरूप इत्यादिक जो विकल्प उठाये है वहासे लेकर महत्व रूप है यह कहना संभव नही ॥ यहा तक जो तुम्हारी शंका नैयायकको मिलाय कर लगी है सो निष्प्रयोजन जानकर उसको हम ऊपर लिख आये है सो उसकाभी अब तुम्हारी लिखित शंकाके साथही उत्तर एकमें देते है सो वेदान्तीकी ओरसे शकाकी रजत अवयवमें तो महत्वका अभाव कहे तो किसी रीतिसे सभवभी, परतु जहा वल्मीकमें घटका भ्रम होवे तहा घटका अवयव कपाल मानने होवेंगे और जहा स्थानूमे पुरुष भ्रम होवे तहा पुरुष के अवयव हस्त पादादिक मानने होवे कपाल और हस्त पादादिक महत्व सूत्र सभव नहीं रजतत्व जातितो अनुसाधारण है इस लिये सूक्ष्म अवयव में रजत व्यवहार सभव है और घटत्व कपालत्व हस्तपादत्व पुरुषत्वादिक जाति तो महान अवयवीमात्र वृत्ति है तिनके

सूक्ष्म अवयव में कपालत्वादिक जाति संभव नहीं इसलिये भ्रम के अधिष्ठान देशमें व्यवहारिक अवयव होते तिनकी प्रतीति होनी चाहिये सो होवे नहीं इसलिये व्यवहारिक अवयव से रजतादिक की उत्पत्ति मानना असंगत है अब इसका समाधान इसी रीतिसे है कि शुक्ति देशमें रजत के साक्षात् अस्तिरूप तो है नहीं किन्तु शुक्तिदेश में शुक्ति के अवयव अस्तिरूप होकर आविर्भाव होरहे हैं तैसेही शुक्ति देशमें रजत के नास्तिरूप अवयव शुक्ति अवयवों में बनेहुवे हैं अस्तिरूप होकर, क्योंकि अनेक धर्मात्मिक वस्तु अर्थात् वस्तु में अनेक धर्महोते हैं वह वस्तु में अनेक धर्म नहीं होय तो परस्पर जुदी २ वस्तु ही प्रतीति नहीं होय क्योंकि देखो जिस वस्तु में एक अपेक्षा से तो अस्तिपना है दूसरी अपेक्षा से नास्तिपना तीसरी से नित्यपना, चौथी से अनित्यपना, पांचवी से एकपना, छठी से अनेकपना भिन्न अभिन्नादि अनेक अपेक्षा धर्म वस्तुमें बना हुवा है क्योंकि देखो जैसे एक पुरुषमें पुरुषत्वपना तो एक है परन्तु अपेक्षा धर्म देखे तो अनेक धर्म प्रतीति मालूम होते हैं जैसे एक पुरुषको कोई तो पुत्र कोई पिता, कोई काका, कोई भतीजा, कोई नाना, कोई दोहिता, कोई मामा, कोई भानज, कोई साला, कोई बहनोई, कोई ससुरा, कोई जवाई, कोई दादा, कोई पोतादि अनेक सम्बन्ध उस एक पुरुषमें मालूम होते हैं इस रीतिसे सर्व वस्तुमें अनेक धर्म अपेक्षासे कोई धर्म अस्तिरूप होकरके कोई नास्तिरूपादिक करके सदा बने रहते हैं सो जिस समयमें भ्रमज्ञान होता है उस समयमें प्रथमतो प्रकाश अंधकार दोनोंका प्रभाव दूसरा जिस चीजका भ्रमहो उसके सादृश्यपना होना तीसरा दोष सहित नेत्रोंका सम्बन्ध चौथे इष्ट साधन वस्तुकी प्रबल इच्छा होती है, उस समय शुक्तिमें जो रजतके अवयव नास्तिरूप थे सो ऊपर लिखे दोषोंसे अस्तिरूप रजतके अवयव प्रतीतिहोने लगे तैसेही वल्मीकदेशमें घटके और स्थाणुदेशमें पुरुषके साक्षात् नास्तिरूप अवयव थे सो ऊपर लिखे दोषोंसे झटिति अर्थात् शीघ्रतासेही सत रजतादिककी उत्पत्ति होवे है क्योंकि दीपके उद्भुतमहात्मसे नास्तिरूप अवयव अस्तिरूप होकरके प्रतीतिदेते है और शुक्ति आदिके जो अस्तिरूप अवयव थे सो नास्तिरूप होकर के प्रतीति देते है उसीका नाम विपरीति है अर्थात् भ्रमज्ञान है इस लिये भ्रमके अधिष्ठानमें आरोपके अवयव प्रतीति होवें नहीं और व्यवहारिक सत् रजतादिकनकेहे अथवा शुक्ति देश में जो शुक्ति के अवयव अस्तिरूप अविर्भाव थे सो ऊपर लिखे दोष भ्रमके बल से अस्तिरूप अवयव थे सो अभाव को प्राप्त हो कर उसी क्षण में सत् रजत के नास्तिरूप अवयव अभाव थे सो दोष बल से आविर्भाव हो कर प्रतीति देने लगे इसी रीति से भ्रम की अधिष्ठान में आरोपितके अवयव है तो भी अधिष्ठान के विशेषरूप से प्रतीति की प्रतिबन्धक है इस लिये विद्वान को महत् अवयव का प्रत्यक्ष होवे नहीं और रजत की निवृत्तिमें शुक्ति ज्ञानकी अपेक्षा नहीं किन्तु रजत ज्ञानाभावसे रजतकी निवृत्ति होय है क्योंकि जितने काल रजतका ज्ञान रहे उतने कालही रजत रहेहै कहीं तो शुक्तिका ज्ञान रजत ज्ञानकी निवृत्ति का हेतु है कहीं शुक्ति ज्ञान विना अन्यपदार्थके ज्ञानसे रजत ज्ञानकी निवृत्ति होवे है तो रजत ज्ञानकीनिवृत्तिसे उत्तर क्षिणमें रजतकी निवृत्ति होवे है अथवा रजत ज्ञानकी निवृत्ति

होवे तैसेही रजतज्ञानकी निवृत्ति क्षिणमें रजतकी निवृत्ति होवे है सो ज्ञान कालमे रजतकी स्थिति ज्ञानसे यद्यपि प्रतिभासक रजतादिक है तथापि अनिर्वचनीय नही किन्तु सत् रजत है क्योंकि देखा जैसे तुम्हारे शास्त्रोंमें अर्थात् वेदान्तमें सुखादिक प्रतिभासिक है तो भी स्वप्न सुखादिकसे विलक्षण मानो हो अथवा नैयायक मतवाले भी द्वित्वादिक प्रतिभाषिक मानके व्यवहारिकको सत् मानेंहै तैसे ही इस जगह भी रजतादिक प्रतिभासक है तो भी व्यवहारिक रजत सत् है इसलिये रजत ज्ञानकी निवृतिसे उस क्षिणमें रजतादिककी निवृत्ति होवे है अथवा रजतज्ञानकी निवृतिका हेतु जो शुक्तिका ज्ञान अथवा पदार्थंतरका ज्ञान तिससे भी रजत ज्ञानकी निवृत्ति क्षिणमें रजतकी निवृत्ति होवे है शुक्ति ज्ञानसे ही रजतकी निवृत्ति होवे है यह नियम नही है। इस समाधानको सुनकर चोक पडा और ऐसी शका उठाने लगा कि ऐसा कहो तो लोक अनुभवसे विरोध होगा और सकल शास्त्रोसे भी विरोध होगा सिद्धान्तका त्याग होगा युक्ति विरोधभी होगा क्योंकि शुक्तिज्ञानसे रजतभ्रमकी निवृत्ति होवे है यह सब लोगोंमें प्रसिद्ध है और सकल शास्त्रमेंभी प्रसिद्ध है और सत् ख्यातिका यह सिद्धान्त है कि विशेषरूपसे शुक्तिका ज्ञान रजत अवयवके ज्ञानका प्रतिबाधक है इस लिये रजत अवयवके ज्ञानका विरोधी शुक्तिका ज्ञान निरनीति है सो रजतावयवकी प्रतीतिका विरोधी शुक्ति ज्ञानही रजत ज्ञानका विरोधी मानना क्लृप्त कल्पना है निर्णीत हुआसकै है सो शुक्तिज्ञानसे विना अन्यसे रजत ज्ञानकी निवृत्ति मानोगे तो अक्लृप्त कल्पना हो जावेगी इस लिये क्लृप्त कल्पना योग्य है या युक्तिसे भी विरोध होगा इस लिये शुक्तिज्ञानसे ही रजतकी और ताके ज्ञानकी निवृत्ति माननी ठीक है इस वेदान्तीकी शका को सुनकर करुणा सहित हास्य उत्पन्न होता है कि यह अज्ञानरूपी भंगके नशे में अपना विरोध दूसरे मे लगाते है सो इस जगह एक मसल देकर इनकी शका दूर करते है। सोमसल यह है कि "स्यावाश ! बहुतेरे नखरे को पादे आप लगावे लडके को" अब देखो जो तुमने कहा कि लोक अनुभव से विरुद्ध होगा सो तो तुम अपने हृदयकमल में नेत्र मीचकर बुद्धिसे विचार करो कि सत् रजत का भ्रम होना यह सबको अनुभव सिद्ध है क्यों कि सत् रजत सबको देखने में आवती है नतु अनिर्वचनीय रजत किसीने देखी है कि यह अनिर्वचनीय किस रूपरंगवाली है अथवा तुम्हारे को पूछे कि तुमही बतावो कि तुम्हारी अनिर्वचनीय रजत किसरूपरगकी है सो रूपरग तो कुछ कह सकोगे नही किन्तु उस अनिर्वचनीय रजत के सग तुमको अनिर्वचनीय ही होना पडेगा और जो सकल शास्त्रका विरोध होगा यह कहनाभी तुम्हारा असभव है क्योंकि सकल शास्त्र में तो हमाराभी शास्त्र आगया तो हम हमारे शास्त्र से विरोध कदापि न कहेगे किन्तु शास्त्र के अनुसारही कहेंगें परन्तु अलबत्ता तुम्हारे शास्त्र मानने से विरोध तुमको तुम्हारी बुद्धिमे मालूम होता है नतु सकल शास्त्र से और जो तुमने कहा कि सिद्धान्तका त्याग होगा यह कहनाभी तुम्हारा ठीक नहीं क्योंकि सिद्धान्त शब्दका अर्थ क्या है ? तो देखो कि सिद्धान्त नाम उसका है कि जिसको वादी और प्रतिवादी दोनों अगीकार करें तो इस जगह तो वाद चलरहा है तो सिद्धांत का त्याग किस रीतिसे हुवा और तुमने युक्तिसे विरोध बतलाया सो तुम्हारी युक्ति तो यही है कि सत् ख्याति में विशेषरूपसे शुक्तिका ज्ञान रजत अवयवके ज्ञानका प्रति-

बधक है इसलिये रजत अवयव के ज्ञानका विरोध शुक्तिका ज्ञान निर्णीत है रजतावयवकी प्रतीतिका विरोधी शुक्तिज्ञानही रजत ज्ञानका विरोधी माननाक्लृप्त कल्पना है शुक्ति ज्ञानके विना अन्य से रजतज्ञानकी निवृत्तिमान तो अक्लृप्त कल्पना होजायगी इसलिये क्लृप्त कल्पना योग्य है यह तुम्हारी युक्ति सुनकर हमको हास्यभी उत्पन्न होता है और तुम्हारे पर करुणाभी आती है कि यह विचारे आत्मानुभव शून्यबुद्धि विचक्षणपणा दिखाते हैं अरे भाइयो ! कुछ बुद्धिका विचार करो कि जैसे सुवर्णकार देखते हुवे सोनेको हरता है अर्थात् चुराता है इसीरीति से तुमभी वाक्यरूप सोनेको देखते हुवेही चुराते हो क्योंकि देखो जब हम कहते हैं कि शुक्तिज्ञान से भी रजत ज्ञानकी निवृत्ति होती है और अन्य पदार्थके ज्ञानसे भी रजतज्ञानकी निवृत्ति होती है सोई अब हम अन्यपदार्थ के ज्ञान से निवृत्तिको दिखाते हैं कि जिस समय जिस पुरुषको शुक्ति में रजत ज्ञानका भ्रमहुवा उसीसमय भ्रमवाले पुरुष को अन्यपुरुषने कहा कि तेरा पुत्र मरगया इस कुवाक्य को सुनतेही उस रजतज्ञान और रजतकी निवृत्ति होकर पुत्रके शोकमें सब भूलगया अथवा जिस पुरुषको शुक्ति में रजतका भ्रम हुवा उसीसमय में अन्यपुरुष को नङ्गी तलवार लिये मारने को आता हुवा देखकर अपनी जान बचाने के वास्ते वहां से भाग उठा और रजतज्ञान और उस रजतकी निवृत्ति होगई यह अनुभव सबको सिद्ध है और तीसरी युक्ति और भी देखो कि जिस पुरुष को शुक्ति देश जिस क्षण में रजत ज्ञान हुवा उसी क्षण में उस शुक्तिदेश और उस पुरुष के बीच में सुवर्णका ढेला अथवा पन्नाकी मणी पडीहुई दिखलाई दी उसके लेने में रजतज्ञान और रजतकी निवृत्ति विना भये तो उसका सोना वा पन्नाकी मणी उठाना नहीं बनेगा और वह उठाता है क्योंकि उस रजत से वह सुवर्ण व पन्ना विशेष इष्टसाधन है इसलिये अन्यपदार्थ के ज्ञानसे रजतज्ञान की निवृति होती है और रजत ज्ञानकी निवृत्ति स रजत की निवृत्ति होती हा अलबत्ता उस रजत से विशेष पदार्थ भ्रमक्षणमें प्रतिबधक न होय तब तो शुक्तिज्ञान सेही रजतज्ञान और रजत की होवेगी क्योंकि अनेक धर्मात्मिकवस्तु ऐसा स्याद्वाद जिनमत का सिद्धान्त है इसलिये अनेक हेतुओं से प्रवृत्ति निवृत्ति होती है नतु एकान्त हेतु से अब फिर भी गूढ नास्तिक शुष्कतर्क करता है सो शङ्का फिर दिखलाते हैं जो रजत ज्ञानाभाव से रजत की निवृत्ति मानो और रजत ज्ञानकी निवृत्तिके अनेक साधन मानो तो वक्ष्यमाण दोषोंसे सत् ख्यातिका उद्धार होवे नहीं सो दोष यह है जहां शुक्ति में जो क्षणमें रजत भ्रम होवे तिसी क्षणमें शुक्ति अग्निका संयोग होके उत्तर क्षणमें शुक्तिका ध्वंस और भ्रमकी उत्पत्ति होवे तहां रजत ज्ञान की निवृत्तिका साधन कोई हुवा नहीं इस लिये शुक्ति ध्वंश और भस्मकी उत्पत्तिसे प्रथम रजतकी निवृत्ति नहीं होनेसे भस्म देशमें रजतका लाभ होना चाहिये क्योंकि रजत द्रव्य तैजस है ताका गंधकादि सबन्ध विना ध्वंश होवे नहीं इस लिये भ्रमस्थल में व्यवहारिक रजत रूप सत् पदार्थकी ख्याति कही हो इस लिये सत् ख्याति असंगत है "समाधान" वाहरे बुद्धि विचक्षण ! जिस क्षणमें शुक्ति में रजतका भ्रम हुआ तिस क्षणमें शुक्तिसे अग्निका संयोग होकर उत्तर क्षणमें शुक्तिका ध्वंश और उत्पत्ति हुई तहां रजत ज्ञानकी निवृत्तिका साधन कोई नहीं यह तुम्हारा कहना बाल जीवोंकी तरहका है क्योंकि देखो अग्निका

शुक्तिसे संयोग होते ही अग्निकी झलकको देखकर बुद्धिमान् विचार करेगा कि इस जगह चादीका भ्रम हुवा किन्तु चादी नही जो चादी होती तो अग्नि कदापि नहीं लगती क्योंकि चांदी तेजस पदार्थ है सो विना सयोग धातुके जले नहीं सो वह अग्नि ही शुक्ति में संयोग होकर जो शुक्तिका ध्वश होना सो ही रजत ज्ञान और रजतकी निवृत्तिका हेतु होगया नतु शुक्ति ज्ञानका और जो तुमने कहा कि भ्रमस्थलमे व्यवहारिक रजतरूप सत् पदार्थ की ख्याति है सो सत् रजत शुक्तिके भ्रममे रजतका लाभ होना चाहिये यह कहनाभी तुम्हारा ऐसा है कि जैसे कोई निर्विवेकी पुरुष कुरहडेमे ऊटको खोजता हो क्योंकि देखो और बुद्धिका विचार करो कि रजतका लाभ होता तो रजतका भ्रम ज्ञान ही क्यो कथन करत इस लिये उस भ्रमस्थल मे रजता भ्रम ज्ञान है इस रजतका लाभ नहीं फिरभी दूसरी शका करता है सो शका यह है कि—जहा एक रज्जु अर्थात् जेवरी मे अनेक पुरुषाको भिन्न भिन्न पदार्थका भ्रम होवे किसीको दंडका किसीको मालाका किसीको सर्प का किसीको जल धाराका इत्यादिक एक रज्जु पदार्थ में अनेक पदार्थोंका भ्रम हो वे है उस जगह स्वल्प रज्जु देशमें सभवे नही क्योंकि मूर्त्तद्रव्य स्थानका निरोध करे है इस लिये स्वल्प देशमे इतने पदार्थके अवयव सभवे नहीं और भ्रमकाल मे दडादिक अवयवी सर्वथा सभवे नही। और हमारे सिद्धान्तमे तो अनिर्वचनीय दडादिक है तो व्यवहारिक देशका निरोध करे नही। और जो सत् ख्याति वादमें तिन दडादिकनमे स्थान निरोधादिक फल नही मानोतो दंडादिकको सत कहना विरोध और निष्फल है। दडादिककी प्रतीति मात्र होवे है अन्य कार्य तिनसे होवे नहीं ऐसा कहो तो अनिर्वचनीय वाद ही सिद्ध होवे है इसका समाधान यह है कि हे मिथ्या अभिनिवेश भ्रमजालके फसे हुवे! कुछ बुद्धिसे विचार करोकि जहा एक रज्जु मे अनेक पुरुषोको भिन्न २ पदार्थोंका भ्रम होवे उस जगह अनेक पुरुषोको ऊपर लिखी हुई भ्रमकी सामग्री अर्थात् इष्टपदार्थ की इच्छा और अनिष्ट पदार्थकी अनिच्छा अर्थात् द्वेशके कारणसे जैसा २ जिस पुरुषको सत् वस्तुका उस भ्रमस्थल जो रज्जु देशमे वैसाही सत् वस्तुका भ्रमज्ञान होता है क्योंकि देखो उस रज्जु में रज्जुके द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप सत् अवयव अस्तिरूप है और उस रज्जु मे दड माला सर्प जलधारा इत्यादिकों के स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप अवयव नास्तिरूप होकर आस्तिरूप त्रोभाव होकर बने है सो जिसकाल में जिस २ पुरुषको जिस जिस सत्य वस्तुका भ्रम होता है उस भ्रम काल मे उसी वस्तुके अवयव नास्तिरूप अस्ति होकर त्रोभाव मे थे सो ही अवयव ऊपर लिखी सामग्रीके वलसे नास्ति रूप से अस्ति भाव होकर आविर्भाव होते हुवे। इस लिये उस एक रज्जु देशमें भिन्न २ भ्रम ज्ञान सत् वस्तुका ही सिद्ध हो गया और जो तुमने स्थान निरोधकी आपत्ति दीनी सोभी नहीं बनती है क्योंकि एक वस्तु मे दूसरी वस्तु मूर्ति द्रव्य होवे तो स्थाणु निरोधकरे परन्तु इस जगह तो एक वस्तु में मूर्ति द्रव्य पना तो उसी वस्तुका है किन्तु उस वस्तुके धर्म अर्थात् स्वभाव में अनेक वस्तुके नास्तिरूप अर्थात् स्वभावरूप बने रहते है क्योंकि अनेक धर्म आत्मक वस्तु एक वस्तु मे स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप करके तो अस्ति पना और परद्रव्य क्षेत्रकाल भाव करके नास्तिपना बना हुवा है जो कदाचित् अस्ति नास्ति वस्तु में स्व-

भाव नहीं मानोंगे तो किसी पदार्थका निर्वाह नहीं होगा इस लिये स्याद्वादसिद्धान्तकी शरण गहो जिससे तुम्हारा मिथ्या ज्ञान मिटे और आत्मज्ञान होय सो हे भोले भाइयों! स्थाणु निरोधकी आपत्तिरूप हाथी बनाया था उसका तेज स्याद्वादसिंहके सामने न ठहरा किन्तु भागकर वनकी सैर करता हुवा और जो तुमने कहा कि सत् ख्याति वादी भीति न दण्डकादिकन में स्थानु निरोधादिक फल नहीं मानें तो दण्डादिकनको सत् कहना विरुद्ध अर्थात् निष्फल है तो अब इस जगह भी नेत्रमीचकर हृदयको दखो कि जिस पुरुषको सत्य वस्तुका यथावत् ज्ञान होगा उसीको उस सत्य वस्तुका भ्रम ज्ञान होगा नतु अज्ञानी अर्थात् अजानको होगा तो सत्य वस्तुके यथावत् ज्ञान विना भ्रम कालमें किस वस्तुका भ्रम ज्ञान मानोगे क्योंकि उस भ्रम वाले पुरुषको सत्य वस्तुका ज्ञान तो है नहीं जो सत्य वस्तुका ज्ञानही नहीं है तो उस पुरुषको इष्ट अनिष्ट साधनका भी विवेक न होनेसे उस पुरुषकी प्रवृत्ति निवृत्तिही, न बनेगी इसलिये हे भोले भाइयो! अनिर्वचनीय ख्यातिको छोडकर सत्य ख्यातिकी शरण गहो अमरपद लहो संसार समुद्रमें क्यों बहो जो तुम आत्मस्वरूप चाहो, तब इस वाक्यको सुनकर वदान्ती चौंककर बोलता हुवा कि भ्रमस्थलमें सत् पदार्थ की उत्पत्ति मानो हो तो अगार सहित ऊसर भूमिमें जल भ्रम होवे है तहा जलसे अगार शान्ति हुवा चाहिये और 'तुला' अर्थात् रूईके ऊपरी धरे हुये गुंजा अर्थात् लाल चोंटनीके पुंजसे अग्नि भ्रम होवे है तहा तुलाका दाह होना चाहिये और जो ऐसा कहे कि दोष सहित कारणते उपजे पदार्थकी अन्यको प्रतीत होय नहीं जाके दोषसे उपजे है ताहीको प्रतीति होवे है तो दोषके कार्य्य जल अग्निसे आर्द्रीभाव दाह होवे नहीं तो तिनको सतही कहना हास्यका हेतु है क्योंकि अवयव सो स्थाणु निरोधादिक हेतु नहीं है और अवयवीसे कोई कार्य्य होवे नहीं ऐसे पदार्थको सत कहना बुद्धिमानोंको हास्यका कारण है इसलिये सत्यख्याति असंगतही है अब इनका समाधान सुनो कि जो तुमने कहा कि जहा अगार सहित ऊसर भूमिमें जल भ्रम होवे तहा जलसे अगार शीत हुवा चाहिये इस तुम्हारी तर्करूप 'टट्टुवानी' अर्थात् निर्बल बछेरीको देखकर हास्य सहित करुणा आती है कि यह निर्बल जर्जरीभूत स्याद्वादयुक्ति रूप चाबुक क्योंकर सहेगी सो युक्तिरूप चाबुकका स्वाद तो चक्खो कि जिस पुरुषको जलभ्रम होता है वह पुरुष जल भ्रम स्थलमें पहुंच कर जल नहीं पानेसे अर्थात् न होनेसे निराश होकर क्या बोलता है सो कहो तो तुमको कहना ही पडेगा कि वह पुरुष कहेगा कि जल विना मिले मेरेको जलका भ्रम हो गया कारण कि इस भूमिमें अगार की तेजीसे जल कीसी दमक होनेसे मेरेको जलका धोखा होगया ऐसा कहेगा तो फिर तुम अनिर्वचनीय! अनिर्वचनीय!! अनिर्वचनीय!!! तोतेकी तरह टें टें क्या पुकारते हो और जो तुमने कहा कि रूईके ऊपर धरी हुई लाल चोंटनीसे अग्निभ्रम हो तहा रूइका दाह होना चाहिये सो भी कहना विवेक शून्य मालूम होता है क्योंकि देखो जो रूईका दाह हो जाता तो उस जगह अग्निका भ्रम ज्ञान न जहा होता किन्तु सत्य अग्नि प्रतीति देती सो उस जगह रूईका दाह तो हुवा नहीं इसलिये उस जगह सत्य अग्निका भ्रम ज्ञान हुवा है इसीलिये उसको भ्रमस्थलमें भ्रम ज्ञान कहते है इसलिये तुम्हारी युक्ति ठीक न बनी और जो तुमने कहा कि ऐसे पदार्थोंको सत्य कहना बुद्धि

माननेको हास्यका हेतु हैं तो हम तुम्हारेको यह बात पूछे है कि सत्य और असत्य इनके सिवाय और कोई तीसरा पदार्थ भी जगत्मे कहो प्रतीति देता होय तो कहो तुमको अनिर्वाच्य होनेके सिवाय कुछ भी न बनेगा क्योंकि देखो बुद्धिमानोंने सत्य पदार्थको सत्य कहा तबही आनन्द होगा हा अलबत्त जो आत्मानुभव शून्य निर्विवेक भ्रमजालमें फसे हुवे तुम्हारे जैसे ही क्रृप्तकल्पनाको छोडकर अक्रृप्त कल्पनाको ग्रहण करके भांडचेष्टाकी तरह जो अपनेको बुद्धिमान मानकर मनुष्यकी पूछकी तरह इस अनिर्वचनीय ख्यातिको पकडे बैठे है इसलिये उनको पदार्थका बोध न होगा और जो पहले कहा था की दृष्टान्त दार्ष्टांत विषम है सो इन का खण्डन तो पहले ही वदान्त मत के निरूपण में अथवा अनिर्वचनीय ख्याति के खण्डन में दिखा चुके हैं परन्तु किञ्चित् यहा भी प्रसग दिखाते हे कि जो तुम कहो कि शुक्ति रजत दृष्टान्त से प्रपंच को मिथ्यात्व की अनुमति होवे हे यह तुम्हारा कहना असगत है क्योंकि प्रपच को मिथ्यात्व की अनुमति होवे है सो मिथ्या नाम झूठका अर्थात् न होना उस को कहते है तो यह प्रपंच अर्थात् जगत् प्रत्यक्ष दीखता है और तुम कहते हो कि जगत् मिथ्या है सो क्या तुम जाग्रत मे भी स्वप्न देख कर बरीते हो अजी नेत्र मींच के हृदय मे विचार करो कि घट, पट, खाना, पीना, सोना, बेठना, पुरुष, स्त्री, बाल, वृद्दा, युवा, पशु, पक्षी, जन्म, मरण, हाथी, घोडा, गाय, भेस, ऊट, बकरी, राजा, प्रजा, इत्यादिक अनेक जो दीखे हे उन को तुम प्रपंच कहो हो तो इस जगत् को आबाल कोई भी मिथ्या अर्थात् झूठ नही कहता है परतु न मालूम कि तुमलोगों का हृदय नेत्र तो फुट गया किन्तु बाह्य नेत्र से भी नही दीखता है तो मालूम हुवा कि तुमलोगों के नेत्र का आकार है परतु ज्योति शून्य है इस लिये हम तुम को क्यों कर बोध कराव और जो तुम कहो कि प्रपंच को हम व्यवहार सत्तावाला मानते हे और परमार्थ सत्ता से प्रपच को मिथ्या कहते है तो अब हम तुमको पूछे है कि शुक्ति और रजत यह दोनो व्यवहार सत्तावाले हैं जिस मे शुक्ति में रजत का भ्रम होता है क्योंकि सादृश्य और एक सत्ता है तेसे ही परमार्थ सत्ता को छोड कर व्यवहारिक सत्ता मानो तो शुक्ति रजत का दृष्टान्त बनजाय अथवा जगत की व्यवहारिक सत्ता छोडकर परमार्थ की सत्ता मानो तो दृष्टान्त दार्ष्टान्त बन जाय इस लिये अनेक सत्ता का मानना छोडकर एक सत्ता को मानो, तजो अभिमानो, सम्यक् गुरु जानो, होय कल्यानो तो आत्मस्वरूप पहिचानो जिस से जावे सब मिट हां गों तुम व्यवहारिक और प्रतिभासक और परमार्थ सत्ता जुदी २ मानोगे तो तुम्हारा दृष्टान्त दार्ष्टान्त इन तीनो सत्ताओं मे कदापि सिद्ध नहीं होगा क्योंकि जब भ्रमकाल में व्यवहारिक शुक्ति में व्यवहारिक रजत का भ्रम ज्ञान होता है और कहते हो कि उस भ्रमस्थल में अनिर्वचनीय अर्थात् प्रतिभासक रजत उत्पन्न होती है और व्यवहारिक रजत है नहीं [illegible] शुक्तिका ज्ञान [illegible] प्रतिभासक [illegible] निवृत्ति [illegible] व्यवहारिक शुक्ति [illegible] प्रतिभासिक रजतकी सिद्धि मानोगे तो [illegible] तुम्हारा सिद्धान्त है सो [illegible] व्यवहारिक शुक्ति [illegible] प्रतिभासक रजतकी निवृत्ति [illegible] अनुमान होगा

है सो सिद्ध न हुई इस वाक्यको सुनकर मिथ्यात्वरूपी प्यालेके नशे में चकचूर होकर बोलता हुवा कि अजी तुमने अनिर्वचनीय ख्यातिका तो युक्तिसे खंडन करदिया परन्तु तुम्हारी मानी हुई जो सत्य ख्याति वाद में शुक्तिमें रजत सत्य है सो दृष्टान्त देकर प्रपंच में मिथ्यात्व सिद्ध होवे नहीं इस लिये सत्य ख्यातिभी न बनी फिर कौनसी ख्याति माननी चाहिये सो कहो अरे भोले भाइयों! इस तुम्हारे वाक्यको सुनकर बुद्धिमानों को हास्य आता है क्योंकि जैसे बहरेको गीतका सुनना और अंधेके सामने आईना दिखाना तैसे ही हमारी इतनी युक्तियोंका कथन करना हो गया परन्तु खैर अब और भी तुमको दृष्टान्त दार्ष्टान्त उतार कर दिखाते हैं सो देखो कि इस जगत् में जो जो पदार्थ हैं सो सो स्व २ सत्ता करके सर्व सत् हैं परन्तु पदार्थ के ज्ञान होनेसे क्या नियम होता है सो हम कहते हैं कि "पदार्थज्ञाने प्रतिपक्षी नियामका" इसको सब कोई मानते हैं क्योंकि प्रतिपक्षी बिना पदार्थका ज्ञान नहीं होता है इस लिये यह प्रतिपक्षी पदार्थको दिखाते हैं कि प्रतिपक्षी किसको कहते हैं जैसे सत्यासत्य अर्थात् सत्यका प्रतिपक्षी झूठ और झूठका प्रतिपक्षी सत्य है तैसे ही खरा, खोटा, और स्त्री, पुरुष, नर, मादी, सुख, दुःख, बुरा, भला, राग, द्वेष धर्म, अधर्म, तृष्णा, संतोष, मीठा, कडवा, नरक, स्वर्ग, जन्म, मरण, रात, दिन, राजा, प्रजा, चोर साहूकार, जीव, अजीव, बंध, मोक्ष इत्यादि अनेक वस्तुओं में प्रति पक्षी इसी रीतिसे जान लेना सो यह वस्तु सर्व जगत् अर्थात् संसार में अनादिकाल शास्वत द्रव्य क्षेत्र काल भाव करके स्वसत्तासे सत् सत्तावाली है इस लिये जगत् में जो पदार्थ है सो सभी अपनी २ अपेक्षासे सत् है परंतु पर अपेक्षासे प्रतिपक्षी पदार्थ में असत्यता है इसी लिये श्री वीतरागसर्वज्ञकी वाणी स्याद्वादरूप है इस स्याद्वादके बिना जानें यथावत् ज्ञान होना कठिन है अब देखो इसी स्याद्वादरीतिको समझो कि दृष्टान्त तो शुक्ति में रजतका भ्रम ज्ञान होना इस दृष्टान्तकी पेश्तर व्यवस्था दिखाते हैं कि जिस पुरुषको रजत अर्थात् चांदीका यथावत् ज्ञान इष्टसाधनताका बोध होगा उसही पुरुषको शुक्तिमें रजतका भ्रम ज्ञान होगा नतु अन्य पुरुषको और भी समझो कि शुक्तिके सिवाय और भी जो रजत सादृश्य पदार्थ है उन में भी रजतका भ्रम ज्ञान होता है जैसे सफेद चमकदार कपडे में कोई वस्तु बँधी होय, अथवा चूनाकी डेलियों सफेद पत्थर में भी रजतका भ्रम ज्ञान होता है क्योंकि रजतके सादृश्य होनेसे, इसी रीतिसे सर्व भ्रमस्थलों में सादृश्य वस्तु में सत्य वस्तुका भ्रमज्ञान होता है और जो जो सादृश्य पदार्थ नहीं है उसमें किसीको भ्रम ज्ञान नहीं होता है कदाचित् असादृश्य पदार्थ में भ्रमज्ञान माने तो हरेक वस्तुमें हरेकका भ्रम ज्ञान हो जायगा इसी लिये सादृश्य पदार्थ में ही भ्रमज्ञान होता है नतु असादृश्य में और जिस वस्तु में भ्रम होता है सो भी स्वसत्ता करके सत्य है और जिस वस्तुका भ्रम होवे सो भी स्वसत्ता करके सत् है परन्तु पर अपेक्षा से असत्य है जो पर सत्ता से असत् नहीं माने तो भ्रमज्ञान होवे नहीं इस लिये स्वसत्ता करके सत्य और परसत्ता करके असत्य है इस रीति से दृष्टान्तकी व्यवस्था जानों अब दार्ष्टान्तकी व्यवस्था कहते हैं कि आत्मा सत् चित् आनन्दरूप है सो सत्य नाम जो उत्पाद व्यय ध्रुव करके तीन काल में रहे उसको सत्य कहते हैं और चित् नाम ज्ञानका है अथवा चित्

नाम चेतन अर्थात् प्रकाशवाले का है और आनन्द नाम सुख का है इसी रीति से तीन काल रहे और ज्ञान स्वरूप आनन्दमय सो आत्मा है इस जगह शंका होती है कि आत्मा आनन्दमय है तो आत्मा क्या चीज है और किसने देखा है तो हम कहते है कि आनन्दभी कुछ वस्तु है परन्तु अनुभव सिद्धि है सो अनुभवको अनुमानसे आनन्दकी सिद्धि दिखाते है क्योंकि देखो जब स्त्री और पुरुष दोनो आपसमें क्रीडा आरंभ करते है तबसे लेकर वीर्य्य स्खलित अर्थात् निकलनेके अततक जो सुख (आनद) आता है तिस आनदको मनुष्यमात्र अथवा पशु, पक्षी, आदि सर्व जीवोंको अनुभव हो रहा है उसी संसारी आनदमे फँसे हुये सर्व जीव जन्म मरण करते है इस लिये आनन्द अनुभव सिद्ध हो चुका तो आनन्द कुछ वस्तु है परतु इस पुद्गलीक अर्थात् विषय आनन्दके अनुभवसे अनुमान करते है कि आत्मा आनन्दमयी है इस लिये आत्मा सत् चित् आनन्दमयी हो चुका इस रीतिसे दृष्टान्तकी व्यवस्था कही अब दोनोंको द्राष्टान्त उतार कर दिखाते है कि जैसे शुक्तिमें सादृश्य होनेसे सत् रजतका शुक्तिमे भ्रमज्ञान होता है तैसेही प्रपंच अर्थात् जगत्में आवरण दोषसे पुद्गलीक सुखमे आत्मसुखका भ्रमज्ञान होता है तो जैसे शुक्तिके ज्ञानसे अथवा अन्यपदार्थके ज्ञानसे रजत भ्रमज्ञानकी निवृत्ति होती है तैसेही जगत्के यथावत् ज्ञान होनेसे अथवा आत्मा स्वरूपके ज्ञान होनेसे जगत्की निवृत्ति होती है और मोक्षकी प्राप्ति होती है इस लिये शुक्ति रजतके दृष्टान्तसे प्रपच अर्थात् जगत्की निवृत्ति सत् ख्यातिवादसे सिद्ध हुई क्योंकि यह जगत् अनादि अर्थात् शास्वत है और सत् है इस लिये सत्य ख्याति वादके माने विना अन्य पचख्यातिवादसे जगत्की निवृत्ति होवे नहीं इसी लिये अनेकात स्याद्वादपद्धपक ऐसे श्री वीतराग सर्वज्ञदेवके वचनको हृदयमे धरो ससार समुद्रको तिरो मिथ्यात्वको परिहरो जन्म मरणसे डरो सत्यख्यातिसे कल्याण करो जिससे भवसागरमें न फिरो मुक्तिको जायवरो दिगू इति ॥ अब ख्याति कहनेके अनतर जगत्की सत्यता ठहरीतो अब जो सर्वज्ञदेवने जो पदार्थ माने है उनको कहते है इस जगत्मे दो पदार्थ है १ जीव २ अजीव। और द्रव्य छः है जिसमें एक तो जीव द्रव्य है और पाच अजीव है जिसमे एक आकाशास्तिकाय, दूसरा धर्मास्तिकाय, तीसरा अधर्मास्तिकाय, चौथा पुद्गलास्तिकाय, यह चार द्रव्य तो मुख्य द्रव्य है और पाचवा कालद्रव्य उपचारसे है, और तत्व ९ माने है १ जीव २ अजीव ३ पुण्य ४ पाप, ५ आश्रव ६ सवर ७ निर्जरा ८ बंध ९ मोक्ष ये नव तत्व है, अब किञ्चित् छ. द्रव्यके गुण पर्याय बताते है:—जीवके चार गुण यह है:— १ अनन्तज्ञान २ अनन्तदर्शन, ३ अनन्तचारित्र, ४ अनन्तवीर्य । और चार पर्याय यह है:— १ अव्याबाध, २ अनवगाह, ३ अमूर्त ४ अगुरुलघु । आकाशास्तिकायके चार गुण— १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिया, ४ अगुरु लघु । और पर्याय यह है.— १ खंद, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरु लघु ॥ धर्मास्तिकायके चार गुण यह है.— १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिया, ४ गतसहायगुण । और पर्याय यह है:— १ खद, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरुलघु ॥ अधर्मास्ति कायके चार गुण यह है.— १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ स्थिरसहायगुण । और पर्याय यह है.— १ खद, २ देश ३

सुगडाङ्गजी वा स्याद्वादरत्नाकर अवतारका आदिक अनेक ग्रन्थों मे लिखा है सो ग्रन्थ बढ़जाने के भयसे नहीं लिखा परन्तु इस नास्तिक चार वाक्य वालेका खण्डन किञ्चित् युक्तिसे दिखाते है इसको ऐसा पूछना चाहिये कि तू इस जीव को निषेध करता है सो विना देखेहुए को अथवा देखेहुए को निषेध करता है जो तू कहे कि विना देखको निषेध करता हू तो यह कहना तेरा तेरेकोही बाधाकारी है क्योंकि विना देखेका निषेधही नही बनता जो वह कहे कि देखेहुए जीवका निषेध करता हू तो यह कहनाभी सबका उन्मत्त के समान है जैसे कोई पुरुष कहे कि "ममसुखे जिह्वानास्ति" मेरे मुख मे जीभ नही है जब तेरे मुख में जीभ नही है तो तू कैसे बोलता है तेरे बोलने से ही तेरी जिह्वा की प्रतीति होती है इस रीतिसे देखे हुए जीवको निषेधही करना नहीं बनता है क्योंकि जब तू जीवको देखचुका तो फिर तू देखे हुए जीवको निषेध क्यों करता है तो तेरी बराबर उन्मत्त अज्ञानी मूर्ख इस जगत्में कौन होगा कि जो देखी हुई वस्तु को निषेध करे इसी वास्ते तेरे को सर्वलोग नास्तिक कहते है तेरा देखा हुवा जीव तेरेही कहनेसे हमारे प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होगया अब अनुमान प्रमाण से जो गण धरोंने जीवका स्वरूप कहा है सो कहते है —बाल, युवा, वृद्धपणे जो प्रवरते जैसे श्री दशवै कालक के चतुर्थ अध्ययन में "अभिक्कत पडिकत सकुचिय पसारिय रूपमत तसिय प लाइय आगइ गई" इत्यादिक त्रसजीवों को जानने के वास्ते अनुमान कहा है उसी तरह से स्थावरका अनुमान भी श्री आचारांगे प्रथम श्रुतस्कंधे शास्त्र परिज्ञा अध्ययन मे वनस्पति वृक्षआदिक को जीव मानने के वास्ते अंकुर आदिक को लेना, जो गणधरों ने बतलाया उसका अनुमानप्रमाणसे जीव मानना अब उपमा प्रमाण से जीवका स्वरूप कहते है–कि जीव अरूपी आकाशवत् रहा न जाय जीव अनादि अनन्त है जैसे धर्म द्रव्य आदिक शास्वता है तैसेही जीव भी शास्वता है इत्यादिक उपमा करके जीव का दृष्टान्त कहना यह उपमा प्रमाण से जीव का स्वरूप कहा ॥ आगम प्रमाण से जीव का स्वरूप कहते है– "कम्म कत्ता" इत्यादि कर्म का कर्त्ता, कर्म का भोक्ता, अरूपी, नित्य, अनादि, अगुरु लघु गुण है, इस रीति से जीवका लक्षण कहा यह आगम प्रमाण से जीव का स्वरूप जानना । चारो प्रमाणो से जीव का स्वरूप कहा । अब द्रव्यथी, क्षेत्रथी कालथी भावथी, करके जीवका स्वरूप कहते है–द्रव्यथी जीव का स्वरूप यह है कि गुणपर्यायका जो भाजन परिवर्तन वस का नाम द्रव्य है जैसे जीव में जीव के गुण पर्याय अर्थात् ज्ञानादि गुण और अव्याबाधादि पर्याय उन का जो समूह चेतनालक्षण सयुक्त सो द्रव्यथी जीव है एसे अनत जीव है क्षेत्र करके–जो जीव के असख्याता प्रदेश सो जीव का क्षेत्र है कालथी जीव का स्वरूप, उत्पाद, व्यय, ध्रुव, तीन काल करके जो रहे सो कालथी जीव है । भावथी ज्ञानदर्शन चारित्र करके सयुक्त इन से कदापि व्यतिरिक्त न होगा यह भावथी जीव है अब अनादि अनन्त अनादि सात, सादि सात और सादि अनन्त से जीव का स्वरूप कहते है । अभव्य आश्रिय तो अनादि अनन्त भागा है क्योंकि कर जीव त्रसपना हुवा या ऐसा नहीं कह सकते और उसकी मोक्ष भी कदापि न होगी, और जिस जीव की मोक्ष होगी सो अनादि सात भागे से है और गति याने नारकी

तिर्यंच मनुष्य और देव गती इन मे उत्पन्न होना फिर वहासे चव जाना इस आश्रिय सादि सात भागा है और जो जीव मोक्ष चला गया उस का सादि अनन्त भागे से स्वरूप जानना अब दूसरी रीतिसे भी इसी चोभगी को फिर कहते हे जीव के चार गुण और तीन पर्याय तो अनादि अनन्त हे और जो कर्म भव्य जीव से अनादि काल के लगे हे सो मोक्ष होने से इन कर्मों का अंत हो जायगा यह अनादि सात भागा है और जो कर्मों की स्थिति मूजिब कर्म बधना सो सादि सात हे आर जो अगुरुलघु पर्याय का उत्पाद व्यय सो भी सादि सात है और जो जीव सर्व कर्मों को छोड कर मोक्ष दिशा मे प्राप्त हुवा सो अपने स्वरूप का जो सपूर्ण प्रगट होना उस की आदि हे परन्तु फिर अपने स्वरूप को कदापि न भूलेगा इस वास्ते सादि अनन्त भागा गुण प्रगट होने की रीति से हुवा और निरपेक्षा से तो जीव में केवल दो भागे बनते हे १ अनादि अनन्त, और २ सादि सात इस रीति से अनादि अनतादि चाभगी कही अब (८) पक्ष से जीव का स्वरूप कहते हे १ नित्य २ अनित्य ३ एक, ४ अनेक ५ सत् ६ असत् ७ वक्तव्य ८ अव्यक्तव्य यह आठ पक्ष है:-जीव जो है सो चार गुण अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य और तीन पर्याय अव्याबाध अनवगाह अमूर्तिक चेतनादि गुण करके तो नित्य है और अगुरु लघु अर्थात् उत्पाद व्यय करके अनित्य हे अथवा निश्चयनयसे जीव जो हे कभी विनाशवान् नही है और व्यवहार नयसे जीव जन्म मरण करता हे इस करके अनित्य है यह नित्य अनित्य पक्ष करके जीवका स्वरूप कहा ॥ अब एक अनेक पक्षसे जीवका स्वरूप कहते हे.-जीव ऐसा नाम करके तो एक है परतु द्रव्य करके अनन्ता जीव हे इसलिये अनेक है अथवा जीव एक जीव करके तो एक हे परन्तु गुण पर्याय अनेक हे अथवा प्रदेश भी असख्याते हे इसरीतिसे अनेक है यह अनेक पक्षसे जीवका स्वरूप कहा। अब सत् असत् पक्षसे जीवका स्वरूप कहते है-जीवका स्वद्रव्य, जीवका स्वक्षेत्र, जीवका स्वकाल, जीवका स्वभाव करके तो जीव सत् है और जीवसे परद्रव्य अजीव, उस अजीवका परद्रव्य अजीव उस अजीवका द्रव्यक्षेत्र काल भाव करके असत् है जो उस करके जीवमें असतत्तान होय तो वो द्रव्यही दूसरा न ठहरे इसवास्ते अपनी अपेक्षा से सत् हे और परकी अपेक्षा से असत् हे । यह सत् असत् पक्ष से जीव का स्वरूप कहा अब वक्तव्य अवक्तव्यपक्ष से जीव का स्वरूप कह ते हे:-वक्तव्य कहने में आवे अर्थात् वचन से कहा जाय जैसे जीव चेतना लक्षण और ज्ञानादि गुण करके सयुक्त है ऐसा कहने मे आता हे इस से तो वक्तव्य हुवा, परन्तु जो जीवका स्वरूप ज्ञानी ने अपने ज्ञान में देखा हे सो ज्ञानी जानता हे परतु वचन से उस का स्वरूप कहने म न आवे इस लिये अवक्तव्य है। यह आठ पक्ष से जीव का स्वरूप कहा ॥ अब भेदस्वभाव, अभेद स्वभाव, भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव, परमस्वभाव, भिन्नस्वभाव, अभिन्न स्वभाव, करके जीवका स्वरूप कहते हे.-भेद स्वभाव से तो एक सिद्धके जीवका स्वभाव, एक संसारी जीवका स्वभाव और ससारी जीव मे भी जितनी योनि हे उतनी योनियों मे परस्पर योनिका भेद होने से योनि में रहने वाले जीवो का भी आपसमें भेद है परन्तु जीव ऐसा नाम अपना चतना लक्षण के किसी जीवके भेदनही अथवा असख्यात प्रदेश सर्व जीवों के बराबर हे इस कारके भी भेद नही अथवा ज्ञानादिगुण करके सर्व जीव

बराबर हे इस वास्ते अभेद है ॥ यह भेद अभेद स्वभावसे जीवका स्वरूप कहा। अब भव्य अभव्य स्वभावसे जीवका स्वरूप कहतेह–भव्यक० जिसका पलटन स्वभाव हो उस को भव्य स्वभाव कहतेहे कि जैसे जीवका पलटन स्वभाव न माने तो ससारी जीवकी कदापि मोक्ष नहीं हो इस लिये जीवका भव्य स्वभाव है, अभव्य क० जिसका स्वभाव न पलटे अर्थात् न बदल उसको अभव्य कहतेहे तो देखो जीव जो है सो चेतना लक्षण स्वभावको कदापि न पलट और जो कदाचित् चेतना लक्षण पलट जाता तो अजीव हो जाता इसलिये जीवका अभव्य स्वभावभी ठहरा। यह भव्य अभव्य स्वभावसे जीवका स्वरूप कहा ॥ अब परम स्वभावसे जीवका स्वरूप कहतेहे'–परम क० उत्कृष्ट स्वभाव तो जीवमे ज्ञान जो गुणहे सो उत्कृष्ट स्वभाव है क्योंकि ज्ञानसे ही सर्व वस्तुको जानताहै और इसकेही मद होनेसे सर्व वस्तुका अजानभी होता है परतु व्यक्त और अव्यक्त करके तो ज्ञान बना ही रहता है। इसलिये जीवका जो ज्ञान है सो ही परम स्वभाव है। यह परम स्वभाव से जीवका स्वरूप कहा ॥ अब भिन्न अभिन्न स्वभावसे जीवका स्वरूप कहते ह –भिन्नक० जुदा तो देखो जीव मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य यह चारों भिन्न २ स्वभाववाले ह क्योंकि देखो ज्ञान मे तो जानने का स्वभाव है और दशन म सामान्य देखने का स्वभाव है। और चारित्र में रमण करने का स्वभाव है और वीर्य मे शक्ति अर्थात् पराक्रम देनेका स्वभाव है तो अब चारों में भिन्न २ स्वभाव है परतु जीवके विषय यह चारों गुण एक जगह उपस्थित अर्थात् रहनवाले है इस लिये जीवसे अभिन्न होनेसे इन चारोंकी जो समुदाय उसी का नाम जीवहै, इस रीतिसे जीवका भिन्न अभिन्न स्वभावसे स्वरूप कहा ॥ अब छ. कारकोंसे जीवका स्वरूप कहते ह– १ कर्त्ता २ कर्म अर्थात् कार्य ३ करण ४ सम्प्रदान, ५ अपादान, ६ आधार। (१) जीव परिभाव रागादि ज्ञान वर्णादिक द्रव्य कर्म का कर्ता है। (२) जो जीव भावकर्म और द्रव्यकर्मका कर वह कार्य। (३) अशुद्ध व्यवहार प्रणीतिरूप भाव आश्रव और प्रणातिपात आदि द्रव्य आश्रव इन दो कारणोंसे कर्म बधा है इस लिये यह कर्म नाम तीजा कारक। (४) अशुद्धता और द्रव्य कर्मका जो लाभ सो सम्प्रदान (५) स्वरूपरोध और क्षयोपसमकी हानि तथा परानुयायतासे अपादान। (६) अनति अशुद्ध विभावता और कर्मको राखने रूप जो शक्ति सो आधार यह छ कारक॥ जीवका स्वरूप कहा ॥ अब यह तो ससारी जीवपे उतारे। अब मोक्षकी साधन करनेवाले जो जीव है उनके ऊपर छ कारक घटाते है– (१) कर्त्ता जीव द्रव्य है सो आत्म शुद्धता निपजान रूप कार्यमे प्रवर्त्त हुवा अपनी आत्माका कर्त्ता है (२) जो जीवकी सिद्धता सर्व गुण पूर्णता सवस्वभाव स्वरूपावस्थानता ह सो कार्यनामा दूसरा कारक अर्थात् कर्म। (३) आत्मा उपादानकारण स्वगुण परिणीति सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रयी की जो परिणीति तत्त्वनिर्धार स्वगुण रमण आदि अहिंसकता वध हेतु अपरिणामरूप प्रभाव अग्राहकता रूप अथवा उपादान कारण अपनी आत्मा निमित्त कारण अरिहन्त अवलंभ आदि यथार्थ आगम प्रमाण आदि उससे अपनी आत्माका स्वरूप विचारण रूप अथवा नीचे का गुण ठाणा छोडना और ऊपर का गुण ठाणा ग्रहण करना, आत्म सिद्धिरूप कार्य की उत्कृष्ट आत्मशक्ति स्वरूप अनुयायी शुद्धदेव प्रमुख कारणों से जो

मोक्ष रूप कार्य सिद्ध होय यह तीजा कारक कहा (४) सम्प्रदान कारक कहते हैं-कि आत्मा की सम्प्रदा जो ज्ञान पर्याय उसका दान आत्मा का आत्मगुण प्रगट कर वा रूप देना उसी का नाम सम्प्रदान है। (५) अपादान कारक कहते हैं:-कि आत्मा के समवाय सम्बन्ध से जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र वो आत्मा का स्वधर्म है उससे जो विपरीति भाव आदि कर्म अशुद्ध प्रवृत्ति सो परधर्म है इन दोनों का आपस में विवेचन करके अर्थात् भिन्न करना सो अशुद्धता का उच्छेद अर्थात् त्याग होना और आत्म स्वरूप अर्थात् आत्म गुणका प्रगटहोना अर्थात् अशुद्धता रूप का व्ययहोना और आत्मगुणका प्रगटहोना अर्थात् उत्पाद होना इस करके अपादान कारक कहा (६) आधारकारक कहते हैं.-समस्त आत्मा के जो गुण पर्याय प्रगटहुए जो व्याप्य, व्यापक सम्बन्ध अथवा ग्राह्य, ग्राहक, सम्बन्ध वा आधार आदि सम्बन्ध इन सबोंका क्षेत्र आत्मा है सो इनको धारण करनेवाली जो आत्मा इस लिये आत्मा आधार कारक कहा। यह छः कारकों से मोक्ष के साधन करनेवाले जीव का स्वरूप कहा ॥ अब किञ्चित् नयका स्वरूप कहते हैं.-नयके दो भेद हैं-(१) द्रव्यार्थिक, (२) परियार्यथिक सो प्रथम द्रव्यार्थिक वो है जो उत्पाद व्ययपर्याय गौण पणे, और प्रधान पणे द्रव्यके गुण सत्ता को ग्रहे सो इसके १० भेद यह हैं:-(१) सर्वद्रव्य नित्य है सो नित्य द्रव्यार्थिक, (२) अगुरु लघु और क्षेत्र की अपेक्षा न करे और मूल गुणको पिण्ड अर्थात् मुख्यपणे ग्रहणकरे वो " एक द्रव्यार्थिक " (३) ज्ञानादिक गुण करके सब जीव एक सरीखा है इसलिये सर्व को एक जीव कहे स्वद्रव्यादिको ग्रहण करेसो "सत्यद्रव्यार्थिक" जैसे सत्यलक्षण द्रव्य, (४) द्रव्य में कहने योग गुण अंगीकार करे सो ' व्यक्तव्य "द्रव्यार्थिक, (५) आत्मा को अज्ञानी कहना वो " अशुद्ध " द्रव्यार्थिक, (६) सर्व द्रव्यगुण पर्याय सहित है ऐसा कहना सो " अनवय " द्रव्यार्थिक (७) सर्व जीव द्रव्यकी मूलसत्ता एकसत्ता है सो " परम " द्रव्यार्थिक नय है (८) सर्वजीवके आठ प्रदेश निर्मल हैं जिन आठों के कर्म नहीं लगे क्योंकि जो लगभी जाय तो अचेतन होजाय इसी वास्ते उनको आठ रुचक प्रदेश कहते हैं सो " शुद्ध " द्रव्यार्थिक नय है (९) सर्व जीवों के असख्यात प्रदेश एकसरीखे हैं सो " सत्ता " द्रव्यार्थिकनय (१०) गुण गुणीद्रव्य सो एक है जैसे मिश्री और मीठापन तो मिश्री मीठापनसे जुदा नहीं सो " परमभाव ग्राहक " द्रव्यार्थिक नय॥ अब पर्याय पार्थिक नय कहते हैं जो पर्याय को ग्रहण करे सो पर्यायपार्थिकनय है उस के छःभेद हैं सो यह है- (१) ' द्रव्य पर्याय" सो जीवका भव्यपणा और सिद्धपना को कहते हैं। (२) ' द्रव्य व्यंजन पर्याय" सो द्रव्यके प्रदेशमान। (३) " गुण पर्याय" जो एक गुणसे अनेकता हो जैसे धर्मादिक द्रव्य अपने चलण सहकारादि गुण से अनेक जीव और पुद्गल को सहाय करे। (४) " गुण व्यंजन पर्याय " जो एक गुणके अनेक भेद हों। (५) " स्वभावपर्याय " सो अगुरू लघुपर्याय से जानना यह पाच पर्याय सब द्रव्यों मे हैं (६) छठाविभाव पर्याय सो जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों मे ही है जहा जीव सो चार गतिके नवे २ भवकरे वो जीव में विभाव पर्याय तथा उस पुद्गल में स्वधपणा सो विभाव पर्याय जानणा यह नयके भेद कहे। अब नयके लक्षण तथा अर्थ कहते हैं-(१) "अनेक गमा' सकपारोपाशाअयात्रा यत्रगनैगमः "। अनेक नामादि ग्रहणकरे तथा स-

कल्पे आरोपे और अंश करके वस्तुको माने उसे नयगमनय कहते हैं । (२) " सगृह्णाति वस्तु सत्तात्मक सामाना स सग्रह. " ॥ जो सर्वसे सग्रह सर्व को ग्रहण करे वस्तु का छतापणा सामान्य पणे से ग्रहण करे उसको सग्रह नय जानना (३) " सग्रह ग्रहित अर्थ विधेशेण विभजतीति व्यवहार. " सग्रह नय करके ग्रहण करे जो सामान्य तिसको अश २ भेद करके जुदे २ विवचन करे उसको व्यवहार नय कहत हे (४) " ऋजु अतीतानागत वक्रत्व परिहारेण ऋजु सरल वर्तमान सूत्रयतीति ऋजुसूत्र " जो ऋजु सरल वर्तमान अवस्थाको ग्रहण करे अतीति अनाग तकी व्यक्तव्यताको लेखे नही उसको ऋजु सूत्रनय कहते हे । (५) "शब्दार्थरूप तत्त द्धर्मरूप परिणति इति शब्द" । प्रकृति प्रत्ययादिक व्याकरण व्युत्पत्ति करके जो उ त्पन्न हुवा शब्द तिसमें जो पर्यायार्थ बोला जाय अर्थात् परणमें उस करके जो वस्तु माने सो शब्दनय । (६) " सम्यक् प्रकारेणार्थपर्याय वचना पर्यायता सकल भिन्न वचन भिन्न भिन्नार्थत्वेन तत् समुदाय युक्त ग्राहक इति समभिरूढनय " जो वस्तु कि विद्यमान पर्याय तथा जो नाम यावत् वचन पर्याय हे वो सर्व शब्दक भिन्न ह जैसे घटकुम इत्यादि जो शब्द करके भिन्न है उसका अर्थ परमतद्भावरूपपणे भिन्न वह सर्व वचन पर्यायरूप परिण मती वस्तुको वस्तुपणे ग्रहण करे उसको समभिरूढनय कहते हे । (७) "सर्व अर्थ पर्यायें स्वक्रिया कार्य पर्णत्वेन एव यथार्थतया भूत' एवभूत " ॥ सर्व अर्थ पर्याय अनत सपूर्ण अपनी क्रिया कार्य पूर्ण जो वस्तुका धर्म सम्पूर्ण हो गया हो उसको माने उसका नाम एव भूतनय है यहा श्रीभद्र गणिक्षमा श्रवणमें १ नयगमनय, २ सग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजु सूत्र । इन चार नयको द्रव्यार्थिक पणेमें द्रव्य निक्षेपा माना है और शब्दादिक ३ नयको पर्यायार्थिक पणमें भाव निक्षेपा माना है तथा श्री सिद्ध सैन दिवाकरने आदिके ३ नयको द्रव्यार्थिक पणे कहा है और ऋजु सूत्र आदिक चार नयको भाव पणे कहा है जिसका आशय ऐसा है कि वस्तुकी अवस्था तीन हे । १–प्रवृत्ती, २ सकल्प, ३ परिणती यह तीन भेद ह इनमें जो योग व्यापार सकल्प सो चेतनाके योग सहित मनके विकल्प इसको श्री जिन भद्र गणिक्षमा श्रवण प्रवृत्ति धर्म कहत हे तथा सकल्प धमको उदक मिश्रपणा कर के द्रव्यनिक्षेपा कहते हे और मात्र एक परिणीत धर्मको भाव निक्षपा कहा है और श्री सिद्धसेनदिवाकरने विकल्प जो चेतना हे उसको भावनय गवेष्या अर्थात् जाना है और प्रवृत्तिकी इद व्यवहार नय है और सकल्प सो ऋजु सूत्रनय है तथा एक वचन पर्याय रूप परिणती सो शब्दनय है और सकल्प वचन पर्यायरूप प्रणती सो समभिरूढनय है और वचन पर्याय अर्थ पर्याय रूप सपूर्ण सो एव भूतनय है इसलिये शब्दादिक ३ नय सो विशुद्ध नय है और भाव धर्मम मुख्य भावतामें उत्तर उत्तर सूक्ष्मताका ग्राहक ह ॥ अब सात नय करके जीवका स्वरूप कहते है नैगमनयसे गुण पर्यायवत शरीर सहित सो जीव इस कहनेसे इसमे पुद्गल और धर्मास्तिकायादिकके सर्व जीवमें गौण लिये जब सग्रह नय वाला कहने लगा कि जो असख्यात प्रदेशी है सो जीव है तो इसने एक आकाश प्रदेश को छोडकर बाकी सबको लिया जब व्यवहार नयवाला बोला कि जो विषय आदिक अथवा सुखादिककी इच्छा करे काम आदिकको चितारे सो जीव

आएगा तो अच्छी तरहासे विधिपूर्वक दर्शन कर सकेगा क्योंकि उस जरूरी कामके वास्ते चित्तकी चचलतारहेगी इस वास्ते मन्दरके पगोतीया पर निस्सही कहना चाहिये, अब जो कोई शङ्काकरे कि कितनी " निस्सही " कहनी चाहिये, तो हम कहते है कि एक निस्सही कहनी चाहिये जो कोई कहे कि शास्त्रमे तो तीन निस्सही कही है तो हम कहते हे कि तीन निस्सही कही है परन्तु उन तीन निस्सहीका जुदा २ प्रयोजन है सो दिखाते है कि देखो जो पूजन आदिक न करे केवल चैत्यवन्दनही करन्हे सो पहले उसके वास्ते तीन निस्सही कहने की विधि कहते हे कि प्रथम निस्सही मन्दिरजीके पगोतीयापर कहनी चाहिये उस निस्सहीके कहनेसे अपना जो ससारी कृत कि जिसमे कर्मबंधका हेतु है और सावद्य व्योपार ससार बधनेका हेतु उस सर्वका निषेध किया परन्तु मन्दिरजी संबन्धी जो कार्य है सो सर्व कहना बाकी रहगया इस लिये यह प्रथम निस्सहीका प्रयोजन हुवा, अब श्रावक जो है सो मन्दरके भीतर जायकर सर्व मन्दर की निगाहकरे और टूटा फूटा इत्यादिक देखे और जो आदमीको कहके करानाहो सो तो उस आदमीसे करावे अथवा जिसके सुपुर्द वह मन्दिरजीहो उससे कहे कि इस चीजकी संभाल करो नहीं तो असातना होती है, यहां जो कोई ऐसी शका करे कि दर्शन करनेको तो हरेक कोई जाता है क्या सब ऐसाकाम करें? तो हम कहते है कि सर्व भव्य जीवोंको करना चाहिये क्यो कि मन्दिरजीकी असातना होनेसे श्रीधर्ममें हानि होती है इस वास्ते सर्व भव्य जीवोंको मन्दिर जीकी सार समार अर्थात् जिससे असातना होय उस असातना टालनेके वास्ते मन, वचन काय करके भव्य जीवोंको करनी चाहिये इत्यादि काम करके बाद फिर तीन प्रदक्षिणा देकर और भगवतके सन्मुख होके दूसरी निस्सही कहे, इस दूसरी निस्सही से जो मन्दिरजीके काम मध्ये कहना सोभी निषेध होचुका फिर वह श्रावक चावलहाथमे लेकर मन्त्रसहित चावलोको भगवतके आगे चढावे सो मन्त्रतो हम पूजाकी विधिमें कहेंगे अब जो चावल आदि चढानेकी विधिकहते है कि पेस्तर तो ज्ञान, दर्शन चरित्र की तीन ढिगली करे और मनमें ऐसाविचारे कि मेरेज्ञान, दर्शन चरित्र प्रगटे फेर चावलोंसे सातियाका आकार बनावे उस समय मनमें यह विचारना चाहिये कि चार गती जो है उन से मैं निकलू फिर सिद्ध सलाका आकार बनावे उस समयमें ऐसा विचार करे कि मेरेको सिद्धसलाका प्राप्तहाय, फिर फलादि चढाना होयतो मन्त्रबोलकर चढावे सो मन्त्र पूजाकी विधिमे लिखेंगे इस रीतिसे करके फिर तीसरी निस्सही कहे उससे फलादि सचित चीजो का निषेध करके भगवत् का चैत्य वन्दन आदिक करे उस चैत्य वन्दन करती दफै अपने चित्त मे भगवतके गुण आदिक विचारे अथवा उन भगवत्के गुणो को अपने गुणो में एकता करे यह चैत्य वन्दन की विधि कही अब आचार दिनकर ग्रंथ अनुसारे विधि लिखते हेः—प्रथम कही निस्सही उस रीतिसे सर्व काम देखकर और स्नान आदि करे उसकी विधि प्रथमहीसे कहते हे.— श्रावक स्नानका वस्त्र पहन कर उष्ण पानीसे स्नान करे सो स्नान करने की विधिका श्लोक कहते है.— " स्नान पूर्व मुखी भूयः प्रतीच्या दत धावन। उदीच्या श्वेत वस्त्राणि, पूजा पूर्वोत्तरा मुखी "॥ १ ॥ अर्थ—पूर्व मुख करके स्नान करना चाहिये और पश्चिम दिशा मुख करके दत धावन करना चाहिये और उत्तर दिशि सन्मुख होकरके नवीन वस्त्र पहिने और श्रीभगवत्

की पूजा पूर्व और उत्तर मुख करके करे और उत्तर मुख हो करके "एक पट्टा" यानी एक पाटका वस्त्र उसका उत्तरासण करके और उसी वस्त्र के आठतह करके मुखकोष ऐसा बांधे कि नाकका श्वास भी जिन प्रतिमापर न पड़े अब प्रथम पूजा करनेवाला सात चीजों की शुद्धि करे ॥ श्लोक ॥ मनोवाक् कायवस्त्रोर्व्वी पूजो पकरणस्थितो। शुद्धि सप्तविधाकार्या श्रीजिनेन्द्रार्चनक्षणे २॥ अर्थ-प्रथम मनशुद्धि सो घरका वा दुकानादि व्योपार अथवा धन स्त्री आदिक का चिंतवन रूप न करना उसका नाम मनशुद्धि है, दूसरा सावद्य वचन न बोले उसका नाम वचन शुद्धि है, तीसरी शरीर से सावद्य योग्य व्योपार न करे तथा इस्तदृष्टि भ्रुखना इन से भी सावद्य व्योपारका इशारा न करे और पूर्व उक्तविधिसे स्नानकरे इसका नाम काय शुद्धि है अब चौथी वस्त्र शुद्धि दो श्लोकों से कहते हैं – ॥ श्लोक ॥ "कटिस्पृष्टतुयद्वस्त्र पुरीषयेनकारित। मूत्रंवमैथुनंचापि तद्वस्त्रपरिवर्जयेत् ॥१॥ खंडितसंधितेछिन्ने रक्तरौद्रेचयासकी। दानपूजादिककर्म कृततन्निष्फलभवेत् ॥ २ ॥ अर्थ--उटाहुवा, मल, मूत्र, मैथुन इत्यादिक जिसवस्त्रसे क्रिया हो उस वस्त्रको छोड देना चाहिये और खंडित, फटा हुवा, सांधा हुवा छेद वाला लाल हरा, पीला, काला, वस्त्र इन वस्त्रों करके दान पूजा आदिक शुभ कर्म करनेसे निष्फल होते है इस वास्ते नवीन स्वेत वस्त्र पहिनना चाहिये यह वस्त्र शुद्धि हुई पांचमी सलेस्म आदि अशुचि पुद्गल रहित भूमि करनी उसका नाम भूमि शुद्धि है ॥ पुजाना ॥ उपकरण लोटा कलस थाल प्रमुख घरके कार्यमें नहीं लाना और उनको मांज धोयकर साफ करना यह छठी पूजा उपकरण शुद्धि हुई ॥ सातवी अस्थि आदिक उस जगह न रहनी चाहिये यह सात प्रकारकी शुद्धि हुई ॥ अब पूर्व उक्त विधि स्नान करके चोटी बांध उत्तरासन कर मुखको बांधकर भगवत्‌की पूजन करे तहां प्रथम जल, फल, फूल आदिक अष्ट द्रव्योंको निष्पाप करे सो इनके निष्पाप करनेका प्रथमजलका मंत्र कहते हैं –मंत्र ॥ ॐ आपो उपकाया एकेन्द्रीया जीवा निरवद्या ॥ अर्हत्पूजाया निर्व्यथा सतुनिष्पापा सतुसद्गतय सतु, नमोस्तुसंघट्टनहिंसापापमर्हदर्चने ॥ इस मंत्रसे पाणी मंत्र कर निष्पाप करना चाहिये, अब पुष्प, फल पत्र मंत्र.–"ॐ वनस्पतयो वनस्पतिकाया एकेंद्रीयाजीवा निरवद्या अर्हत्पूजाया निर्व्यथा सतुर्निष्पापाः सतु, सद्गतय सतु, नमोस्तु संघटनहिंसा पाप मर्हदर्चने"॥ इस मंत्रमें पुष्प, फल, पत्र मंत्रके निष्पापकीजे। अब धूप, चन्दन, अग्नि, मंत्र –ॐ अग्नयो अग्निकाया एकेंद्रीया जीवा निरवद्या। अर्हत्पूजाया निर्व्यथा सतु निष्पापाः सतु सद्गतयः सतु नमेस्तु। संघट्टनहिंसा पापमर्हदर्चने। इति अग्नि मंत्र ॥ इस मंत्र करे अग्नि निष्पाप कीजे जो मंत्र हम लिख आये है उनको तीन २ वार पढकर वासक्षेप करे सबचीजको निष्पाप करनेके बाद चंदन हाथमें लेकर दूसरे हाथमें पुष्प और अक्षत लेकर इस मंत्रको पढे सो लिखते हैं –"ॐ त्रसरुपोहं संसारीजीव' सुवासन. । सुमेध एक चित्तो निर्वद्यार्हदर्चने निर्व्य यो भूयास निरुपद्रवो भूयास ॥ मतप्रश्रिता, अन्येप संसारी जीवा निरवद्यार्हदर्चने निर्व्यथा भूयासु. निष्पापा. भूयासु. निरुपद्रवा भूयसु." ॥ इस मंत्र को तीन वार गुण कर पुष्प को अपने मस्तक पर नाख कर तिलक कीजे। अब कुल सामग्री जो शुद्ध की हुई है उस को लेकर मन्दिर में घुसे यहां दूसरी निस्सही कहे अब भगवत् के पूजन के सिवाय सर्व काम का निषेध किया और फिर गंध

अक्षत और पुष्प हाथ में लेकर इस मंत्र को पढ़े सो मत्र लिखते हैं.-" ॐ पृथिव्यप्तेजो वायु वनस्पति त्रस काया एक द्विति चतुः पचेन्द्रीयास्तिर्यङ् मनुष्य नारक देव गति गता चतुर्दशरज्वात्मक लोकाकाश निवासन इह जिनार्चे ने कृतानुमोदनाः सतुनिष्पापा सतु निरपाया· सतु सुखिन. सतु प्राप्तकामा सतु मुक्ताः सतु बोधमाप्नुवतु " ॥ इस मत्र का ३ वार पढकर चारा दिशा मे पुष्प गध अक्षतादि उछा ले फिर दो श्लोक पढे — शिव मस्तु सर्व जगत. परिहित निरता भवतु भूत गणाः दोषा प्रयातु नाश सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ १ ॥ सर्वोपि सतु सुखिन. सर्व्वे संतु निरामया. सर्वे भद्राणि पश्यतु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत् ॥ २ ॥ यह दो श्लोक कह कर हाथ में जल ले और फिर यह मत्र पढना:-अथ मत्र-" ॐ भूत धात्रि पवित्रास्तु अधिवासितास्तु । ■ प्रोपितास्तु " ॥ इस मंत्र से पानी मत्र कर भूमि को छाटना पीछे पूजा का पट बाजोट धोइकरके साथियो करे, मत्र से बाजोट मंत्री जे । मत्र-" ॐ स्थिराय शास्वताय निश्चलाय पीठाय नमः " । इस मत्र से वास क्षेप मत्र बाजोट पर रक्खना, और बाजोट पाणी से छाटि हुई जगह पर रक्खी जे, और उस बाजोट पर परवाल का थाल रक्खी जे । जो कदाचित् देहरादिक के विषय स्थिर प्रतिमा हुवे, और हट नहीं सक तो उस जगह पानी से छाटना, क्षेप मत्र कर प्रतिमा के सामने अर्थात् मुह आगे रखना, बाजोट थाल का कुछ काम नहीं यदि स्थिर प्रतिमा हो तो पूर्वोक्त रीति से बाजोट, थाल, रक्ख करके प्रतिमाजी लेकर थाल में रक्खी जे पीछे अंजली में जल पुष्प लेकर मत्र गुणी जेः ॥ अथ मत्र ॥ " ॐ नमोऽर्हभ्यः सिद्धेभ्य, स्तीर्णेभ्य, स्तारकेभ्यो, बुद्धेभ्यो, बोधकेभ्यः, सर्व जतु हितेभ्यः ॥ इह कल्पना बिंबे भगवतोऽर्हतः, सुप्रतिष्ठिताः सतु"॥ इस मत्र को मौनपणे कहे भगवत के चरण कमल ऊपर पुष्प रक्खी जे । फिर हाथ मे जल पुष्प लेकर इस मत्र को गुणी जे, यह पूजा पूर्वक मत्र करी जे ॥ अथमत्र " ॐ स्वागता मस्तु स्वस्थिर तिरस्तु, सु प्रतिष्ठास्तु " ॥ इस मत्रको गुणी जे, फिर जल पुष्प ले प्रभु के चरणो मे रखी जे । फिर पुष्प और पानी हाथ मे ले इस मत्रको पढे-अथ मंत्रः- " ॐ अर्घ मस्तु सर्वोप चारैः पूजास्तु " ॥ इस मत्र को पढकर कुसुमाजली प्रतिमा ऊपर ढोली जे, इस तरह पूजा की पीठिका हुई । अब अष्ट प्रकारी पूजा की विधि लिखते हे प्रथम जल पूजा ॥ तहा कुसुमाजली ढोल्या पीछे निः पाप पाणी का कलस हाथ मे ले यह मत्र पढीजे । अथ मत्र- " ॐऽर्हत जीवन, तर्पणं हृद्य । प्राणद मल नाशन जल जिनार्चने त्रैव जायते सुख हेतवे ॥ १ ॥ इस मत्र को गुण कर प्रतिमाजी की पखाल करावे पीछे अगलूहणे से लूह करके चदन, केसर, कर्पूर, कस्तूरी प्रमुखयकी कटोरी हाथ में लेकर यह मत्र कही जे ॥ मत्र-ॐ अर्ह ल इद गन्ध महा मोहदृहण प्रीणन सदा जिनार्चनेच । सत्कर्म्म ससिध्ये जायते मम " ॥ १ ॥ इस मत्र को कह प्रतिमा जी के नव अग पर टीकी लगावे और चन्दन केशरादिक से विलेपन करे, वो नव अग कहे ॥ श्लोक ॥ "अहि १ जानु २ करा ३ शेषु ४ मूर्धि ५ पूजा यथाक्रमं । भालेर्द्ध कठे ७ हृद भोजे ८ उदरे ९ तिलक धारण " ॥ अर्थ-प्रथम पग पर १ पीछे गोडे पर २ हाथपर ३ स्कधेपर ४ मस्तकपर ५ इस अनुक्रम से पृजा कीजे । ललाट ६ गले ७ हृदये ८ उदरे ९ तिलक कीजे ॥ इस अनुक्रम से नवाग पूजा

कीजे यह दूसरी चदन पूजा कही फिर पुष्प पत्रादिक हाथमे ले कर यह मंत्र पढ़कर फूल चढावे इस पुष्प पूजा करने के बाद फिर अक्षत हाथम ले यह मन्त्रकहे॥ मत्र–ॐ अर्हत मीणान निर्म्मल वल्य, मागल्य सर्व सिद्धिद। जीवन कार्य ससिद्धौ भूयात्मे जिन पूजने॥ १॥ यहमत्र गुणकर अक्षत जिन प्रतिमा आगे चढाइये यह चौथी अक्षत पूजा कही॥ ४॥ इसके बाद नैवेद्य भोजन थालम रखकर यह मत्रकहे॥ मत्र–'ॐ अर्हत नानाद्रस सपूर्ण नैवेद्य सर्वमुत्तम जिनाग्रेढौक्ति मर्वसपदा मम जायता॥ १॥ यह मत्र कह कर नैवेद्य थाल जिन प्रतिमा आगे रक्खे यह पचमी नैवेद्य पूजा कही॥ ५॥ इसके पीछे सुपारी जायफलादि वर्तमान कालकी ऋतुके फल आम नीबू आदिक हाथमें लेकर यह मत्र कहे। (मंत्र) ॐ अर्ह कु जन्मफल स्वर्गफल पुण्यफल मोक्षफल॥ दद्याज्जिनार्च्चने चैव जिनपदाग्रहसारेयत॥ १॥ यह मत्र पढ़कर जिन प्रतिमा आग फल रक्खे यह छट्ठी फल पूजा कही॥ ६॥ इस पीछे धूप हाथमें लेकर यह मत्र कहे॥ मत्र। ॐ ह्रीं र श्रीमत्कृष्णागरु कस्तूरीद्रुमनिर्यासंसभव. प्रीणन. सर्वदेवाना धूपोऽस्तु जिनपूजने॥ १॥ यह मत्र कह धूप अग्नि पर रक्ख कर जिन। प्रतिमा आगे धूप रक्खे यह मातवी धूप पूजाकही॥ ७॥ तिसकेबाद दीवा जोकर हाथ में पूजा लेकर यह मत्र कहे। (मत्र) ॐ अर्ह र पचज्ञानमहाजोतिर्म्मयायध्वातघातिने॥ द्योतनाय प्रदीपायदीपो भूयात्सदार्हते॥ १॥ यह मत्र कहे कूल मनकर दीवेमें डालकर प्रतिमाके जीमणे हाथकी तरफ रक्खे यह आठमी दीप पूजा कही॥ ८॥ इसके बाद कुसमाजली लेकर यह मत्र गुणे –ॐ अर्ह भगवद्भ्यो अर्हद्भ्यो जल गध पुष्पाक्षत फल धूप दीपै. समदान मस्तु ॐ पुण्याह पुण्याह प्रियता प्रियन्ता भगवतो अर्हतस्त्रिलोकस्थिताः नामाकृति द्रव्य भाव युत स्वाहा॥ यह मत्र गुणकर कुसुमाजली प्रतिमाके चरणमें डाले उसकी पीछे वास क्षेप लेकर यह मत्र पढे॥ मत्र॥ ॐ सूर्य्यसोमागारक बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु मुखा, ग्रहा॥ इह जिनपदाग्रह समायातु पूजा प्रतीछतु"॥ इस मत्रसे वास क्षेप मत्र कर जिन प्रतिमा आगे नवग्रहका पाटा होवे तो उसपर वास क्षेपकीजे जो नवग्रहका पाटा न हो तो जिस बाजोट पर भगवतकी स्नान कराया है उस बाजोट पर वास क्षेपकीजे फिर उस पर जल चढाइये और अष्ट द्रव्यसे पूजन करिये ऐसा बोलता जावे कि 'गन्ध अस्तु' 'अस्तु' शब्द सर्व द्रव्योंके पीछे लगाना चाहिये इस रीतिसे अष्ट द्रव्यसे पूजनेकिये के बाद कुसुमाजली हाथमें लेकर इसमत्र को गुणे –ॐ सूर्य सोमागारक बुध, गुरू शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु मुखाग्रहा सुपूजिता सतु. सानुग्रहा सतुतुष्टिदा सतुपुष्टिदा' सतुमागल्यदा' सतुमहोत्सवदा. सतु॥ यह मत्र कह कर ग्रह पट्टा पर कुसुमाजली छोडे पीछे वास क्षेप हाथ में ले कर इस मत्र को पढे– ॐ इन्द्राग्नि यम नैर्ऋत्य वरुण वायु, कुबेर ईशान, नाग ब्रह्मणो लोकपाला सविनायका सक्षेत्रपाला इहे जिन पादाग्रे समागच्छतु पूजा प्रति च्छतु॥ इस मत्रसे वास क्षेप मत्र स्नान पाटा पर वास क्षेप कीजे पीछे उस पर जलकी धार दीजे ' आचमनमस्तु ' ऐसा सर्व द्रव्यों में ' मस्तु ' शब्द लगाना और अष्ट द्रव्यसे पूजन करना फिर हाथ में कुसुमाजलि लेकर इस मत्र को गुणे –ॐ इन्द्राग्नि यमनैर्ऋति वरुण वायु कुबेर ईशान नाग ब्रह्मणो लोकपाला सविनायका सक्षेत्रपाला सुपूजिता सतु सानुग्रहा सतु तुष्टिदा सतु पुष्टिदा. सतु मागल्यदा. सतु महोत्सवदा. सतु॥इस

मंत्रको कहकर पाटा ऊपर कुसुमाजली छोडे फिर कुसुमाजली हाथमें लेकर इस मत्रको कहे मत्र-ॐ अस्मत्पूर्वजागोत्रसभवाः देवगतिगताः सुप्रजिताः सतु सानुग्रहाःसतु तुष्टिदा' सतु पुष्टिदाः सतु मागल्यदाः सतु महोत्सवदाः सतु इस मत्रको कहकर जिन प्रतिमाके आगे कुसुमाजली डाले फिर कुसुमाजली हाथमे लेकर इस मत्रको कहे:—ॐ अर्हं अर्हद्भक्त्याष्टनात्युत्तरगतदेवजातयः सदेव्य. पूजा प्रतीच्छतु सुपूजिता सतु ॥ इस मत्रको कहकर जिन प्रतिमाके आगे कुसुमाजली छाडे फिर पुष्प खाली हाथमे लेकर मौन पणे मत्रका स्मरण करे मत्र ॐअर्हनमो अरिहताण ॐ अर्हनमो सय सबुद्धाण ॐ अर्हनमो पारगयाण ॥ इस मत्रको १०८ एकसो आठ वार अथवा ५४ वार अथवा २७ वार २१ वार मनमें जप कर जिन प्रतिमा के चरण में फूल चढावे इस मत्रकी महिमा ॥ शास्त्रों में है इस लिये यहा नही लिखते। जिनेश्वरकी अष्ट प्रकारी पूजाकरे वाद जो किसी को स्थिरता नही हो तो यह लोक पालादिककी पूजा न करे और भगवत् की अष्ट द्रव्यकी पूजन किये वाद तीसरी 'निस्सही' कहकर चैत्य वन्दन करके चला जाय फिर जो समस्त लोकपाल आदिक की पूजा करे वो नवेद्यका थाल यहा चढाय कर जललेकर इस मंत्रको वोले।(मत्र)ॐ सर्वे गणेश क्षेत्रपालाद्याः सर्वे ग्रहा' सदिक्पालाः सर्वे अस्मत्पूर्वजोद्भवादेवाः सर्वे अष्टनवत्युत्तरगतदेव जातय'सदेव्योऽर्हद्भक्ता अनेन नवेद्येन सतर्पितास्सतु सानुग्रहाः सतु तुष्टिदाः सतु पुष्टिदाःसतु मागल्यदा सतु महोत्सवदाः सतु। यह मत्र कहकर जल थालपर डाले इस जगह जिन अर्चन विधि हुई फिर मगलके अर्थ कुसुमाजली हाथमे लेकर यह काव्य कहे'—यो जन्मकाले पुरुषोत्तमस्य सुमेरुशृगे कृतमज्जनश्च ॥ देवैः प्रदत्तः कुसुमाजलिस्सददातु सर्वाणि समीहितानि ॥१॥ यह काव्य कहकर कुसुमाजलि डालेफिर कुसुमाजलि हाथमे लेकर यह काव्य कहे।राज्याभिषेकसमये त्रिदशाधिपेन छत्रध्वजाकयुतयो. पदयोर्जिनस्य। क्षिप्तोतिभक्तिभरतः कुसुमाजलिर्यः प्रमीणयत्वनुदिन सुधिया मनासि ॥२॥ यह काव्य कही तीजी कुसुमाजली हाथमे लेकर यह काव्य कहे.—देवेन्द्रै कृतकेवले जिनपतौ सानदभक्त्यागतैः सदेहव्यवरोपणक्षमशुभव्याख्यानमुख्याशये.। आमोदान्वितपरिजातकुसुमैर्य स्वामिपादाग्रतो मुक्त' सप्रतनोतु चिन्मयहृदा भद्राणि पुष्पाजलि' ॥ ३ ॥ यह काव्य कहकर तीजी कुसुमाजली छोडे जिसके वाद लूण की पोटली हाथमे ले और यह दो (२) श्लोक कहता दोय वार लूण उतारे ॥ काव्य। लावण्यपुण्याग्रभृतोर्हतोयस्तद्दृष्टिभाव महसेयधत्ते ॥ सविश्वभर्तुर्लवणावतारो गर्भावतार सुधिया विहतु ॥ १ ॥ लावण्यैकनिधेर्विश्वभर्तुस्तद्वृद्धिहेतुकृत् लवणस्तारणः कुर्यात् भवसागरतारण ॥ २ ॥ यह दो काव्य कहकर लूण उतारे उसके वाद लूण मिश्रित पाणि करी यह वृत कहेता मगलीक भूण पाणी उतारे ॥ श्लोक सक्षारता सदासक्ता निहतुमिव सोद्यतः। लवणाब्धिर्लवणाब्धिपार्श्वे सेवत पदौ ॥ १ ॥ यह श्लोक कहकर लूण पाणी उतारे पीछे फकलो पाणी कलस हाथमे लेकर यह काव्य कहे ॥ भुवनजनपवित्रताप्रमोदपणयनजीवनकारण गरीय। जल विकलमस्तु तीर्थनाथक्रमसस्पर्शि सुखावह जनाना ॥ २ ॥ यह काव्य कहकर पाणी उतारे चार दिशीदोलिये जिसके पीछे सात वत्ती दीवेकी आरती उजवाले यह दोय वृत्त कहते हुवे सात वार आरती उतारे। (श्लोक) उवर्भिदिग्विपातादि सस्तयस्तनाशकृत ॥ यत्सम

नरकद्वार ससारिरतुलागत ॥ १ ॥ काव्य । ससागराज्यफलदानकृत् प्रमोद सत्सस तत्वविदनतकृत प्रबोध । तच्छकहस्तधृतसगतसप्तदीपमारात्रिक भवतु सप्तमसद्गुणाय ॥ २ ॥ यह दो काव्य कह कर आरती उतार कर मगल प्रदीप नीचे रखकर चार वृत्ति कहे ॥ श्लोक ॥ विश्वत्रयभवेजीव सदवासुरमानवे' ॥ चिन्मगल श्रीजिनेंद्रास्प्रार्थनीय दिनेदिने ॥१॥काव्य॥ यन्मगल भगवत प्रथमार्हत श्रीसद्योनने. प्रतिबभूव विवाहकाल ॥ सर्वसुरासुर वधूमुखगीयमान सर्वर्षिभिश्च सुमनोभिरुदीर्यमाण ॥ २ ॥ दास्य गतेपु सकलेपु सुरासुरेपु राज्ये ऽर्हत. प्रथमसृष्टिकृतो यदासीत् । समगल मिथुनपाणिगतीर्थनारिपादा भिषेकविधिनात्युपचीयमान ॥ ३ ॥ यद्विश्वाधिपतिः समस्ततनुभृत्ससारनिस्तारणे तीर्थे पुष्टिपुष्टपुपि प्रतिदिन वृद्धिगते मगलम् ॥ तत्सप्रत्युपनीतपूजनविधौ विश्वात्मना महता भया मगलमक्षयच जगति स्वस्त्यस्तु सघायच ॥ ४ ॥ यहचार वृत्ति कहकर आरती से मगल प्रदीप उल्लासकरे । इस जगह अब तीसरी निस्सही कहे फिर चैत्यवदन करे ॥ या हम अगाडी अल्प पाप और बहु निर्जरा पर कह आयेथे सोअब इस जगह उसका निर्णय करते है — कितनेक भोलेजीव बाह्यक्रिया म जो जल पुष्प अग्निका किञ्चित् आरभ देपकर अन्तरग उपयोग शून्य गुरु कुल वासके अभावसे स्याद्वादसेलीके अजान जल पुष्पादिक जीवोंकी हिंसा समझकर अल्प पाप और बहुनिर्जरा कहते है उनके अज्ञानको दूर करनेके वास्त शास्त्रके प्रमाण और युक्तिसे एकान्तिक निर्जरा होती है श्री जिन राजकी द्रव्य पूजनमे पाप शब्द कहने वालाका वचन अयुक्त है इसीवास्ते श्री आवश्यक जी बृहद्वृत्तिके द्वितियखण्ड का पाठ बताते है सो पाठ यह है —जहा नव नगरादि सनिवेसे केथिय भत जल्माभावतोत् तण्हाछ परिगतातदपनोदणकृय रवणतेते सचजइवित एहाइजावाट्टाति मट्टि अक्द्दमाठी हियमई लिङ्घ्जति तहावितदुब्भवेण वेयपाण एणते सितेत एहादि आसो यमलो पुव्वगोय फिट्टति सेसकालच तेतदनेय लोय सहभागिणी भवति एवदथत्थ वेजइतेअसजमो तहाविता ओचतसा परिणामशुद्धीभवइ जात असजमो वज्झिज्जीअ अन्नच निरवसेसत्तेव इति तम्हाशिरया विरणहिएस दथत्थवो कायव्वो सुहाणुबधीय भूततरनिइझराफलोपत्तिका ऊणमिति ॥ जिसतरह नवानगर प्रमुखग्राम म बहुत जलके अभाव से कोईलोग प्यासे मरते थर उस प्यासको दूर करनके वास्ते कूवांखोदे उनलोगो को वहीप्यास प्रमुख कुवाखुदतीसमय रहती है और मट्टी कीचड प्रमुखकरके मलीनहोते ह तथापि उस कुवेके खोदे बाद जो पाणी पेदाहुवा उसकरके उनलोगोकी वो प्यास प्रमुख और वह पिछलामिल मट्टी कीचडसे जो लगाया सो सर्व दूरहोजाता हे तिसपीछे हमेशा के लिय वह खोदनेवाले पुरुष वा और लोगभी उसपानी से सुखभोगते ह इसीतरह द्रव्यपूजा मे यद्यपि जीव विराधना होतीहै तथापि उसी पूजामे ऐसी प्रणाम शुद्धिहोती है कि जिससे वह असजमोत्पन्न वा अन्यभी ताप क्षयहाजाते ह इसवास्ते देशवती श्रावकों को यह द्रव्यपूजा करनी उचित है एसाफल समझकर कि यहपूजा शुभानुबधी अत्यन्त निर्ज्जरा फलको देन हारी है ॥ अब ढाणांगजी सूत्रवृत्तिका जा अल्प पापमे प्रमाणदेते ह सो वो प्रमाण साधुके प्रकरण का है इसवास्ते जिनेश्वरकी पूजाम नहीं लगसक्ता परन्तु तोभी इसपाठका प्रकरण दिखाते ह सो पाठ यह है — 'समणो वासगस्सण भनतहारूव समण वा माहण वा अफासु अणे सणिज्जेण

असनं पाण खाइम साइमेणं पडिलाभ माणस्सकिं कज्जइगो यमावहुत्तरिया मे निज्जराक- ज्जइ अप्पतरे से पावे कम्मे कज्जइ, इति भगवती वचन श्रवणादि वशीयत नैव क्षुल्लक भव ग्रहण रूपा अल्पायुष्कता अग्रेनेदेव पूर्वोक्तम्” ॥ इसका आशय यह है कि अप्रासुक अनेषणीय आहार अयोग अर्थात् अविविगर्भित आहार साधुको देतातुवा श्रावक क्या उपा- र्जन करे ? इस प्रश्नका भगवानने उत्तर दिया कि हे गौतम ! अल्पपाप बहुत निर्जराकरे यह भगवती सूत्र के वचन से स्थानाग वृत्तिकारक अभयदेव सूरिजी जाणते है कि प्रणिनपात करके वा मृषावाद बोलकर अप्रासुक अर्थात् अशुद्ध आहार साधुको वहराय करके जो अल्प आयुष्य जीव करता है, सो क्षुल्लक भव ग्रहणरूप नहीं है इसपर वह पूर्वोक्त रूप वचन हेतु रूपकरके लिखा है अब इसपर विचारकरना चाहिये कि यदि जिनपूजा“पूजनाद्य नुष्ठानस्यापि तथा प्रसंगात्” इसवचन से सामान्य करके सर्व जिनपूजाको जो अल्पपाप बहुत निर्जराकप स्वीकार करे, वा व्यवहार मार्ग में जिन पूजाकाफल पृथ न करे तबतो बहुत सिद्धान्तों मे विरोधहोता है सोही दिखाते है.—कि श्री हरिभद्र सूरिजी कृत श्री आवश्यक वृत्ति म भत्यक्ष पूजाका फल शुभानुबन्धी प्रभूत तर निर्ज्जरा फल टीकाकारने लिखा है उसका अर्थ यह है कि शुभानुबन्धी कहता पुण्यका अनुबन्ध करनेवाली और बहुत निर्ज्जरा फल के देनेवाली है इसी तरह चौदह पूर्वधारी श्री भद्रबाहु स्वामिने प्रणीत आवश्यक निर्युक्ति में लिखा है तथाच तत्पाठ ॥ “अकसिण पवित्त याण विरया विरयाण एसगखलु जुत्तो संसार पयणु करणे दव्वत्थव कूवदिघ तो” ॥ देशवर्ती श्रावकको यह द्रव्यपूजा अवश्य करनी युक्त है यह द्रव्यपूजा कैसी है कि संसार पतन कारण कहता ससार के क्षयकरने वाली है इसीतरह से जो स्थानावृत्तिका प्रमाण दियाहै जिन पूजाद्यानुष्ठान स्यापितथा प्रस- गात् इसवचनके आगे जिनपूजाका फल बताने में श्री अभयदेव सूरिजीने दोगाथा लिखीहै सो गाथा लिखते हैः—भई जिन पूआये काय वहो होइजइविहु कहंचितहु तिहइपरि सु- द्धी गिहीण कया हरण योगा ॥ १ ॥ असयारभयवत्राज चाणहीतस्सनिसविस्रेयात्तनिधिति फलखिय एसा परिभावणीयमीण ॥ २ ॥ अर्थ—यद्यपि जिन पूजामें कोई प्रकारसे कायव- धरूप हिंसा दीखती है, तथापि उस पूजा करनेसे गृहस्थको शुद्धि होती है कूपके दृष्टान्त से सो दृष्टान्त आवश्यककी वृत्तिमें लिख आये है इस तरहसे पूजाके व्यापार करने में काय वध स्वरूप हिंसा कही जाती है तो भी गृहस्थियोंके परिणाम निर्मलताले निर्वृतिफल अर्थात् जिन पूजा मुक्तिकी देनेवाली है इसी तरहसे श्रीरायप्रसेनीजी सूत्र मे भी समगति सूर्याभ देवता पूजाका फल सुन विचार करके पूजाके कार्य में प्रवृत्त हुवा सो यह पाठ तो राय प्रसेनी सूत्रसे जान लेना इस सूत्रमें पूजाका फल हित सुख कल्याणादि यावत् मोक्ष पर्यंत वर्णन किया है और इसी रीतिसे जीवाभिगमजी सूत्रमें विजय देवताके अधिकार मे कहा है और श्री ज्ञाताजी मे दादुर देवताके अधिकार मे कहा है और श्री भगवतीजी मे सौधर्मादि इन्द्रोके अधिकार में तथा और समगत देवताओके अधिकार सर्वत्र सूर्याभ देवताकी तरह पूजाका फल वर्णन किया है ऐसाही समाधी पईन्ना में भी पूजाका फल कहा है ऐसे ही और भी सिद्धान्तो मे कहा है अब जो अप्रासुक अर्थात् अनेषणीय साधुको आहार देनेकी मनाई है अर्थात् अशुद्ध आहार साधुको नहीं देना और

निर्ज्जराही मानना आत्माके कल्याण हेतु है इस वास्ते भव्य जीवोंको जिनराजकी कही हुई स्याद्वादरूपी अमृत रसको शुद्धश्रद्धा सहित पान करना चाहिये जिससे परम पद अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिहोय इस रीतिसे मंदिरकी विधि कही। अब देशव्रती श्रावकके वास्ते सं-क्षेपसे लिखते हैं–कि श्रावक तीन प्रकारके होतेहैं,–१ जघन्य, २ मध्यम, ३ उत्कृष्ट, जघन्य तो उसे कहतेहैं कि जो नोकारसी आदिक पच्चखाण करे, और मध्यम इससे ऊपर जो कि १०, ११ व्रत आदिक उच्चारण करे-और उत्कृष्ट सपूर्ण १२ व्रत धारण करे और शास्त्रमें ११पडिमा भी श्रावककी कही है परन्तु इस कालमें "पडिमा" धारी श्रावकतो नहीं इस वास्ते १२ व्रत धारी श्रावक उत्कृष्ट है सो जो श्रावक सोतेसे उठे उसको ऐसा करना चाहिये कि प्रथम तो ५, व ७ नोकार गुणे और चौबीस तीर्थंकरोंके नामले फिर जो कोई लघुशं-का व दीर्घ शंकाकी हाजत तो उसको मिटाय करके इरियावही आदिक करे फेर कुस्वप्न वा दुस्स्वप्नका काउसग करे और जो सामायक, प्रतिक्रमण आदिक करता हो तो सामायक प्रतिक्रमण करे कदाचित् उसके इस बातका नियम नहीं हो वा करनेकी स्थि-रता नहीं होय तो चौदह नेम अवश्य मेव चितारे और चितार करके उसका पच्चखाण भांगेसे करे क्योंकि देखो जब नेम चितारनेको बैठे तब नेम द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, और भावसे करे। द्रव्य करके तो नेम उसे कहतेहैं कि जो वस्तु रखनेकी आवश्यक है कि जैसे खाना, पीना, वस्त्र आदिक जो वस्तु रखनी हो सो रक्खे उपरान्तका त्यागकरे, क्षेत्रसे नेम उसे कहतेहैं कि भरत क्षेत्र आर्य्य देश अथवा कोई देश वा नगरका नाम अथवा जिस मकानमें चितारे उस मकानमें चितारना सो क्षेत्र कालकरके सम्वत्, महीना, पक्ष, अथवा तिथिवार, प्रात काल सायकाल यह कालसे हुवा, भावकरके करण और जोग जिस करण, जिस जोग, जिस भांगेसे पच्चखाण धारे उसी रीतिसे करे और उसी रीतिसे पाले क्योंकि देखो भगवतीजीके आठवें शतक और पांचवे उद्देशमें श्रावकके ४९ भांग विस्तारसे कहे हैं कि श्री महावीर स्वामी कहते हुए कि हे गौतम "समणो पासक" क० श्रावक जो है सो इस ४९ भांगेमेंसे जिसकी जैसी रुचि होय उसी भांगेसे पच्चखाण करे श्रावक होय सोही करे परन्तु आ जीविका उपासक नहीं करे इस वास्ते भाव करके ४९ भांगे माहिला जैसी जिसकी इच्छा होवे तैसा करे इस जगह भांगोंका स्वरूप लिखते हैं –प्रथम एक करण एक जोग अङ्क ११ का भांगा उठे ९

अं० ११ क० १ जो० १ भां० ९ { करू नहीं मनसा करू नहीं वायसा करू नहीं कायसा / कराऊ नहीं मनसा कराऊ नहीं वायसा कराऊ नहीं कायसा / अनमोदू नहीं मनसा, अनमोदू नहीं वायसा अनमोदू नहीं कायसा } इति १ पुनः ४८

अब यहां कोई शंकाकरे कि ९ भांग क्यो कहे १ करण १ जोग क्यो नहीं रहने दिया क्योंकि पच्चखाणतो १ करण १ जोगसे ही करना है तो फिर ९ भांगे कहने का प्रयोजन क्या था इस शंका का समाधान देते हैं कि– 'वीतराग' सर्वज्ञ देवका जो उपदेश है सो सर्व जीव आश्रय है जो १ करण १ जोग कहके भांग न उठाते तो १ करण १ जोगसे १ के आश्रय हो जाता परन्तु सर्वज्ञ देवने तो सर्व जीवोंके भावसे सर्व जीव आ-श्रय कहे कि इन ९ भांगों मे जैसा जिस भव्य जीवसे बन उसी रीतिसे वो भव्य जीव करे और पाले इन ९ भांगोंमेंसे जिस भांगेसे पच्चखाण करेगा वो तो उसी जीवको १ भांगा

बवम रहेगा बाकी ४८ खुले रहेंगे इसी रीतिसे सर्व भागोमे समझ लेना अथ १ करण २ जोग आंक १२ का भागा उठे ९

आं१२ क० १ जो० २ भां० ९ { करू नहीं मनसा वायसा, करू नहीं मनसा कायसा, करू नहीं वायसा कायसा
कराऊ नहीं मनसा वायसा, कराऊ नहीं मनसा कायसा, कराऊ नहीं वायसा कायसा
अनमोदू नहीं मनसा वायसा, अनमोदू नहीं मनसा कायसा, अनमोदू नहीं वायसा कायसा } वृत्ति ३ खुले ४६

इस १२ बारहके आकमे तीन भागे वृत्तमे रहते हे तिसमे १ भागा तो १२ के आंकका और दो भागे ११ के आकके बाकी ४९ माहिले ४६ अवृत्ति नाम खुले रहे ॥

अं० १३ क० १ जो० ३ भा० ३ { करू नहीं मनसा वायसा कायसा कराऊ नहीं मनसा
वायसा कायसा, अनमोदू नहीं मनसा वायसा कायसा } वृ० ७ खु० ४२

अब इस तेरहके आकमे ४९ माहिले ७ तो वृत्तमें रहे१भागा तो १३ के आंकका और ३ भाग १२ के और ३ ११के आकके सर्व मिल ७ भागे वृत्तमे रहे शेष ४२ खुले रहे ॥

अं० २१ क० २ जो० १ भागा ९ { करू नहीं कराऊ नहीं मनसा, करू नहीं कराऊ
नहीं वायसा, करू नहीं कराऊ नहीं कायसा
करू नहीं अनमोदू नहीं मनसा, करू नहीं अनमोदू
नहीं वायसा, करू नहीं अनमोदू नहीं कायसा
कराऊ नहीं अनमोदू नहीं मनसा, कराऊ नहीं अनमोदू
नहीं वायसा, कराऊ नहीं अनमोदू नहीं कायसा } वृ० ३ अवृ० ४६

इस २१ वें आंकके जो ३ भागे वृत्तमें हैं तिससे १ तो २१ के आंकका वृत्तमे रहा और २ भागे ११ के आकके वृत्तमें रहे शेष ४६ अवृत्त अर्थात् खुले रहे ॥

अं० २२ क० २ जो० २ भागा ९ { करू नहीं कराऊ नहीं मनसा वायसा, करू नहीं कराऊ
नहीं मनसा कायसा, करू नहीं कराऊ नहीं वायसा कायसा
करू नहीं अनमोदू नहीं मनसा वायसा, करू नहीं अनमोदू
नहीं मनसा कायसा, करू नहीं अनमोदू नहीं वायसा कायसा
कराऊ नहीं अनमोदू नहीं मनसा वायसा, कराऊ नहीं अनमोदू
नहीं मनसा कायसा, कराऊ नहीं अनमोदू नहीं वायसा कायसा } वृ० ९ अवृ० ४०

इस २२ के आकसे जो पच्च खाण करे उसमे ९ भाग तो वृत्तमें रहते हैं और ४० खुले रहते है तिस ९ भागमें १ तो २२ आंकका दो २१ के आकके और २ भागे १२ के आकके और चार ११ के आकके य सब मिलकर ९ भाग वृत अर्थात बन्ध रहे शेष ४० खुले अर्थात अवृत्तमे रहे ॥

अं० २३ क० २ जो० ३ भा० ३ { करू नहीं कराऊं नहीं मनसा, वायसा कायसा
करू नहीं अनमोदू नहीं मनसा, वायसा कायसा
करू नहीं कराऊ नहीं मनसा, वायसा कायसा } वृ० २१ अवृ० २८

इस २३ के अंकमें जो पच्च खाण करे तो २१ भाग वृतमे और २८ अवृतमें, तिस २१ भागमें १ तो २३ का तीन २२ के और ३ भाग २१ के आकके और ३ भाग १३ के आकके और छः १२ के आक और छः ११ के आकके यह सब २१ भाग वृत अर्थात् बंध रहे और शेष २८ अवृत अर्थात् खुले रहे ॥

अं० ३१ क० ३ जो० १ भा० ३ { करू नहीं कराऊं नहीं अनमोदू नहीं मनसा
करू नहीं कराऊं नहीं अनमोदू नहीं वायसा
करू नहीं कराऊं नहीं अनमोदू नहीं कायसा } वृ० ७ अवृ० ४२

इस ३१ के आकले जो कोई पञ्च खाण करे तो ७ भाग वृतमें और ४२ अवृतम रहते हैं उन ७ भागोमें १ भागतो प्रथम ३१ के आकका और तीन २१ के और तीन ११ के आकके इस रीतिसे ७ भाग तो वृतमें रहे और शेष खुले रहे ॥

अ० ३२ क० ३ जो० २ भा० ३ { करूनहीं कराऊं नहीं अनमोदूं नहीं मनसा वायसा / करूनहीं कराऊं नहीं अनमोदूं नहीं मनसा कायसा / करूनहीं कराऊं नहीं अनमोदूं नहीं वायसा कायसा } वृ २१ अवृ० २८

इस ३२ के आक से पच्चखाण करने वाले के २१ तो वृत्त मे और २८ भागे अवृत्त में रहते हैं उन २१ भागे म १ तो ३२ के आकका और दो ३१ के, और तीन २२ के और छ २१ के आक के और तीन १२ के और छ ११ के आकके यह सर्व भागे मिलकर २१ भागे तो वृत्तमें और २८ खुले अर्थात् अवृत्त में रहे ॥

अ ३३ क० ३ जो० ३ भा० १ (करूं नहीं कराऊं नहीं, अनमोदूं नहीं मनसा, वायसा कायसा) वृ० ४९

इस ३३ के आकसे पच्चखाण करने वाले के ४९ भागे वृत अर्थात् वृत मे होगये और खुला अर्थात् अवृत्तम कुछ न रहा अब इन ४९ में भी १ तो ३३ का और तीन ३२ के और तीन ३१के और तीनही २३के और नौ २२ के नौ भागे २१के आकके तीनभागे १३ के आक के और ९ भागे १२ के आकके और ९ भागे ११ आकके यह सर्व मिलकर ४९ भागेवृत्त मे है और अवृत्त म कुछ बाकी न रहा ॥

अब इसजगह कई भोले जीव जिन आगम के अजान ऐसा कहते हे (शंका) कि ३ कारण और ३ जोगसे तो साधुका पच्चखाण है श्रावक के ३ कारण और ३ जोगका पच्चखाण नहीं इसका समाधान देते हे (समाधान) हे भोले भाई ! जो ३ करण और ३ जोग से श्रावकका पच्चखाण नहीं होता तो भगवती जीमें श्रावकका नाम लेकर ४९ भागे श्री सर्वज्ञ देवनहीं कहता ४८ भागकाही वर्णन करता अब कोई जिनआगम के तो अजान है परन्तु वे अपने दिलमें ऐसाकहते है हम जिनआगमके जान हे इसलिये वे लोग ऐसा कहते हैं कि ३ करण और ३ जोगसे उत्कृष्टा श्रावक पच्चखाण करे सो उनका भी यह कहना ठीक नहीं क्योंकि देखो कि श्री हरिभद्र सूरिजी महाराज "आवश्यक" सूत्रकी ७२० टीका में लिखते हैं कि " स्वयंभू " रमण समुद्र अर्थात् छेडलासमुद्रके मच्छ का त्याग । ३ करण और ३ जोगसे होता है इसके सिवाय ३ करण ३ जोगसे और कोई पच्चखाण श्रावकके नहीं हो सकता इस वास्ते इस मत्स्यका त्याग तो हरेक कोई श्रावक त्याग कर सकता है इसलिये यह नियम न ठहरा कि उत्कृष्टा श्रावक ही करे इस वास्ते यह पच्चखाण हर एक श्रावक कर सकता है ॥ कोई अजान पुरुष ऐसी भी शंका करते है कि अवारके समय म जो भागेसे पच्चखाण करे तो वह उस मूजिबचल नहीं सकता तो हम कहते हैं कि यह कहना बहुत व समझ और अज्ञान काहे क्या कि जैन मत में और अन्य मत में कोई तरहका भी फरक नहीं मालूम होगा क्योंकि त्याग पच्चखाण व्रत उपवास आदिक अन्यमतवाले भी करते ह परन्तु उन लोगोंसे इतनाही फर्क है कि जैनी लोग जाणकर करते हैं क्योंकि देखो यह वचन भी प्रसिद्ध ह कि समगतकी नौकारसी और मिथ्यात्वीका एक मासका उपवास परन्तु जितना फल नौकारसी का है उतना एक

भावका उपवासका नहीं तो इस कहनेसे यह निश्चय करके प्रतीत होताहै कि जैनी जो होगा सो जानकर करेगा तबही उसको जिनमत प्राप्त होनेका फल मिलेगा अब जो कोई ऐसी शंकाकरे कि प्रवृत्तिमार्गमें क्यों नही कराते है तो हम कहते है कि करानेका हेतु हम तीसरे उत्तरमें कदाग्रहका लिख आये है इस जगह तो एक दृष्टान्तमात्र देते है कि देखो जब दो मनुष्य आपसमें लडते हे उस समयमे वे दोनो मनुष्य अपने २ दिलमें एसा विचारते है कि इसने मेरे थप्पड मारा तो मे इसके घूसा मारू वह देखता है कि इसने मेरे घूसा मारा तो मे इसके लात मारू इस रीतिका विचार उन दोनोंके चित्तमें रहताहै परन्तु कठी मुरकी पाग पगरखी रूमाल आदि कही गिरो और कोई ले जाओ तो उसका रूयाल नही है परन्तु केवल इसने मेरे मारा मे इसके मारू इस बातका खयाल है इस दृष्टान्तसे दार्ष्टांत कहते है कि हुडा सर्पनी काल पंचम आरेमें दुःखगर्भित और मोह गर्भित वैराग्यकी महिमासे प्रत्यक्ष दीखरहा है कि यह उसकी खोटी कह रहा है वो उसकी खोटी कहता है अर्थात् एक दूसरे की न्यूनता दिखाने को नानाप्रकारके प्रपचसे अपनी अधिकता दिखाते हे इस कारणसे न तो वह काम हो जिस में अपनी आत्माका अर्थ हो और न दूसरे गृहस्थियों की आत्माका अर्थ होनेदेते हे खाली प्रपच करके आप लडते है और गृहस्थियोंको लड़ाते है और जिनधर्मकी हीलना कराते है और किंचित् कोई काल मूजिब ज्ञानवैराग्यसे जिनमतको अंगीकार करके जो भेषादिक ले तो क्साही वह मनुष्य बच कर चले तो भी अपने प्रपच मे मिला कर उसका भी सत्यानाश करते है परतु जिसका प्रबल पुण्य शुभ कर्मका उदय होगा वोही इस प्रपंच में न पढ़ कर अपनी आत्माका अर्थ करेगा क्योंकि पूर्व आचार्योंके बचनोंसे मालूम होता है कि जैसे श्री यशविजयजी उपाध्याय कृत साढ़ेतीनसौ गाथाकी स्तुति वा सवासौ गाथाकी स्तुति अथवा और भी बहुत ग्रन्थों में भी जगह २ खुलासा कहते है कि 'वीतराग' का मार्ग यह है ऐसा ही श्री आनन्दघनजी महाराज चौवीसी बहत्तरी आदिक खुलासा वर्णन करते हैं अथवा श्री देवचन्दनजी आगमसारादि ग्रन्थों में व श्री कर्पूरचन्दजी अर्थात् चिदानन्दजी अनेक स्तुतिआदि में कहते है अथवा श्री बूटेरायजी मुहपतीकी चर्चा में खुलासा कहते हे सो हम तीसरे प्रश्नके उत्तरमे लिख आये हे यहां तो उनका नाम मात्र लिखा है और वह ग्रन्थादिक चौपडी सब जगह प्रसिद्ध है उनको बाच कर देखो और अपनी आत्माका अर्थ करो इस वास्ते भी देवानुप्रिया ऊपर लिखे कारणोंसे ग्राहकोंकी न्यूनता मालूम होती है जो बिलकुल इस बातके जाननेवाले न होते तो पच्चखाणके इन गुण पचास भागेके जत्रादि अनेक रीतिसे पूर्व जानीकार आचार्य व साधुवोंने बनाए हे वन होते और उनको सिखाते भी है और जो अच्छे जिनमतके जानीकार है वे ३ करण १ जोगसे बारह व्रतादिक उच्चारण कराते है सो इसकी विधी पच्चखाण भाष्यमे मन समेत लिखी है और इस रीतीसे प्रवचन सारोद्धार आदि ग्रंथो मे विस्तार सहित पच्चखाणकी विधिपूर्वक लिखी है सो जिसकी खुशी होय सो देखे और अपने सन्देह को दूर करो और दूसरे एक श्री कुंवरविजयजी कृत नवतत्व प्रश्नोतरकी पुस्तक जो कि छापे मे छपी है उस पुस्तक मे पच्चखाणके चार भागे लिखे ह सो चार भागे यह है:—

जो मूर्तिप्रतिमा उसको इस लौकिक पुद्गलिक सुखकी इच्छा धारण करके माने कि मेरा कार्य्य होगा तो मे बडी मोटी पूजा धूमधामसे कराऊगा हे प्रभू ! मेरा यह लड्का जो जीवेगा तो यह पाच वर्षका होगा तब उतनी तोल केसर चढाऊगा अथवा मेरा फलाना काम होगा तो मे आपकी यात्रा करके घी खाऊगा और जब तक आपकी यात्रा न करू घी न खाऊ और प्रभू फलाना काम होजायगा तो छत्र चढाऊगा अथवा अखड दीपक एक महीना तक रक्खूगा अथवा जागरण आदि कराऊगा अथवा हे प्रभु ! मेरा यह काम हो जाय तो मे आपका नवीन मन्दिर बनाऊगा इत्यादिक अनेक रीतिसे वीतराग श्री अरिहंत देवकी मानता ऐसा जो करनेवाला पुरुष वो श्री अरिहत देव वीतराग चितामणि रत्न निमित्त कारण मोक्ष दाता उससे जो जीव अज्ञानमें भरा हुवा काचके समान ससाररूप कौडी समान प्रभुके पाससे मागता हुवा ऐसा जो वीतराग प्रभुसे मागना सो लोकोत्तर मिथ्यात्व है क्योकि कर्मोदयकी खबर जिस पुरुषको नही है अर्थात् जिसको प्रतीत नहीं है वह पुरुष वृथा भूला फिरे है क्योकि विना पुन्य उदय कोई वस्तु प्राप्ति होय नही फिर पुद्गलकी इच्छा वा सुखकी वाछा करके श्री वीतराग अरिहत देव निरजन निर्विकारी उनसे जो पुद्गलिक सुखकी इच्छा करनी उसीका नाम लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व जानना । अब पाचमा लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व लिखते है जो साधु भेषधारी निर्गुणी अथवा कुलिगी जो कि जिन शास्त्रोमे वीतरागने जिस लिगकी आज्ञा करी है उस लिगसे विपरीत भेष धारण किया और जिनशासनमें साधु पन्थ अपनेमे सिद्ध करते है अथवा हीनाचारी प्रवचन उथापक मत कल्पना करके देशना पूरुपक सूत्र अर्थ यथावत न कहने वाले जो वचन अपना निकला है उसी वचनको थापते हुवे परभवसे न डरते हुव ऐसे जो लिंगधारी है उनको गुरु बुद्धि जानकर उनका बहुमान करे और उनके सिवाय जो कि शुद्ध साधु सद्गुणी तपस्वी शुद्ध चारी द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षाको देख करके क्रिया करनवाले लोगोंको रजन न कर सके अथवा मंत्र यत्र तंत्रादि न करे न बतावें ऐसे महत् पुरुषोंको हीनाचारियोंके बहकानेसे अगले लिखे हुवे साधुओको न माने अथवा उन मुनिराज महात्मा पुरुषोंको इस लोकके सुखकी चाहना करके उनका बहुमान करे और ऐसा चित्तमें विचारे कि इन सत्वपुरुषोंकी जो हम अत्यंत सेवा करेंगे तो सेवा करनेसे यह प्रसन्न होकर हमारे पर कृपा करेगे तो इनकी कृपा होनेसे हमारे धन सन्तानादि बहुत होंगे ऐसो इंद्रिय सुखकी इच्छा करके जो कि शास्त्रोक्त द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार चलने वाले मुनिराजोको जो कोई इस रीतिसे माने पूजे उसको लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व जानना अब छः लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्व कहते है जो कि कल्याणकादिक पर्व्व दिवसमें सुखादिककी अथवा धनादिककी इच्छा करके जो श्री अरिहत देवको आराधन अर्थात् उनके कल्याणक का गुनन करे वो लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्व जानना ॥ यह सर्व मिथ्यात्व मिलकर २१ भेद हुवे जिसमे पहले १५ मिथ्यात्व तो निश्चयमे है और छः मिथ्यात्व व्यवहारमें है इन सर्वको समर करके कर्म बध हेतु जान करके भव्यजीव छोड़े यही परमेश्वरकी आज्ञा है अब और भी देखो कि जिनमन्दिर बनाना वा स्वामी वत्सल करना यह नाम कर्मके वास्ते जो मनुष्य करेगे उनको तो जिनोक्त वचन मुवाफिक फल

नहीं किंतु चिंतामणि रत्नको कागलाके पीछे फकना है क्योंकि देखो शास्त्रोंमें जिनमंदिर बनानेका फल बारहवा देवलोक कहाहै और शास्त्र उक्त विधिसे अपने नाम कर्मकी इच्छा विना और जो उस जगह जिनमन्दिर है उनकी असातना निवारण करे क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि जो जिनमन्दिर प्राचीनोका जीरण उद्धार करावे उस पुरुषको नवीन मन्दिरसे अठगुना फल होता है और धन आदिकसे वा पुरुषार्थ अथवा कोई तरहका उद्यम करके जिनमन्दिरकी असातना टालना वो श्री संघकी वृद्धिका कारक है इसवास्ते प्राचीन जिनमन्दिरों की असातना को टालकर नवीन जिनमन्दिर बनाना वही भव्यजीवों को श्रेयकारी अर्थात् कल्याणकारी होगा ॥ अब स्वामिवत्सल कहते है—कि स्वामि (वत्सल) क्या वस्तु है ॥ स्वामीवत्सल नाम जोकि साधर्मी अर्थात् जिसकी सरीसी क्रिया वा श्रद्धा मिले उसी का नाम साधर्मी है उसीको जो वत्सलता नाम सहायदेना, किस बात में कि जिसमें उसका सुख करके अर्थात निर्विघ्नपने धर्म ध्यान निभे उसीका नाम स्वामीवत्सल है। अब इस का विशेष अर्थ खोलते है कि जैसे कोई दीनमनुष्य है और अशुभ कर्म के उदय से वह बहुपरिवारी है अर्थात् परिवार उसके बहुत और आजीविका थोडी है उसको अपना साधर्मी जानकर रोजगार अथवा जीविका से लगना अथवा धन आदि से उसे सहायदेना अथवा कोई अशुभ कर्म के उदय से किसी का कर्जा आदिक देना है वा कोई राजा आदिक की विपत्ति में फँसा हुवा है उन कठिनाइयों से उसको छुटाना और सहाय देकर उससे धर्मध्यान कराना उसीका नाम स्वामी वत्सल है केवल अपनी कीर्तिके वास्ते जो भोजन आदिकका खिलाना वा वर्तमानकी विवस्था जो स्वामी वत्सलकी हो रही है उसके मध्ये तो आत्मारामजीने "जैनधर्मविषयक प्रश्नोत्तर" म गया खुरकनी करके लिखा है सो वहासे देख लो, अब जो कि १२ प्रकृतिका क्षय होनेसे साधु मुनिराजकी पदवीका प्राप्त होते है सो उन साधु मुनिराजका वर्णन तो गुरुके स्वरूपमें लिख आय है परन्तु अब जिनकी अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी दूर हुई है ऐसे जो मुनिराज ह उनका दिनभरका कृतशास्त्रके अनुसार किञ्चित् लिखते ह—कि जिस वक्त एक पहर रात रहे उस वक्त में साधु निद्रा दूर करे और २४ तीर्थंकरों का नाम ले ९ तथा ७ नोकारगुणे जो लघु नीत बड नीत की बाधा होवे तो उसको मिटावे और मिटाय कर इरियापथकी पडिकमे और (तस उत्तरी) (अनथ्य उसीसिया) कहइ का उसग्गा करे उसका उसग्गा की रीति गुरु कुलवास विना प्राप्ति होय नही किञ्चित स्वासोस्वाससे शास्त्रमें कहा है परंतु असल रीति तो विना सच्चे गुरुके मिले नही किंतु प्रसिद्ध मे तो चार नोकार वा एक लोगस्सका उसग्गा करना है सोउस जगह करे फिर प्रगट लोगस्सक है फिर कुस्वप्न दुस्वप्न राई प्रायछित विसोदवा निमित्त करे मिका उसग्गा कहवेका उसग्गा करे फिर का उसग्गा पाठ करके प्रगट लोगस्स करे फिर श्री जिनराजका चैत्यवन्दन करे अब इस जगह चैत्यवन्दनके मध्ये कोई आचार्य्य तो कहते है कि कुस्वप्न दुस्वप्नका उसग्गा चैत्यवन्दनके पीछे करे कोई कहते है कि पहले करे फिर चैत्यवन्दन करके पश्चात सिज्झाय करे अर्थात् सूत्रकी सिज्झाय करे सो जबतक प्रतिक्रमण करनेका समय

म होवे तबतक तो सिज्झाय करे फिर जब प्रतिक्रमण करने का समय होवे तब प्रतिक्रमण करे सो प्रतिक्रमणादिककी तो विधि तो अनेक सूत्रोंमें हे अब प्रतिक्रमण करनेके पश्चात् साधु पडिलहणा करे सो पडिलेहणा की विधि तो गुरुके प्रकरणमें कह आये हे अथवा ओर ग्रन्थोंमें पडिलहणाकी विधि हे सो प्रसिद्धहे पडिलेहणा करके वाद थाना आदिक होय तो बाधाका मिटाय जिन मन्दिर जाय और भगवद्दर्शन करे फिर उपासरेमें आयइरिया वही बाद फेर सिज्झाय करे जब तक छः घडी दिन न आजावे, छः घडी दिन चढ़े के बाद उघाड पोरसी मुहपति पडिले हे और पातरोकी पड़िलेहणा करे सो साधुओंमे प्रसिद्ध है फेर वो ध्यान मे बैठे सो एकपहर अर्थात् १२ बजे तक ध्यानकरे उस ध्यान मे याती सिज्झाय अर्थात् सूत्रोका अर्थ विचारे अथवा धर्म ध्यान आदिक, अथवा पदस्थ पिंडस्थ रूपस्थ आदि विचारे इन ध्यानों का वर्णन तो पाचवे प्रश्न के उत्तर मे कियाजायगा फेर गोचरी हाय अथवा जिस क्षेत्र मे जिस वक्त मे गृहस्थियो के घर मे रसोई होवे उस वक्त साधु गोचरी लेआवे सो इसकी विधी और ४२ दूषणो का टालना तो हम गुरुके स्वरूप म लिख आये है परन्तु इतनी वात इस में ओर है कि एकतो पच्चखाण पाडती दफे चैत्यवन्दन करे और एकआहार करके बाद चैत्यवन्दन करे, फेर जो कुछ ठल्ले आदि व बाह्य क्रिया करनी हो सो करे फिर तीसरे पहरकी मुहपत्ती पडिलेह और फिर वस्त्र आदिकों की पडिलेहणा कर और उपासरे का काज्य निकालकर इरिया वही करे और जो नित्य भोजी अर्थात् रोजीना भोजन करनेवाला है कि जिसमे एकान्तरा, वेला, तेला इत्यादि तपस्या नही होती है वह एक दफे आहार करे क्योंकि श्रीकल्पसूत्र आदिकों में नित्य भोजीको दूसरी दफे आहार करना मने है इस वास्ते एक दफेके आहार करनेवाला साधु जबतक प्रतिक्रमणका वक्त न होय तब तक सिज्झाय करे और जिस साधुको तपस्या आदिक वा कोई कारण से आहार की इच्छा होय तो आहार लाके करे, आहार करे के बाद सिज्झाय करे जब प्रतिक्रमणका वक्त होय तब सूत्रके पाठको समाप्त करके प्रतिक्रमण करे प्रतिक्रमण करके बाद फिर सूत्रकी सिज्झाय करे जब छःघडी रातजाय अर्थात् प्रथम पोरसी रात्रि में इरिया पथ्य की करके चैत्यवन्दन आदिक करे और फिर राई संथारा करे सो जब इस कृतको करचुके तब संथारा विछाय कर उसके ऊपर आसन इढकरके ध्यान करे आसनकी विधिभी पाचमे प्रश्न म कहेंगे वो ध्यान एक पहर करे अर्थात् १२ बजे राततक करे फिर ध्यान से उठकर एक पहर भरकी निद्रा काढ़े फिर उसीवक्त निद्राको दूरकर उठजाय यह साधुकी दिनभर की कृत कही जो स्वरूप आग कहआये हे और इस कृत के सहित जो मुनिराज करने वाले हैं उनहीं को भगवतने छठे गुणठाणे में कहा है सो अब हम किञ्चित् गुणठाणे का विस्तार विचार है सो लिखते हे और जो प्रकृतियो का बंध और उदय और क्षयहोना इन बातों को हम नहीं लिखेंगे क्योंकि यह गुणठाणो की प्रकृतियोका विचार तो बहुत जनोंने अपनी इन पुस्तको मे लिखा हे इसवास्ते उनपुस्तकों से जानलेना मैंतो किञ्चित् विशेष बातको लिखता हू शास्त्रो मे १४ गुणठाणे कहे हे प्रथम गुणठाणा क्या चीज है? तो कहते हैं कि गुणों का स्थान नाम जगह उसका नाम गुणस्थान है अब यहा कोईकहे कि पहिले मिथ्यात्व गुण ठाणे को गुणठाणा नहीं बनता क्योंकि मिथ्यात्व कुछ गुण नही इसलिये पहलाही गुण

ठाणे कितने है, और चारित्र गुणठाणे कितने है ? और गुण ठाणा क्रिया करनेसे आता है या गुणठाणे आनेके बाद क्रिया करता है? जो कहोगे कि क्रिया करनेसे आता है तब तो जैन मतके अलावा और लोगभी नानाप्रकारकी क्रिया कर रहे हे तब तो एक मतकाही नियम न रहा कि पाचवा गुणठाणा श्रावकका और छठा गुणठाणा साधुका है जो क्रिया करनेसे आता है तो जो क्रिया करनेवाले है उनको सर्वको कहना चाहिगे और जो कहो कि गुण ठाणा प्राप्ति होनेके बाद क्रिया करते हे तो जिस चीजकी इच्छा थी उसी चीजकी प्राप्ति हो गई तो फिर उसकी क्रिया करनाही वृथा है क्योंकि देखो जिस मनुष्यको भूख लगी है जब तक उसका पेट न भरे तब तक तो वो रोटी आदिकका यत्न करता है पेट भरेके बाद फिर वो यत्न नही करता इस वास्ते गुण ठाणेकी कल्पना निष्प्रयोजन है? (उत्तर) अब हम इस जगह किञ्चित् अपनी बुद्ध्यनुसार द्रव्यानुयोग अर्थात् द्रव्यार्थक और परियार्थिक नयकी विवक्षासे कुछ भावार्थ कहते हे देखो कि ज्ञान नाम जिसका है कि जानना (ज्ञ) अवबोधनेका ज्ञान बनता है और दर्शन नाम सामान्य उपयोगका है अथवा दर्शन नाम देखनेकाभी है क्योंकि दृश प्रेक्षने धातुसे दर्शन बनता है तो प्रेक्षा शब्दका अर्थ शास्त्रोंमे ऐसा कहा है कि सत् असत् विचारशीला इति प्रेक्षा. । इस अर्थके होनेसे इस शब्दको समगत अर्थात् श्रद्धामेभी अंगीकार करते हे इस वास्ते दर्शन नाम मानना अर्थात् विश्वासका है। अब चारित्र यह शब्द चरगति भक्षणयो धातुसे बनता है तो इससे क्या आया कि कर्मोको भक्षण अर्थात् दूर करे उसका नाम चारित्र ह अर्थात् यह तो इन शब्दोंका अर्थ हुवा तो ज्ञान गुण ठाणे तीन है चौथा आठवा और बारवा क्योंकि देखो चौथे गुण ठाणेमे जिस वक्त समगतकी प्राप्ति होती है उस वक्त निभित्त चित्तवृत्ति होकर शांतिरूप आत्मस्वरूपको जानता है इसी वास्ते समगतिको आत्मा प्रत्यक्ष है समगतिको आत्मा प्रत्यक्षमें कितने शख्स जिनधर्मके रहस्यके अजान समगतिको आत्मा प्रत्यक्ष नही मानते है तो अब हम कहते है कि जब समगतिको आत्माका प्रत्यक्ष नही तो समगत और मिथ्यात्वमें फरक क्या हुवा इस वास्ते इस विषयमे प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणको दिखाते है कि देखो बुद्धि पूर्वक अपने परिणाममें शुभ अशुभ कर्मरूप राग द्वेष धरता हुवा अर्थात् परिणाम जीव द्रव्यसे उठे है इस वास्ते जीव परिणामी द्रव्य है इस लिये बुद्धिपूर्वक अपने परिणामको देखे है इस अनुमानसे आत्माका देखना सिद्ध हुवा क्योंकि देखो जैसे बद्दल मेघकी घटाकरके घनघोर हे परतु अन्धकारमे कुछ मालूम नही होता किन्तु जब सूर्य उदय होता है उस समय वह मेघकी घटा काली बहुत छारही है तो भी प्रकाश हो जाता है तो देखो सूर्य प्रत्यक्ष न हुवा परतु अनुमानसे मालूम होता है कि सूर्य्य उदय होगया इसी रीतिसे जब समगतकी प्राप्ति जिस जीवको हुई उस समय उस जीवके ५ भूषण प्रगट होते है १ सम २ समवेग, ३ निर्वेद, ४ अनुकपा और ५ आस्ता। इन पाचों भूषणोंसे तो अन्यको प्रतीति होती है और उस समगतवाले जीवको नेगमनय अपेक्षा लेकर अशरूप अनुभव प्रत्यक्ष हो रहा है इस वास्ते जिन वचनपर प्रतीत रखकर स्याद्वादशैलीरूप समगतको आत्मा प्रत्यक्षही मानी ठीक क्योंकि देखो श्रीआनन्दघन जी महाराज १५ श्री धर्मनाथजीके स्तवनमे तीसरी गाथा कहते है कि "प्रवचन अंजन जो

सद्गुरु करे, देखे परमनिधान, और श्री यशविजयजी सवासौ गाथाके स्तवनकी चौसवीं गाथामें कह गये हैं, तो किञ्चित् चौथे समगत दृष्टी गुण ठाणेमें आत्मस्वरूप धर्मका बोध हुवा इस लिये ज्ञानगुणठाणा है बाकी पाचवा सो श्रद्धा लिये हुवे किञ्चित् दर्शन सयुक्त चारित्र गुण ठाणा है और छठा और सातवाभी चारित्र गुणठाणा है क्योंकि इसमें कर्मोंकी निर्जरा है और परवस्तु जानकर भव्य जीव त्याग करता है। अब (८) आठवें गुण ठाणेमें जो शुक्ल ध्यानका प्रथम पाया निरालंब आत्मरूपको जो विचारना और आत्म धर्म को मुख्य जानकर आत्मज्ञानमें आत्माकी प्रतीतिका जो ज्ञान इसी वास्ते इसको ज्ञानगुण ठाणा कहते हैं क्योंकि इसमे द्रव्य पर्यायरूप जो संक्रमण सविकल्परूप इस अपेक्षासे इसको ज्ञान गुणठाणा कहा (९) नवा (१०) दशवाभी चारित्र गुण ठाणा है क्योंकि इसमें प्रकृतिका क्षय हुवा चला जाता है अब (११) ग्यारवा गुणठाणा पडवाई भाव होनेसे इसको किसीमें न गिना क्योंकि ग्यारवें गुणठाणेवाला नियम करके पडे और ऊपरको न चढे इस लिये इसको किसीमें न गिना अब (१२) बारवें गुण ठाणेमें शुक्ल ध्यानका दूसरा पाया निर्विकल्प विचारता हुवा केवल ज्ञानके वल दर्शन सम्पूर्ण व्यक्तिभाव प्रगट होनेसे इसको ज्ञान गुण ठाणेमें अंगीकार किया फिर (१३) तेरवें गुण ठाणेमें शुद्धज्ञान प्राप्ती होनेका कारण बाकी न रहा क्योंकि केवल ज्ञान १२ के अंतमें सम्पूर्ण व्यक्ति भाव हो गया इस लिये यह तीन ज्ञान गुण ठाण कहे और बाकी शेष रहे जो दर्शन और चारित्र गुण ठाणेमें जान लेना अब इस तेरवें गुणठाणे वाला वीतराग सर्वज्ञ श्री अरिहन्त देव होतेहैं इनके चार कर्म शेष बाकी रहते हैं अब यहा कोई ऐसी शका करे कि वे चार कर्म क्यों बाकी रहते है और वे कर्म कैसे बाकी रहते है समाधान तो हम कहते है कि चार कर्म बाकी रहनेसे साम्भिरूढ नयवाला सिद्ध मानता है और जो तुमने कहा कि वे कैसे कर्म बाकी रहते हैं तो हम कहते है कि शास्त्रा मे दो रीतिसे कहे है श्री हरिभद्रसूरिजी आवश्यककी ७२ हजारी टीकामें चार कर्मजली जवडीके समान कहते हैं और श्री शीलाग आचार्य्य महाराज सुगडागजी की टीका मे जीरण वस्त्रोंके समान कहते है यह दो रीतिसे चार कर्मोंकी स्थिति सिद्धान्तो मे कही है (शका) जली जेवडी और जीर्ण वस्त्र इस मे तो बडा भारी फरक हो गया तो किसका वचन प्रमाण माने और जली जेवडीसे दिगम्बर आमना भी पुष्ट होती है क्योंकि वे भी जली जेवडीके समान मानते हैं तो इस में तो सुननवालेको बडे भारी सन्देह उत्पन्न हो गये और सन्देह दूर होना मुशकिल हो गया और सन्देह रहनेसे कषाय मोहिनी कर्म बधता है (समाधान) मेरी बुद्धिके अनुसार इन दोनों ग्रन्थकाराका आपस मे जो विरोध उसके दूर करनेके वास्ते अथवा जिज्ञासुका सन्देह निवृत्ति होनेके वास्ते मे किञ्चित् अनुभव कहता हूँ कि देखो श्री हरिभद्र सूरिजी महाराजका जो जली जेवडीके समान कहना है सो जो कि केवली समुद्घात न करे उसकी अपेक्षा तथा अंतगडकेवलीकी अपेक्षासे है परन्तु मुख्यता मे तो जो केवली समुद्घात नहीं करनेवाला है उसीकी अपेक्षा है इस स्याद्वाद वीतराग मतके आचारिओंकी शैलीसे अज्ञान हुवा पुरुष एकात पक्षको खैच कर अपने वचनको सिद्ध करते हैं सो जिन आगमके अजान है अब श्री शीलागजी अचार्य्य महाराजका अभिप्राय कहते है

कि जो जिन आगमके रहस्यके अजान एक जली जेवड़ीको ही अंगीकार कर बैठे हे उनकी शिक्षाके वास्ते कहते है कि ४ कर्म जीर्ण वस्त्र तुल्य रहते है क्योकि देखो जब जली जेवडी होती तो केवली समुद्घात न करता इस लिये जब केवलीके आयु कर्म थोडा रहता है और तीन कर्म विशेष रहते हे जब उन तीनो कर्मोको आयुकी बराबर करनेके वास्ते केवली समुद्घात करता है जो एकान्त जली जेवडी समान कर्म रह जाते तो समुद्घात करनेका कुछ काम नही था इस वास्ते सुगडागजी सूत्रकी टीकाकारका अभिप्राय जीर्ण वस्त्रवत् कर्मोको कहना सो केवली समुद्घात की अपेक्षा करके है और जो तुमने कहा कि दिगम्बरका मत पुष्ट हुवा तो हम तीसरे प्रश्नके उत्तर मे खण्डन आदि कर चुके है परन्तु किंचित् यहा भी कहते हे कि जब दिगम्बर जली जेवडी समान कर्म मानेगा तो जो उनके आचार्योंके बनाये हुवे शास्त्रो मे लिखा है कि केवली समुद्घात करे तो देखो कि जब वे एकान्त जली जेवडी माने तो उनके शास्त्रो मे जो केवली को समुद्घात करना कहा है सो उनके शास्त्रोंके वचन मिथ्या हो जायेंगे क्योकि जेवड़ी जली हुई पडी है उस में बल अर्थात् ऐंठा मात्रही दीखता है परन्तु हाथ लगानेसे भी कुछ उठने लायक नही होती इस वास्ते उनको भी जीर्ण वस्त्रवत् मानना चाहिये इस रीतिसे अपनी बुद्धयनुसार इन दोनों आचार्य महाराजोका का अभिप्राय कहा इन दोनों आचार्य महाराजके अभिप्राय में न्यून अधिक हुवा तो मै मिथ्या दुक्कडत देता हूँ और जो बहुश्रुत गीतार्थ कहे सो मुझे प्रमाण हे अब जो गुण ठाणोंकी प्राप्तिके मध्ये शका की थी उसका समाधान देते हे कि जैसे चक्रवर्ती राजा के पहले चक्र पैदा होता है पीछे उस चक्रसे देशादिक साधता है पहले देश आदिक साधे तो कदापि सिद्ध न हो इस रीति से गुण ठाणेको समझ लेना अथवा लक्ष मुद्रा किसीको पैदा करना है तो जो लाख रुपये पैदा करने के पीछे जो नौकर चाकर वैभव फैलाना सो उस लाख रुपये की रखवाली उसकी रक्षा करनेके वास्ते है कदाचित् जिस मनुष्यके पास लाख रुपये न हों और वह लखपतीका सा नौकर चाकर वैभव फैलावे उस वैभव को देख कर लोग हँसी करते और कहते है कि इसने किसीके द्रव्य छीनने के वास्ते ऐसा जाल फैला रक्खा है इसी रीतिसे अब गुण ठाणेको उतार कर दिखाते हे गुणठाणा नाम गुण-का स्थानक सो तो हम पेस्तर लिख आये है परतु गुण समूह होना सो तो परिणामकी धारा से है सो गुण ठाणा तो परिणामकी धारासे हुवा उस क्रियाका जो करना सो उस गुणकी रक्षाके वास्ते क्रियाका करना है जैसे वो लक्ष रुपयेकी रक्षाके वास्ते नोकर चाकर वैभव करता है तैसेही गुणकी रक्षाके वास्ते क्रियाका करना हे औ जिनको गुण ठाणेकी अर्थात् गुण स्थानकी प्राप्ति तो हुई नहीं और जो क्रियाकलापकारते हे सोही उनका जाल है क्यो-कि विना गुणके आये विदून उस गुणके मुवाफिक क्रिया यथावत् कदापि नही होती इसी लिये उनके परदे खुल जाते हे क्योंकि विना रुचिके यथावत् क्रिया नहीं होती इसी लिये श्री आनन्दघनजी महाराज श्री सभव जिनके स्तवनमें कहते हे 'अभय, अद्वेष, अखेद" तो ये बातें कब होंगी कि जब गुण ठाणेकी प्राप्ति होगी जब ही उस गुण ठाणेकी क्रिया निर्भय और निर्दोष होकर खेद रहित क्रियामे प्रवृत्ति होगी जैसे वह लखपती लाख रुपया-

के जोरसे उस लाख रुपयेके काम लायक किसीसे भय नहीं करता है और जिसके पासमें लाख रुपया नहीं है खाली आडंबर करता है उसको अपने दिलमें भय बना रहे कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी कलई खुल जाय इसी रीतिसे जिनको गुण ठाणा नहीं वो सिर्फ क्रिया करनेमे भय रखते है और द्वेष भी रखते है आर क्रिया करनेमें खेदभी मालूम पडता है अब तेरवें गुण ठाणेका वर्णन कर चुके अब चतुर दशवा गुण ठाणेसे रहता हुवा अरहत देव शुक्ल ध्यानके दो पाये ध्याते हुवे सेलेसी करण करके मोक्षम प्राप्त होते है इस करके किञ्चित् गुण ठाणेका स्वरूप कहा अब भो देवानुप्रिय ! और जो तुमने चौथे प्रश्नमें श्री वीतराग की स्याद्वादवाणी रूप मार्ग मोक्ष साधन समगतकी प्राप्तिका पूछा सो मेरी बुद्धि अनुसार किञ्चित् मैने कहा इस स्याद्वादमार्गको इन्द्रादि असख्य देवताभी मिलकर कहें तो भी इस स्याद्वाद मतको पूरा वर्णन न कर सकें सो इस वास्ते तुम लोगोंको अवारके काल मूजिब किञ्चित् श्री वीतरागके धर्मकी जो प्राप्ति हुई है इससेही और भी अपनी बुद्धि अनुसार स्याद्वाद वीतरागक मार्गकी खबर करते हुये अर्थात् चाहना रखते हुये अपनी आत्माका कल्याण करो ॥

इति श्रीमज्जैनधर्माचार्यमुनिचिदानदस्वामि विरचिते स्याद्वादानुभव रत्नाकरे चतुर्थप्रश्नोत्तर समाप्तम् ॥ ४ ॥

पञ्चमप्रकरण–हठयोगवर्णन ॥

अब तुम्हारे पांचवें प्रश्नका उत्तर लिखते है –कि तुमने पूछा कि हठयोग क्या है तो अब इस योगशब्दका अर्थ करते है–योग नाम मन, वचन, काय यह तीनों योग है अथवा अष्ट योग है उनका वर्णन हम आगे करेंगे अथवा ज्ञान दर्शनादि यहभी योग है अथवा करना कराना अनुमोदना यहभी योग है अथवा जिस २ वस्तुका मिलाना उसको भी योग कहते है १ अथवा इच्छायोग, २ शास्त्रयोग, ३ सामर्थ्य प्रतिज्ञा योग, इत्यादि अनेक नानाप्रकारके योग है परन्तु इस जगह तो हठ शब्द योग के संग मिलने से हठयोगका वर्णन किया जाता है इसवास्ते हठनाम जोरावरी अर्थात् जिदसे करना उसका नाम "हठ" है उसम जो योगोंको मिलाना उसका नाम हठयोग है सो इस हठयोग में भी नानाप्रकार हठनाम जिद करके जो तप अथवा अवग्रह आदिलेना उसका नाम भी हठयोग है परन्तु इस जगह तो हठयोग अर्थात् आसन प्राणायाम आदिकों का करना उसीका वर्णन करते है सो इस जगह प्रथम आसनों का वर्णन करते है कि आसन किसको कहते है और क्या चीज है और आसन के करने से क्या फल होता है सो प्रथम आसन लिखते हैं सो आसन तो चौरासी लक्ष हैं जिनमें से भी चौरासी आसन मुख्य कहते हैं सो इस जगह हम आसनोंका वर्णन करते है क्योंकि जो विशेष करके शरीर आदिकों के रोग दूरकरे और चित्तकी सुस्ती दूरकरे और जो ध्यानादिक में सहायता देनवाले

है इन्हीका वर्णन करते है पेश्तर (१) स्वस्तिक आसन कहते है क्योंकि यह सब में सुगम है जघो के मध्य में दोनों पगोंके तलुवों को करके सरलदेह करके बैठ जाना उसका नाम स्वस्तिकासन है अब दूसरा (२) गोमुखासन कहते हे बाईओर अर्थात् डाईं ओर कटी के नीचे दक्षिण पगकी गुल्फ अर्थात् एडी धरके और जीवणी कटीकी तरफ बाईं अर्थात् डावे पगकी एडी को धरके बैठजाय अर्थात् दोनों घोटू तराऊपर होजायँ जैसे गऊका मुख अर्थात् गऊके माफक जैसे गऊके दोनों होठतरा ऊपर होवें तैसे करबैठ जाय अब वीर आसन कहते है:–वीरता नाम जैसे युद्धमें मनुष्य बाणको खेंचते है उस आसनका नाम वीर आसन है सो कई तरहसे होता है इस लिये नाममात्र लिखा है क्योंकि आस- नोंकी प्रक्रिया तो गुरुके पास अपनी दृष्टिसे देखे और गुरु करके बतावे जबही यथावत् मालूम होती है ॥ अब कुरुड आसन कहते है:–दोनों पगोंकी एडी गुदाको रोक करके सावधान स्थित होय उसका नाम कुरुड आसन है । अब कुक्कुट आसन कहते है:–कि डावे पगके तलवेको जावणी जगाके ऊपर रक्खे और जीमणे पगके तलवेको डावी जघाके ऊपर रक्खे अर्थात् पद्म आसन लगायकर फेर दोनों हाथोंको ऊरू अर्थात् जघाके बीचमें हाथ घुसेडकर जमीन पर टेके, फेर हाथोंपर बल देकर और आसन लगा हुवा ऊपरको उठे और जमीनसे अधर हाथोंके ऊपर खडा रहे उसका नाम कुक्कुट आसन है।अब धनुष आसन कहते है:–दोनो पगके अगूठाको दोनो हाथोंसे ग्रहण करके एकको कान पर्यन्त लावे धनुष कैसी तरह आकर्षण करे अथवा ऐसाभी कहते है कि एक पगको फैलाय करके एकसे अगूठाको ग्रहण करे और एक हाथ कान पर्यन्त करे इसकाभी नाम धनुष आसन है । अब पश्चमतान आसन कहते है'–दोनो हस्त पृथ्वीमें दडकी तरह लम्बे करे और दोनो पावभी लम्बे करे और दोनो हाथोसे दोनों पेरके अगूठोंको जोरसे खेंचे और फिर जघोंके ऊपर माथा लगाकर स्थिर हो जाय अथवा दोनो पगोंको मिलाकर दोनो हाथोंको मिलाकर पकडे रहे और फिर मस्तकको जघोंपर स्थित रक्खे अब इस आसनका फल कहते है:–यह आसन पहले कहे हुए आसनोंमे मुख्य है सो सुसम्णा मार्ग करके चल रहा जो प्राण तिसको अति सूक्ष्म करे पेटकी अग्निको तीव्र करे है और पेटके मध्य देशमें कृस्ता करे है और रोग आदिकको दूर करे है और कब्जी आदिकको दूर करे है अर्थात् दस्तको खुलासा करता है और कई तरहके रोगादिकका अच्छा करता है । अब मयूर आसन कहते है:– दोनों हाथ जमीनपर रक्ख- कर दोनों कोहनी मिलायकर नाभी और कलेजाके बीचमे रक्खकर उनकोन्हियाके ऊपर सर्व शरीरका जोर देकर ऊंचेको होय और दोनों पगोको सीधे खडेकरे जमीनसे अधर रहे अथवा जैसे मयूर नाचता है ऐसे जो पग ऊचे करे उसकोभी मयूर आसन कहते हैं, अब इसके करनेसे क्या गुण प्राप्त होते है सो कहते है कि इस आसनके करनेसे पेटका जलधर रोग जाता रहता है और पेटकी ताप तिल्लीभी जाती रहती है और वात, पित्त, कफ इन तीनोंकोभी हरता है और कुत्सित अन्न आदिक जो भक्षण करे उसकोभी भस्म कर देता है अर्थात् पेटका कोईभी रोग नही रहता है । अब शिवा- सन कहते है:–कि जमीनसे पीठ लगायकर शयन करे और हाथ पग सीधेकर दे अर्थात्

जैसे मुर्दा होता है उसकी तरह सरल हो करके सोय जाय, इस आसनसे शरीरका परिश्रम दूर होता है इस लिये परिश्रम दूर करनेके वास्ते यह आसन श्रेय है। अब सिद्ध आसन कहते हैं–कि डावे पगकी एडीको योनिके मध्य में लगावे (योनि नाम लिंग और गुदाके बीच मे है उस जगह का नाम योनि है) और जीमने पगको उठाय कर लिङ्गकी जडमे एडी को लगावे इस रीति से बैठ कर ठोडी जो है सो हृदयसे चार अंगुल फरकसे रक्खे और नेत्रोंकी अचल रूप दृष्टिसे भ्रुकुटि के मध्य में देखे इसका नाम सिद्ध आसन इसका फल बहुत शास्त्रों में लिखा है। अब पद्म आसन कहते है – बाई जांघ तिसके ऊपर जीमणा पग स्थापन करके बाये पैरको जीमणी जांघ पर स्थापन करके जीमणे हाथ को पीठ पीछे फेरके बाई जाघपर स्थित पगके अंगुठेको पकडे और ऐसे ही बाये हायको पीठ पीछे लेना करके जीमणी जाघपर स्थित जो बाया पैर उसके अंगुठेको ग्रहण करे और हृदयके समीप ठोडीधरके नासिकाकी डडीको देखे अथवा वो हाथ पीछे की ओर न ले जाय किंतु हाथोंको दोना एडियोंके बीच में ऊपरतली रक्खे अर्थात् डावानीचे और जीमणा ऊपर रक्खे अर्थात् जैसे वीतरागकी प्रतिमा मंदिर में स्थापितकी हुई होती है उस तरह जान लेना यह दोनो रीति पद्मासनकी कही इत्यादिक आसनों की विधि श्री हेमाचार्य कृत योगशास्त्रमे लिखी है सो उस योग शास्त्रमे जिस की इच्छा हो सो जान लेना । अब इन चीजोंका साधनेवाला कैसा हो कि अव्वल तो ब्रह्मचारी हो दूसरा उसमें क्षुद्रपना नही हो अर्थात् गभीर आशय वाला हो परीषाको जीतने वाला हो आलसी न हो क्रोधी न हो कपटाई न करे निरहकारी हो लोभी न हो जितेंद्रिय हो अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें करनेवाला हो गुरुका आज्ञाकारी हो आत्मार्थी हो मोक्ष अभिलाषी हो परिश्रममें थकने वाला न हो इत्यादि जिसमे गुण होंगे वोही इस हठ योगके लायक होगा अब जो हठ योगका करने वाला है उसके वास्ते आहारकी विधि लिखते है प्रथम तो जितनी उसकी क्षुधाहो उस क्षुधाके चार भाग करे उसमसे दो भाग तो अन्नसे उदरमे भरे और एक भाग जलसे भरे उदरका एक भाग खाली रक्खे क्योंकि एक भाग खाली रखनेसे श्वास उश्वास, वायुके आने जानेका प्रचार ठीक २ होगा क्योंकि जो वो अन्न और जलसे सपूर्ण पेट भर लेगा तो उस वायुका आना जाना ठीक नही होगा अब कहते है कि आहारका करने वाला किस आहारको अगीकार न करे सो आहार कहते है प्रथम कटुक कहता कडुया नीमके पत्ता, अमल, चिरायता, वगैर अगीकार न करे दूसरे अमल कहता खटाई सो इमली कैरी, जामन, जमेरी नीबू आदिक जो नाना प्रकारकी खटाई है उनको न अगीकर करे और तीसरा लाउ, मरचभी बहुत न अगीकार करे लवणभी बहुत न खाय ४ अति उष्ण आहार न करे गुड तेलादिभी नहीखाय और हरित पत्र साग न खाय और तिल सरसो (शहत) मधु और मदिरा और मास ये सब इस कामके करनेवाले के हक मे बुरहै दही छाछ कुलथा बेर तिल पापडी लहसन, प्याज, गाजर, मूली, बासीअन्न रधाहुवा (फिर सेंकके) अतिरूखा आहारनाम घृत करके रहित काजी इत्यादि इस कामके करने वाले को आहार न करना, क्योंकि इस आहार के करने वालेको कदापि हठयोगकी प्राप्ति न होगी फिर इस कामका करनेवाला बहुत ऊंचा नीचा गमन करना भागना अग्निका सेवन करना स्नान करना

इत्यादिक घातभी न करे और तपस्या आदिकभी बहुत न करे बहुत जनो से परिचय न रखे बहुत बोले नही बहुत भार आदिक न उठावे और एकान्त स्थानहो उसमे रहै और जिस जगह स्त्री आदिक का अथवा बहुत जनोंका आवागमन न हो अब जो इसके खाने का योग्य आहार है सो कहते हैः—गेहूँ, चावल, जव, बाजरी, साठी के चावल, मूँगकी दाल, तूरकी दाल, उड़दकीदाल, दूध, घृतआदि भी प्रमाण से खाय सोंठ, पीपल, काली मिर्च, जावित्री आदिक को कामपड़े तो अंगीकार करे अर्थात् ऐसा आहार करे जो जल्दी पचजाय और गृद्ध न करे ऐसा जो करने वाला हो वह इस हठयोगका अधिकारी है रसना इन्द्री को त्यागेगा सोही करेगा नतु इन्द्रियों का रसीया ॥ अब जो कोई हठ योगको सिद्ध करना चाहे सो प्रथम सरोधा अर्थात् स्वरका अभ्यास करे जब तक पूरा २ उसको स्वर में तत्वाका ज्ञान नहीहोगा तब तक योगकी सिद्धि कदापि न मिलेगी क्योंकि स्वरके ज्ञान विदून जोकोई प्राणायाम मुद्रा मे परिश्रम करे है उनका परिश्रम व्यर्थ होता है इसवास्ते जो इस हठ योगकी इच्छा करनेवाले जिज्ञासु है उनको मुनासिब है कि सद्गुरुके पास से विनय आदिक सुश्रूषा करके इसकी कूची सीखे और सरोधा तो बहुत जनोका कियाहुवा है पुस्तकों में वर्त्तमान काल मे प्रसिद्ध है सो इसवास्ते उस बमूजिब तो लिखते हे नहीं किन्तु जो स्वर और तत्वहै उनके नाम आकार आदि और साधन के भेद किञ्चित् लिखतेहै— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, औ आकाश यह पच तत्व जो है सो चन्द्र और सूर्य दोनों नाड़ियो में चलते है सो स्वर प्रथम कहासे उठता है वही से वर्णन करते है भ्रुकुटी का जो चक्र है वहा से स्वर जो कहिये स्वास सो उठता है सो वहा से उठकर अगमचक्र के पास होताहुवा बकनालके पास २ चलता हुवा नाभी मे आयकरके निवास करता है उसके आने की परीक्षा ये कहते है कि जैसे घड़ी मे चक्र के चलने से खट खट होती है तैसे उसका खटका प्रतीत देता है उसी रीति से नाभी मे भी वार वार होता है सो जबतक गुरुकृपा न हो तब तक उस खटकाके देखनेकी रीति मिलना मुश्किल है जो गुरु उस खटके को देखन की रीति बतावे तो खटकाभी दीखे और भी अनेक तरहके लाभहों कदाचित् कोई बुद्धिमान् एकाग्रचित्त करके उस खटकाकी प्रतीति करे तो करसके परन्तु उसका जो रहस्य है सो गुरुके विदून नहीं मिले क्योंकि श्री पच परमेष्ठी मत्र का स्तोत्र बनाया हुवा श्री मानतुग आचार्य जीकृत जो है उसम ऐसा लिखा है "गुरुकृपा विना किं पुस्तक भारेणः" इस वास्तेही गुरुकी मुख्यता है फिर उस नाभी से खटका के लगने से हृदयचक्र और कण्ठचक्र में होकर गलेमें जो छिद्र है उनमे सो वायु निकलकर नासिकामे होकर चलती है और उन छिद्रोंमे भी इतना भेद है कि जो डावे छिद्रमे घुसती है सो तो जीमणे नकुवाकी नाड़मे होकर निकलती है और जो जीमणे छिद्रमें होकर घुसती है सो डावे नकुवाकी नाड़मे होकर जाती है फिर पीछेभी लौटकर इसी रीतिसे आती है अब इन स्वासों का ऊपर लिखे ५ जो तत्व उनका किञ्चित् वरण आधार है सो लिखते है.—प्रथम पृथ्वी पीठी १२ चलती है सन्मुख अर्थात् सीधी मीठा स्वाद और सम चतुस्र आकार अर्थात् चौकोर पल चलती है अथवा २० मिनिट, जघामे स्थान है, (जहतत्र) सफेद रग ।

नीचेकी तरफ कषायला स्वाद वर्तुल आकार ४० पल अर्थात् १६ मिनिट पगतलीमें स्थान (अग्नि तत्त्व) लाल रंग ४ अंगुल ऊंची तीखा अर्थात् मिरचकासा स्वाद त्रिकोण आकार ३० पल अर्थात् १२ मिनिट स्थान कंधा (वायु रंग) हरा वा काला रंग तिर्छा ८ अंगुल खट्टा स्वाद ध्वजारूप आकार नाभी २० पल वा ८ मिनिट० (आकाश तत्त्व) काला अथवा नाना प्रकारका रंग भीतरही चलता है सुन्न आकार कडुवा स्वाद१०पल अथवा ४ मिनिट, मस्तक स्थान अथवा सर्वव्यापी ॥ इन तत्त्वोंके वर्ण आकार आदिक कहे । अब इनके देखने की रीति कहते हैं–कि प्रथम तो जो हम लिख आये हैं सो उन पाचरंगोंकी पांच गोलिया और १ गोली विचित्र रंगकी, इन छवों गोलियोंको पासम रक्खे और जब तत्त्व बुद्धिमें विचारे उसी वक्त उन छवों गोलियोंमेंसे १ गोली आंख मीचकर निकाले जो वह बुद्धिमें विचारा हुवा और गोलीका रंग एक मिल जाय तब तो जाने कि यह तत्त्व मिलने लगा अथवा दूसरे पुरुषसे कहे कि तुम रंग चिंतो जब वो पुरुष अपने मनमें रंग चिन्तले उस वक्त अपने नाकके स्वरम तत्त्वको देखे और अपने तत्त्वको विचार कर उस पुरुषके रंगको कहे कि तुमने फलाना रंग चिन्ताया जो उस पुरुषका रंग मिल जाय तो जाने कि मेरा तत्त्व मिलने लगा अथवा काच अर्थात् दर्पण अपने मुख अर्थात् होठोंके पासमें लगाकर नाकका श्वास उसके ऊपर छोडे उस काचमे जैसे आकारका चिह्न होय उस आकारको ऊपर लिखे आकारमें मिलावे जिस आकारसे मिल जाय वही तत्त्व जान लेना अथवा अंगूठेसे दोनों कानोंको बन्द करे और दोनों तर्जनियोंसे दोनों आंखोंको बन्द करे और दोनों मध्यमा अँगुलियोंसे नासिकाके दोनों छिद्र बन्द करे और अनामिका, और कनिष्ठिका इन चारों अँगुलियोंसे होठोंको ऊपर नीचे दाबे इस रीतिसे करके एकाग्र चित्तसे गुरुकी बताई हुई रीतिसे मनको भृकुटीमें लेजाय उस जगह जैसा तिलुला अर्थात् बिन्द जिस रंगका होय वोही तत्त्व जान लेना इन रीतियोंसे तत्त्वोंका साधन करे जिस पुरुषको तत्त्वोंकी खबर पडन लगेगी वह पुरुष कार्य अकार्य शुभ, अशुभ, गमना, गमन, लोक और परलोकके होने वाले वा न होने वाले तत्त्वोंके आश्रयसे कार्यको विचार लेता है और जो उन तत्त्वोंसे सवार टूत होते है सो तो स्वरोदयोंकी पुस्तकोंमें लिखे है सो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं इस वास्ते हमको कहनेकी कुछ जरूरत नहीं। हमको तो इस जगह हठयोगका वर्णन करनेके वास्ते प्रथम हठ योगकी भूमिका लिखनेके अर्थ किंचित् स्वरका भेद लिखा है क्योंकि जब तक स्वरकी सिद्धी न होगी तबतक हठयोग सिद्ध न होगा इसलिये जो कोई हठयोगकी इच्छा करे वह पुरुष पेस्तर इसको सिद्धकरले ॥ अब जो तत्त्व ऊपर कहआये है वो तत्त्व दोनों स्वर में चलते है उनदोनों स्वरों में तीन नाडी बहती है सो नाडी तो शरीर मे ७२ है उन म २४ नाडी प्रधान है, और उन २४ म भी १० प्रधान है, उन १० में भी ३ नाडी मुख्य है १ तो इंगला, २ पिंगला, ३ सुखम्णा, इनही तीनो को गंगा, यमुना, और सरस्वती कहते है और कोई इंगला, पिंगलाको सूर्य, चन्द्रमा, कहते है और दोनों के मिलापको सुखम्णा कहते है और कोई इनको दिन और रातभी कहते है इन दोनों के मिलाप को सायकाल कहते है, कोई, डावी जिमनी भी कहते है इसीरीति से वस्तु एक है परन्तु अनेक नाम से बोलते है कृष्ण पक्ष अर्थात् बदी को सूर्य कहते है जन्मके दिन

सूर्य चले तो अच्छा और शुक्लपक्ष अर्थात् सुदीपक्ष एकमके दिन चन्द्रमा चले तो अच्छा कहते हैं इसीरीति से शनिश्चर, रवि, मगल यह तीनवार तो सूर्य के है और सोम, बुध, शुक्र, यह तीन चन्द्रमा के हे बृहस्पति दोनों का है इसी रीति से किञ्चित् करके हमने कहा ॥ अब हम प्राणायाम का भेद कहते है परन्तु प्राणायाम का प्रयोजन क्या है ? तो मुख्य प्रयोजन तो प्राणायाम का मलशुद्धी अर्थात् शरीर की शुद्धी होना है कि जिससे शरीर मे कोई तरहका मल न निगडे क्योंकि जो मल विगड़ाहुवा होगा तो प्राणायाम मुद्रा आदिक न हो सकेगा अथवा जिस पुरुष के मलादिक विशेष हो अथवा कफ आदिक हो वह षट्कर्म करे पहले उनका नाम लिखते हैः—(१) नेती (२) धोती (३) ब्रह्म दातन (४) गजकर्म (५) नोली (६) वस्ती (७) गणेशकर्म (८) वागीकर्म (९) शत्रपखाली (१०) आदिक, इन दशों वातो में से कई बातें तो अन्य मतके लोग कोई २ पुरुष करतेभी है और उन लोगोंमेंसे इस बातकी प्रसिद्धिभी है और जिनमतमे इन चीजोंके करनेवाले वर्तमान कालमें नही है और यह लिखी हुई सब बातें जलके आरभ होनेसे उपयोगीभी नहीं है परन्तु जिनवातोंमे जल आदिकका बहुत आरम्भ नही है और अवश्य उपयोगी है उन बातोंको किञ्चित् वर्णन करके नीचे खोल देंगे कि इन बातोंमें आरम्भ नही और धर्म साधनमें उपयोगी है, अब हम (नेती) करनेकी रीति कहते हैः—कि कच्चा सूत, मुलायम १। तथा १॥ हाथलम्बा ५१ तारका वा ७१ तार इक्ट्ठे मिलावे उस लम्बे १॥ हाथमेंसे एठके ८ अगुल तो बटले और शेष खुला रक्खे परतु वह दोनों छोडकी तरफसे मुड़े हुये रक्खे और बीचमेंसे बटे फिर उसके ऊपर किञ्चित् मोम लगावे जिससे वो कडा सतर रहे और मुलायमभी रहे जब प्रातःकाल उसको करे तब उष्णपानीमे भिगोवे और वह फिर अपनी नाकमे गेरे जब वह गलेके छिद्रमे पूग जाय उस वक्त मुँहमें हाथ गेरके उस डोराको आहिस्ते २ खेचकर मुँहके बाहिर निकालले और वह बटा हुवा तो एक हाथमें और खुला हुवा छोड दूसरे हाथमे दोनों हाथोसे आहिस्ते २ ऐसे खेचे कि जैसे छाछ (मट्ठा) विलोते है इस रीतिसे दोनों नासिकाके छिद्रोमे करे उसीका नाम नेती है॥ (२) (धोती) की विधि कहते है कि अच्छी मलमल जिसके सूतमें गाठ आदिक न हों अथवा और कोई कपड़ा हो परन्तु बारीक हो सो कपडा ४ अगुल तो चौडा हो और १६ हाथ लम्बा हो उस कपडेको उष्ण पानीमें भिजोकर निचोड डाले फेर उसको ब्रह्मकाय पर एक छोड मुँहमें देकर उसको कवा अथवा ग्रास निगलते है वैसे निगले सर्व कपडा निगल जाय और शेष ४ अगुल बाकी रहे जब कुछ पेट को हलावे और फिर आहिस्ते २ खेचकर सम्पूर्ण बाहिर निकालले फिर उसको साफकर धोकर सुखादे इस धोतीके करने से कफ आदिक न रहे इसको धोती कहते हैं (३) ब्रह्मदातन की विधि कहते हैः—कि जैसे सूतका डोरा अच्छी तरहसे बटकर कचे सूतके ऊपर उसको लपेटे सो ऐसा कडा लपेटे कि तिरपनीका डोरा अथवा जैसे रामसनेही कमर में मैंदोला लगाते है इसमाफक कड़ाहो और फिरउसके ऊपर मोम लगावे जिससे वो सचिक्कण होजाय परन्तु उसमें एक अगुल सूतपर न तो डोरा लपेटे न मोम लगावे वो सूत मानिन्द कूची के करले और यह बँधाहुवा सूतका डोरा सवाहाथ लम्बाहो उसको प्रातःकाल

उष्णपानी से भिगोकर अर्थात् गीलाकर मुख में गेरे जब वह कागल्या के पास म जाय अर्थात् आगे को जाय उसवक्त थोडासा हाथ के सहारे से नीचे को दावे जब वो गलेके नीचे जाने से आपही चलीजाती है और उसको यहांतक लेजाय कि चार अंगुल बाकी रहे तब उस चारअंगुल को हाथकी अंगुलियों से ऐसा आहिस्ते २ घुमावे कि जैसे कान में रुई फेरते है और फिर उसको निकालले और साफ करके रखदे इसको ब्रह्मदातन कहते हैं। (४) गजकर्म कहते ह —त्रिफला अथवा कोरा उष्ण पानी नाकसे पीना शुरूकरे और जितना पेट में मावे उतना पेटभर पीले और फिर पेटको खूब हलावे हलायकर जो उसको नीचे से वायू खेंचना मालूमहो तब तो वायू खेंचकर के और मुँहकी राह उस गर्मपानी को बाहिर निकालदे पेटमें किञ्चित भी न रहे अथवा नीचेसे वायू खेंचकर निकालने की रीति न मालूमहो तो उकडू बैठकर जीमने हाथकी कोनी गोडूपर जमायकर अगूठे का मुह म गेरकर कागल्याके उरली तरफही ऊपर तालवे को अगूठे से मालिश करे अर्थात् सहरावे उस जगह एकनस अर्थात् नाडी है उसपर अगूठा लगने से पानी बाहिर निकलआता है जो गुरुबतावे तो परिश्रम न पडे और विना गुरुके जो अभ्यास करे तो २ तथा ३ दिन में मिलजाय क्योंकि अभ्यास भी बडी चीज है, इसको गजकर्म कहते है क्योंकि जैसे हाथी सूड से पानी पीकर मुँह से निकालता है इसवास्ते इसका नाम गजकर्म है। (५) अब नोली कहते ह —कि जिस समय ऊकडू बैठे अथवा खडाहोकर के दोनोंहाथ गुढनूपर रक्खे अथवा नीचे से पींडी को पकडे इनतीनों रीतियो में से किसी रीतिसे करे फिर पेटको पीठकी तरफ खेंचे जब वह पेट कमर में जायलगे उसवक्त गुरुकी बताई हुई जो रीति उससे वायु अर्थात् श्वासके उन दोनों नलोंको उठावे कि जैसे दोनों हाथो को चौडे करके अलग से मिलाते हैं और पसा अर्थात् अजली से पानी उलीचते है इस रीति से कुछ पेटका भाग तो पीठ में लगारहा और जो नलोंका भाग था सो उठआया तो बीच में तो वह मल जैवडी के मुवाफिक खडे हुए ह और इधर उधर जो चारो ओरका जो पेटका भाग सो पीठसे लगाहुआ रहै जब ऐसा पुरुष के नल खडाहोजाय फिर वह प्राण और अपानवायु उन दोनों को ऐसा घुमावे कि जैसे कुम्हारका चाक, यह नाली कर्म कहा। (६) अब वस्तीकर्म कहते है —कि कूडे में त्रिफले का पानी या ऊनापानी भरे और छ अंगुलकी जस्त या नरसल की नलकी गुदा में चढावे कि चार अंगुल तो चढावे और दो अंगुल बाकी रक्खे फिर उस कूडे के ऊपर बैठे और जो पेश्तर नोलीकर्म कहआये हैं उस रीति से नलों को उठावे और फिर अपानवायुकी कुम्भक करने से पानी ऊपर को चढ जाय जितनी देर नल खडे रहेंगे और अपानवायु खिंचेगी उतनीही देर तक हौले २ पानी चढेगा फिर जब पानी चढ चुके तब नलीको निकाल दे नोलीचक्रको फिरावे और फिर ५ तथा ७ मिनट बाद रेचन करके बाहिर निकाले कदाचित् थोडा बहुत जल रह जाय तो मयूर आसन करनेसे निकल जाता है, यह वस्तीकर्म हुवा (७) गणेश क्रिया कहते है,—कि जिस वक्त ठल्ले अर्थात् दिशा जाय जब मल अच्छी तरहसे निकलजाय तब मध्यमा अथवा अनामिका इन दोनो अंगुलियोंमेसे एक पर वस्त्रका कटका रखकर उस अंगुलीको गुदामे गेरे और चारों तरफ फेरे इस रीतिसे दो तीन दफे करनेसे वह चक्र

साफ हो जाता है और कुछ मेल नही रहता है इसको गणेश कर्म कहते है (८) अब बागी कर्म कहते हैः-कि जिस वक्त मनुष्य आहार करले उसके एक घटा वा दो घटाके बाद ऐसा जाने कि आहारका रस तो मेरे शरीरमें प्रणमन होगया और वकस बाकी रह गया उस वक्त जो कही हुई रीति गजक्रियामे है कि नीचे वायु खेच करके या मुंहमें उसी तरह अगूठा गेर करके उसको मुंहकी राह होकर निकाल फेक दे ऐसा जो करे उसका नाम बागीकर्म (९) शंखपखाली कहते हे शखपखाली नाम उसका है कि शखमे ऊपरसे पानी डाले और नीचेसे निकलता चला जाता है इसी तरहसे मुंहसे पानी पीता जाय और गुदासे निकालता जाय सो यह काम वही शख्स करेगा जिसको नोलीचक्र अच्छी तरहसे आता होगा क्योंकि जिस समय उसको मुहसे पानी पीना पडता है उसी वक्त नोलीचक्र फिरानेसे उस वायूकेजोरसे गुदाकी राह निकलता हुवा चला जाता है इसको शंख पखाली कहते है। (१०) अब त्राटक कहते हे कि दोनो नेत्रोको यातो किसी सूक्ष्म वस्तु पर स्थापन करें और पलक न मारे टक टकी लगाकर देखे उससे दूसरी जगह दृष्टी न फेरे अथवा पुतलीको घुमायकर दोनो भवारेके जो केश हे उनके ऊपर दृष्टिको ठहरावे इसको त्राटक कहते है ॥ यह जो हमने दश बातोकी रीतिये कही हे सो ये शरीर अर्थात् मल शुद्धिके वास्ते ह जिसका मल शुद्ध होय उसको यह बाते करना कुछ जरूर नही इनमेही नोली और गणेशक्रिया और त्राटक और बागी इन चारो क्रियामे बहुत जलका आरभ आदिक नही है और प्राणायाम आदि जो कुभक मुद्रा हे उनमें बहुत उपयोगी है इस वास्ते इनको अवश्यमेव करे यह सब कर्म हठयोगके पहले करनेके हे और इनमेंभी त्राटक और बागी दो कर्म तो चाहे जिस वक्त करे परतु शेषके जो आठ कर्म सो प्रातःकाल करनेके हे आहारसे पहले करे जो कोई पुरुष खाके पीछे करेगा तो नाना प्रकारके रोगादिकोंकी उत्पत्ति होगी इससे उनपर लिखी बातोसे क्या प्रयोजन हे और क्या फल है सो कहो? तो हम कहते है कि एक तो ध्यानादिक करनेमे यह चीजे सहकारी है क्योंकि शरीरका निरोग रहना यहही इसका फल हे सोही दिखाते हे कि ऊपर लिखी जो नेति आदि क्रिया जो करना है सो इस क्रियाके करनेसे रोग दूर होता है कि जिस समय जोगीके रोगसे ध्यानमें विघ्न पडे जब जोगी जिस २ क्रियासे जो २ रोग जाते है उसी २ क्रियाको करके रोग दूर कर देते है और विना रोगके नित्य करनेसे काल निष्फल जाता है इस लिये नित्य करनेका नियम नही है परन्तु गुरुके पास सीखनेके अनंतर कुछ दिन तक निरतर अभ्यास करे क्योंकि अच्छी तरह अभ्यास की हुई क्रिया समय पर जल्दी काम देती है और जो क्रिया या आसन ध्यानादिकमें उपयोगी हों सो सदा करने चाहिये परन्तु इन क्रियावो में कोई सिद्ध व निर्जरा नही है और जो कोई इन क्रियावो मे धर्म मानते हे व ठहराते हे सो ठग हे और जिनधर्मके अजान और जो इनको निषेध करते हे वे भी जिनधर्मके अजान गुरु कुलवासके विना इन्द्रियोंके भोग और शरीरसे परिश्रम उठानेके डरसे और रसना इन्द्रीके लौल्यसे क्योंकि इन क्रियावोमें खाने पीनेका यत्न करना पडता है कि खट्टा मीठा चरफरा अनेक वस्तुवोका त्याग करना पडता सो उनकी जिह्वा न रुकनेसे अपनी धूर्तता लगाते हैं कि जिन

धर्ममें यह क्रिया नहीं है यह क्रिया अन्यमतकी है इस लिये उनकाभी कहना ठीक नहीं है ॥ अब प्राणायामके अव्वल तीन भेद कहते हे १ पूरक २ कुम्भक ३ रेचक पूरक इसको कहते हैं कि वायु ऊपरको चढाना अर्थात् पेटमें लेजाना उसको पूरक कहते है। और कुम्भक उसको कहते हे -कि जितनी देर श्वासको बंध रक्खे अर्थात न तो खेंचे और न बाहिर निकले उसको कुम्भक कहते हे ॥ रेचक नाम उसका है कि जो वायु रोकी हुई है उसको बाहिर निकालना उसको रेचक कहते ह ॥ अब इन तीनोंकी रीति कहते हैः-कि प्रथम पद्म आसन लगावे फिर इडा नाम चन्द्रनाडीसे अर्थात् डावी ओरके नासिकाके छिद्रसे वायुको खेंचे फिर अगूठा और अनामिका इन दोनो अङ्गुलियोंसे दोनों नासिकाके छिद्रोंको बन्ध करे जितनी देर तक उसकी शक्ति हो उतनी देर तक कुम्भक करे मूलबन्ध, जलन्धरबन्ध और उड्यानबन्ध इन तीनोंको करे, पिङ्गला नाडी अर्थात् जीमणे (दहिने) स्वरसे वायुको धीरे २ रेचन करे परन्तु इस रीतिसे धीरे रेचन करे कि जिसमें कोई तरहका शरीरको जोर न पडे फिर पिंगला नाडीसे धीरे २ पूरक करे अर्थात् प्राणवायू खेंचता रहे फिर दोनो नासिकाके छिद्रोंको बन्ध करके कुम्भक करे यथाशक्ति कुम्भक करके पश्चात् वा चन्द्र नाडीसे बन्धपूर्वक हौले रेचन करे फिर जिस नाडीमें रेचन करे उसी नाडीसे पूरक करे यथाशक्ति कुम्भक करके बाद बन्धपूर्वक दूसरी नाडीसे रेचन करे जब तक पसीना और कांपना होय तब तक करे जाय फिर जिस करके पूरक करे उसी नाडीसे रेचन न करे अर्थात् दूसरी नाडीसे रेचन करे, परन्तु जिस नाडीसे रेचन करे, पूरक उसी नाडीसे करे और रेचन दूसरी नाडीसे करे, सो रेचन जल्दी २ न करे अर्थात् एक क्षण न छोडे क्योंकि जोरसे रेचन करे तो बलकी हानि होती है, इस रीतिसे जो अभ्यास करते हे उनकी ३ महीने व ५ महीने में नाडी शुद्ध हो जाती हे अब इनका काल और नियम कहते हे कि प्रात काल सूर्य्य उदय होनेके समय मे (लाली बदलों में मालूम पडने लगे) उसी वक्तसे आरम्भ करे और ३ घडी तक करे ऐसे ही मध्याह्न म ३ घडी तक करे, इसी रीतिसे सायंकालको भी ३ घडी तक करे इन तीनो कालमे ८० अस्सी २ दफे कुम्भक रेचन पूरक करे यह तीनो कालके २४० प्राणायाम हुए जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट इसका भेद कहते हे.-जघन्य प्राणायाम में पसीना होते हे और मध्यम प्राणायाम में कम्प होती है और उत्कृष्ट प्राणायाम ब्रह्मरन्ध्र होता है ४२ विपलसे कुछ कम कुम्भक करे तो जघन्य प्राणायाम होता है और ८४ विपलसे कुछ अधिक कुम्भक रहे सो मध्यम प्राणायाम होना है और (बन्धपूर्वक) १२५ विपल कुम्भक रहे उसको उत्कृष्ट प्राणायाम काल कहते हैं। जब प्राणायाम स्थिर होय तब प्राण ब्रह्मरन्ध्रको प्राप्त होय और ब्रह्मरन्ध्र में गया हुवा प्राण जब २५ पल तक स्थिर रहे उसको प्रत्याहार कहते ह उसीका नाम धारना भी कहते हैं और जब ६ घडी तक स्थिर रहे तब ध्यान होता है और १२ दिन तक स्थिर रहे तब समाधि होती है। प्राणायामके अभ्याससे जो पसीना हुवे उससे शरीर को तेलकी तरह मालिश करे उस मालिशसे शरीरको दृढता और लघुता नाम जड तिस का अभाव होवे है । जालधर आदिक बन्धयुक्त प्राणायाम न करे तो कई रोग आदिककी उत्पत्ति होती है । वायुको रेचनकाल मे शनैः २ रेचन करे जल्दी करे नहीं,

और पूरक अल्प भी नही करे और अधिक भी नहीं करे योग्य योग्य करे और जालन्धर बन्ध आदिक युक्त योग्य ही कुम्भक करे इस प्रकारसे हठसिद्धि प्राप्त होती है ॥ अब बन्धोंकी रीति कहते हैः— मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, उड्डियानबन्ध, और जिह्वाबन्ध, अब मूलबन्धकी रीति कहते है-कि एडीसे योनीस्थानको दाबकर गुदाको सकोच करे फिर अपानवायु जो नीचेके जानेवाली उस वायु को ऊपर को चढावे इसका नाम मूलबन्ध है, अथवा एडी को गुदाके नीचे रक्खे व एक गेंद बनाय कर गुदाके नीचे रक्खे और अपना वायुको उर्ध्व गमन अर्थात् सुखमनामें प्राप्त करे उसीको मूलबन्ध कहते हे अब इस मूलबन्धके गुण कहते हैः— अपानवायु अधोगति अर्थात् नीचेको जानेवाली उसको तो ऊपर को करे और दूसरी जो प्राणवायु जो ऊर्द्धगमनी अर्थात् ऊची जानेवाली है उसको नीचे को करे । इन दोनों वायुकी एकता करे उस एकताके होनेसे सुखमणा मे प्रवेश करे उस वक्त मे जो करने वाला पुरुष है उसको नादकी प्राप्ति होती है सो इस नादका वर्णन तो हम आगे करेंगे परंतु इस जगह तो बन्धोंका वर्णन करना है इस वास्ते जालन्धरबन्ध कहते है कि कठनीचे को नवाय कर हृदयसे चार अगुल अलग ठोडीको यत्नसे दृढ स्थापना करे इसका नाम जालधरबन्ध है। अब जालधर पदका अर्थ कहते है कि नाडियोंका जाल अर्थात् समूह बाधे और नीचे को गमन कर ऐसा जो कपालका कुहर जो छिद्र तिसको बांधे जालधरबंधके करनेसे कठके जो रोग आदि है वह नाश हो जाते है फिर कठके सकोचन करनेसे दोनो नाडी इडा और पिंगलाको स्तम्भन करे । अब उड्डियानबंधक कहते है उड्डियान शब्दका अर्थ करते है कि जिस हेतुसे वा जिस बन्धन करके रोकी हुई जो वायु सुखमणा मध्य नाडी मे उडजाय अर्थात् प्रवेशकर जाय सुखमणाके जोरसे आकाशमार्ग मे गमन करे है इस वास्ते इसका नाम उड्डियान है महान् जो खग अर्थात् आकाश को निकलप्राण जिस में बन्ध करे और श्रम जिस में न हो सुखमणा पक्षीकी तरह गति करे उसका नाम उड्डियानबन्ध है अब इसकी रीति कहते है कि नाभीके ऊपरका भाग और नीचेका भाग इसको उदर अर्थात् पीठमें लगजाय ऐसा पीठेको खेंचे इसका नाम उड्डियानबध है नाभीके ऊपर नीचेके भागके जितना पीठमे लगावे अर्थात् पीठकी तरफ उन दोनो भागोको यत्नसे पीठेकी तरफ खैंचे इसको रोटी खाये के पेस्तर वारवार अभ्यास करे तो छःमहीनेमें इसके गुण आपसे आप प्रगट हो जाते है अब हम जिह्वाबन्ध कहते है कोई ऐसे कहते हे कि जालधरबन्ध अर्थात् कठको नवायकर ठोडीको हृदयमें स्थापन न करे किन्तु क्याकरे कि राजदन्त मुँह के सामनेके ऊपरके जो दात उनको राजदात कहते हे उन दोनो दातोंको जिह्वासे ढके अर्थात् दातों पर जिह्वा लगावे उसीका नाम जिह्वाबन्ध है इस जिह्वाबन्धसे एक सुखमणा नाडी रहित जो सपूर्ण ७२ नाडी तिनके ऊपर वायुकी गतिको जानेसे रोके है इस लिये इसको कोई जालधरबन्धभी कहते हे जाल नाम नसोंका है उनका जो बाधना उसीका नाम जालधरबन्ध है ये ऊपर लिखी जो बधोकी रीति इनके सयुक्त जो पुरुष प्राणायाम करनेवाला उसीको हठयोगकी प्राप्ती होगी और हठयोगसेही राजयोगकी प्राप्ति होती

शी देखा है परन्तु उन लोगों का कहने में और कर्त्तव्य में बहुत फर्क है और मैंने भी जिस महात्मा से किञ्चित् प्राप्ति की उस महात्मा की जवानी भी इस स्वधर्म के सिवाय दूसरे के शोभा नहीं सुनी और उसीसे किञ्चित् कूँची मुझको प्राप्तहुईमैं जिन आगमकी मुझको यथावत् प्रतीति होती है कि जो श्री जिनराजके धर्ममे बाते कहा है सो अन्यमत में किसी जगह देखी और सुनी नहीं परन्तु इस हुंडासर्पणी काल पञ्चम आरे में दुःख मोहगर्भित वैराग्यवालों ने आपस मे ईर्षा और द्वेष बढायकर रहस्य सो लुप्त कर दिया और कलह और कदाग्रह को प्रगट किया इसवास्ते इस जैनमत में प्रवृत्ति भी उठगई प्रसगवश इतनी बात कहनी पडी अब हम कुम्भक और मुद्रा कहते है पेस्तर तो कुम्भक के नाम कहते हे १ सूर्यभेदन २ उज्जाई ३ सत्कारी ४ सीतली ५ भ्रस्त्रिका अर्थात् धोकनी ६ भ्रामरी ७ मूर्छा ८ प्लावनी यह आठ कुम्भको के नाम है प्रथम मूलबन्ध करके पूरकके अन्त मे शीघ्रही जालधरबन्ध लगावे कुम्भक के अन्त मे और रेचककी आदि में उड्डियानबन्ध लगावे इसीरीति से प्राणायाम करे इन बन्धानों के संयुक्त प्राणायाम सिद्ध होता है वायू प्रकोप नही करे। अब कहते है कि जियादह कुम्भकादि करें तो रुकाहुवा जो वायु रोमों द्वारा निकलकर कुष्ठआदि रोगों की उत्पत्ति करे है इस लिये इसको होले २ नाम यत्नपूर्वक रेचन करे पूरक तो हौले २ करे या शीघ्रभी करे कुछ हर्ज नही और रेचकतो धीरे २ ही करे यह सूर्य्यभेदन इसका नाम इसलिये है कि सूर्य्य से पूरक करे और चन्द्रसे रेचक करे इस कुम्भक के करनेवाले पुरुष के माथे की शुद्धि होती है और उदरकी शुद्धि वात रोगादिककी उत्पत्ति नही होती अर्थात् चौरासी प्रकार की वायु उससे जो रोगादिक होते हे उनकी निवृत्ति करती है। अब (२) उज्जाई कुम्भक कहते हैः—मुख मूद करके पवनको कण्ठ से लेकर हृदयपर्यन्त शब्द सहित इडा और पिङ्गला नाडी करके शनैः २ खेचकर पूरक करे फिर केश और नख पर्यन्त कुम्भक करे पीछे इडा जो डावी नासिका उस करके रेचन करे कुम्भक कण्ठमें कफादिकके रोगको दूर करती है और जठराग्निको दीपन करे है नाडीमें जलकी व्यथादिककी दूर करे धातु आदिक पुष्ट करे। अब (३) तीसरी शीतकारी कुम्भक कहते हे मुखके होठोके बीच में जिह्वा लगाय कर सीत करके पवनको मुख करके पूरक करे फिर दोनो नासिकासे शनैः २ रेचक करे परन्तु मुख करके वायुको न निकलनेदे अभ्यास कियेके बादभी मुखसे वायुको कदापि न निकाले क्योंकि मुखके निकालनेसे बलकी हानि होती है इसमे कुम्भक नही कहा तो भी कुम्भक करे इसके करनेवाले पुरुषको रूपलावण्य शरीरकी पुष्टि होती है क्षुधा तृषा आदिकभी कम लगती है और निद्रा आलस्य भी नही लगता। अब (४) सीतली मुद्रा कहते है पक्षीकी नीचेकी चोंचके समान अपनी जिह्वा होठोंके बाहिर निकाल वायुको खेचकर पूरक करे और फिर मुँह मूदकर कुम्भक करे फिर शनै २ नासिकाके छिद्रोंसे वायुको रेचक करे इसका करनेवाला जो हो उसके लिये गुल्म और प्लीह अर्थात् तापतिल्ली और पित्तके ज्वरादि रोगोंको दूर करनेवाले है और भोजन और जलकी इच्छा करनेवाली है और सर्प काटे विषको या अन्य और के विषको अर्थात् जहरको दूर करनेवाली है। (५) भ्रस्त्रिका

अर्थात् धोकनी कुम्भक कहते हैं कि पद्म आसन लगाय करके सतर बैठा हुवा की पहलीसे मु-निहो मुखके बन्द करके यत्नसे एक नासिकाके छिद्रसे वायुको रेचक करे परन्तु शब्द सहित हृदय कंठ सहित हृदय कमल पर्य्यन्त वायुको पूरक करे फिर पहलेकीसी नाई रेचक करे और पूरक करे वारम्वार ऐसा करे जैसे लुहारकी धोकनी वेग अर्थात् जल्दी २ चलती है तैसेही वेग करके पूरक और रेचक वारम्वार करे जब तक शरीरमें श्रम न होय तब तक शीघ्रही रेचक और पूरक करता जाय जब श्रम होने पर आवे तब वायु करके शीघ्रही सूर्य्य नाडीसे पूरक करे और जल्दीसे जीवने अगूठासे तो जीवनी नासापुटको रोके और अना मिका कनिष्ठकासे डाबी नासकाको रोके बन्ध पूर्वक कुम्भक करे फिर चन्द्रनासिकासे वायुको रेचक करे फिर इसी रीतिसे फिरभी रेचक पूरक करे फिर श्रमहो जाय तब बाईं नासिका करके तो पूरक कर और यथा शक्ति कुम्भक करके पिङ्गला जो सूर्य्यनाडी तिस करके रेचन करे इस रीतिसे यह धोकनी कुम्भक होती है; अब इसके गुण कहते हैं वात पित्त और कफ इन तीनोंके रोग को दूर करे और तीनोंको समान रक्खे और जठराग्निको दीपन करे और कुंडली नाडी सूती हुईको शीघ्रही जगाय देती है जो पुरुष इसको वारम्वार करेगा उसको नानाप्रकारकी सिद्धि और शीघ्रतासे प्राणायामकी सिद्धि होगी प्राणायाम नाम प्राणोंका जो कि शरीरमें प्राण अपानादि वायु हैं उनको बाहिरको फेंकना उसका नाम रेचक भीतरको ले जाना उसका नाम पूरक है और यथाशक्ति जो प्राणोंको रोकना उसका नाम कुम्भकहै इन कुम्भकोंके करनेसे कुण्डली जो आधारशक्ति उसको बोध करानेके वास्ते कुम्भक करते हैं और जो तीन कुम्भकोंका प्रकार हमने नहीं लिखा सो कारण यह है–कि एक तो ग्रन्थके बढ जानेका भय दूसरा जो इन पांच कुम्भकोंकी अच्छी तरहसे अभ्यास करेगा तो कार्य्यकी सिद्धि होनेसे आपसे आप मालूम हो जायगी इस वास्ते नहीं कही। अब हम कुंडली जागनेका किञ्चित् फल कहते हैं कि सूतीहुई कुंडली गुरुकी क्रियासे और परिश्रम करनेसे जाग उठे तब सपूर्ण चक्रोंके भेदको प्राप्त हो जाते हैं और सुखमणा नाडी वायुको राज मार्गकी तरह आचरण करती है और चित्तकी निर्वेशयता हो जाती है क्योंकि देखो इसी वास्ते श्री आनन्दघनजी महाराज बहत्तरीमें कहते हैं कि " इगला, पिंगला घर तजजागीं सुखमणा घर आसी ब्रह्मद्र मध्यासन पूरी हो बहु आ। अनहद नाद बजासी" ॥ ऐसा जो उन्होंने कहा है सो इसका आनन्द उन्होंनेही लिया है इससे यह काम करना श्रेष्ठ है। अब हम मुद्राके भेद कहते हैं सो मुद्रा तो बहुत है परन्तु हम थोडीसी मुद्राके भेद कहते हैं–प्रथम महामुद्रा कहते हैं कि बाम पांवकी ऐडी योनीस्थानमें लगाय करके जीवने पगको फैलायकर लंबा करे एडी जमीन पर लगावे और उंगलीयोंको डंडकीसी नाईं ऊंचेको करे और जीमने हाथके अगूठा और तर्जनीसे जीमने पगके अगूठाको पकडे और बन्ध पूर्वक वायुको सुखमणामें धारण करे और मूलबन्धभी बंध करके सयुक्त होय योनी स्थानको पीडन करके जिह्वाबन्ध लगावे उस वक्त जैसे सर्पके प्रहारसे टेढे दण्डके प्रकारको त्याग करके सरल हो जाय है तैसेही कुंडली जो आधारशक्ति सो शीघ्रही सरल होय और कुंड-लीके बोधमें सुखमणामें प्राणका प्रवेश होवे है तब इडा और पिंगला इनका जो सहाय देने वाला प्राण इस कारणसे इडा और पिंगला मरणको प्राप्त होती है सो इसके आनन्दको तो

करने वाले जन जानते है न तु बाचनेवाला । या लिखने वाले, इस आनन्दको प्राप्त होंगे जो इनका अभ्यास करेंगे उन्हीका राग द्वेष मोह आदिक मिटेगा । अब इसके अभ्यासकी रीति कहते हे-प्रथम चन्द्र अङ्ग अर्थात् बॉवा अङ्गसे अभ्यास करे फिर सूर्य्यअङ्ग जो दक्षिण अङ्ग तिसमें से अभ्यास करे और अङ्ग अभ्यास करेके पश्चात् सूर्य्य अङ्ग अभ्यास दोनों अङ्गोंका समान करे फिर इसको विसर्जन करे जब डाबे अङ्गसे अभ्यास करे तब तो जीवणे पगको फैलावे रीति ऊपर लिखी जैसे पकडे और जब जीवणे अङ्गसे अभ्यास करे तब डाबे पगको फैलावे इस रीतिसे दोनों अगोंसे समान अभ्यास करे इसके गुण कहते है कि इसके अभ्यास करनेवाले पुरुषको पथ्य अपथ्यकाभी कुछ विचार नही क्योंकि सम्पूर्ण कटुक कडवा वा अमल खटाई आदिक जो भोजन करेगा सोही पचजायगा और कठोर पदार्थ कैसाही हो सो भी सब उसको पच जायगा ऐसी कोई चीज नही कि उसको न पचे इसके वास्ते यह मुद्रा श्रेष्ठ है । अब विपरीति करिणी मुद्रा कहते है:-कि जमीन पर माथा टेककर हाथोंसे शिरको थामकर और मयूर आसनकी तरह पैर ऊचे करके आसमानकी तरफ सतर करे, इस रीतिसे शिरके बल अधर खड़ा होना उसीका नाम विपरीति करणी है । अधोभागमें अमृतरूपी चन्द्रमा होवे है यह विपरीति करणी है, ऊपर चन्द्रमा नीचे सूर्य्य जिसके । ऊपर सूर्य्य और नीचे चन्द्रमा करे यह गुरुके वाक्यसे प्राप्त होय है ॥ अब खेचरी मुद्रा कहते हे कि पहले खेचरीका साधन इस रीतिसे करे कि जिह्वाको छेदनेके पहले दोनों हाथोंके अगूठे और तर्जनीसे होले २ जिह्वाको बाहरकी तरफ़ खेचे जैसे गऊके थनोंसे दूध निकालते हे इस रीतिसे अभ्यास करे और जिह्वाको बढाते २ इतनी बढावे कि नाक मे होकर भ्रुकुटी के मध्य मे जा लगे जब इसरीति से अभ्यास होजाय फिर उसका साधन करे जैसे थुवरके पत्रकी अणी तीक्ष्ण होती हे इसीतरह का सचिक्कण और निर्मल तीक्ष्ण अणीवाला शस्त्र लेकर जिह्वा के नीचेकी जो नस उसके रोममात्र छेदन करे छेदनकेके बाद सेंधालोण और छोटी हरडे इन दोनों को पीसकर उस छेदीहुई जगह मले अर्थात् चिपकादे सायङ्काल, प्रातःकाल इस क्रियाको करनेवाले को लोणका निषेध है तो भी हरडे और लवण दोनों को पीसकर उसवक्त में उन दोनो को लगावे फिर सातदिनके बाद आठवें दिन फिर कुछ अधिक छेदे इसीरीति से छःमहीने पर्य्यन्त युक्ति से करे तो जिह्वाकी मूल में जो नाडी कपाल के छिद्र मे जाने के लायक होजाय इसीरीति से पेश्तर साधन करे यह रीति तो ग्रन्थों में लिखी है और जो इसकी असल रीति जिसमे शस्त्रादिक से छेदनेका कुछ प्रयोजन न पडे वह रीति तो गुरुकी कृपासेही मिलती है परन्तु शास्त्रद्वारा लिखी नहीं जाती क्योंकि गुरु आदिक योग्य अयोग्य देखकरके युक्तीक्रम बताते हे अब हम इस खेचरीमुद्राका प्रयोजन और गुण कहते हे कि इसके करने का प्रयोजन क्या है सो देखो कि जब जिह्वा नसधे अलग होजाय तब जिह्वा को तिरछीकरे अर्थात् गले में लेजाय तीनो नाडियोंका जो मार्ग अर्थात् कपालों का छिद्र जिसमे इगला, पिंगला, सुखमणा नासिका में मालूमहोता है उस छिद्र में जो जनकरे अर्थात् उस में लगावे अर्थात् उस छिद्र को बध करदे कि इगला, पिंगला, सुखमणा नासिका मे से न निकले इसे खेचरीमुद्रा ककहतेहे और इसीको व्योमचक्रभी कहते हे अब इसका गुण कहते हे -कि तालुवे के ऊपर

छिद्रमे लगी हुई जो जिह्वा एक घडीमात्रभी जो स्थित रहे तो सर्प विच्छू इनको आदि लेकर जो जन्तु तिनका जो विष उनको दूर करने की शक्ति उसको होजाती है अर्थात् उसको किसी जानवर का जहर (विष) नहीं चढता और इस मुद्राके करनेवाले पुरुष आलस्य, निद्रा, क्षुधा, तृषा, मूर्च्छा आदिक विशेष करके नहीं होती है और तालवे के ऊपर छिद्रके सन्मुख जिह्वा लगाय स्थिरहो उस तालुवेपर छिद्रमें से पडता हुवा जो चन्द्र अमृत उसका पान करे है इसीसे सर्व कार्य्यकी सिद्धि होती है परन्तु यह रीति सब, गुरुके विदून नहीं होती है केवल पुस्तक के देखने से जो होती तो जगत्में प्रसिद्ध है इसलिये गुरुका विनय प्रतिपत्ती सुश्रूषा आदि करै जिससे गुरुअनुग्रह करके युक्तिको बताय देवे और वज्रोली, अम्रोली से जोली आदिक मुद्रा है सो हठयोगप्रदीपादि ग्रन्थोंमें उनके साधन और रीति लिखी है परन्तु वह रीति मेरे अनुभव से अर्थात् जिस गुरुने मुझको इन बातों से किञ्चित् वाक्फि किया है उनबातों से ग्रन्थकी रीति विलक्षण मालूमहोने से नहीं लिखा और जिसको इन बातों की चाहनाहो तो मेरेको सिद्ध तो नहीं है परन्तु गुरुकी बताई हुई युक्तियों से मेरी बुद्धिअनुसार योग जिज्ञासुको कराय सक्ता हूं नतु ग्रन्थकी देखा देखी लिखताहूं क्योंकि बहुत लोग जो अवर ग्रन्थ बनाते हैं सो ग्रन्थ बाचकर आत्म अनुभव गुरु उपदेश विना अक्षरों का अर्थ युक्तिसे मिलायकर लिखते हैं सो उस रीति का मेरा अभिप्राय नहीं है जिसकी खुशीहो सो इस बातकी आजमाइश करे परन्तु सर्व बातें तो योग्यता होनेहीसे प्राप्त होती है और उन मुनी आदिक मुद्राभी कई तरहकी कही हैं और नादकुण्डली आदिक के कईभेद कहे हैं सो हम चक्रों के भेद कहे बाद कहेंगे और देखो आनन्दघनजी महाराज इक्कीसवे श्री नमीनाथजीके स्तवन में लिखते हैं (९ गाथा) मुद्रा बीज धारण अक्षर ॥ न्यास अर्थ विनयोगेरे ॥ जे ध्यावें ते नवी वाञ्चीजे ॥ क्रिया अवधक भोगेरे ॥ ९ ॥ इस तुक का अर्थ तो हम चक्रोंका भेद कहके कहेंगे इस जगह तुकके कहने का मतलब यह था कि जो कोईलोग ऐसा समझते हैं कि जिनमत में हठयोग नहीं था या नहीं है, सो आगे था और अब भी है परन्तु प्रसिद्ध में दु:ख गर्भित और मोहगर्भित वैराग्यवालों के कारण से जाननेवाले हरएकको योगके अभाव होने से नहीं कहते परन्तु प्रधान से जो विधि जैन में है सो हरएक में नही ॥ प्रथम गुदा से दोअंगुल ऊपर मूलाधार नाम चक्र जिसको गणेशचक्रभी कहते है उसकी चार पांखडी है और उसका लालरंग है जैसे सूर्य्योदय वा अस्त समय में लाल हो जाता है इस तरहका उसका रंग है उन चारो पांखडियो पर चार अक्षर है वो यहहै —व, श, ष, स। ये चार अक्षर चारों पांखडियों में है इसीके पास में कंद है यह कंद चार अंगुल विस्तारकाहै सो गुदासे दो अंगुल ऊंचा और लिङ्गसे एक अंगुल नीचा चार अंगुलका विस्तार अण्डेके मुवाफिक है और इसी गुदाके ऊपर मेंडेके बीच में योनि है त्रिकोण आकार है वो पश्चिममुखी है अर्थात् पीछेको मुख है चकनाल अथवा ऊर्द्धगमन मार्ग उसी में हो करहै उसीस्थान मे सर्वदा कुंडलीनी की स्थिति है यह कुंडलीनी सकल नाडियों को घेर कर साढे तीन फेर कुटिल आकृतिसे अपने मुख में पूंछको लगाके सुखमणा विवर में स्थित है और कुण्डली नाडी सर्पके सादृश्य ऐसी

सूक्ष्म है कि जो बालक हवे का जो केस उससे भी सूक्ष्म और तप्त किया हुवा सुवर्णके मुवाफिक उसका तेज प्रकाश है और लाल लाल वर्णका कामबीज उसके शिर पर घूमता है जिस स्थान में कुडली नाड़ी स्थित है उसी स्थान में कामबीजके साथ सुसुमना स्थित है और यह कुडली नाड़ी महा तेजमान् सर्व शक्तिसे युक्त होके शरीर में भ्रमण करती है कभी तो ऊर्द्धगामी कभी अधोगति कभी जलमें प्रवेश इसके जगाने की रीति तो हम आगे कहेंगे ये देदीप्यमान कामबीज सहित इस मूलाधार चक्रका ध्यान करनेवाले पुरुषको बारह महीनाके भीतर जो शास्त्र कभी श्रवण नहीं किये उन शास्त्रोंके रहस्य सहित शक्ति उत्पन्न हो जाती है और जो कुछ दिन पर्य्यंत निरन्तर जो इसका ध्यान करे तो उसके सामने सरस्वती नृत्य करती है। अब दूसरा चक्र कहते है—स्वाधिष्ठान नाम अर्थात् लिंग मूलमें उस चक्रकी छः पाखुड़ी है उनके ऊपर छः अक्षर है वे छः अक्षर यह है, व, भ मं य र ल। यह छः अक्षर है इन्ही छः अक्षरोंसे पाखडी शोभायमान है और इसका रक्त वर्ण है कुछ एक पीलास झलकता है शरद पूनमके चन्द्रमाकी तरह सर्व कला पूर्ण करके सफेद रंगका चमकीली (वं) बीज सहित जो कोई इस चक्रका ध्यान करे उसको कविता करनेकी शक्ति होगी और सुखमना नाडीके चलानेकी किञ्चित् अनहद नादका श्रवण करके आनन्दको प्राप्त होगा। अब तीसरे (३) मनी पूरक चक्रका वर्णन करते है। यह तीसरा पद्म जो नाभीकी जडमें सुवर्णके समान १० पाखड़ी उन १० पाखडियोंके १० अक्षर है सो वे अक्षर यह है—ड ढ णं त थ द ध न प फ यह अक्षर इस पर है इसमें सूर्यके समान वह्नि बीजके बाहिर एक सौस्तिक है यह अग्निबीज सूर्यके समान प्रकाशक है और इस मनीपूरक चक्रका बीज सहित जो कोई ध्यान करनेवाला पुरुष है उसको सुवर्ण आदिक सिद्धि करनेकी और देवताओंका दर्शन होना सुलभ है। अब (४) हृदयमें जो अनहद नाम जो चक्र है उसका वर्णन करते है— कि वह १२ पाखडीका कमल है और १२ अक्षर करके संयुक्त है सो १२ अक्षर यह है—क ख ग घ ङ च छ जं झं ञ टं ठं इस पद्मका लालरंग है और इसका वायुबीज है इन क्रियाओं के बीच में बिजली के समान चमकती त्रिकोनी एकशक्ति उसके बीच में सुवर्ण के समान एक कल्याणरूप लिंग अर्थात् मूर्ति है उसके शिरपर छिदीहुई मणी चमकती है उस बीज समेत जो कोई इस पद्मका ध्यान करता है उसको साक्षात् उस कल्याणरूप मूर्त्तिका दर्शन होता है और नानाप्रकारकी सिद्धि और ज्ञान उत्पन्न होते है क्योंकि देखो श्री आनन्दघनजी महाराज जो बहत्तरी में कहगये है सो उनके पदोंका जो कोई भावार्थ समझे तो यह चिह्न स्पष्ट मिलते है बहत्तरी के पदके पदकी तुक.—"अवधू क्या सोवे तन मठमें" जाग विलोक तन घट में ॥ अवधू ॥ आशा मारी आसन पर घट में, अजपा जाप जपावे। आनन्दघनचेतनमय मूर्त्ति, नाथ निरंजन पावे ॥ इस चौथी तुकमें आनन्द घनजी महाराज कहते है और एकपद मे ऐसाभी कहा है "हृदयकमल किरण के भीतर आतमरूप प्रकाशे। वाको छाड दूरतर खोजे अन्धा जगत खुलासे ॥ इसवास्ते जो कोई आत्मार्थी होगा सो इन बातों को जानेगा और करेगा ॥ अब पाचवा विशुद्धचक्र कहतेहै कि कंठस्थानमें १६ पाखडीका पद्महै सो १६ अक्षर १६ स्वर करके संयुक्तहै सो १६ स्वर

यहहै—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, ॥ सो ये अक्षर तो स्वर्णके समान चमकते हुये है और कमलका रंग धुयेंके समान है इसका आकाश बीज है जो कोई पुरुष इस बीज सहित विशुद्ध पद्मका ध्यान करेगा वो पुरुष पंडित और योगियोंमे शिरोमणि और सब शास्त्रोंके रहस्यके जानने वाला और अनेक तरहकी शक्ति लब्धि प्रगट हो जायगी और मनकी चंचलता भी मिटजायगी अब (६) आज्ञाचक्र कहते है—इस आज्ञा चक्रके २ पाखडिये और चन्द्रमाके नाई उज्ज्वल शोभायमान उनदोनो पाखडियों पर २ अक्षर है वो २ अक्षर यह है:—ह, क्ष, ॥ इस चक्रका सफेद वर्ण है और शरद चन्द्रके समान देदीप्यमान परमतेज चन्द्रबीज अर्थात् ठ, विराजमान है इस बीजका पद्म सहित जो कोई पुरुष ध्यान करें उसको जो इच्छा करे सो प्राप्ति होय और जो कोई इस चक्रका निरन्तर ध्यान करे उस पुरुषको पेश्तर तो दीपकका धुपलासा प्रकाश मालूम होता है फिर चमकता हुवा दीपकरासा प्रकाश मालूम होता है और फिर सूर्य्यका सा प्रकाश हो जाता है और परमानन्द मयी होकर मनकी चञ्चलता मिटाय कर आत्म समाधिमे प्राप्त होता है यह चक्रोका स्वरूप कहा इन चक्रोंके ध्यान करणेका वर्णन श्री हेमाचार्य जी योग शास्त्रमे ऐसा लिखते है कि गुरुकी बताई हुई युक्तिसे नाभी हृदय और कण्ठ इन तीनों पद्मोंमे जो कोई वर्ण और बीज सहित १२ वर्ष तक ध्यान करे तो गणधरोंकी तरह द्वादशांगी रचे इस रीतिसे योगशास्त्रमें वर्णन कियाहै यह सर्व चक्रोंका जो ध्यान कहा सो राजयोगके अन्तर्गतहै । प्रश्न । सुखुमणा नाडीमेरुदंड द्वारा जहा ब्रह्मइन्द्र है उस स्थानमे गई है और इडा नाडी सुखुमणाके अपर आवृति आज्ञाचक्रके दक्षिण भाग होके वामनासा पुटमे गई है इसीको गंगा कहते है सो भेद हम अगाडी कह आये है ब्रह्मेन्द्रमें जो सहस्रदल कमल है उस पद्मके कंदमे योनिहै उस योनिमें विराजमान चन्द्र उससे अमृत सर्वदा ईडा नाडीद्वारा सम्भावसे निरंतर धारारूप गमन करता है इस हेतुसे इसके जानीकार पुरुष अर्थात् जोगीलोग इस ईडाको वदकवादनीभी कहते है और पिङ्गला नाडीभी कहते है और पिंगला नाडीभी उस आज्ञा कमलके वामभागसे दक्षिण नासा पुटको गई है इसीको जमुना भी कहते है और कोई असीली भी कहते है और मूलाधार पद्म चार पाखडीसे युक्त है उस कमलके कंद में जो योनी है उस योनी में सूर्य्य स्थित है उस सूर्य्यमण्डल से विष सदा पिंगलाद्वारा गमन करता है और इसी आज्ञा कमलमें नाद और बिन्दु शक्ति यह तीनों इस चक्र मे विराजमान है जो इस चक्रका ध्यान करे उस पुरुषको पहिले कहे हुवे चक्रोका जो फल पेश्तर कह आये है वह फलभी इस साधनसे सब प्राप्त हो जाते है और इसका अभ्यास करते २ वासनारूपी मायको निरादर करके आनन्द लाभकी प्राप्ति करना है धन्य है वह पुरुष जो इसका ध्यान करता है जो इस कमलका ध्यान करेगा वोही राज्यजोगका करणेवाला होगा इस आज्ञा पद्मके ऊपर तालूमूलमें सहस्रदलकमल शोभायमान है अर्थात् उसकी हजार पाखडी है ऐसे पद्म शोभायमान है उसी स्थानके ब्रह्मइन्द्र मे ले जायकर स्थित करना सुखुमणी सूक्ष्म तालु मूल अर्थात् कपाल मस्तकका जो ब्रह्म इन्द्र और नीचेकी जो वर्ते मूलाधारसे योनिपर्यंत जो सकल नाडी है । यह मुई [illegible] स्वरूप

मार्गकी अर्थात् आत्मस्वरूपकी दिखाने वाली जो सुखुमणा नाडी उसीके अवलम्बसे स्थित रहती है पहले मूभाधार मे जो पद्म है उसके कन्द में एक योनि पश्चम मुखी अर्थात् पीछे को उसका मुख है उसी मार्ग हो करके जो सहस्रदल कमल मस्तक में विराजमान है उसके जानेका मार्ग यह है और यह सुखुमणा नाडीके रिन्द्र में कुडलीनी सर्वदा विराजमान है इसके अन्तर्गत चित्रनाडी आदिके भी कई भेद हे परतु प्राणवायुके निरोध करनेसे सर्व नाडियोमेसे पूरण हो जायगा तव कुंडलीनी अपने बधको त्यागकर ब्रह्मरन्ध्रके मुखको त्याग देगी तब प्राण वायुके प्रभावसे सुखुमणामे होकर उस सहस्रदल कमलके ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित हो जायगी जो पुरुष इन रीतियोंको यथावत् गुरुके उपदेशसे प्राप्ती करके जो इन चीजोंका अभ्यास करेगा वो पुरुष जन्म मरणरूपी बधनोंसे छूटकर परम आनन्दको प्राप्त होगा परंतु इसके जानते वा इसकी कथा करनेसे कुछ न होगा इसालिये भव्यजीवोंको इसके अभ्यासमें परिश्रम करना चाहिये नतु जाननेमात्रसे सिद्धी अव जो असल राजयोगकी जो रीत उपसम श्रेणी और क्षप श्रेणी सो तो इस कालमें विच्छेद है परतु उसके ध्यान करनेकी जो रीति शुद्ध ध्यानादि जो चार पायेहे सो बहोतसे शास्त्रों में लिखे है और प्रसिद्ध है और नाममात्र देके स्वरूपमे जो हेय ज्ञेय उपादेय आदि उतारे हे उनमें किंचित् वर्णन कर चुके है अब हम जो आनन्दघनजीके इक्कीसवें स्तवनकी गाथा जो हम पेशतर लिख आये है उसका अर्थ किंचित् लिखते है मुद्रा कहतां उन मुनी आदि मुद्रोमें मुद्रा इनको जाने-(बीज) कहता जो हमने चक्रोंपर वायुओंके बीज कहे है उनको जाने (धारणा कहता) अक्षर समेत धारण करे किसीकी जो कमलोंपर हमने अक्षर कहे हे, (न्यास कहता) नाडियोंके अर्थको गुरुमुखसे जानकर विनयपूर्वक अर्थात् जिस गुरुने इनके शुद्ध अर्थ बताये हे उनके चरणकमलको स्मर्ण करता हुवा (योग कहता हुवा) उसमें योजना करे अर्थात् मनकी और पवनकी मुद्रा और बीज अक्षर आदिकोंकी एकता करके जो (ध्यावेकहता) जो इसकी साधना करे (ते नववाची जे कहता) उस पुरुषको कोई न ठग सके अर्थात् क्रोधमान माया, ईर्षा, लोभ, मोह राग द्वेषादि अथवा अष्ट सिद्धि आदिकोंसे जो उत्पन्न हो हर्ष आदि उसमें जो अहकार मद आदि वो उस पुरुषको नहीं ठग सकते इस लिये जो पुरुष इस ध्यानका करने वाला है वह पुरुष (क्रियावचक भोगेरे कहता) शुद्ध सुभाव स्वरूप भोगी होय नाम अपने स्वभावकी क्रिया करे नतु पुद्गलीक क्रिया अर्थात् पुण्यादिककी इच्छामे क्रिया न करे इस पदका अर्थ जैसे मेरी बुद्धिमें भ्यासा तैसा मेने कहा परतु कर्त्ताका अभिप्राय तो कर्त्ता जाने कि उनके अभिप्रायको ज्ञानी जाने किंतु मेने तो मुद्रा बीज इन अक्षरोंको देखकर अर्थ लिखा है इस करके भो देवानोप्रियो ! मेरी बुद्धिके अनुसार जो तुम लोगोंने पाच प्रश्न कियेथे उनका उत्तर उपदेश द्वारा दिया (प्रश्न)-इन ऊपरके चार प्रश्नोंके उत्तरके वाक्योसे यह प्रसिद्ध मालूम होता है कि आपका अनुभवसिद्धि है और आपकी अमृतरूपी वाणीसेभी व्याख्यानमे पक्षपात रहित वाक्य निकलते है क्योंकि वर्तमान कालमे ऐसा होना बहुत कठिन है परन्तु इस हठयोग और राज्ययोगके अन्तर चक्रोंकी महिमा सुनकर हमको आश्चर्य्य उत्पन्न होता है किन्तु कह

इस रीतिके अनेक खयाल मेरे दिलमे पैदा होतेहै और वर्तमान कालमे सिवाय स्पद्र
सहाय देनेवाला नही मिलता क्योंकि दुःख गर्भित मोह गर्भित वैराग्यवालोंने जो व्य
स्था कर रक्खी सो किंचित् तुमको सुनाता हू सो सुनो और इसी वास्ते मै कहता हू
मेरेमें साधुपना नहीं है अजी महाराज साहब ! इस बातको हमने लिख तो दिया पर
अब हमारा हाथ आगेको नही चलता और हमारे दिलमें ताज्जुब होताहै और आपसे अ
करते है सो आप सुनकर पीछे फरमावोगे सो लिखेंगे सो हमारी अर्ज यह है कि आप
वृत्ति लोगोंमें प्रसिद्ध है और हम प्रत्यक्ष्य आखोंसे देखते है कि आप एक दफा गृहस्थके घ
आहार लेनेको जाते हो और पानीभी उसी समय आहारके साथ लाते हो और एक प
रखते हो उसीमें रोटी, दाल, खीच, साग पात अर्थात् आहारादिककी सर्व चीजें स
लेते हो और एक दफे ही आहार अर्थात् भोजन करते हो और सियालेमे ऊनकी प
लूघडीसेही शीतकाल काटते हो क्योंकि बनात, कम्बल, अरण्डी लोकारादिका आपके त्य
ग है और पोथी पन्नाकाभी आपके सग्रह नहीं है अर्थात् बाचनेके सिवाय अपनी नेश्र
नही रखते हो और अक्सर करके आप बस्तीके बाहर अर्थात् जगलमे भी रहते हो और हर साल
महीने या दो महीने अथवा चार महीने जिस शहरमें रहो उस शहरके तोल (वजन) का १ प
सेर दुग्धके सिवाय और कुछ आहारादि नही लेते हो और जिन दिनोंमे दूध पीते हो उन दिन
सात दिनमें एक दिन बोलना और बाकी मौन रखना ऐसा भी महीना दो महीना चार मही
रखते हो और मौनमें ध्यानभी करते हो इत्यादि प्रत्यक्ष वृत्ति देखते है और प्राय करके और स
धुवोंमे नहीं देखते है फिर आप कहते हो कि मेरेमें साधुपना नहीं है इसमें हमको बहुत ताज्जु
होताहै ? (उत्तर) भो देवानुप्रियो ! यह जो तुम मेरी वृत्ति देखते हो सो ठीक है पर
मै मेरी शक्तिमुवाफिक जितना बनताहै उतना करता हू परन्तु वीतरागका मार्ग बहुत कठिन
कि देखो श्री आनन्दघनजी महाराज १४ वें स्तवनमें ऐसा कहते है कि—"धार तर्वारनी स
हली दोहली चौदमे जिनतणी चरणसेवा। धार पर नाचता देख बाजीगरा सेवना धार पर
न देवा" ऐसे सत्पुरुषोंके वचनको विचारताहू तो मेरी आत्मामें न देखनेसे और ऊपर लि
कारणोंसे और नीचे भी तुमको लिखता हू उन बातोसे मै अपनेको यथावत् साधु नहीं मानत
क्योंकि साधुका मार्ग बहुत कठिन है क्योंकि देखो प्रथम तो साधुको अकेला विचर
मना है क्योंकि श्री उत्तराध्ययनजीमे अकेले विचरनेवालेको पाप श्रवण कहा है सो
अकेला फिरताहू । दूसरे शास्त्रोमे आदमी सग रखनेकी मनाई है सोभी प्रथम तो मैने इ
देनसे असैधा होनेसे आदमी रक्खाथा परतु अबभी कभी २ आदमी साथ रखना पडता है
और तीसरे यह है कि गर्म पानी अक्सर करके साधुवोंके निमित्तही होता है। सो मुझको
वही पानी पीना पडता है। और चौथा कारण यह है कि मै सदामे अपना धारणा मुजि
वृत्त रखता आया हू और जब मारवाडमें मैने जावो जीवका समायक उच्चारणकी उ
समयमें इंद्रियोंके विषय भोगनेका त्याग किया परतु कारणसे किसी गृहस्तीको अप
कारण बता देना और जब मै किसी जगह मौकाके पडे अथवा ध्यानादिक करू तो मै ए
जगहसेही लायकर दूध पान करू और अन्नादिक न खाऊ क्योंकि पहले मुझको ध्यानक
परिचय था। और पाचवा अन्य मतोंके ब्राह्मण लोगोंसे विद्या पढने है तो उनको गृहस्थ

है धन दिवाना यह कोई व्रत मे बाकी नहीं रखते है और करते है परंतु मुझसे जहा तक बना अन्य मतके साधुवोंसे पढता रहा कि जिसमें धन न दिवाना पडे लेकिन अजमेर आनसे किंचित् धन पढानेके लिये दिवाना पडा यह पाचवा कारण है। इत्यादि अनेक तरहके कारण मुझको दीखते है इसी वास्ते मै कहताहू क्योंकि जिन आज्ञा अपनेसे न पले तो जो 'वीतराग' ने मार्ग परुपा है उसको सत्य २ कहना और उसकी श्रद्धा यथावत् रखना जो ऐसाभी इस कालमे बन जाय और पूरा साधूपन न पले तोभी शुद्ध श्रद्धा होनेसे आगेको जिनधर्म प्राप्त होना सुगम हो जायगा इस लिये मेरा अभिप्रायथा सो कहा क्योंकि मै साधू बनू तो नही तिरूगा किंतु साधूपना पालूँगा तो तिरूगा और जो शख्स जिन मार्गमें कपट वा दम्भसे अपनेमें साधुपना ठहराते है और बाह्य क्रिया बालजीवोंको दिखायकर अपने दृष्टिराग बाधकर उनलोगों मे अपना साधुपना ठहराते है वेलोग अपने संसारको बधाते है और वर्त्तमानकाल में अपनी २ जुदी २ परुपना करते है उस जुदी २ परुपना होने से लोगों का विश्वास धर्मपर नही रहता है और कई लोग जो पेश्तर जैनी थे सो वल्लभकुली रामसनेही, दयानन्दी, अर्थात् आर्य्यसमाज में होते चलेजाते है सो इसका कारण वर्त्तमान काल मे दुःखगर्भित, मोहगर्भित, वैराग्यका होना है, ये लोग उत्कृष्ट बनते हैं और उनकी जीभका लौल्यपना नहींगया क्योंकि कितने एकसाधु जगत् में उत्कृष्ट कहलाते है और उनके वाक्य ऐसे है कि जिससे ये लोग जीभ के लोलुपी मालूम होते है क्योंकि देखो ये लोग ऐसा कहते है कि साधु गोचरी को जाय उस वक्त में जो साधु के आहार होगया हो और किञ्चित् न्यूनहो फिर वो किसी भाविक गृहस्थ के घर में पहुँचे और वह गृहस्थीभाव से स्निग्ध सरस आहार ज्यादा वहरावे तो लेले और अपने मकानपर आयकर पेश्तर आहार करे तो वह सरस आहार खाय कदाचित् निरस आहार बच रहे तो उसे परटदे और जो वो निरस आहार पहिलेही खाय और पेटभर जाय तो सरस आहार परटनेसे जीवादिककी उत्पत्ति हो इस लिये सरस आहार पहिले करना ठीक है ऐसा जो कहनेवाले है सो जिनधर्मके रहस्यके अजान जिह्वाके लोलुपी मालूम होते है क्योंकि देखो शास्त्रो में ऐसा कहते है कि साधु गोचरी को गया उस गोचरी मे किसी गृहस्थने अनुपयोगसे सचित कच्चा पानी वहराया दिया और साधुको भी उस समय में उपयोग न रहा फिर वह उपासरे मे आया और उस पानी में उपयोग देकर देखा तो साधुके योग्य न जाना तब उस जलको ले जाय कर साधु उस गृहस्थके घर जायकर कहे कि भाई यह जल जो तुमने वहराय दिया सो हमारे योग्य नहीं है सो तुम लो जो ग्रहस्थ जानीकार समझवारहो तो उस जलको लेले कदाचित्त वह ग्रहस्थी ऐसा कहे कि मे तो आपको वहराचुका अब तो मै नही लेता तब साधु उस गृहस्थी को पूछे कि यह तालावका है या कुवे का है किस जगह का है जो गृहस्थी जगह बतादे तो उस जगह विधिपूर्वक परट आवे कदाचित् गृहस्थी कहे कि महाराज मुझको तो खबर नही तब तो साधु प्रासुक भूमि देख कर उसको परट आवे परतु अगीकार न करे और दूसरा जो गृहस्थी अनउपयोगसे करके अर्थात् शक्करके बदले लोण पिसा हुवा लायकर साधुके पात्रा में वहरायदे और साधुको भी उपयोग न रहे तो साधु

उस लोणको आप खाय पानी घोल कर पीजाय अथवा बहुत हो तो समुदायके साधुवोंको खवावे अथवा पिलावे परन्तु उसको परटे नहीं कदाचित् लोण न खपे तो शास्त्रकी विधि पूर्वक उसको परटे तो देखो इस जगह जिन वचनका विचार करना चाहिये कि भगवान् ने कच्चे सचित जलको तो परटना कहा और सचित लोणको खाना वा पानी में घोलकर पीना कहा तो देखो सचित तो दोनों वस्तु है तो एक का अंगीकार और एक नहीं इसका कारण यह है कि जो वो सचित कच्चा पानी न परटे तो उसका फिर उपयोग न रक्खेगा और हर दफा ऐसाही पानी लाकर पीलेगा और जीभके लोलुप पनेके होनेसे चारित्रसे भ्रष्ट हो जायगा इस वास्ते भगवत्ने परटनेकी आज्ञा दी और लोण सचित खाने की आज्ञा दी इसका कारण यह है कि प्रथम तो लोणसी चीज खाने में ही कठिन पडती है दूसरे उसके खानेसे प्यास बहुत लगती है और शरीर में बहुत तकलीफ होती है इससे फिर वहलाने में बहुत उपयोग रक्खेगा इस रीतिसे भगवान् की यह आज्ञा है। अब देखो कि जब वह सरस आहार पेश्तर खायगा और निरस आहारको परटेगा तो उस सरस आहार खानेसे जीभका लोलुपी हो जायगा और सदा जहां सरस आहार मिलेगा वहां विशेष जायगा और ग्रहण करेगा क्योंकि वह तो जानता है कि सरस आहार में खालूंगा और निरस आहार में परट दूंगा ऐसा उसके चित में बना रहेगा और जो यह सरस आहारको परटे और निरस आहारको खाय तो फिर कदापि सरस आहार लेने में उपयोग शून्य न होगा क्योंकि वह जानता है कि सरस आहार विशेष ले आऊंगा तो मुझको परटना ही पडेगा इस लिये उपयोग रक्खेगा और न लेगा, अब जो कोई ऐसा कहते हैं कि सचिक्कण आहार परटनेसे जीवादिक की उत्पत्ति होनेसे भगवत्की आज्ञाभंगका दूषण लगेगा तो हम कहते हैं कि हे भोले भाई! तुझको अभी जिनआगमके रहस्यकी खबर नहीं है और तुमने गुरु कुलवास भी नहीं सेवा इस लिये तुमको ऐसी खसखसी उत्पन्न हो गई इस लिये हम तुमको रहस्यरूप बूटी देते हैं इसको पान करो कि देखो जिस रीतिसे भगवान्ने परटनेकी आज्ञादी है उस रीतिसे परटने में कदापि जीव उत्पत्ति और दूषण न होगा और जो ऐसा ही होता तो भगवान् परटने की विधि क्यों कहते इस लिये देखो साधु नदी उतरता है तो जो भगवान्ने विधि कही है उस विधिसे उतरे तो भगवान् की आज्ञाका विरोधक नहीं किन्तु आराधक है सो देखो जो एक दफा सरस आहार विधि सहित परटेगा तो उसको आहार लेने में हमेशा उपयोग रहेगा और पेटकी पूर्ति मुवाफिक आहार लेगा और जो वो निरस आहारको परटेगा तो जब उसको सरस आहार योग्य मिलेगा तब ही ले आवेगा और निरस को परट देगा इस वास्ते सरस को परटना और निरस को खा जाना यही ठीक है अब देखो ऐसी २ बातें भोले जीवोंको समझाय कर वे लोग उत्कृष्टे बनते हैं और दृष्टान्त क्या देते हैं कि भाई इस पंचम कालमें ऐसा हो रहा कि लोग गहला अर्थात् पागल हो रहे हैं जो उनके सगमें ऐसा न करें तो हमको लोग इस भेष में न रहने दें और अनेक तरह की लडाई, दगा, फिसाद करें सो वह दृष्टान्त यह है- "कि राजाके यहां एक पंडित आया उस समय राजा और दीवानके

सामने वह पंडित अपनी ज्योतिष देख कर कहने लगा कि हे राजन्! थोडेसे दिनके बाद एसा पानी पडेगा कि जो शख्स उस पानीको पीवेगा वह गेला हो जायगा इस वास्ते पानीका पहले बदोबस्त करना चाहिये कुछ दिनके बाद फिर दूसरा पानी बरसेगा तो उस पानीके पीनेसे लोग फिर अच्छे हो जायगे और गेलपन मिट जायगा सो हे राजन्! इस वास्ते पानीका बदोबस्त अवश्यमेव करो यह मेरा जो ज्योतिषका वाक्य है सो झूठ कदापि न होगा ऐसा कह कर ज्योतिषी तो चला गया राजा और दीवान ने सलाह करके सब रैयतको हुक्मदिया की पानीका सग्रह करो और राजा और दीवानने भी पानीका सग्रह बहुत किया और रैयत से भी बहुत सग्रह कराया और सब से कहदिया कि यह पानी जो अबके बरसेगा उसको कोई मत पीना जो पीवेगा सोही गेला होजावेगा, फिर कुछदिनके बाद पानी तो बरसाही सो कितने ही दिनतक प्रजाने बह नरसे हुये पानी को न पिया परन्तु अन्तको जो प्रजाने पानी संग्रह किया था सो सब खर्च होगया आखिर को वह बरसातका पानी लोगों को पीनाही पडा उस पानीके पीतेही लोग गेले होने लगे यानी गेले होगये जब राजसभा मे वे लोग नाचने लग धूल फेकने लगे तब राजा और दीवान लोगों से ऐसा कहने लगे कि तुम गेलेपनेकी बातें क्यो करते हो उस वक्त लोग कहनेलगे राजा और दीवान दोनो गेले है इस राजा और दीवानको उतारो और दूसरा राजा और दीवान बिठलावो और इन दोनोंको मारो उस समयमें राजाको दीवान कहने लगा कि महाराज कोई उपाय करो नही तो जान जावगी उस वक्त राजा उस दीवानसे बोला कि भाई क्या उपाय करे तब यह दीवान बोला कि महाराज आपने भी ऐसेही बनो तब तो जान बचजायगी तो राजा और दीवान दोनों ने विचार कर अपनी जान बचानेके वास्ते कपडे फेंक दिये नगे हो गये, ताली बजाने लगे, तो वे दोनों शख्स राजा और दीवान जान कर गेले हुये। इस दृष्टान्तका वर्तमान आलम सब कोई देखतेहे अर्थात् अपनेको तो राजा और दीवानकी बतौर जान गेला बतातेहे और दूसरोंको अनजान गेला बनाते हे और लोगोसे कहतेहे भाई ये लोग बहुत हे ऐसा न करे तो हमारा बिलकुल चारित्र न पले इस रीतिसे भोले जीवोंको दृष्टिरागमें फँसाय कर आप मौज करते हे जब उन भोले जीव गृहस्थियोसे जियादा दृष्टिराग फँसजाय तब उन लोगोंके हृदयमें अनेक अनर्थोका हेतुरूप सल गेरदे कि जिससे वो सत् पुरुष आत्मार्थी हो उसके पास न जासके कदाचित् वो उस आत्मार्थीके पासभी जाय तो वो धोकेरूपी जो सल बैठा हुवा है उस सलसे सत्तरूप 'स्याद्वादवीतराग' के मार्गकी रुचि उस पुरुषको न होसके सो दृष्टान्तसे दिखाते हे–जो 'महानसीत' के चौथे अध्ययनमें है (नागील सोमछका अधिकार है वहासे जान लेना) क्योंकि सुगुरुका मिलना बहुत कठिण है कदापि सुगुरु मिले तो भी उसकी सगती होना बहुत दुर्लभ है सो दृष्टान्त यह है.–कि एक राजा भद्रक स्वभावका था परतु वह पढा लिखा तो था नही किन्तु भद्रकपनेसे सबकी खातिर करता था जो कोई पडित विद्वान् आता उसकोही अपने घरमें बुलाता और अनेक रीतिसे उसका सत्कार करता दो चार महीना रखकर फिर यह विद्वान् कही जानेकी इच्छा करता तो उसको दो चार पाच हजारका धन देकर विदा करता इस रीतिसे सैकडों विद्वानोंकी

इच्छा है तो इन सब बखेडोंको छोडकर शुद्धमार्ग वीतरागको अंगीकार करके अपनी आत्माका अर्थ करो और ऊपर लिखे कारणोंसे मै अपनेमें यथावत साधुपणा नहीं मानताहू क्योंकि श्री यशविजयजी महाराज अध्यात्मसारमें लिखते है कि जो लिंगके रागसे लिंगको न छोड सके वो समवेगपक्षमे रहे निष्कपट होकर जो कोई शुद्ध चारित्रका पालनेवाला गीतार्थ आत्मार्थी निष्कपट क्रिया करता हो उसकी विनय वियावच भक्ति करे सो मेरेभी चितम यही अभिलाषा रहती है कि जो कोई ऐसा मुनिराज मिले तो मै उसकी सेवा टहल बदगी करू नतु ! दभी कपटियाके साथ रहनेकी इच्छा है और जो श्री जिनराजकी आज्ञा सयुक्त साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका उस चतुर विधिसघका दासहू और जिनधर्मके लिंगसे मेरा राग होनेसे मै अपनी हठाई करके भाडचेष्टासे कृतराकी तरह पेट भरताहू और मै मेरे म साधुपना नहीं मानताहू क्योंकि वीतराग का मार्ग कठिन है सो मेरे मे नहीं है और मै ऐसा भी नहीं कहताहू कि वर्तमानकालमें कोई साधु साध्वी नहीं है क्योंकि श्री वीर भगवान्का शासन छेहले आरे तक चतुरविधसघ रहेगा और जो साधु साध्वी भगवत्की आज्ञाम चलनेवाले है उनको मै वारम्वार त्रिकाल नमस्कार करताहू परतु मै जिनमार्गकी धोलना करने और शुद्ध शुद्ध जिनमार्गमें प्रवृत्ति होनेकी इच्छा करताहू सो भी देवानुप्रिय वो ! जो तुमने सदेह किया सो मने हाल कहा और तुमभी अपने चितमें विचार करो कि जो मैने तुम्हारेको समायक चैत्यवन्दन वा काउसग्गकी रीति बताई है उस रीतिसे जो तुम्हारा दिल अर्थात् मनका ठहरना होता होगा सो तुमको मालूम है मै तुमसे क्या कहू और नौकारका गुनना मेने जो रीतिसे बताया है उसमें जो तुम्हारा मन ठहरता है सो तुम्हारी आत्मा जानती होगी या ज्ञानी जानता होगा सो तुम अपने दिलमें आपही विचार करलो औरभी देखो जो मने तुमको हठयोगमें नौली वस्तीकर्म आदि कराय है सो उसका अनुभव तुम्हारी आत्मामें होगा परतु मेरेम चक्राके वर्णन माफिक तुम्हारेको न दीखा सो उसका कारण मै ऊपर तुमको लिखाय चुकाहू और अब जिस किसीको इस लिखानेमें सदेह उत्पन्न होवे वह शख्स इस चतुरविध सघके दास क्षुतरेके पास आवे और कुछ दिन स्थित करके आजमाइश करे जैसा कुछ हाल होगा तैसा उसको मालूम हो जायगा परतु योग्यता देखनेसे जो ऊपर लिखी बाते है उनको बता सकताहू मे नम्रतापूर्वक सज्जनपुरुषोंको अर्ज करताहू कि जिसकी खुशी हो वह मेरे पास आवे जो गृहस्थी होगा उसको दश बातोंका त्याग करायकर जोग्य देखकर बताऊगा और जो जिनमतका लिंग धारण किया हुवा पुरुष होगा उसको निष्कपट गच्छादिकके भी मतसे रहित देखूगा तो बताऊगा यह मेरा कहना नम्रता पूर्वक है नतु अभिमानसे । (प्रश्न) आपने जो अपने मध्ये कारण लिखाये सो तो ठीक है परतु अब हम एक प्रश्न आपसे और पूछते है सो यह है कि जब हम किसी साधुसे कहते है कि महाराज साहब अपनेम यथावत् साधुपना नहीं बतलाते है उस वक्त वह साधु लोग कहते है कि स्वागभरकर बहुरूपियापनसे क्यों डोलते है क्या इस स्वागके विदून पेट न भरेगा । इस बातको सुनकर हम लोग चुप हो जाते है इसका उत्तर आप लिखाइये । (उत्तर) इस प्रश्नका उत्तर ऐसा है कि भाई स्वाग तो मैने भर लिया परतु बहुरूपियापन मुझसे न दरसाया गया इस जगह दृष्टात देकर

दार्ष्टांत समझाते है सो दृष्टान्त यह है-कि राजाके यहा एक बहुरूपिया स्वाग भरनेवाला आया उसने कहा कि मे बहुरूपिया हूं और स्वाग भरताहू सो मुझे इनाम देना चाहिये उस समय वह राजा कहने लगा कि जब तू स्वाग भरकर आवेगा और तेरे स्वागको मे पहचान लूगा कि तू फलानेका स्वाग करके आया है तो म तेरेको इनाम नही दूगा परंतु जब तू स्वाग करके आवे और मे तुझे न पहचानू कि तू बहुरूपिया है और तू उस स्वागको हूवहू अर्थात् ज्यों का त्यों चिह्न और लक्षणोंसे दिखाय कर मेरेको भुलाय देगा उस वक्त मे तेरेको इनाम दूगा और उसी वक्त मे जानूगा कि तू सच्चा स्वाग भरके रूपको दरसाता है उस वक्त तेरेको इनाम दूगा नही तो भाड चेष्टा करके जो रूप दिखावेगा तो इनाम नही दूगा ऐसा जब उस राजाने कहा उस रोजसे लेकर उस शख्सने कई महीना तक अनेक २ कई स्वाग किये परतु जब राजाके यहा जाता तो राजा कह देता कि तू फलाणेके स्वाग करके आया है तब वह लाचार होके अपने मकानपर चला जाता एक दिन उसने साधुका स्वाग करा और उसी रूपसे हूवहू वह चलता हुवा उस राजाके दरबारके सामने हो कर निकला और राजाने उसको दूरसे देखकर उसमें साधुपनेका चाल चलन देखतेही मोहित हो गया और उसके सामने आया और नमस्कारादि करके बड आदर सत्कारसे अपने मकान पर ले गया और ऊचे आसनपर बैठाकर और विनती करने लगा कि महाराज कुछ दिवस आप यहा ठहरो और मेरेकू उपदेश आदि देकरके कृतार्थ करो अर्थात् मेरा जन्म मरण मिटावो ऐसा राजाकी चेष्टा देखकर के पासके बैठनेवालोने राजासे इशारा किया कि हे राजन्! इस साधुके सामने धन आदिक रखके इसकी परीक्षा करो जो यह धन आदिको ग्रहण करेगा तो असल साधु नही और जो इन्होने धन आदि लेनेकी चेष्टा न करी तो ऐसे महात्माकी सेवामें रहना बहुत अच्छी बात है उस वक्त राजाने लाख दो लाख रुपयेकी जवाहरात बतौरे भेटके उनके सामने रक्खी और कहा कि महाराज आप इस भेटको अङ्गीकार करो और मेरा जन्म सफल करो उस समय उस धन आदिको देखकर और उस राजाकी बात सुनकर उस बहु रूपिया स्वाग भरनेवालेने साधूपना यथावत् दरसानेके वास्ते वहासे उठ खडा हुवा और उस भेटको तिरस्कार करके चल दिया उस वक्त रास्ता देखताही रह गया फिर वह शख्स थोडीसी दूर जायकर और अपने साधुपनेका स्वाग उतार कर राजाके पास आके मुजरा किया और कहा कि मुझे इनाम मिले उस वक्तमे राजा कहने लगा कि भाई किस बात-का इनाम मागता है जब वह शख्स बोला कि हे राजन्! थोडी देर पहले मे साधुका स्वाग करके आया था और आपने मेरेको नही पहचाना इस लिये मेरेको इनाम देना चाहिये उस वक्त राजाने इनाम दिया और कहने लगा कि जिस वक्त हम तेरेको इतना धन देतेथे क्यो नहीं लेके चला गया क्योंकि उस वक्त तो धन बहुत था इस वक्त तो तेरेको उस धनसे बहुत कम इनाम मिला है सो इस इनामसे राजी हो गया तब वह शख्स बोला कि हे राजन्! मैने उस वक्त मे किसका स्वागभरके रूप दरसाया था तब राजा कहने लगा कि तैने साधुका स्वाग भराया तब वह शख्स बोला कि हे राजन्! जब मैने साधुका स्वाग भरा था तो उस वक्त यथावत् साधुका रूप न दरसाता किन्तु भाडका

रूप ही जाता क्योंकि साधु आकिञ्चन अर्थात् परिग्रहके त्यागी है धन आदि को हाथ से भी न छूनेवाले है इस लिये उस वक्तका धन उस साधुपनेके स्वाग मे लेना ठीक नहीं था इस वक्त जो आपने मेरे को इनाम दिया है सोही लेना मेरे को ठीक है यह दृष्टान्त हुवा। अब इसका दार्ष्टान्त तो खुलासा है सो सब कोई विचार सक्ता है परन्तु तो भी किञ्चित् भावार्थ दिखाते है कि इस ससार में जीवने अनादिकालसे स्वाग भर रक्खा है उस स्वागके दो भेद है एक तो ससारी दूसरा पारमार्थिक सो जिस में ससारी स्वाग तो जीव जिस जोनि जिस गति में स्वाग लेकर जाता है उस गति उस जोनिका यथावत् रूपसे दरसाता है परन्तु जिसने पारमार्थिक स्वाग भर कर यथावत् स्वरूप दरसाया उनका ही कार्य्य सिद्धि हुवा अर्थात् मोक्ष हो गई परन्तु जिन्होंने स्वाग भरा और यथावत् रूप न दरसाया उनका पारमार्थिक कार्य्य अर्थात् मोक्ष न हुई इसी लिये शास्त्रो में कहा है कि ओघा मुह पत्ती लेकर मेरुके बराबर ढिगला किया परतु मोक्ष न हुई इसका यही कारण है कि स्वाग भर कर यथावत रूप न दरसाया गया सो मैंने भी स्वाग तो भरा परतु मुझसे यथावत् रूप न दरसाया गया इसवास्ते मे यथावत साधु भी न बना जैसा कुछ मेरे मे गुण अवगुण था सो जाहिर किया क्योंकि अपने मुखसे आपही साधु बननेसे कुछ कार्य्य की सिद्धि नही होगी किंतु निष्कपट होकर भगवत् आज्ञासे जो साधुपना पालेगा वह साधुही है और उसीका कार्य्य सिद्धिहोगा और मुझको यथावत कहनेका कारण यही है किजिस पुरुषको जिस वस्तु में गिलानी बैठती है और गिलानी बैठनेसे जिसकी उस चीजसे निवृत्ति होती है फिर उस पुरुषकी उस वस्तु में प्रवृत्ति नहीं होती सो मैंने भी अनादिकालसे झूठ, कपट, दभ, धूर्तता जो जो की हागी सो तो ज्ञानी जाने परतु इस जन्म मे जो मैंने धूर्तता, दम, कपट, छल आदि किये है सो मेरी आत्मा जाने या ज्ञानी जाने क्योंकि जो सात विषन सेनेवाले है उनसे कोई दभ, कपट, धूर्तता बाकी नहीं रहती सो मै अपने कर्मोको कहा तक लिखू परतु कुल धूर्तता दभ और कपट मुझ मे था सो जब मेरे शुभ कर्मका उदय आया तब इन चीजों में गिलानी बैठनेसे इनको छोड़ कर इस काम को लिया अर्थात् भेष लेकर धीरे २ स्याग पच्चक्खानको बढाता हुवा निष्कपट होकर करता चलता हूँ नतु ! किसीके उपदेश या सग सोहबतसे मैंने भेष अगीकार किया और मेरी बुद्धि और अनुभव म यही बैठा हुवा है कि जो काम करना सो निष्कपट होकर करना देखो श्री आनन्दघन जी महाराज श्री ऋषभ देव स्वामीके स्तवन में कहते है— " कपट रहित थई आतम आपनो " इति वचनात् । और जो कहा कि स्वागके बिदून पेट नहीं भरता है, सो ऐसे उनके कहने मे भे अपना बहुत उपकार समझ ता हू और उनकी यह शिक्षा मेरे हृदय में बहुत अच्छी है परन्तु मैं लाचार हू और निर्लज्ज हो कर पेट भरता हू और जब यह मसल " दोनों दीनसे गये पाडे हलवा भये न माडे " याद आती है तो बहुत पछताना हू और अपने मूर्ख मनसे कहता हू कि रे दुष्ट ! दुर्गतिके जानेवाले न तो तू गृहस्थीपनेका रहा और न यथावत् साधू ही बना क्याकि कहा करते हे " गृहस्थके टूकडे बडे २ दात । भजन करे तो उबरे

नहीं तो फाडें आत " ॥ और जैन मत में भी अध्यात्म कल्पद्रुम में लिखा है कि जो गृहस्थके माल खाते है और भगवत् आज्ञा नही पालते और अपने मे साधुपना ठहराते है वह अगले जन्म मे जाकर उन गृहस्थियोंके गाय, भैस, ऊंट, घोडा बन कर बदला देंगे सो मे जानता हू कि मुझको भी बदला देना पडेगा सो इससे भी लाचार हू दूसरा मेरा गृहस्थीपन भी न रहा सो मैं आप ही पछताता हू परतु क्या करू जो मे इस भेषको छोडूँ तो मेरे को गृहस्थी अर्थात् जाति में तो कोई बैठने दे नही सो अब गृहस्थीपने का तो रहा नही एक तो यह दूसरा यह है कि मैं इस भेष को छोड कर पेट भर सकता हूं परतु मुझको कोई नही जानता कि कौन जाति, कौन देश, किसका बेटा और कौनथा किंतु मेरेको इस स्वागके भरनेसे अर्थात् जैनका लिंग लेनेसे जैनी समझतेहै और स्वमतमें तो मेरी प्रसिद्ध कम है परतु परमतमें सन्यासी, बैरागी, कनफटा, दादूपन्थी कबीरपन्थी निर्मले, उदासी जो कि उन मतोंके अच्छे २ महात्मा और विद्वान् वाजते हे उन लोगोंसे मेरी मुलाकात अर्थात् वार्तालाभ हुई है और मैने उन्हीके परार्को प्रमाण देकर उनके घरकी न्यूनता दिखायकर और जैनी उन लोगोमें प्रसिद्ध हो रहा हूं दूसरे हठयोग वालोंमेभी मेरी प्रसिद्धि है इस वास्ते जो मे इस स्वागको छोडू तो मेरी तो कुछ हँसी नही है क्योंकि मुझको कोई नही जानता है किंतु इस जिन धर्मके प्रभावसे मे जैनी २ करके प्रसिद्ध हू इस लिये मे इस लिङ्गको छोड नही सकता क्योंकि वो लोग जब मुझसे वात करतेथे उस समयमें वे कहते कि तुम जैनी क्यों हो गये तुम तो हमारे मतमें होते तो बहुत अच्छा होता उस वक्तमें मे उनको जवाब देता कि इस वीतराग सर्वज्ञका मार्ग स्याद्वाद चिंतामणि रत्नको छोडकर तुम्हारे काचरूपी मतको कदापि अंगीकार न करू ऐसा उनसे कहता था इस लिये अब इस धर्मके लिङ्गको छोडनेमे वे लोग हँसीकरे, उस धर्मकी हँसी से लाचार होकर नही छोडसकता और जो वेलोग मेरे मध्ये ऐसा कहते है तो मैं अपना उपकार मानताहू क्योंकि वे लोग ऐसाही हरेक श्रावक तथा हर जगह ऐसाही कहते रहेंगे तो गृहस्थियो की आमदरफ्त मेरेपास कमरहेगी और ग्रहस्थियों की आमदरफ्त कमहोने से मुझे उपाधि कमहोगी क्योंकि गृहस्थियो को जियादा आने से अनेक तरहकी उपाधि पैदाहोती है इसलिये जो वे ऐसा हमेशा कहते रहगे तो मे बहुत राजी रहूगा और जो तुमने कहा कि हम सुनकर चुपहोजाते है सो तुम्हारा चुपहोना बहुत अच्छा है क्योंकि जैसा मे करताहू उसीमाफिक वे लोग कहते है कदाचित् जो तुम मुझसे दृष्टिराग रखकर प्रवृत्ति मार्ग देखकर उनको किसीतरह का उत्तरदेवे तो ठीकनही है क्योंकि मेरा तुम्हारा धर्म सवन्ध है नतु दृष्टिराग जो मैने तुमको वीतराग के धर्म का उपदेश दिया है उससे यथाशक्ति आत्म विचार करके मिथ्यात्वरूपी अपने घरका काज निकालो नतु वाद विवाद से सिद्धि होगी कदाचित् जो तुमको इस वर्त्तमान कालकी यथावत् वात सुनने की इच्छाहो तो मैने मेरी बुद्धि मे जिन आज्ञा मोक्ष प्रकाशमान ग्रन्थ रचा है जो तुम्हारे को फुरसतहो तो मे तुम्हारे को लिखादूगा उस ग्रन्थसे तुम्हारे को अच्छीतरह से बोध होजायगा और भी भव्यजीवों

को उपकार होगा जो तुम्हारी इच्छा है तो लिखलेना इसलिये ऐसे प्रश्नो के झगडे छोडकर किञ्चित् अब अध्यात्म सुनाताहू सो सुनो:—

झूलना ॥

चिदानन्द तो साध अब घरे बैठा अधिकोठड़ी कहो किम जाऊंगाजी ॥
लहूं नाम उसका धरूं ध्यान दीपक घट वीच में खोजने जाऊंगाजी ॥१॥
श्रद्धा सरायके वीच बैठू पिछला भोग सारा भुगताऊंगा जी ॥
मारू चार दुश्मन पर हाल करके समभाव को खैंचकर लाऊंगाजी ॥ २ ॥
मिलीथी नार मुझको जिन दु:ख दीना उसे दूरकर दूसरी व्याहूंगा जी ॥
मिला अब आनके भ्रात मेरा लीना आलब अर्हत गुण गाऊंगा जी ॥ ३ ॥
मिलेगी काल लब्धी जब आन मुझको अपने चितको आप समझाऊंगा जी ॥
देखूं रूप अपना सब भ्रम जावे चिदानन्द आनन्द जब पाऊंगा जी ॥ ४ ॥

कुंडली—गुरुकी कृपासे मन ठहरनेकाभेद:—

करसे जपे सो चूतिया मुखसे जपे सो कूर ॥
अजपा जाप जपावतां वही सत भरपूर ॥
वही संत भरपूर समझ गुरु बानी लीजो ॥
आतम मिलना चाहे दूर आशा तज दीजो ॥
सब मतका यह भेद गुरु जिन पूरा कीजो ॥
ज्ञान सुधा रस देख चिदानन्द मतको लीजो ॥ १ ॥
'अरह' अक्षर अन्तका 'सोह' अक्षर आदि ॥
ऊंकार ध्वनि जोड़कर संतो करो विचार ॥
संतो करो विचार शब्द और ध्वनि मिलावे ॥
करे पवन मन सघ इसी मे प्रेम लगावे ॥
खोल दिया सब भेद इसे अब जो कोई धावे ॥
चिदानन्द यह भेद अनुपम मुक्ति पदको पावे ॥ २ ॥

काफी ।

टेक—आज आनन्द वधाई सखी तू अति सुखदाई ॥
पर घर रमवा चाल पियाकी खेलत उमर गमाई ॥

आज उलट घर आवत पीतम ॥
सुनत खबर हिये अति हुलसाई मोतियन चौक पुराई ॥१॥ सखी०॥
इंगला पिंगला घर तज भागी ॥
सुखमण श्रुत लगाई तिखैनी तीरथ कर प्यारी अजपा जपत सवाई ॥
हृदय मेरे अति हुलसाई ॥ २ ॥ सखी० ॥
नागन मुख मार्गको अचरजमो मुख वर्णि न जाई ॥
चिदानन्द संग खेलत मेरे जन्म सफल भयो माई ॥
जगत विच कीर्ति छाई ॥ ३ ॥ सखी० ॥

राग कल्याण ।

टेक–हो अवधू क्यों तू भरम भुलाना ॥
चेतन नाम अनादि तेरा जड़ संगत सुध विसराना ॥ हो०
वहरात्म तज अंतर आतम सो परमातम पहचाना ॥ हो० ॥
सुख स्वासा संधि कर प्यारे जोरवे कर्म करे सोई दाता ॥ हो० ॥
जन्म मरण नहीं काऊ कालमे इन्द्रि विच्छेद दुःख कर माना॥ हो०॥
चिदानन्द देखे जब मूर्ति अजपा जाप जपाना ॥ हो० ॥

राग वसंत ॥

टेक–आज ऋतु आई है वसंत । पारस दरस देख चित संत ॥
आवत जात गुलाल उडावत सुरत पिचकरा दंग ॥
मन अबीर ऊपर सूंदेकर अक्षर खेल अनंग ॥ आ० ॥
हृदय कमल विच प्राण पियारा मलो उसीका अंग ॥
अजपा धार जमुनकी छोडो ऊपर छोडो गंग ॥ आ० ॥
वहां सूं चलत गली में खोजत नाभी पास भुजंग ॥
उसके मुख मार्ग में होकर अधर्म रूपी भंग ॥ आ० ॥
ब्रह्मेन्द्र आपुका पाला आसन धर सखियोके संग ॥
चिदानन्द समुता संग खेलत खेलत खेल अवंग ॥ आ० ॥

होरी खम्मांच ।

टेक–समझ खेलो ऐसी होरी । मिटे जामें आवागवनकी डोरी ॥

इगला पिंगला तज पिचकारी सुखमण काठी गहोरी ॥
तिरेनी भूमिके ऊपर अनुभव रंग भरोरी ॥ १ ॥ हो अ० ॥
ज्ञान गुलाल उडत जहाँ प्यारो दर्शन चरण सरोरी॥
नाभि पास कुंडली नाडी अजपा माजूम चरोरी ॥ हो० ॥
ब्रह्मरन्ध्र मध्य प्याला पीके आनन्द अमल चढोरी ॥
चिदानन्द ले शुद्ध चेतना मुक्ति पद जाय वरोरी ॥ २ ॥ स० ॥

विहाग।

टेक–चिदानन्द विन तरस रही अँखिया, दरशन करन चलो सखियां ॥
पीतम पद पंकज मे जाऊं जैसे गुड़ बैठे मखिया ॥
भ्रमत फिरो पिया परनारी सूं जाकारण वो अति दुखियां ॥ १ ॥
भटकत देरा तरस मोहे आयो करत जतन मे नहीं रखियां ॥
घूंघट पट करूं नैन निजारा आवे घर समगत परखियां॥२॥चिदा०॥
लट पट लिपट कर ध्यान शुकलका ऐसा रस कस नवी चखियां ॥
अनुपम रूप दरश छवि निरखी चिदानन्द आपालखियां ॥ ३ चि० ॥

रागपावस ।

टेक–अनुभवकी वदरिया वरसे, आनंद मगन चित घनसे ॥
आवत जात पवन पुरवैया, सुरत गगन जहां गरजे ॥
मन मयूर जव कूकन लागे अजपा बिजली तरजे ॥ १ ॥
हृदय सरोवर कमल खिलो जहां चन्द्र सूर्य्य गये डरसे ॥
अनहद शब्द पपीहा वोलत सुखमन रहत घुमरसे ॥ २ ॥ अ० ॥
नाभि पास झाड शक्तका चिह्न कहे सव तनसे ॥
चिदानन्द लिये शुद्धचेतना सैर करत वा वनसे ॥ ३ ॥ अ० ॥

कालगड़ा।

टेक–इस पदका करो कोई लेखा हो अवधू अजव खेल हम देखा ॥
एक नदिया वहु पक्षी निकले संग गुरू चेला मिल भेला ॥
जो चेला गुरु शिक्षा माने जग चुन रहे अकेला ॥ हो० ॥ १ ॥

मात पिता विन जन्म मरण एक त्रिया गगन विच ठाढ़ी ॥
विरले कामी जा भोग करे और काम भोग संसारी ॥ अ० ॥ २ ॥
गगन मंडल विच गऊ व्यानी धार गगन ठहराई कोई ॥
एक विरला माखन खाया छाछ जगत् विच छाई ॥ ३ ॥ अ० ॥
गगन मडल विच अद्भुत कूवा, चार खड़े रखवारे ॥
पकड़ २ दे गोता सबको सूर देख चुप हो विचारे ॥ ४ ॥ अ० ॥
गगन मडल विच नैयातैरे जल अमृतसे जारी ॥
कोई एक सुगरा भर२पीवे नुगरा प्यासा फिरे गिरे मझ धारी ५ अ०६
बीज विना किम् वेल वेल विनतोंवा विन जाणे गुण गाया ॥
गानेवालेका रूप न देखा सतगुरु सोही वताया ॥ ६ ॥ अ० ॥
आतम ज्ञान वितान जणावे अजपा सोहं संग श्वासके लावे ॥
उलट देख घट अन्तर अपने जद चीने जद चिदानन्द पद पावे७अ०

राग आसावरी—उलटी वाणीका पद।

टेक—है सीधी कहनेमे उल्टी कोई ज्ञानी अर्थ लगावेरे।
जो इस पदको समझे बूझे फिर जगत् नही आवेरे ॥
धरती वरसत देखी मैने धार गगन ठहरावे ओलाती ॥
उलट वही जाती मगरेसे जाय गिरावेरे ॥ १ ॥ हैसी० ॥
तरगागर ऊपर पनिहारी जल भर घरको जावेरे ॥
धुवां वरत धुंधाती अग्नि पौने हारीको रोटी खावेरे ॥ २ ॥ हैसी०॥
नाव वीच नदिया जहां वहती यह अचरजमो आवेरे ॥
लोहा तिरत रुई जहां डूबत चूहा विल्लीको मारेरे ॥ ३ ॥
वकरी जाय सिंह धमकावत पंगु मेरु चढ जावेरे ॥
चिदानन्द अचरजकी वतियां गुरु विन कौन लखावेरे ॥४॥हैसी० ॥

वर्तमान कालकी व्यवस्थाका पद, राग भैरवी इकताला ॥

टेक—अजित जिन तेरी गती क्या कोई विचारे।
ज्ञानविन चरण सेव कैसे कोइ धारे॥

पुरनता द्रव्य रुचि जीवतो नवीन तैसे उपदेश करें ॥
भाव रुची कहो कैसे कर सभारे ॥ १ ॥ अ० ॥
गच्छोके भेद कहत, कर्म मिथ्याके लपेट बहुत ॥
स्याद्वाद नेम कहो कैसे कर पारे ॥ २ ॥ अ० ॥
दृष्टिका राग करत तहां समगत विचार कहत ॥
आना विन करत काज आतमको विसारे ॥ ३ ॥ अ० ॥
श्रद्धा विन चरण ज्ञान क्रिया सब करत अजान ॥
जैन नामको धराय कहो कैसे करतारे ॥ ४ ॥ अ० ॥
तत्व आगमको छन्द करत मिथ्या प्रपच ॥
बहुजन सम्मतिको दिखाय अनेक भेद डाले ॥ ५ ॥ अ० ॥
अध्यातम सार देख वाचक जस विजय वचन ॥
ज्ञान वैराग्य विन करे पन्थ न्यारे ॥ ६ ॥ अ० ॥
गुरु शिष्य कथन भिन्न जैन धर्म छिन्न २ गाडर ॥
प्रभाव लोग आतमको न सारे ॥ ७ ॥ अ० ॥
तथा विधि शुद्ध गुरु विना उपदेश होत ॥
मानव पिण आपना आप जन्म हारे ॥ ८ ॥ अ० ॥
श्रद्धा बिन जैन धर्म जिम धारपर लेप होत ॥
किञ्चितना विचार ससार बहुतलारे ॥ ९ ॥ अ० ॥
चिदानन्द उत्तम पद जान उपदेश देख ॥
अनुभवकी बात करे मोह फदसे किनारे ॥ १० ॥ अ० ॥

अर्जी—राग देशी ।

टेक—सुनो नाथ श्री मन्दिर स्वामी यही अर्ज हमारी ।
भरत क्षेत्र जिन लिंगी साधु आज्ञा न माने हो तुम्हारी ॥
भई व्यवस्था नाथ सुनो तुम ज्ञान भई घट २ की लेवो विचारी ।
व्यवहार करत निश्चय वन जावे सो आतम हितकारी ॥ १ ॥
कपट किया व्यवहार करे जो ऐसी करनी करे नहीं वो तारी ॥
अगारस मुनिराज किया सब करतो श्रद्धा विन आचारज दियो हो उतारी॥२

आरज देश नाम इम करनी मम आतम तुम चरण कमल आधारी ॥
लब्ध नहीं वैक्रे की क्रिया नही कोई देवत आज्ञाकारी ॥३ सु० ॥
शहर देस उत्कृष्टे बनकर लेत आहार दोप सब टारी॥संग आदमी
रहे अदत्ता तीन लेत वे देव गुरु और जीव अदत्ता सारी ॥ ४ ॥सु०॥
घर छोड़ा रंगरेज बने अब उदर भरण हितकारी ॥
पीलेमेपासते बहु अब उदक्रष्टे रंग कौन निकारी ॥ ५ ॥ सु० ॥
नसीत आगमकी देख चूरिणीरंग पात्र वस्त्र कारण अनुस्वारी ॥
लोद धूल रंग तेल सात कहे त्रिस जीवकी हिसा देखानेरी॥६॥सु०॥
जिस साधुके जुआं पड़े बहु जिस कारण हो रंगे सोई ये धारी ॥
कत्था चूना केसर रंग कर किस आगम हो साख तुम्हारी॥७॥सु०॥
वचन उथापन करे प्रभूको बहुल होत संसारी ॥
पक्षपात तज समगत धारो चलो सर्वज्ञ वचन अनुसारी ॥८॥सु०॥
गच्छ नाम समुदाय कह्यो छे समाचारीथी एक करो अबन्यारी ॥
सूत्र सरीखो धर्म नही कोइ उत सूत्र नरक ले डारी ॥ ९ ॥ सु० ॥
कमलप्रभा आचरज केरो सत बचन कहे एकही भव अवतारी ॥
मिश्र वचन कह नरक गयो वो थापो हो अवझूंठ गति क्या होय तुम्हारी १०॥
धावे न रंग न मने जिनकीयो आगम अचारंग लेओ विचारी ॥
वस्त्र धोय साधू जो पहरे होय विराधक वह साधू व्यभिचारी ॥११॥ सु० ॥
आगम सुगडग वचन इम भापो जो धोवो सो साधु पद नही धारी॥पग धोवत
स्नान कह्यो किम आगम रंजन कर क्यो कपट क्रिया करो भारी १२ सु०॥
निविधि २ कियो त्याग साधुने मंदिर आप बनाय त्याग किम पारी ॥
श्रावक उपदेश दियो जिन वरजी मंदिर निरजरा हेतु सुखकारी॥१३॥सु०॥
गृहस्थ कृत साधु जब कीनो इन्द्रीको कर भोग द्रव्य लियो धारी ॥
चद्र सरीखो धर्म तुम्हारो सो चलनी कर डारी ॥ १४ ॥ सु० ॥
परम परादई लोप अनादि करत विवाद अर्थकरे न्यारी ॥
समेगी जती ढुंढ सब मिल कर गच्छ वांध टोला कर राह विगारी॥१५॥सु०॥

शुद्धाशुद्धपत्र.



पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध
२	७	द्वेष	दोष
,,	१०	लिवाते हे	लिखाते हे
२	१४	हम इस साधू	हम कहते
५	३१	बस्ती	वसतिसे
,,	,,	आरा	ऑर
८	२१	रस	रसो
,,	३४	जाव	जानो
,,	,,	कराता	करता
९	७	वहा	विद्या
,,	११	कराने	करने
१०	२५	प्रमाणु	प्रमाण
,,	२६	,,	,,
,,	३२	प्रमाका	प्रमाणका
११	९	वस्तु जुदी	०
,,	३	तो हम	,,
,,	४	से जुदी	,,
,,	५	जुदापदार्थकोईनही	,,
,,	१२	तो तुमको	,,
,,	१६	विषय	विशेष
१२	३	रीति	रिति
,,	६	तो हम	०
,,	१०	तो तुमही कहो	,,
१३	१८	और परमाणु	,,
१४	२	मत	मते
,,	२३	कुछ ज्यादा परमाण	०
१६	२०	पनघट	पयाघट
,,	२५	कपालों	कापलो
१७	३१	से	सो
१८	२	स्वरूपसे	०
,,	५	प्रमाणु	प्रमाण
,,	२१	पूछेगे तो	०
१८	३२	मानो	सानो
२०	५	मानना	मानाना
२१	८	व्यर्थ	अर्थ
,,	१६	वायन	०
,,	२८	लोको	लोलां
२२	२	तैत्तिरी	लैत्तिरी
२३	२०	सिद्ध	निद्ध
२५	३५	किन्तु	किनु
२६	३३	स्वभाव	भाव
२७	२६	धारण	धारय
२८	२०	जल	यल
,,	२१	,,	,,
३०	१६	अनादि	अना
३५	२६	निरानिमित्त	निमित्त
३७	२	चेतनाश्रत	चेतनात्
,,	९	वाध	बोध
४१	२०	वहाम्यहम्	वहाम्यम्
४३	३४	भय	भये
४८	३३	विशेषरूप	शेपरूप
५०	१५	आत्मा	अत्मा
५१	१०	यतिव्रत	पतिव्रत
,,	१३	,,	,,
,,	१९	यति	पति
५०	१२	जीव	जवि
५६	३४	मात्र	मान
६८	३३	ग्यारहवे	गेरह
८४	१०	वनादे	वनोद
८९	२६	पाद	क्रिया
९७	१	होय	हे

तुम विननाथ दुःख कौन खोवे यह विनती तुम सुनो आप उपकारी ॥ कर्म
कटाक्ष निर्बल मोयकीनो यह अर्जी तुम चरण कमल विच डारी ॥१६॥सु०॥
अज्ञान तिमर गति कर्म न जानू हो । हो ॥ करत हो नाथ पुकारी ॥
चिदानन्द विनती प्रभू धारो भेप लेन रख लीजो हो लाज हमारी॥१७॥सु०॥

अब इसजगह अन्तमङ्गल समाप्त होचुका शासनपति श्री वर्द्धमान स्वामी की परम्परा में सुधर्मा स्वामी से आदिलेकर बरावर चलते हुये कोटी गच्छ वज्र शाखा चन्द्रकुल खरतर विरुद्ध के धारण करनेवाले पाटानुपाट चले आये सो वर्त्तमान काल में भट्टारकों में दो गद्दी मौजूद है एक म तो श्री जिनमुक्तिसूरिजी वर्त्तमान मे विचरते हैं और दूसरी गद्दी में श्री जिनचन्द्रसूरिजी विचरते हे इन दोनो गद्दियों के अनुमान चारपांच पीढी के पहले श्री क्षीमाकल्याणक जी उपाध्याय के गुरुमहाराजने कृपा उद्धार करके पीतवस्त्र धारण किये उन श्री क्षीमाकल्याणक जी उपाध्यायजीकी परम्परा में त्यागी वैरागी श्री सुखसागरजी महाराज को बडी दिक्षा अर्थात् छेदो उपस्थापनी का गुरु मानता हुवा यथा नाम तथा गुण विक्तिभाव अर्थात् आविर्भाव करके रहित कोटीगच्छ वज्र शाखा चन्द्रकुल खरतर विरुद्ध मे चिदानन्दनामसे विचरता हू । जो तुमने मुझ से प्रश्न इस विषय में किये उनप्रश्नों का उत्तर मेरी बुद्धि अनुसार सम्वत् १९५० मिती कार्तिक शुक्ल ५ सोमवार के दिन अजमेर नगर में दिया अब जो इस में कुछ वीतराग की आज्ञासे ओछा अधिका मेरी तुच्छबुद्धि से निकलाहो तो श्री सघ अर्थात् साधु साधवी श्रावक श्राविका अथवा अर्हत सिद्ध साधू देव गुरु अपनी आत्माकी साख करके जो कोई भूलसे वचन निकला हो उसका मिच्छामि दुकड देताहू ॥ इति ॥

इति श्रीमज्जैनधर्माचार्यमुनिचिदानन्द स्वामिविरचिते स्याद्वा-
दानुभवरत्नाकरे पञ्चम प्रश्नोत्तर समाप्तम् ॥

शुद्धाशुद्धपत्र.



पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध	पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध
[illegible]	७	द्वेप	दोप	,,	२१	पूछेंगे तो	०
२	१०	लिवाते हे	लिखाते हे	१८	३२	मानो	सानो
[illegible]	१४	हम इस साधू	हम कहते	२०	५	मानना	मानाना
५	३१	वस्ती	वसतिसे	२१	८	व्यर्थ	अर्थ
,,	,,	आरा	और	,,	१६	वायत्न	०
[illegible]	२१	रस	रसो	,,	२८	लोकों	लोलों
[illegible]	२४	जाव	जानो	२२	२	तत्तिरी	लोत्तिरी
,,	,,	कराता	करता	२३	२०	सिद्ध	निद्ध
९	७	वहा	विद्या	२५	३५	किन्तु	क्नितु
,,	११	कराने	करने	२६	३३	स्वभाव	भाव
१०	२५	प्रमाणु	प्रमाण	२७	२६	धारण	धारय
,,	२६	,,	,,	२८	२०	जल	यल
,,	३२	प्रमाका	प्रमाणका	,,	२१	,,	,,
११	२	वस्तु जुदी	०	३०	१६	अनादि	अना
,,	३	तो हम	,,	३५	२६	निरानिमित्त	निमित्त
,,	४	से जुदी	,,	३७	२	चेतनाश्रत	चेतनात्
,,	५	जुदापदार्थकोईनहीं,,		,,	९	वाध	घोर
,,	१२	तो तुमको	,,	४१	२०	वहाम्यहम	वहाम्यम्
,,	१६	विषय	विशेष	४३	३४	भय	भये
१२	३	रीति	रिति	४८	३३	विशेपरूप	शेपरू
,,	६	तो हम	०	५०	१५	आत्मा	अत्मा
,,	१०	तो तुमही कहो	,,	५१	१२	यतिव्रत	पतिव्र
१३	१८	और परमाणु	,,	,	१३	,,	,,
१४	२	मत	मते	,,	१९	यति	पति
,,	२३	कुछ ज्यादा परमाण०		५२	१२	जीव	जवि
१६	२०	पनघट	पयाघट	५६	३४	मात्र	मान
,,	२५	कपालो	कापलो	६८	३३	ग्यारहवे	गेरह
१७	३१	से	सो	८४	१२	वनादे	यनोद
१८	२	स्वरूपसे	०	८९	२६	पादे	क्रिया
,,	५	प्रमाणु	प्रमाण	९७	१	होय	[illegible]

पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध
९९	३४	१०८	१०५
१०१	३	नो	तो
१०१	२४	नैगमनय	वैगमनय
,,	२८	अरे	और
१०२	१	दूसरा सर्व	०
,,	१४	लब्धिवान	लक्ष्मीवान
१०४	४	वेदनी	वदनी
,,	३१	सर्वज्ञ नहीं	सर्वज्ञही
१०५	७	चढे	चटे
१०६	१५	भाप	माया
,,	१६	टालने	डालने
,,	,,	लेते	लेतो
,,	१७	आर्दध्यान	आर्दध्यन
,,	२९	जिन	जिस
१०९	२८	अध्यवसाय	अवसाय
११०	५	का	कन
११२	६	काम	काय
,,	२०	होय	है
११४	२७	पर्याय	यथार्थ
११५	१७	नग्न	नाम
११६	३३	तान	तात
११७	७	२१०००	२१००
,,	३०	,,	३१०००
,,	८	तो नन्दी सूत्रमे कहे है कि ७२ आगम है तो तुम्हारे ३२ मानने कैसे बनेंगे और जो	
११८	‐	३१	६
,,	२४	कही	कहा
,,	३१	भनियो	भरगीओ
,,	३३	पचगी सिद्ध हुई और पत्ति ३८ पृष्ठ ११८ में सूत्रमें कहा है कि ७२ आगम है तो तुम्हारे ३२ माने कैसे बनेगे और जो नन्दीजीकी पचगी सिद्ध हुई यह पाठ छापखानेकी भुलसे लिखा गया	
,,	२६	आज्ञा विरोध,	अज्ञान विरोध
१२०	२४	योग	भोगों
१२१	१९	छन्द	बन्द
१२२	७	महापुन्नो	पुन्ने
,,	१३	गाजे वाजे	बाजे बाजे
,,	१५	गामान्तर	गडमा तर
,,	१९	मे	ने
,,	२१	कुछ	कुध
१२३	१७	ईसान	ईमान्
,,	२०	तयेण	तरुण
,,	२८	विहाए	विहारा
,,	२२	अज्ञथियये	अज्ञथिरा
,,	२३	पत्ताए	यत्ताए
,,	२४	इमेया रूव	इमे रूव
,,	२७	सूहमाएण	सूहमाराण
१२५	११	इसी वास्ते	इस वर
,,	,,	पशु	पूशप
,,	२४	अन्न	अतन्न
१२६	२	नोखलु	ठोखलु
१२७	७	अमूजे हुए	अपूजे हुए
,,	९	इरिया वही	ईर्या वही
,,	२९	जिणेहि	जिणेसि
,,	३१	सावध्य नही	सावध्यनन सही
,,	३३	परमाद	परमार्थी
१२८	४	गोयमा	गोपमा
१२९	३५	जल	जूल
१३३	२९	कराना	■
१३४	१४	सिज्झाय	शिपाय
,,	२८	क्रिया	क्रिया कृपा
१३५	१३	करेमि भते	केरामी भते
१३५	१४	पचखामि	पच्छखात्रि

पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध	पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध
१३५	२२	नव तत्व	भवतत्व	१८२	४	ऐसा	ऐनसा
"	३५	ऐसाही	इसाहा	"	२४	ओधान	क्रोधान
१३६	२६	वोसरामी	वोसरापी	१८३	१४	ठहरा दूसरा	दूसरा ठहरा
"	३२	काउसग्ग	काउ सगटा	"	२८	२	२०
१३७	१२	वामपासे	वामगणे	१८४	१	रमणता	इणमता
१३८	२	नायक	नामक	१८६	६	संमूढ नय	रूढसविनय
१३९	३	आषाड़	अमड	"	१८	यो	को
१४२	५	१२८५	११८५	१९०	८	पाप	पके
"	३४	उसी	उसी	१९२	२	कोला	कोमिला
१४३	६	सुविहित	सुविदित	"	५	सिज्झाय	सिद्याय
१४४	९	मतियों	प्रतियों	१९७	८	भंवर	मगर
१४६	१३	ढूंढ	बूढ	"	२६	ख्यातिको	ख्याति
१५०	२७	४२	४	१९९	११	वाचस्पति	स्पत्यकारि
१६०	६	साधवी	सारवी	२०३	३०	व्याकुल	व्यकुल
"	१९	उन्होंने व्याख्यान ०		२१०	१०	तर्क	तके
"	२६	साधू	सूधू	२१३	७	पदार्थान्तर	पदार्थतर
"	२७	०	१३१	२१७	६	उनको	उनक
१६१	११	जती	यती	"	१६	अवाल गोपाल	०
१६२	३०	क्रिया	कृपा	"	२९	और तुम	०
१६३	११	"	"	२१८	६	सुनाना	सुनना
१६४	२२	३८	३१	२२०	३३	तवो तहा	जवो जहा
"	३०	माल	माला	"	"	उवयगो अं ए अ जीवस	
"	३१	भव मीठा	०	लच्छणं अस्स लरकण उवोच्छो अ ए अजी			
१६६	८	ह्येय	है				
१६७	१७	त्रिजच	०	२२५	२६	पर्यार्थक	पर्याय पार्थिक
"	३४	अगीकार	अकीकार	२२८	१८	वा सर्व वृत्तिके ०	
१६८	२३	दश	दशा	"	२९	श्रावकको	श्रावकके
१७१	१७	करता	करना	२२९	१	दर्शनन	दर्शन
"	२२	चिन्तामणि	चिन्तमणी	"	३	निस्सई वहा	०
१७२	३४	बैठगया	बैठगगा	२३१	१४	वासक्षेप	क्षेप
१७३	४	कि भी	०	"	१६	अस्थिर	स्थिर
१७४	१४	मरकटस्य	मरकहास्य	२३२	१५	फूल	कूल
१७८	३४	बोल	वाले	"	१८	ममक्राति	नाम कृति
१८०	१	अर्हन्त	अहत	२३३	२९	लूण	भूण

पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध
२३४	१३	अग्नि	अत्रि
२३५	११	ध्रुपना	पूत्र
२३५	१८	मतन	पतन
,,	२१	भन्नई	भई
,,	,,	वितइयरि	वितइपारे
,,	२२	कुवा	कवा
,,	२७	मुक्तिका फल	मुक्तिकी
२३६	९	होती है इस	अधिकारमें
		अल्प पाप बहु निर्जरा	
२३८	५	पच्चखान	पच्चखाता
,,	१०	हाजत होतो	हाजत तो
,,	२०	पच्चखान	पचूचाण
,,	२५	सो इस	इस
२४०	२५	२२०००	२००
२४१	३०	जिनमत	जिनमठ
२४४	१०	शास्त्र	शास्त्र
,,	१७	२	४
,,	२७	क्रिया	कृपा
२४६	३१	कहके काव सग्ग ये पुस्त	
		कमें वैसी लिखा है	
२४७	५	भगवन्	भगन्
२४९	११	निर्मल	निमित्त
२५६	२१	७२०००	७२
२६१	३२	७२०००	७२

पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध
२६३	१५	होले २	होल २
२६४	२१	कृपा	किपा
२६६	१४	अवार	अवर
२६७	१	हुए	हव
,,	३०	तजि	भारी
२६९	१२	राजजोग	राजयोग
२७४	१६	आहार	आहा
२८१	३४	विधि	मोक्ष

अब पदादिकोंकी शुद्धि लिखते हैं

पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध
२८२	१	वैर	वरे
२८३	१३	दाना	दाता
,,	२३	अचरज	अधर्म
,,	२४	आफू	आपू
,,	२६	अभग	अवग
२८४	१२	धार	घर
२८५	११	विनान	वितान
,,	१६	ठहरावैरे	ठहरावे
२८६	१	पूरनना	पूरनता
,,	१७	क्षारपर	धार पर
२८७	१	नाय	नाम
,,	८	देखनिवारी	देखानेरी
,,	१७	धोवन	धावे
२८८	१०	क्रिया	कृपा

इति सम्पूर्णम् ।

श्रीः ।

लावनी ।



श्री चिदानंद निर्पक्ष गुरु यह भेद बताया ॥
धन्यघड़ी धन्यभाग आजहम उत्तर पाया ॥ टेक ॥
प्रथम प्रश्न उत्तरमे स्वचरित्र सबरा कीना ॥
प्रश्न दूसरे उत्तरमे नय्यायिक वेदान्त दयानन्द लीना ॥
मुसलमान ईसाई मतके भ्रम खोल दीना ॥
दे प्रमाण उन्हीके घरका सच्चामार्ग चीना ॥
प्रश्न तीसरे उत्तर सुनके दिलमे छाया ॥ श्रीचि० ॥
किया दिगंबर बोल पांचका निर्णय है भारी ॥
थानक पंथ मूर्त्ति पूजन आगम युक्ति है न्यारी ॥
गच्छादिकके भेद खोल कर जिन आज्ञाधारी ॥
प्रश्न चतुर्थ उत्तर देनेमे जिनवानी सारी ॥
संबंध चतुष्टय सुनकर मनमे भाया ॥ श्रीचि० ॥
शुद्ध देव गुरु ख्याति कथनी द्रव्य स्वरूपले भाई ॥
अल्पपाप मिथ्यात्वी कहते शुद्ध निर्जरा ठहराई ॥
गुणठाणोका कथन सुनीने हृदय आनंद सुहाई ॥
हठयोग बताया जिनमत कृपा सब दिसलाई ॥
आसन कहकर पट्कर्म स्वरोदयभी जतलाया ॥ श्रीचि० ॥
कुंभक प्राणायाम भेदके उत्तम है विस्तारे ॥
मुद्रा देख अनुपम बंध भेद करदीने है न्यारे ॥
अक्षर चक्र ध्यान गति खोली योगशास्त्रमें है प्यारे ॥
भेद समाधि विधि सुनीने खुश होगये सारे ॥
स्याद्वाद अनुभव रत्नाकर किंचित गुण मैंने गाया ॥ श्रीचि०

वार्ता हठयोग हूकी वरनी गुरु सारी है ॥
याते हर्षयुक्त होय सेवक निज चर्णहूके ॥
करतहै विनन्ति दूर कीन्हे भ्रमभारी है ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

सत गुरुके लक्षण कहे , वीतराग उपदेश ॥
अपवादक उत्सर्गते, वात रखी नाहि शेष ॥ १ ॥
उगणीसे पञ्चासमे ग्रन्थ भयो यह जान ॥
कार्तिकशुक्ला पचमी चन्द्र वार पुनिमान ॥ १ ॥

कविराज हेतुराज आत्मज मदनराज
श्री माली रतलाम ॥



स्तवन-लावनी॥

स॰तगुरुसे ज्ञानपाया मिथ्या भरम गमायारे ॥ स॰ ॥ (ध्रु॰)
नाम धाम कारन वैराग्यको करिके कृपा बनाया ॥
वर्तमान मारग सब कहके, सत्यासत्य जतायारे ॥ स॰ ॥ १॥
वीतरागकी आज्ञा लक्षण, सतगुरुहीके जनायारे ॥ स॰ ॥ २
और प्रश्न जो जो कियेथे, दियो उत्तर चित्तचाया ॥
याते हर्षयुक्त होय कहते, धन्य धन्य गुरुरायारे ॥ स॰ ॥ ३

स्तवन-ललित ॥

प्रथम गुरुहीको वन्दना करो ॥ सकल पापको शीघ्र ही हरो॥
सूक्ष्मदृष्टिसे सोचिये सदा ॥ कौन सतगुरुज्ञान हो तदा ॥
अन्तरिक व्यथा हरणको करे ॥ किस प्रसादसे कार्यनीसरे ॥
रागद्वेषको लेशहै नही ॥ सकल जीवसे प्रेमहै सही ॥ ४ ॥
कामक्रोधको किन्हे है परे ॥ वेही सद्गुरु कष्टको हरे ॥ ५ ॥
तुरग लोभके जो नही चढ़े ॥ मोह जालमे क्यो गुरु पड़े ॥ ६
सत्यप्रेम ये नित्यकर्म हे ॥ सत्यशीलही मुख्य धर्म है ॥ ७ ॥
तत्त्ववस्तुको खोजही करे ॥ सत्यधर्मको चित्तमे धरे ॥ ८ ॥
अभयदानसे होतनापरे ॥ सदुपदेशही नित्य जो करे ॥ ९
कथित गुननसे जो सुशोभित॥तिन्हे ही शिर न मा हो अनन्दित

मंगलाचरण अन्तका

कवित्त ।

धन्य मुनिराज भवसागर जहाजहोय ॥
तारन भव जीव हेतु दिव्य देह धारीहै ॥
ग्राम देश नाम आदि कारन वैराग्यहूको ॥
... कर बताये सब मारग जगजारीहै ॥
... पनि लक्षण प्रमाण युक्त ॥

स्तवन-लावनी॥

स०तगुरुसे ज्ञानपाया मिथ्या भरम गमायारे ॥ स० ॥ (ध्रु०)
नाम धाम कारन वैराग्यको करिके कृपा वनाया ॥
वर्तमान मारग सब कहके, सत्यासत्य जतायारे ॥ स० ॥ १ ॥
वीतरागकी आज्ञा लक्षण, सतगुरुहीके जनायारे ॥ स० ॥ २ ॥
और प्रश्न जो जो कियेथे, दियो उत्तर चित्तचाया ॥
याते हर्षयुक्त होय कहते, धन्य धन्य गुरुरायारे ॥ स० ॥ ३ ॥

स्तवन-ललित ॥

प्रथम गुरुहीको वन्दना करो ॥ सकल पापको शीघ्र ही हरो ॥ १ ॥
सुक्ष्मदृष्टिसे सोचिये सदा ॥ कौन सतगुरुज्ञान हो तदा ॥ २ ॥
अन्तरिक व्यथा हरणको करे ॥ किस प्रसादसे कार्यनीसरे ॥ ३ ॥
रागद्वेषको लेशहे नही ॥ सकल जीवसे प्रेमहे सही ॥ ४ ॥
कामक्रोधको किन्हे हे परे ॥ वेही सद्गुरु कष्टको हरे ॥ ५ ॥
तुरग लोभके जो नही चडे ॥ मोह जालमे क्यों गुरु पड़े ॥ ६ ॥
सत्यप्रेम ये नित्यकर्म हे ॥ सत्यशीलही मुख्य धर्म हे ॥ ७ ॥
तत्त्ववस्तुको खोजही करे ॥ सत्यधर्मको चित्तमे धरे ॥ ८ ॥
अभयदानसे होतनापरे ॥ सदुपदेशही नित्य जो करे ॥ ९ ॥
कथित गुननसे जो सुशोभित॥तिन्हे ही शिर न मा हो अनन्दित १०।

मंगलाचरण अन्तका

लावनी ।

वार्त्ता हठयोग हूकी वरनी गुरु सारी है ॥
याते हर्पयुक्त होय सेवक निज चर्णहूके ॥
करतहै विनन्ति दूर कीन्हे भ्रमभारी है ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

सत गुरुके लक्षण कहे , वीतराग उपदेश ॥
अपवादक उत्सर्गते, वात रखी नाहि शेप ॥ १ ॥
उगणीसे पञ्चासमे ग्रन्थ भयो यह जान ॥
कार्तिकशुक्ला पंचमी चन्द्र वार पुनिमान ॥ १ ॥

कविराज हेतुराज आत्मज मदनराज

श्री माली रतलाम ॥



स्तवन-लावनी॥

स०तगुरुसे ज्ञानपाया मिथ्या भरम गमायारे ॥ स० ॥ (ध्रु०)
नाम धाम कारन वैराग्यको करिके कृपा बनाया ॥
वर्तमान मारग सब कहके, सत्यासत्य जतायारे ॥ स० ॥ १ ॥
वीतरागकी आज्ञा लक्षण, सतगुरुहीके जनायारे ॥ स० ॥ २ ॥
और प्रश्न जो जो कियेथे, दियो उत्तर चित्तचाया ॥
याते हर्षयुक्त होय कहते, धन्य धन्य गुरुरायारे ॥ स० ॥ ३ ॥

स्तवन-ललित ॥

प्रथम गुरुहीको वन्दना करो ॥ सकल पापको शीघ्र ही हरो ॥ १ ॥
सूक्ष्मदृष्टिसे सोचिये सदा ॥ कौन सतगुरुज्ञान हो तदा ॥ २ ॥
अन्तरिक व्यथा हरणको करे ॥ किस प्रसादसे कार्यनीसरे ॥ ३ ॥
रागद्वेषको लेशहै नहीं ॥ सकल जीवसे प्रेमहै सही ॥ ४ ॥
कामक्रोधको किन्हे है परे ॥ वेही सद्गुरु कष्टको हरे ॥ ५ ॥
तुरग लोभके जो नहीं चढे ॥ मोह जालमे क्यों गुरु पड़े ॥ ६ ॥
सत्यप्रेम ये नित्यकर्म है ॥ सत्यशीलही मुख्य धर्म है ॥ ७ ॥
तत्त्ववस्तुको खोजही करे ॥ सत्यधर्मको चित्तमे धरे ॥ ८ ॥
अभयदानसे होतनापरे ॥ सदुपदेशही नित्य जो करे ॥ ९ ॥
कथित गुननसे जो सुशोभित॥तिन्हे ही शिर न मा हो अनन्दित १०।

मंगलाचरण अन्तका

कवित्त ।

धन्य मुनिराज भवसागर जहाजहोय ॥
तारन भव जीव हेतु दिव्य देह धारीहै ॥
ग्राम देश नाम आदि कारन वैराग्यहूको ॥
[illegible] कर बताये सब मारग जगजारीहै ॥
[illegible] पनि लक्षण प्रमाण युक्त ॥

वार्त्ता हठयोग हूकी वरनी गुरु सारी है ॥
याते हर्पयुक्त होय सेवक निज चर्णहूके ॥
करतहै विनन्ति दूर कीन्हे भ्रमभारी है ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

सत गुरुके लक्षण कहे , वीतराग उपदेश ॥
अपवादक उत्सर्गते, वात रखी नाहिं शेप ॥ १ ॥
उगणीसे पञ्चासमे ग्रन्थ भयो यह जान ॥
कार्तिकशुक्ला पंचमी चन्द्र वार पुनिमान ॥ १ ॥

कविराज हेतुराज आत्मज मदनराज
श्री माली रतलाम ॥

